भूमिका

उत्तम पुस्तकें संस्कृति का सर्वोत्तम उपहार हैं। युग-युग का साहित्य हमें स्वदेश-विदेश, स्वजाति-विजाति तथा अतीत-वर्तमान की सांस्कृतिक गरिमा का परिचय देता है। मानव के मन और बुद्धि किन ऊँचाइयों तक जा चुके हैं, इसकी अनुभूति भी साहित्य से ही होती है। इसीलिए हर सुसंस्कृत मानव यह मानता है कि जिस घर में पुस्तकें न हों, वह खिडकियों से रहित भवन के समान है।

विश्व के विशाल वाङ्मय का हर गौरव-ग्रंथ अनुपम होता है—चाहे वह धर्मग्रंथ हो या नीतिग्रंथ, कहानी-संग्रह हो या उपन्यास, काव्य हो या गीत-संकलन, दार्शनिक ग्रंथ हो या इतिहास, राजनीतिक कृति हो या समाज-शास्त्रीय, स्वदेशीय हो या विदेशीय तथा वर्तमान युगीन हो या अतीतकालीन। उसमें मानव के हृदय और बुद्धि को प्रभावित करने की, ज़िंदगी और ज़िंदादिली से मानव-जीवन को भर देने की तथा अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित करने की एक विशेष शक्ति होती है। महान प्रतिभाओं, वीरों, मनीषियों और संतों के प्रभावी शब्दों में जादू जैसा प्रभाव होता है। प्रेरित, उत्साहित, आनन्दित अथवा विजिगीषु बनाने में समर्थ इन प्रेरक वाणियों को, गिने-चुने वाक्यों अथवा शब्दों में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टियों को, युग-युग से मानव ने 'सूक्ति', 'सुभाषित' आदि कहकर सम्मान दिया है।

सूक्तियाँ अमृत-बिन्दुओं के सदृश प्रतिष्ठित रही हैं। अमृत के समान ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है। **'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व' का फ्रांसीसी क्रांति-घोष, 'स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा' जैसी लोकमान्य तिलक की घोषणा, 'तत्त्वमसि' तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसी उपनिषद्-वाणी** इत्यादि की बिजली जैसी शक्ति ने मानवों के जीवन की और विश्व की दिशा को कोटि-कोटि बार मोड़ दिया है, यह हम इतिहास से प्रमाणित देख सकते है।

सूक्तिकोशों का उद्देश्य व महत्त्व

किसी भी सूक्तिकोश का उद्देश्य साधारणतया प्राचीनकाल से लेकर आज तक के साहित्य से, विविध विषयों पर चुने गए सुन्दर उद्धरणों को, विषयानुसार या लेखकानुसार इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है कि पाठक उन उद्धरणों को सुविधापूर्वक उपयोग में ला सकें।

सूक्तिकोश का एक उद्देश्य किसी आधे-अधूरे याद आ रहे उद्धरण को सही रूप में दिखा देना भी होता है। कभी पढ़ी गई और याद कर ली गई सूक्तियाँ कालान्तर में पूरी याद नहीं आ रही हैं, ऐसा हम प्राय: अनुभव करते हैं। ऐसे अवसरों पर सूक्तिकोश की सहायता ली जाती है। इसी प्रकार यदि किसी सूक्ति के लेखक का स्मरण हम न कर पा रहे हों या लेखक के समय आदि का ध्यान न आ रहा हो, तो सूक्तिकोश अधिकृत जानकारी शीघ्रता से दे सकते हैं।

प्राय: काल-विक्षेप से अनेक लेखकों को हम भूल जाते हैं परन्तु उनकी सूक्तियाँ चलती रहती हैं। यदि विधिवत् बने सूक्तिकोश हों तो मूल लेखकों की स्मृति भी बनी रहती है। लेखक को भूलने के साथ-साथ लेखक सम्बन्धी भ्रान्त धारणा भी आ सकती है और एक लेखक की रचना को किसी अन्य लेखक की रचना कहा जाने का अवसर भी आ सकता है।

विश्व की विशाल ग्रंथ-राशि में ऐसी प्रभावी सूक्तियों के संकलन-ग्रंथों अर्थात् सूक्तिकोशों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण है उनकी संदर्भग्रन्थ के रूप में असाधारण उपयोगिता। सम्पादकों, वक्ताओं, लेखकों आदि को अपने मत या विचार के पोषणार्थ अथवा अपनी अभिव्यक्ति को वज़नदार या सरस बनाने के लिए उद्धरणों का उपयोग करना होता है। इसमें मानव-मनोविज्ञान भी सहायक होता है। उदाहरणार्थ, जब कोई वक्ता या लेखक किसी ऐसी सूक्ति को उद्धृत करता है, जिसे शेक्सपियर या होमर या व्यास की होने के कारण पहले से ही लोकमान्यता प्राप्त है, जो श्रोता या पाठक भी उस सूक्ति से परिचित होने के कारण एक विशेष प्रकार का हर्ष अनुभव करते हैं। उसे सुनकर वे इतने भावविभोर हो जाते हैं कि उद्धरण प्रस्तुत करने वाले वक्ता या लेखक के विचार-प्रवाह में सहज ही वह जाते है। **सूक्तियों में जो अनुभव, चुने हुए शब्दों की कलात्मक योजना, हृदय तथा बुद्धि को स्पर्श करने वाली अभिव्यक्ति और प्रायः संक्षिप्तता का समावेश होता है, उसके कारण सूक्तियों का प्रभाव चमत्कारी होता है।**

साहित्य में सूक्तियाँ यत्र-तत्र विखरी हुई होती है किन्तु सूक्तिकोशों में तो सूक्तियाँ ही सूक्तियाँ होती हैं, जिन्हें संकलन-कर्ता ने किसी विशेष भाषा या देश या ज्ञानक्षेत्र या सम्पूर्ण विश्व से चुनकर रखा होता है। ये मूल ग्रंथों की सार जैसी, ज्ञान के 'कैप्सूल' जैसी, प्रेरणा के 'इंजेक्शन' जैसी, मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी सूक्तियाँ देखने में छोटी भले ही लगें किन्तु घाव तो गंभीर ही करती हैं। विश्व-उद्यान के ग्रन्थ-वृक्षों के चुने हुए फूलों से वने भव्य गुलदस्तों जैसे सूक्तिकोशों में, ज्ञान और आनन्द का सुन्दर समन्वित रूप पाठकों के हृदय और बुद्धि दोनों को सहज ही प्रभावित कर लेता है।

निस्सन्देह किसी लेखक को उद्धृत करना उसका उच्चतम सम्मान होता है और जो मौलिकता के अभिमान में चूर होकर या अज्ञानवश अन्य विद्वानों को उद्धृत करने से कतराते हैं, वे स्वयं भी कभी उद्धृत नहीं किए जाते। इसीलिए महान जातियां और उन्नत देश अपने साहित्य से तथा विश्व-साहित्य से चुनी हुई सूक्तियों के संकलन-ग्रंथ तैयार करते रहते हैं। ऐसे ग्रंथ सूक्ति-संग्रह, सुभाषित-सग्रह, सुभाषितावलि, डिक्शनरी आफ़ क्वटेशंस सूक्तिकोश इत्यादि कहे जाते हैं तथा लेखकों, वक्ताओं, विद्यार्थियों, राजनीतिज्ञों, धर्मप्रचारकों, धर्मसाधकों, समाज-सेवियों, शिक्षकों इत्यादि में वहुत लोकप्रिय होते है।

भारत में सूक्तिकोशों की प्राचीन परम्परा

संस्कृत का साहित्य संसार का सबसे प्राचीन ही नही, सबसे समृद्ध साहित्य रहा है और यदि विगत कुछ शताब्दियों को छोड़ दिया जाए, जिनमें भारत प्रायः परतंत्र रहा और स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष करता रहा, तो संस्कृत-साहित्य विश्व में युग के साथ और कभी-कभी युग के आगे चलने वाले विद्वानों द्वारा विकसित किया जाता रहा है।

उद्धरणों का महत्त्व

वेदों में जो मंत्र-सामग्री उपलब्ध है, उसी से संस्कृत-साहित्य का प्रारंभ होता है। और तव से लेकर आज तक रचे गए संस्कृत-साहित्य में आध्यात्मिक और लौकिक दृष्टि से जिन करोड़ों ग्रंथों की रचना हुई है, उनमें से आज कुछ ही उपलब्ध है। अगणित का तो नाममात्र भी शेष नहीं है। इन ग्रंथों के अति महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले कुछ अंश अन्य ग्रंथकारों द्वारा उद्धृत किए जाने के कारण ही शेष रह गए हैं—कभी मूल रचयिता व मूल ग्रंथ के नाम के साथ और कभी उन दोनों में से एक के साथ और कभी उन दोनों के बिना ही। अतः प्राचीन

मनीषा का एक अंश इन उद्धरणों के कारण ही शेष बचा है।

समृद्ध सुभाषित-संग्रह

इन उद्धरणों का एक अंश उन चमत्कारपूर्ण चुटीली पद्य-रचनाओं का है जिन्हें संस्कृत-साहित्य में सुभाषित कहा गया है। आज प्रचलित 'सूक्ति' शब्द में पद्यबद्ध सुभाषितों, सक्षिप्त उक्ति रूप सूत्रों तथा लोकोक्तियों का समावेश है। ऐसी सूक्तियों के अनेक संग्रह प्राचीन काल से वर्तमान शताब्दी तक किए जाते रहे है और उन्हें 'सुभाषित-संग्रह' आदि नाम दिए गए हैं। यों तो संसार की प्रायः सभी समृद्ध भाषाओं के अनेक विद्वानों ने अपने-अपने सूक्ति-संग्रह तैयार किए हैं, किन्तु इस क्षेत्र में संस्कृत के सूक्ति-संग्रह अपनी अनन्त ज्ञानराशि, अनुभव सामग्री, गेयता तथा सहजता के अतिरिक्त विशाल संख्या, व्यापक क्षेत्र, रूप-वैविध्य तथा दीर्घ कालावधि को देखते हुए सर्वोपरि हैं, इसे कोई भी निष्पक्ष विद्वान स्वीकार कर लेगा। हिन्दू-जीवन मे दर्शन व व्यवहार की जो निकटता आ पायी है, सामान्य जन भी जिस प्रकार बौद्धिक दृष्टि से परिपक्व व संस्कारित रहा है, उसके पीछे इन सूक्तियों व सूक्ति-संग्रहों का बड़ा हाथ रहा है।

संस्कृत के सूक्तिसंग्रहों के इस विशाल संसार ने भारत ही नहीं, बृहत्तर भारत को भी प्रभावित किया था। विश्व भर में संस्कृत की सूक्तियाँ किन रूपों में पहुँचीं, यह जानकारी संकलित करना गंभीर अन्वेषकों के लिए एक रोचक व चुनौती-भरा कार्य है। मानव धर्म को सुन्दर भाषा में तथा हृदयग्राही शैली में अभिव्यक्त करने वाली उक्तियों को स्वतंत्र मुक्तक रूप में भी रचा जाता रहा, कथा-ग्रंथो में बीच-बीच में भी पिरोया जाता रहा तथा महाकाव्यों, नाटकों आदि में भी सँजोया गया। यही नही, भारतीय मनीषा के गंभीर ग्रंथों—दार्शनिक ग्रंथों, व्याकरण-ग्रंथों आदि—में भी सूक्तियों का बड़ा कोष भरा मिलता है। साथ ही, काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये गए अनेक काव्यांश तो सूक्तियाँ ही है। भोज सदृश अनेकानेक राजाओं ने तो श्रेष्ठ मुक्तक काव्य के रूप में सूक्ति-रचना को अपने पुरस्कार इत्यादि से अत्यधिक प्रोत्साहित किया और सुभाषितों की रचना की बाढ़-सी आ गई। **सुन्दर नीतिवाक्यों को घर-घर पहुँचाकर, ज्ञान को सहज सुलभ बनाने वाली भारतीय पद्धति संसार में अनूठी ही कही जाएगी।**

संस्कृत के सुभाषित संग्रहकारों ने अपने ग्रंथों को कहीं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में विभाजित किया है और कहीं अन्य मनमानी विधियों से। उनमें जीवन की विविध परिस्थितियों के अनुसार आचरण करने की शिक्षा देने वाले नीतिवाक्यों में परस्पर विरोध भी दिखाई देता है। कभी-कभी तो एक ही कवि दो विरोधी बातें बताता दिखाई देता है। किन्तु उनमें परस्पर विरोध नहीं, विरोधाभास मात्र है क्योंकि परिस्थितिभेद से वे सभी बातें ठीक बैठती हैं। इन ग्रंथों में कहीं तो नीतिपरक बातें ही कही गयी हैं, कहीं नीतिपरक बातों को उदाहरणों के साथ रखा गया है और कही चित्रात्मक वर्णन के द्वारा हृदय को मुग्ध करने के लिए कैमरा जैसा नैपुण्य दिखाया गया है। कहीं श्लोकों से ही काम लिया गया है और कहीं छन्दों की विविधता का आवश्यकतानुसार लाभ उठाया गया है।

सुभाषित-संग्रहों का महत्त्व उनके इस कोश रूप में है जिसमें वे हमारे लाखों मेधावी पूर्वजों का अनुभव व ज्ञान, काव्य-दृष्टि, नैतिकता के सूत्र, विस्मृत जैसे कवियों के नाम तथा उनकी कृतियों के अंश हम तक पहुँचाते है। प्रायः उनसे कवियों व कृतियों का समय निश्चित करने में भी सहायता मिलती है।

प्राकृत भाषा के सूक्तिकोश

संस्कृत-साहित्य के विशाल सुभाषितसंग्रह-भंडार को देखने से पहले प्राकृत व अपभ्रंश के सुभाषितसंग्रह-

ग्रंथों की चर्चा समीचीन होगी। प्राकृत भाषा में भी उत्तम काव्य की रचना हुई और तदनुसार उत्तम सूक्तियों के संकलन-ग्रन्थ भी तैयार किये गए। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय महाराष्ट्री प्राकृत का ग्रंथ 'गाहा सत्तसई' रहा है। इसका संस्कृत रूप 'गाथा सप्तशती' कहलाता है। इसके रचयिता शालिवाहन नामक प्रतापी राजा थे, जिन्होंने प्राकृत-प्रेम के कारण अपना 'सातवाहन' नाम भी धारण कर रखा था। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' (पृ० ५७५-५७६) में 'गाहा सत्तसई' के विषय में लिखा है—"सातवाहन प्रतिष्ठान में राज्य करते थे, तथा बृहत् कथाकार गुणाढ्य और व्याकरणाचार्य शर्ववर्मा आदि विद्वानों के आश्रयदाता थे। भोज के 'सरस्वती कंठाभरण' (२।१५) के अनुसार जैसे विक्रमादित्य ने संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए प्रयत्न किया, उसी प्रकार शालिवाहन ने प्राकृत के लिए किया। राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' (पृ० ५०) के अनुसार अपने अन्तःपुर में शालिवाहन प्राकृत में ही बातचीत किया करते थे। बाण ने अपने हर्षचरित में सातवाहन को प्राकृत के सुभाषित रत्नों का संकलनकर्ता कहा है। इनका समय ईसवी सन् ६९ माना जाता है। श्रृंगार रस प्रधान होने के कारण इस कृति में नायक-नायिकाओं के वर्णन-प्रसंग में साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वेश्या, स्वकीया, परकीया, संयमशीला, चंचला आदि स्त्रियों की मनःस्थितियों का सरस चित्रण किया है। प्रेम की अवस्थाओं का वर्णन अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। प्रसंगवश मेघमाला, मयूरनृत्य, कमलवनलक्ष्मी, झरने, तालाब, ग्राम्य जीवन, लहलहाते खेत, विन्ध्य पर्वत नर्मदा, गोदावरी आदि प्राकृतिक दृश्यों का अनूठा वर्णन किया है। बीच-बीच में होलिका-महोत्सव, मदनोत्सव, वेशभूषा, आचार-विचार, व्रत-नियम आदि के काव्यमय चित्र उपस्थित किये गये हैं। निस्संदेह पारलौकिकता की चिंता से मुक्त प्राकृत काव्य की यह अनमोल रचना संसार के साहित्य में बेजोड़ है।"

महाराष्ट्रीय देश व उसके जनजीवन का इसमें बड़ा सजीव चित्रण मुक्तकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अनेक संस्कृत कृतियों, जैसे 'आर्या सप्तशती' (गोवर्धन कृत), 'श्रृंगार सप्तशतिका' (परमानंद कृत), 'गोपीनाथ सप्तशती' (गोपीनाथ कृत), 'आर्यसप्तशती' (माधव भट्ट कृत), 'गाथा सप्तशती' (गिरिधर शर्मा कृत), 'आर्य सप्तशती' (विश्वेश्वर कृत) तथा हिन्दी की 'बिहारी सतसई' की रचना के पीछे 'गाहा सत्तसई' का अप्रतिम प्रभाव रहा है।

प्राकृत का एक दूसरा सूक्ति संकलन 'वज्जालग्ग' है। श्वेताम्बर जैन मुनि जयवल्लभ कृत प्राकृत पद्यों का यह सुभाषित-संग्रह ७९५ गाथाओं से युक्त है और बहुत सरस है। इस पर रत्नदेवगणि ने १३३८ ईसवी में संस्कृत-छाया लिखी थी।

प्राकृत ग्रंथ 'गाथासहस्री' (८५५ गाथाओं वाली समयसुन्दरगणि की संग्रह-कृति, जो १६२९ की रचना है), 'गाथाकोष' (जिनेश्वर सूरि), 'गाथा कोष' (लक्ष्मण), 'रसालय' या 'रसाउलो' (मुनिचन्द्र), तथा छपण्णय-गाहाओ (छपण्णय कृत) अन्य उल्लेखनीय सुभाषित-संग्रह रूप प्राकृत ग्रन्थ हैं।

प्राकृत ग्रंथों से चुनी हुई अनेक सूक्तियाँ अनेक संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध हैं। साथ ही, संस्कृत नाटकों में विद्यमान प्राकृत के अंशों में भी अनेक उत्तम सूक्तियाँ मिलती है।

अपभ्रंश भाषा में सूक्तियाँ

अपभ्रंश-साहित्य भी बहुत सरस रहा है। अपभ्रंश ग्रंथों की सूक्तियों को विद्वानों ने अनेक कृतियों में उद्धृत किया है। उदाहरणार्थ प्राकृत पैंगलम्, पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रबन्ध-कोश (राजशेखर सूरि), प्रबंध-चिंतामणि (मेरुतुंगाचार्य), हेमचन्द्र कृत प्राकृत-व्याकरण का अष्टम अध्याय, छन्दोऽनुशासन और प्राकृत द्वयाश्रय काव्य आदि

तथा संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में अपभ्रंश-सूक्तियों का विपुल भंडार उपलब्ध है।

संस्कृत-सूक्तियों की खोज

संस्कृत की प्राचीन सूक्तियों के अन्वेषकों को वेदसंहिताओं, ब्राह्मणग्रंथों, उपनिषद्-ग्रंथों, रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, स्मृति-ग्रंथों आदि में सूक्तियों का विशाल भंडार मिलता है। साथ ही संस्कृत के नाटकों, काव्य-ग्रंथों, कथाकृतियों, राजतरंगिणी सदृश इतिहासग्रंथों, आयुर्वेद-ग्रंथों आदि में भी लाखों सूक्तियां मिलती हैं। कथासरित्सागर, पंचतंत्र व हितोपदेश तो सरस सूक्तियों के भंडार ही है।

संस्कृत में सुभाषित-संग्रहों की संख्या भी सहस्रों तक पहुँची है। उन सब का नामोल्लेख भी यहां सभव नहीं है। जर्मनी के भारतविद् "ओटोवोतलिंक"ने संस्कृत की ७६१३ सूक्तियों को जर्मन भाषा में अनुवाद के साथ ३ खण्डों में संपादित करके प्रकाशित किया था। पोलैंड के संस्कृत विद्वान लुडविक स्टर्नबाख़ (पेरिस में प्रोफ़ेसर) ने 'महासुभाषितसंग्रह' के २० खंडों में लगभग ५०००० संस्कृत सुभाषितों को (देश-विदेश के उपलब्ध पाठों के साथ) बहुत व्यवस्थित रीति से प्रकाशित करने की जो योजना 'विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान' (होशियारपुर) को प्रकाशक बनाकर प्रारंभ की है, वह एक बड़ा प्रयास है। महासुभाषितसंग्रह के प्रथम खण्ड की भूमिका में जो विस्तृत लेख दिया गया है, उसमें संस्कृत के सुभाषित-संग्रहों पर विशद जानकारी दी गयी है। जिज्ञासुओं को उसका अध्ययन करना चाहिए। इसी प्रकार श्री एम० कृष्णमाचार्य ने 'हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिट्रेचर' में (१५वें अध्याय में) सुभाषित-ग्रंथों पर जो महत्वपूर्ण जानकारी दी है, वह भी द्रष्टव्य है।

मौलिक कृतियाँ

किसी एक लेखक की कृति पूर्णतया सुभाषितों का संग्रह रूप हो ही सकती है। संस्कृत में ऐसी कृतियों की एक लम्बी शृंखला उपलब्ध है। उदाहरणार्थ 'चाणक्यनीति' तो प्रसिद्ध ही है। भर्तृहरि के नीतिशतक, शृंगारशतक तथा वैराग्यशतक भी भारतीय मन पर अत्यंत प्रभावी रहे है। भर्तृहरि के अनुकरण-स्वरूप रची गई रचनाओं में बिल्हण कृत 'शान्तिशतक', धनदराज कृत 'शतकत्रयम्' (१४३४), जनार्दन भट्ट कृत 'शृंगारशतक' और 'वैराग्यशतक', नरहरि कृत 'शृंगारशतक', अप्पय दीक्षित कृत 'वैराग्यशतक' (१६वीं-१७वीं शती), पंडितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनिविलास' तथा अमितगति कृत 'सुभाषितरत्नसन्दोह' (१६वीं शती) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। जैन व बौद्ध उपदेशात्मक साहित्य की अनेक कृतियाँ जैसे सोमप्रभाचार्य कृत 'कुमारपालप्रतिबोध' (१३वीं शती) इत्यादि सुन्दर सूक्तिसंग्रह ही है। सुभाषितरत्नकोश (विद्याकर), सदुक्तिकर्णामृत (श्रीधरदास), शार्ङ्गधर-पद्धति (शार्ङ्गधर) तथा सूक्तिरत्नहार (सूर्य कलिंगराय) भी बहुत प्रसिद्ध है।

भल्लटशतक (भल्लटकृत), गुणरत्न (भवभूति कृत), चारुचर्या (भोजकृत) लोकोक्तिमुक्तावलि (दक्षिणामूर्ति कृत), नीतिसार (घटकर्पर कृत), आर्यासप्तदशी (गोवर्धनाचार्य कृत), धर्मविवेक (हलायुध कृत), अश्वधाती काव्य (पंडितराज जगन्नाथ कृत), मुग्धोपदेश (जल्हण कृत), कविकौमुदी (कल्य लक्ष्मीनृसिंह कृत) काव्यभूषणशतक (कृष्णवल्लभ कृत), मोहमुद्गर (शंकराचार्य कृत), अन्यापदेशशतक, कलिविडम्बन, सभारंजन शतक, शान्तिविलास तथा वैराग्यशतक(ये पाँचों नीलकंठ दीक्षित कृत हैं), रसिकरंजन (रामचन्द्र कृत), अन्योक्तिमुक्तालता (शंभुकृत), नीतिरत्न (वररुचि कृत), सुभाषितनीवी और वैराग्यपंचक (दोनों वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक कृत), नीतिप्रदीप (वेतालभट्ट कृत), अन्योक्तिशतक (वीरेश्वर कृत), चारुचर्या (क्षेमेन्द्र कृत) इत्यादि भी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

उपलब्ध सूक्तिकोशों के अभाव

भारत में सूक्ति-संकलन-ग्रंथों की जो प्राचीन परम्परा चली आ रही है, वह प्रशंसनीय है। किन्तु इन परम्परागत ग्रंथों का स्वरूप आधुनिक युग की रीति-नीति के सूक्तिकोशों से बहुत भिन्न है। उपलब्ध परम्परागत ग्रंथों में (जैसे 'सुभाषितरत्नभांडागारम्' में) सन्दर्भ पक्ष तथा इतिहास-चेतना की अभिव्यक्ति शून्यवत् हैं। इसके परिणाम दोषपूर्ण होते हैं।* आधुनिक युग की मांगों को पूरा करने वाले बड़े सूक्तिकोशों का श्रीगणेश अभी हमारे देश के संस्कृत-विद्वानों ने नहीं किया है। हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के छुटपुट प्रयासों को छोड़ दें तो यहाँ भी शून्य ही दिखायी देता है।

हिन्दी के आदिकालीन, भक्तिकालीन और रीतिकालीन काव्यग्रंथों में असंख्य सूक्ति-रत्न मिलते है। आधुनिक गद्य-पद्य-साहित्य भी इसमें समृद्ध है। हिंदी का नीतिकाव्य भी बहुत समृद्ध है। तुलसी दोहावलि, रहीम-दोहावलि, वृन्द सतसई, गिरिधर की कुंडलियाँ आदि मे सूक्तियों का उत्तम भंडार है। आधुनिक भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधिस्वरूप हिंदी का साहित्य श्रेष्ठ है। किंतु हिन्दी के आधुनिक सूक्तिकोशों पर दृष्टिपात करने से हमें उत्साहवर्धक स्थिति दिखायी नही देती। हिंदी में सूक्ति-संकलन-रूप जो छोटी-बड़ी कृतियाँ मिलती है, उनमें से अनेक तो हिन्दी साहित्य तक सीमित है या हिन्दी-संस्कृत-उर्दू तक के साहित्य तक। अनेक कृतियाँ ऐसी हैं जिनमें विदेशी व स्वदेशी भाषाओं की सूक्तियों का संकलन तो किया गया है, किन्तु भ्रामक अनुवाद, मूल अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य मूल भाषा का अभाव, सन्दर्भों का अभाव या दोषपूर्ण सन्दर्भ, क्रमहीनता, विषयों के वर्गीकरण में त्रुटि, आकार की अत्यधिक लघुता आदि के कारण उनकी उपयोगिता तथा स्तरीयता में कमी आ गयी है।

दूसरी ओर अंग्रेजी इत्यादि अनेक विदेशी भाषाओं में उपलब्ध विदेशी सूक्तिकोशों की संख्या बहुत बड़ी है। उनकी विविधता व समृद्ध सामग्री भी प्रशंसनीय है। मुद्रण व प्रकाशन भी उत्तम हैं। तथापि, उनमें सामग्री का चयन पक्षपातपूर्ण ही कहा जाएगा। कारण यह कि उनमें भारतीय अथवा एशिया के अन्य सुविकसित साहित्य व समाज उपेक्षित या उपेक्षित जैसे दिखायी देते है। यूरोप व अमरीका को ही उनमें अधिक स्थान दिया गया है। इसका परिणाम यह होता है कि भारतीय पाठक को उन्हें देखकर बड़ी निराशा होती है, स्वाभिमान पर आघात भी लगता है तथा 'सुसंस्कृत' कहे जाने वाले राष्ट्रों के मानस में उदारता की कमी पर आश्चर्य भी होता है।

"बृहत् विश्व सूक्ति कोश' की प्रेरणा

भारतीय साहित्य तथा प्रतिभा की भारतीय सूक्तिकोशों में पूर्ण अभिव्यक्ति न देखकर तथा विदेशी

---

*उदाहरणार्थ, भारतीय जनसमाज में संस्कृत की इस प्रसिद्ध सूक्ति को, जो अनेक संकलनों में मिलेगी, हम देखें-"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। प्रायः इसे "वाल्मीकि" कृत "रामायण" का अंश समझा जाता है और पूरा श्लोक इस प्रकार प्रसिद्ध है—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
अपनी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

इस श्लोक में राम, लक्ष्मण और लंका के कारण "रामायण" का संदर्भ मस्तिष्क मे आना स्वाभाविक ही है। किन्तु यह आश्चर्य-जनक सत्य है कि न तो यह पूरा श्लोक रामायण में है, न दूसरी पंक्ति ही। वस्तुतः यह किसी प्राचीन लेखक की किसी कृति (नाटक या काव्य) का अंश है, जिसे हम आज भूल चुके हैं। यदि संस्कृत के सुभाषित-संग्रहों में विधिवत् लेखक-ग्रंथादि संदर्भ देने की परिपाटी चलती रही होती, तो ऐसा विस्मरण सभव नही था। संस्कृत के प्राचीन सुभाषित-संग्रहो में कितने ही कवियों के नाम मात्र शेष रह गए है और हम उनके काल या ग्रंथों आदि के विषय में कुछ भी नही जानते।

सूक्तिकोशों में उसका उचित प्रतिनिधित्व न पाकर ही हमें 'बृहत् विश्व सूक्तिकोश' की रचना की प्रेरणा मिली। अभी तक उपलब्ध अंग्रेज़ी इत्यादि के सूक्तिकोशों में भौतिक व मनोरंजन-प्रधान दृष्टि की प्रधानता के कारण सूक्तिकोश के विषयों की संकुचितता भी रही है। उदादरणार्थ, आध्यात्मिक समझे जाने वाले ईश्वर, धर्म, त्याग, क्षमा, करुणा इत्यादि विषय वहाँ प्रायः कम स्थान पाते हैं, जब कि मानवता को योग्य दिशा देने में इन्हीं का अधिक उपयोग है।

अभिनव ग्रंथ

सूक्तियों के संकलन में आध्यात्मिक और भौतिक विषय, स्वदेशी और विदेशी साहित्य, सन्दर्भ और इतिहास-चेतना, साहित्यिक तथा अन्य स्रोत—इन सभी को महत्त्व देने वाले तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के, हिन्दी सूक्तिकोश के रूप में "बृहत् विश्व सूक्ति कोश" की रचना की गयी है। इस ग्रथ को एक बड़े अभाव की पूर्ति, एक अभिनव प्रयास तथा भारतीय व वैश्विक मनीषा के एक दर्पण के रूप में देखा जाएगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

ग्रन्थ का स्वरूप-परिचय तथा ग्रन्थ-उपयोग की विधि

बृहत् विश्व सूक्ति कोश में समस्त साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि सामग्री को विविध शीर्षकों के अन्तर्गत अकारादि क्रम से सँजोया गया है। इसमें विश्व की प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक भाषाओं से सामग्री-संकलन किया गया है।

- **विशालता** लगभग १६०० **शीर्षकों** में विभाजित १६००० से अधिक सूक्तियों से इस संकलन-ग्रंथ में लगभग १८०० **सन्दर्भ-ग्रंथों, पत्र; पत्रिकाओं तथा फुटकर रचनाओं**का उपयोग करते हुए, लगभग १७०० **लखकों** (लेखक ज्ञात न होने पर कृतियों) को उद्धृत किया गया है। इसमें कुछ **लोकोक्तियों**—देश-विदेश की—को भी उनकी सटीकता के कारण स्थान दिया गया है।
- **तीन खंड** ग्रंथ का प्रकाशन **तीन खंडों में** हुआ है प्रथम खंड (पृष्ठ १ से ४१८) में अ से थ तक के शीर्षकों को स्थान मिला है। द्वितीय खंड(पृष्ठ ४१९ से ९०८)में द से य तक के शीर्षक रखे गए हैं। तृतीय खंड (पृष्ठ ९०९ से १३३४)में र से ह तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ सँजोयी गयी हैं।
- **सूक्तिक्रम** हर शीर्षक में आने वाली सूक्तियों को प्रायः भाषाओं के क्रम से रखा गया है। सर्वप्रथम संस्कृत की सूक्तियाँ हैं, बाद में पालि, प्राकृत, अअभ्रंश हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा भारतीय भाषाओं को स्थान मिला है। इसके बाद वे सूक्तियाँ हैं जो अनुवाद मात्र हैं तथा सबसे अंत में अंग्रेज़ी की सूक्तियाँ रखी गयी हैं। प्रायः यही क्रम इस ग्रंथ में सर्वत्र मिलेगा। संस्कृत व अंग्रेज़ी की सूक्तियों का मूलपाठ देकर हिन्दी अनुवाद दिया गया है। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, फ़ारसी, तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं (हिन्दी व उर्दू के अतिरिक्त) की सूक्तियों का मूल पाठ भी हिन्दी अनुवाद सहित दिया गया है, साथ ही अन्त में भाषा का नाम कोष्ठक में बायीं ओर लिख भी दिया गया है जैसे [फ़ारसी], [मराठी] इत्यादि। हिन्दी व उर्दू की कुछ कठिन सूक्तियों का अर्थ भी कहीं-कहीं दिया गया है, अन्यथा कठिन शब्दों के अर्थ पादटिप्पणी में देकर पाठक की अर्थ-बोध में सहायता की गयी है। संस्कृत की सूक्तियों में भी एक क्रम रखा गया है। प्रायः वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि वैदिक वाङ्मय के पश्चात् रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति आदि रखे गए हैं। तत्पश्चात् काव्य-नाटकादि तथा नीति-ग्रंथ को स्थान मिला है। अंत में अज्ञात व लोकोक्ति को, जैसा अन्य सभी भाषाओं में भी, रखा गया है। हिन्दी में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के चार वर्ग क्रमशः आए हैं परन्तु संतों की

सूक्तियों को एक साथ रखने के प्रयास में इसका अपवाद भी मिलेगा।

प्रादेशिक भाषाओं में भी एक क्रम प्रायः रखा गया है। सर्वप्रथम कश्मीरी, पंजाबी, सिंधी तथा राजस्थानी का वर्ग है। उसके पश्चात् बँगला, असमिया, उड़िया तथा मणिपुरी का वर्ग है। फिर गुजराती व मराठी का वर्ग देकर अंत में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ व मलयालम भाषाओं के वर्ग को स्थान दिया गया है।

● **संदर्भ** प्रत्येक सूक्ति के अन्त में सन्दर्भ दिया गता है। प्रारंभ में लेखक का नाम है और उसके बाद कोष्ठक में पुस्तक, अध्याय तथा पृष्ठ (या श्लोक इत्यादि) की सूचना दी गयी है। उदाहरणार्थ— प्रथम सूक्ति का सन्दर्भ निम्नलिखित है :—

वेदव्यास **(महाभारत, भीष्मपर्व, ३४/३३ अथवा गीता, १०/३३)**। इसका तात्पर्य यह है कि यह सूक्ति वेदव्यास कृत महाभारत ग्रंथ के भीष्मपर्व के ३४ वें अध्याय का ३३वाँ श्लोक है अथवा गीता के १० वें अध्याय का ३३ वाँ श्लोक है। जहाँ सूक्ति का अधूरा सन्दर्भ ही उपलब्ध है, वहाँ उसी को दिया गया है। लेखक या ग्रंथादि ज्ञात न होने पर 'अज्ञात' लिख दिया गया है। लेखक ज्ञात न होने पर ग्रंथ का सन्दर्भ ही अनेक स्थानों पर मिलेगा। कहीं पर पुस्तक या पत्र-पत्रिका का सन्दर्भ न देकर फुटकर रचना का ही सन्दर्भ दे दिया गया है।

● **शीर्षक** शीर्षकों का अकारादि क्रम है और शीर्षक-सूची **'विषयानुक्रमणिका'** हर खंड के प्रारंभ में दी गयी है। पर्यायवाची शीर्षक भी कही पाठकों की सुविधा के लिए दिए गए है किन्तु उनमें प्रायः एक ही शीर्षक के अन्तर्गत सूक्तियाँ दी गयी है और अन्यत्र संकेत दे दिया गया है। उदाहरणार्थ **'कामना'** शीर्षक में लिखा गया हैं—**दे० इच्छा**। अतः पाठक को 'इच्छा' शीर्षक में वांछित सूक्तियाँ देखनी चाहिए। किन्तु सदृश शब्दों में कुछ अन्तर होने पर उनमें अलग-अलग सूक्तियाँ दी गयी हैं। उदाहरणार्थ—**'प्रेम'** और **'स्नेह'** में पृथक-पृथक सूक्तियाँ मिलेगी। विषय-सादृश्य के कारण शीर्षक के नीचे संकेत भी यथास्थान दिया गया है। उदाहरणार्थ—**'देशभक्ति'** शीर्षक के नीचे संकेत है—**दे० 'राष्ट्र-भक्ति'** भी।

● **संक्षिप्त रूप** सूक्तिकोश में शब्दों के **संक्षिप्त रूपों का प्रयोग** पाठक की सुविधार्थ न्यूनतम किया गया है। **दे०** (=देखिए), द्र० (द्रष्टव्य) तथा पृ० (पृष्ठ) सदृश प्रयोग ही प्रायः मिलेंगे।

● **परिशिष्ट** पाठक के लिए **परिशिष्ट** में बहुत उपयोगी सामग्री सँजोयी गयी है। प्रत्येक खण्ड में तीन परिशिष्ट है। परिशिष्ट-१ में सूक्ति के लेखकादि की (लेखक ज्ञात न होने पर ग्रंथ/पत्र,पत्रिका/रचना आदि की) सन्दर्भ-अनुक्रमणिका तीनों खण्डों में लेखक/ग्रंथादि के नाम व परिचय की दृष्टि से प्रायः एक सी ही है किन्तु उनमें पृष्ठ-संख्याएँ खंडानुसार पृथक-पृथक रूप से मिलेंगी। यही नहीं, हर खंड में यह भी वहीं सूचित कर दिया गया है कि शेष खंडों में लेखक या ग्रंथ विशेष की सूक्तियाँ हैं या नहीं। उदाहरणार्थ— काज़ी नज़रुल इस्लाम के विषय में प्रथम खंड परिशिष्ट-१ में हम लिखा पाते हैं—

१०६, १७०, ३२८ (दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)

इसका तात्पर्य भह है कि प्रथम खंड में इन तीन पृष्ठों पर लेखक की सूक्तियाँ (एक पृष्ठ पर एक से अधिक भी संभव हैं) दी गयी हैं तथा शेष दो खंडों में भी है।

पुनः देखें— कन्नड़-साहित्यकार **'कुवेम्पु'** के विषय में प्रथम खंड परिशिष्ट—१ में लिखा है—

(दे० तृतीय खंड)

इसका तात्पर्य यह है कि कुवेम्पु की सूक्तियाँ केवल तृतीय खंड में हैं, अन्य दो खंडों में नहीं।

परिशिष्ट-१ मे लेखकों व ग्रंथों के संदर्भ प्रायः यथासंभव जीवन-काल या ग्रन्थ-रचनाकाल (ईसवी सन् में) सहित, सामान्य जीवन-परिचय से युक्त दिए गए है। यदि पाठक किसी लेखक-विशेष की सूक्तियों का ही

अध्ययन करना चाहें तो उन्हें तीन खंडों के परिशिष्ट—१ से उनकी सूक्तियों वाले पृष्ठों की संख्या तो ज्ञात होगी ही, विषयानुक्रमणिका से पृष्ठों का मिलान करने पर इच्छित लेखक की इच्छित विषय पर सूक्ति भी प्राप्त हो सकेगी।

परिशिष्ट—२ में संदर्भ-ग्रन्थ-सूची है, जो केवल तृतीय खंड में दी गयी है और अन्यत्र उसके लिए सूचित मात्र किया गया है।

परिशिष्ट—३ में तीनों खंडों के अपने-अपने शुद्धि-पत्र दिए गए हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे ग्रंथ की मुद्रण आदि की अशुद्धियों को दूर करने के लिए शुद्धि-पत्र पर पूरा ध्यान दें। यथास्थान सुधार कर लेने पर सूक्तियाँ व सन्दर्भादि निर्दोष हो जाएंगे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सूक्तियों को पढ़ते समय यदि कहीं पर त्रुटि प्रतीत हो तो शुद्धि-पत्र की सहायता तत्काल लेनी चाहिए।

उपयोगिता और उद्देश्य

प्रस्तुत 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' का सामान्य उपयोग अनेक प्रकार से हो सकेगा। किसी अर्द्धस्मृत सूक्ति को ठीक से प्रस्तुत करना, सूक्ति का संदर्भ बताना, लेखक व ग्रंथ-सम्बन्धी संदर्भों तथा इतिहास-चेतना को सजीव बनाए रखना आदि उद्देश्यों की पूर्ति तो इससे होगी ही, साथ ही भारतीयों में राष्ट्रीय एकता तथा विश्वबंधुत्व की भावना को विकसित करने में भी यह सहयोगी होगा।

राष्ट्रीय एकता तथा विश्वबंधुत्व का संदेशवाहक

राष्ट्रीय एकता के सन्देशवाहक के रूप में भी 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' का अपना विशिष्ट महत्व है। इसमें विशाल भारतवर्ष कीं संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं तथा हिन्दी, उर्दू, कश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, असमिया, मणिपुरी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम सदृश आधुनिक भाषाओं में, युग-युग के लोक-नेताओं व साहित्यकारों द्वारा किस प्रकार एक ही संस्कृति तथा एक से विचारों की अभिव्यक्ति हुई है, यह अनुभूति पाठक को सहज ही होगी।

राष्ट्रीयता का स्वर विश्वबन्धुत्व का भी पुरस्कर्ता रहे, यह दृष्टि भी इस ग्रंथ में रही है। जैसे राष्ट्रीय स्तर पर उसमें सम्प्रदाय-निरपेक्ष, वर्ग निरपेक्ष, प्रान्त-निरपेक्ष, भाषा-निरपेक्ष दृष्टि रही है, वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसमें किसी प्रकार पक्षपात या भेदभाव नहीं रखा गया है। यही नहीं, देश-देश के मनीषियों, सन्तों आदि द्वारा एक ही विषय पर कैसा विचार-साम्य है, भाव-साम्य है, इसकी अनुभूति पाठक को आनन्दविभोर कर देगी।

'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' का उद्देश्य विश्व के उत्कृष्ट मनीषियों और उत्तम विचारों का पाठक को साक्षात्कार कराना रहा है, भले ही वे किसी भी देश, धर्म, जाति या विचारधारा के रहे हों। सभी सम्प्रदायों, वर्गों तथा वादों के उत्तम व्यक्तियों के उत्तम उद्गारों को प्रस्तुत करने से यह ग्रंथ विश्वबन्धुत्व की चेतना को सुदृढ़ करने वाला सिद्ध होगा, यह कहा जा सकता है। इसका कारण यही है कि विश्वबन्धुत्व में राजनीति का कम और अच्छे साहित्य का ही अधिक योगदान हो सकता है।

ज्ञान भी, आनन्द भी

प्रस्तुत सूक्तिकोश से लेखक, सम्पादक, वक्ता, राजनीतिज्ञ आदि को अपने-अपने लिए उपयोगी उद्धरण

तो मिलेंगे ही, इसका एक अन्य उपयोग भी है। इस ग्रंथ से उन पाठकों को ज्ञान व आनन्द प्राप्त होगा, जिनके पास समय है। 'वृहत् विश्व सूक्ति कोश' को कहीं से भी प्रारम्भ कर अन्तिम पृष्ठ तक पढ़ते जाइए और आनन्द लेते जाइए। बार-बार पढ़ने पर भी सूक्तियों की नित्य नवीनता बनी रहती है। यह भी इस ग्रंथ की एक विशेषता है। सुधी पाठक निस्सन्देह इस ग्रंथ को 'नित्य स्वागत करने वाले प्रबुद्ध मित्र' के रूप में देख सकेंगे।

ग्रंथ का नाम

प्रस्तुत ग्रंथ का नाम 'विश्व सूक्ति कोश' रखने का पूर्व निश्चय बाद में परिवर्तित कर 'वृहत् विश्व सूक्ति कोश' नाम से इस ग्रंथ को अलंकृत किया गया।

विश्व भर से सामग्री-चयन के बाद भी हमने इसे 'विश्वकोश' न कहकर 'कोश' कहना ही पसन्द किया है। 'विश्व' शब्द से अभिप्रेत काल, स्थान तथा क्षेत्र की व्यापकता इसमें प्रचुरता से विद्यमान है। भारतवर्ष के अतिरिक्त एशिया, यूरोप, अमरीका आदि के प्रसिद्ध साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, कलाकारों, संतों इत्यादि के उत्तम उद्धरणों का यह संकलन वस्तुत: 'विश्व-उद्यान के कभी न मुरझाने वाले तथा चिर-सुगंधित पुष्पों का आकर्षक गुलदस्ता' भी कहा जा सकता है।

विदेशी नामों की वर्तनी

प्रस्तुत कोश में आए विदेशी नामों—व्यक्तियों, ग्रंथों, स्थानों आदि—के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। विदेशी नामों के उच्चारण में किसी से भी त्रुटि हो जाना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी में सामान्य विद्यार्थी जिस नामांश को 'जीन' कहेगा, फ़्रांसीसी उच्चारण में उसे 'ज्यां' कहना ही ठीक होगा। अत: ऐसी अनेक त्रुटियों को दूर करने के लिए सम्बद्ध ग्रंथों से भी सहायता ली गयी तथा अनेक विदेशी भाषा-मर्मज्ञों से सम्पर्क किया गया। कुछ भ्रमों का परिहार करने का प्रयत्न तीनों खंडों के परिशिष्ट में दी गई लेखक-ग्रंथादि की संदर्भ अनुक्रमणिका से भी हो सकेगा। फिर भी नाम विवादास्पद ही रहेंगे। 'मैक्स मूलर' कहे जाने वाले जर्मनी के संस्कृत-विद्वान् का शुद्ध उच्चारण 'माक्स म्यूलर' रखना किसी को ठीक लगेगा, किसी को नहीं। 'गेटे' का जर्मनी उच्चारण 'गोइठे' लिखने पर कितने पाठक समझ पाएंगे? वैज्ञानिक 'आइंस्टाइन' को आइंस्टीन' कहने वालों की कमी नहीं है, पर 'जर्मन साहित्य का इतिहास' में इन्हें 'आइनश्टीन' कहा गया है, तब क्या यह उच्चारण हिन्दी पाठकों के गले आज उतर पाएगा? अंग्रेज़ी में 'टालस्टाय' कहे जाने वाले रूसी विद्वान् को हम शुद्ध रूसी उच्चारण के निकट'तॉल्स्तॉय' कहें या 'तोलसतोय' या कुछ और? ये सब प्रश्न एक 'विद्वत् परिषद्' में सुलझाव चाहते है। जब तक अधिकारी विद्वानों द्वारा विदेशी नामों की शुद्ध वर्तनी वाला अधिकृत हिन्दी-कोश तैयार नहीं होगा, तब तक विदेशी नामों के विषय में त्रुटियों की संभावना बनी ही रहेगी।

लेखकों और ग्रंथों के प्रति कृतज्ञता

अत्यन्त प्राचीन काल से आज तक जिन महान ग्रंथों ने मानवता को प्रकाश दिया है उसमें वेद, रामायण, महाभारत आदि भारतीय ग्रंथों से लेकर देश-विदेश में लोक-प्रचलित कहावतों के संकलनों तक का उपयोग प्रस्तुत 'वृहत् विश्वसूक्ति कोश' में किया गया है। इन महान ज्ञात-अज्ञात लेखकों तथा ग्रंथों के प्रति ही नहीं, उनकी प्रकाशक संस्थाओं और वस्तुत: उनके संरक्षक समाजों और राष्ट्रों की ज्ञान परम्परा के प्रति हार्दिक श्रद्धाभिव्यक्ति को हम

अपना प्रथम कर्तव्य मानते हैं। उनके कारण ही यह ग्रंथ संभव हुआ है। निस्सन्देह मानव जाति उनके प्रति सदैव ऋणी रहेगी।

संकलन का संतुलन

इस ग्रंथ को देखने के पश्चात् पाठक के मन में कुछ प्रश्न उठ सकते हैं, उदाहरणार्थ—अनेक बड़े लेखक या बड़े ग्रंथ बिल्कुल ही क्यों छोड़ दिए गए हैं? कुछ प्रसिद्ध उद्धरणों को इसमें स्थान क्यों नहीं दिया गया है? कुछ महान लेखकों की बहुत कम सूक्तियाँ और अपेक्षाकृत सामान्य लेखकों की अधिक सूक्तियाँ क्यों दी गई है?

वस्तुतः कई बार महान लेखकों की कृतियों में सूक्तियाँ खोज पाना कठिन कार्य होता है। वे उत्तम मनीषी तो होते हैं, परन्तु उनका साहित्य सूक्तियों में समृद्ध नहीं होता। दूसरी ओर अनेक महान लेखकों की कृतियों में सूक्तियों की भरमार मिलती है। कई बार पुनरुक्ति को बचाने के लिए भी दो या अधिक लेखकों में से किसी एक की सूक्ति देना ही ठीक लगता है। और कई बार (जैसे व्यास, तुलसीदास, शेक्सपियर आदि के साहित्य में) एक लेखक की सूक्तियों की संख्या बहुत अधिक हो जाने के भय से अनेक सूक्तियों को छोड़ देना पड़ता है। अतः स्वाभाविक है कि जब पाठक को अपनी वांछित सूक्ति सहज ही न मिले तो वह झुँझलाए। किन्तु संभव है कि यह झुँझलाहट निरर्थक सिद्ध हो। ऐसा तब संभव है जब पाठक किसी सूक्ति को एक शीर्षक में खोज रहा हो, परन्तु वह दूसरे शीर्षक के अन्तर्गत रखी गई हो और वहाँ खोजने पर मिल जाए। इसका कारण यह है कि अनेक विचारों से समृद्ध कोई सूक्ति अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत रखी जा सकती है, किन्तु अन्ततः किसी एक शीर्षक के अन्तर्गत उसे रखने की सम्पादकीय विवशता होती ही है।

प्रायः ऐसा भी होता है कि चयनकर्ता जिन लेखकों का विशेष अध्येता रहा है, उन लेखकों की सूक्तियों का प्रायः अधिक चयन हो जाता है। इसी प्रकार जिन लेखकों का साहित्य अधिक प्रचारित या अधिक सुलभ होता है, उनकी सूक्तियाँ भी प्रायः अधिक चुन ली जाती हैं। इस ग्रंथ की रचना में इन दोनों प्रकार की त्रुटियों से बचने का प्रयत्न किया गया है और सूक्ति-संकलन को संतुलित रखा गया है।

यह कहना भी आवश्यक लगता है कि लेखकों की महानता की यह कसौटी कभी नहीं हो सकती कि किसी सूक्तिकोश में उन्हें कितना स्थान मिला है। यदि किसी सूक्तिकोश में शेक्सपियर या कालिदास या शेख़ सादी की एक भी सूक्ति न हो, तो इससे इन लेखकों की महानता पर कोई आँच नहीं आती। किन्तु, साथ ही यह भी सत्य है कि कम प्रसिद्ध अथवा सीमित क्षेत्र में प्रसिद्ध लेखकों के अच्छे उद्धरण प्रकाश मे आने से उन लेखकों को भी कीर्ति मिलती है और पाठकों को भी लाभ होता है। उभरते साहित्यकारों की तो एक पंक्ति भी सूक्तिकोश मे स्थान पा सके तो उन्हें बहुत यश मिलता है, उनका उत्साह भी बढ़ता है और उनके साथ न्याय भी होता है। इसीलिए 'वृहत् विश्व सूक्ति कोश' में सूक्तियों का चयन करते समय केवल अत्यधिक प्रसिद्धि वाले लेखकों आदि को नहीं, सूक्ति की अपनी मूल्यवत्ता को महत्त्व दिया गया है।

सहृदयता से ग्रंथ पढ़ें

'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' में अनेक त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है क्योंकि हर मानव-कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। लेनिन ने ठीक ही कहा था—**"त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होंगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं"**।

प्रसिद्ध लेखक भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने 'पालि-हिन्दी-कोश' की भूमिका में लिखा है—

जिन लोगों को किसी भी ग्रंथ को छपवाने का कुछ भी अनुभव होगा, वे मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि मुद्रण के समय प्रूफ देखने का कार्य कमरे में झाड़ू लगाने जैसा ही होता है। जितनी बार झाड़ू लगायी जाए, हर बार कुछ न कुछ कूड़ा-करकट निकल आता है।

तदनुसार इस ग्रंथ मे भी कुछ मुद्रणगत अशुद्धियाँ रह गयी है। इन्हें सुधारने के लिए प्रत्येक खंड के अंत में दिए गए परिशिष्ट—३ (शुद्धि-पत्र) का उपयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त संदर्भों की प्रामाणिकता के विषय में भी कुछ अशुद्धियाँ रह जाना संभव है। कुछ स्थानों पर संदर्भ उपलब्ध ही नही हो सके हैं। अतः इस सम्बन्ध मे सभी सुधी पाठकों का सहयोग प्रार्थित है।

इस ग्रंथ को अपने सहृदय पाठकों तथा समीक्षकों से पर्याप्त सहयोग मिलेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। 'सहृदय' शब्द का प्रयोग यहाँ साभिप्राय है क्योंकि जैसा 'धनजय' ने लिखा है, ऐसे भी हृदयहीन व्यक्ति होते हैं जो मन ही मन कवियों की सूक्तियों पर पूर्ण रूप से मोहित होकर भी मुख से प्रशंसा नहीं करते है—

'हृतोऽपि चित्ते प्रसभं सुभाषितैर्न साधुकारं वचसि प्रयच्छति।"

काव्य जिस सरसता की माँग पाठकों से करता है, उसके अभाव में सूक्तियों का आनन्द भी नहीं लिया जा सकता। 'तर्क ही तर्क वाली बुद्धि वैसी है जैसे धार ही धार वाला चाकू। उससे वह हाथ रक्तरंजित हो जाता है, जो उसका प्रयोग करता है।"—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह उक्ति एक गम्भीर सत्य को अभिव्यक्त कर रही है।

अस्तु, सभी सहृदय पाठकों के, विद्वानों के, सुझावों का सदैव स्वागत रहेगा तथा यथासंभव अगले संस्करण में उनका उपयोग किया जा सकेगा।

सहायतार्थ धन्यवाद

'वृहत् विश्व सूक्ति कोश' को तैयार करने में हमारे सात वर्ष से अधिक (१९७७ से १९८५) अविश्रान्त श्रम के साथ बीत गए। हमें अनेकानेक आत्मीयजनों, मित्रों, साथियों, हितैषियों, छात्र-छात्राओं तथा विद्वानों का ऐसा अमूल्य सहयोग मिला, जिससे ग्रथ को तैयार करने, सजाने-सँवारने इत्यादि मे सरलता, सुविधा या जल्दी हुई। मित्रवर श्री ओमप्रकाश अग्रवाल (बरेली) का ग्रथ-योजना, संकलन आदि में असाधारण सहयोग रहा। आदरणीय श्री लाल बहादुर वर्मा (बरेली) तथा श्री जगदीश बहादुर वर्मा (बरेली) से उर्दू-फ़ारसी से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने मे विशेष सहयोग मिला। प्रिय भाई श्री धर्मेन्द्र वर्मा (सम्प्रति शिक्षा-विभाग, नाइजीरिया) तथा उनकी धर्मपत्नी प्रो० शशि वर्मा (अंग्रेज़ी-विभाग, महात्मा गांधी गर्ल्स पोस्टग्रेजुएट कालेज, फ़िरोज़ाबाद) ने भी सामग्री-सकलन में सहायता की।

बंधुवर डा० रामस्वरूप आर्य (हिन्दी विभागाध्यक्ष, वर्धमान कालेज, बिजनौर) ने सामग्री को समय-समय पर देकर उपयोगी सुझाव दिए तथा कार्य को पूर्ण करने के लिए हमें निरन्तर उत्साहित किया। उनके सहयोगी डा० गिरिराजशरण अग्रवाल से भी सहायता मिली। दिल्ली-स्थित बंधुवर श्री हेमचन्द्र कौशिक [प्रबन्धक (हिन्दी) स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड] ने सामग्री-संकलनार्थ अनेक उपयोगी पुस्तकों व सुझावों से योगदान किया। बंधुवर डा० हरिश्चन्द्र बर्थ्वाल (दिल्ली) ने भी अपने सुझावों आदि से सहयोग दिया।

मेरे अनेक भूतपूर्व छात्र-छात्राओं ने भी सामग्री-संकलन मे बहुत परिश्रम किया। उनमें श्रीमती डा० प्रभा वर्मा (स्याना, बुलन्दशहर), कु० सुनीता रघुवंशी (धामपुर) तथा श्री दयाकिशन जोशी (दिल्ली) के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतीय अनुशीलन परिषद् (बरेली) के जिन सदस्यों ने इस कार्य में बहुत सहयोग दिया, उनमें **श्रीमती क्षमा रानी अग्रवाल, डा० ओमशरण शर्मा, श्री नरेश कुमार श्रीवास्तव, कु० मंजु अग्रवाल, कु० सुनीता अग्रवाल, श्रीमती अखिलेश, कु० राजकुमारी काबरा, श्री रूपक वर्मा, कु० श्रुति वर्मा, श्रीमती अनसूया अग्रवाल, श्रीमती मीना, कु० रीता माथुर तथा कु० अलका माथुर के नाम स्मरण आ रहे हैं।**

श्रीमती सुमेधा कुमार (हिन्दी विभाग, भारती महिला कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने कुछ लेखकों की सूक्तियाँ संकलित करने तथा तेलुगु-भाषी **श्रीमती गिरिजा जी** ने तेलुगु की सूक्तियों के संकलन आदि मे सहयोग दिया। पी० जी० डी० ए० वी० (सांध्य) कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के प्राध्यापक-बंधुओं **डा० नित्यानंद शर्मा** (संस्कृत-विभाग), **श्री रमेश राव** (अंग्रेजी-विभाग), **श्री सुब्रह्मण्यन्** (वाणिज्य-विभाग) इत्यादि ने हमारी अनेक समस्यायों का समाधान करने में सहायता की और पुस्तकालयाध्यक्ष **श्री हरिशरण दत्त** तथा उनके सहयोगियों के हार्दिक सहयोग से पुस्तकालय के शत-शत उत्कृष्ट ग्रंथों का उपयोग सुलभ हो सका। **अनुशीलन पुस्तकालय (बरेली)** से भी हमें असाधारण सहायता मिली।

कुछ बालक-बालिकाओं ने भी समय-समय पर उत्साहपूर्वक सहयोग दिया। इनमें प्रिय **सौम्या भारती** तथा प्रिय **सिद्धार्थ वर्मा** के नाम उल्लेखनीय हैं।

हम इन सभी के प्रति हृदय से आभारी हैं और साथ-साथ उन सभी के प्रति भी जिनके नाम यहां उल्लिखित नही हैं, परन्तु जिन्होंने किसी न किसी रूप में हमारी सहायता की है।

बृहत् विश्व सूक्ति कोश का प्रकाशन

प्रस्तुत ग्रंथ की योजना को साकार करने का कार्य १९७७ की श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी से प्रारंभ हो गया था। १९८३ प्रारंभ से मुद्रण भी चलता रहा—कभी मन्द और कभी तीव्र गति से। मुद्रक महोदय तथा मुद्रणालय के कर्मचारियों का हमें प्रशंसनीय सहयोग मिला।

निस्सन्देह इस काल-खंड में प्रकाशक महोदय की उत्साहवर्धक भूमिका रही। साधारणतया आर्थिक लाभ को प्रधानता देने वाले संसार में उत्कृष्ट किन्तु गंभीर ग्रंथों को छापने वाले हिन्दी प्रकाशक अधिक नहीं मिलते। वर्तमान हिन्दी-पाठकों की रुचि प्रायः मनोरंजक सामग्री की ओर अधिक रहने के कारण हिन्दी में गंभीर ग्रंथों, विशेषतः संदर्भ-ग्रंथों का प्रकाशन बहुत कम हो रहा है। भीतर का सौन्दर्य न देख पाने वाले लोग बाहर की घटिया चमक-दमक में ही उलझे रहते हैं। अतः 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' जैसे व्ययसाध्य ग्रथों का प्रकाशन एक साहस का कार्य ही कहा जाएगा। उनकी प्रेरणा **टामस फ़ुलर** की यह सूक्ति रही है—

"ज्ञान को अधिकतम लाभ उन्हीं पुस्तकों से हुआ है जिनसे प्रकाशकों को हानि हुई है।"

हमारा विश्वास है कि प्रकाशक महोदय को उनके सत्प्रयास का सत्परिणाम **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** की घोषणा करने वाले भगवान अवश्य देंगे।

ईश्वरेच्छा से ग्रंथ पूर्ण

'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' को प्रकाशित रूप में देखना कितना आनन्दप्रद है, इसकी कल्पना समानधर्मी ही कर सकते हैं। अनेकानेक विघ्नों को पार करके यह कार्य आज पूर्ण हो रहा है। इस पूर्णता में गुरुजन का आशीर्वाद, मित्रों की प्रेरणा, अपना परिश्रम, सहयोगियों की सहायता आदि कारणभूत रहे है। इन सबके पीछे **'ईश्वरेच्छा'** ही मूल कारण रही है।

जिन्होंने हमारे हाथों से इस कार्य को पूर्ण कराया, हमें अपना यंत्र बनाकर मानवता की सेवा में हमारा भी योगदान कराया, माना सरस्वती के मन्दिर में एक दिव्य सुमनांजलि समर्पित करने का पुण्य दिया—उन महाशक्ति और परमशक्तिमान के प्रति हम श्रद्धानत हैं।

• हमारा विश्वास है कि 'वृहत् विश्व सूक्ति कोश' से सहृदय पाठक चिर काल तक लाभान्वित होंगे, और उसी में हमारे परिश्रम की सार्थकता होगी।

नयी दिल्ली
चैत्र शुक्ल पंचमी, संवत् २०४२ विक्रमी

श्याम बहादुर वर्मा
मधु वर्मा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खंड

(अ से थ)

अ

अ

अक्षराणामकारोऽस्मि।

मैं[1] अक्षरों में अकार[2] हूँ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३४।३३ अथवा गीता, १०।३३)

अकारस्सर्व-वर्णाग्र्य: प्रकाश: परमेश्वर:।

अकार सर्ववर्णों में प्रथम है, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर है।

—नन्दिकेश्वर (काशिका)

अंगुलि

साकमुक्षो···स्वसार:।

एक साथ कार्य करने वाली ये अंगुलियाँ।

—सामवेद (१४१८)

अंग्रेज

भीतर-भीतर सब रस चूसै
हँसि हँसि के तन मन धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि सज्जन? नहिं अंग्रेज।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ८११)

आप अंग्रेज़ों से नेताओं की आज्ञा का तुरंत पालन, ईर्ष्याहीनता, अथक लगन और अटूट आत्मविश्वास की शिक्षा प्राप्त करें। जब वह किसी काम के लिए एक नेता चुन लेता है, तो अंग्रेज़ हार-जीत में सदा उसका साथ देता है और उसकी आज्ञा का पालन करता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ४, पृ० २५५)

अंग्रेज़ उन बातों में बड़े ईमानदार हैं, जिनसे उनका फ़ायदा हो सकता है।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय, खंड ७, पृ० ३६२)

There is nothing so bad or so good that you will not find Englishmen doing it; but you will never find an Englishman in the wrong. He does everything on principle. He fights you on patriotic principles; he robs you on business principles; he enslaves you on imperial principles; he supports his king on royal principles and cuts off his king's head on republican principles.

कुछ भी ऐसा बुरा या ऐसा अच्छा नहीं है कि अंग्रेज़ वैसा करता हुआ न मिले किन्तु कभी भी तुम्हें अंग्रेज़ ग़लती पर नहीं मिलेगा। वह हर बात सिद्धान्त पर करता है। वह तुमसे लड़ता है तो देशभक्ति के सिद्धान्तों पर; वह तुम्हें लूटता है व्यापारिक सिद्धान्तों पर; वह तुम्हें दास बनाता है साम्राज्यवादी सिद्धान्तों पर; वह अपने राजा का समर्थन करता है राजकीय सिद्धान्तों पर और अपने राजा का सिर काट देता है गणतंत्रीय सिद्धान्तों पर।

—जार्ज बर्नार्ड शॉ (दि मैन आफ़ डेस्टिनी)

अंग्रेज़ी

क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज़ी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? फिर राष्ट्र के पाँवों में यह बेड़ी किसलिए?

—महात्मा गांधी (भाषण—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में, ६ फरवरी १९१६)

हमें अंग्रेज़ी की आवश्यकता है, किंतु अपनी भाषा का नाश करने के लिए नहीं।

—महात्मा गांधी (सूरत में भाषण, ३ जनवरी १९१६)

यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान हों, कितने ही बुद्धिमान हों, कितने ही विचारशील हों, पर अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं, हमसे अधम और कौन होगा कि इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं। नहीं, बल्कि उस पर गर्व करते हैं।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ४६)

---

१. श्रीकृष्ण, भगवान।   २. 'अ' अक्षर।

आकाश-बेल अंग्रेजी छाई जन मन पादप पर
जीवन-विकास-क्रम जिससे कुंठित हो रहा निरन्तर !
इस पीढ़ी के मस्तक से कब छूटेगा यह लांछन !
इतिहास पुकार कहेगा जन-घातक थे नेतागण !

—सुमित्रानन्दन पन्त (लोकायतन, पृ० १६६)

देश की जनता के साथ देश के शिक्षितों के व्यवधान का एक प्रमुख कारण विदेशी भाषा का माध्यम है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १५)

उपनिषदों के उद्धरण भी जब हम अंग्रेजी में उद्धृत करते हैं, तो अपने ज्ञान का दिवाला प्रकट करते हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १२६)

आध्यात्मिक भोजन के लिए भी भारत के लोग जिस दिन अंग्रेज़ी का मुँह देखेंगे, उस दिन उनके डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी काफ़ी होगा। अंग्रेज़ी सीखिए-सिखाइए लेकिन उसे विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्यों बनाते हैं ?

—रामविलास शर्मा (भाषा और समाज, पृ० ३९५)

अंग्रेजी में कुछ सीखना एक बात है, अंग्रेज़ी को अपने सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों का माध्यम बना लेना दूसरी बात है। जापानियों, चीनियों आदि ने अंग्रेज़ी से सीखा है, लेकिन अपनी भाषाओं को अविकसित मानकर उन्होंने अंग्रेज़ी को राजभाषा नहीं बनाया।

—रामविलास शर्मा (भाषा और समाज, पृ० ३९२)

I have laboured to refine our language to grammatical purity, and to clear it from colloquial barbarisms, licentious idioms, and irregular combinations.

मैंने अपनी भाषा को व्याकरणपरक शुद्धता की दृष्टि से परिष्कृत करने और उसे बोलचाल के दुष्ट प्रयोगों, उच्छृंखल मुहावरों और अनियमित समुच्चयों से मुक्त करने के लिए परिश्रम किया है।

—डा० जानसन (दि रैम्बलर, १४ मार्च १७५२)

English is a funny language. A fat chance and a slim chance are the same thing.

अंग्रेज़ी विचित्र भाषा है। इसमें 'फ़ैट चांस' (मोटा अवसर) तथा 'स्लिम चांस' (पतला अवसर) समानार्थक हैं।

—जैक हर्बर्ट

अंत:करण

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

सन्देह के स्थानों पर सज्जनों के अन्त:करण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, १।२१)

न्याय की अदालतों से भी एक बड़ी अदालत होती है। वह अदालत अंतर की आवाज़ की है और वह अन्य सब अदालतों से ऊपर की अदालत है।

—महात्मा गांधी (यरवदा के अनुभव, २६)

सच्ची रोशनी भीतर से पैदा होती है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन भाग २, ७०)

अन्त:करण के विषयों में, बहुमत के नियम का कोई स्थान नही है।

—महात्मा गांधी

प्रत्येक पापकर्म की खाई में कूदने से पूर्व मानव की अन्तरात्मा उसके कानों के पास आकर कैसी चेतावनी देती है !

—शिवानी (विषकन्या, पृ० ५०)

अन्तरात्मा भी पुलिस के कुत्ते की भाँति अपराधी को सूँघकर कभी ठीक ही पकड़ती है।

—शिवानी (विषकन्या, पृ० ६६)

अधिक श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करने वाले जीवन से श्रेष्ठतर जीवन नहीं हो सकता; और स्वच्छ अन्त:करण होने से बढ़कर अधिक समानुकूलता वाला जीवन नहीं हो सकता।

—सुकरात

न तो हमारे अन्त:करण से अधिक भयंकर कोई साक्षी हो सकता है और न कोई दोषारोपण करने वाला इतना शक्तिशाली।

—सोफ़ोक्लीज

जहाँ कोई क़ानून नहीं होता, वहाँ अन्त:करण होता है।

—पब्लिलिअस साइरस (नीतिवचन)

अन्त:करण सभी मनुष्यों के लिए ईश्वर है।

—मेनांडर (मोनोस्ट ५६४)

अन्तःकरण का दंश मनुष्यों को दंशन सिखाता है।

—नीत्शे (दस स्पोक-ज़रथुस्त्र)

मैं पोप और उनके सब पादरियों की अपेक्षा अपने ही हृदय से अधिक भयभीत रहता हूँ। मेरे अन्दर महान् पोप का, आत्मा का, निवास है।

—मार्टिन लूथर

जहाँ अन्तःकरण का राज्य प्रारंभ होता है, वहाँ मेरा राज्य समाप्त हो जाता है।

—नैपोलियन बोनापार्ट

क्या तुम नहीं देखते कि तुम्हारा अन्तःकरण तुम्हारे अन्दर विराजमान अन्य लोग हैं, अन्य कुछ नहीं ?

—लुइगी पिरैंडेलो (ईच इन हिज़ ओन वे, अंग्रेज़ी अनुवाद)

अन्तःकरण आत्मा की आवाज़ है, मनोवेग शरीर की आवाज़ हैं।

—रूसो

न्यायाधीश के समान हमें दंडित करने से पूर्व अन्तः-करण हमें मित्र के समान सावधान करता है।

—स्टेनिस्लास प्रथम

स्वतन्त्रता से भी अधिक शक्तिशाली एक और शब्द है—'अन्तःकरण'।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० ४)

अन्त.करण प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र का सार है।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० ६)

मनुष्य की आत्मा ही राजनीति है, अर्थशास्त्र है, शिक्षा है और विज्ञान है, इसलिए अन्तरात्मा को सुसंस्कृत बनाना ही सबसे अधिक आवश्यक है। यदि हम अन्तरात्मा को सुशिक्षित बना लें तो राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा और विज्ञान के प्रश्न स्वयं ही हल हो जायेंगे।

—कागावा (भाषण-संग्रह की भूमिका)

स्वस्थ अन्तःकरण पीतल की दीवाल की तरह होता है।

—लैटिन लोकोक्ति

Conscience doth make cowards of us all.

अन्तःकरण हम सबको कायर बना देता है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, ३।१)

Conscience is but a word that cowards use,
Devised at first to keep the strong in awe.

अन्तःकरण तो कायरों द्वारा प्रयुक्त शब्दमात्र है, सर्व-प्रथम इसकी रचना शक्तिशालियों को भयभीत रखने के लिए हुई थी।

—शेक्सपियर (किंग रिचर्ड थर्ड, ५।३)

A good consience is to the soul what health is to the body.

आत्मा के लिए अच्छा अन्तःकरण वैसा ही है जैसा शरीर के लिए स्वास्थ्य।

—एडीसन

A good conscience is the best divinity.

अच्छा अन्तःकरण सर्वोत्तम ईश्वर है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजीया)

The glory of good men is in their conscience and not in the mouths of men.

सत्पुरुषों की महानता उनके अन्तःकरण में होती है, न कि लोगों की प्रशंसा में।

—टामस ए० केम्पिस (दि इमिटेशन आफ़ क्राइस्ट, २।६)

Man's conscience is the oracle of God.

मनुष्य का अन्तःकरण देववाणी है।

—बायरन

A good digestion depends upon a good conscience.

अच्छा पाचन अच्छे अन्तःकरण पर निर्भर होता है।

—डिज़रायली

Labour to keep alive in your breast that little spark of celestial fire, called Conscience.

अपने वक्षस्थल में स्वर्गीय अग्नि की उस चिनगारी को सजीव रखने का प्रयत्न करो जिसे अन्तःकरण कहते हैं।

—जार्ज वाशिंगटन (मारल मैक्जिम्स)

Conscience is the inner voice which warns us that someone may be looking.

अन्तःकरण वह अन्दर की आवाज़ है जो हमें चेतावनी देती है कि कोई देख रहा होगा।

—एच० एल० मेनकेन (ए बुक आफ़ बर्लेस्क्स)

Conscience is a great ledger book in which all our offences are written and registered, and which time reveals to the sense and feeling of the offender.

अन्तःकरण एक बड़ा वहीखाता है जिसमें हमारे सभी अपराध लिखे जाते हैं व पंजीकृत होते है और समय जिसको अपराधी की वुद्धि और भावना के समक्ष उद्घाटित कर देता है।

—रिचार्ड ईउगेने बर्टन

Trust that man in nothing who has not a conscience in everything.

उस मनुष्य का किसी बात में विश्वास न करो जो हर बात में अन्तःकरण वाला नहीं है।

—लारेंस स्टर्न (सर्मन्स)

Blind is he who sees not his over conscience; lame is he who wanders from the right way.

अंधा वह है जो अपने अन्तःकरण को नहीं देखता और लंगड़ा वह है जो सत्पथ से भटक जाता है।

—पाडुआ के एंथोनी

Cowardice asks, Is it safe? Expedienly asks, Is it politic? Vanity asks, Is it popular? But consciense asks, Is it right?

कायरता पूछती है—क्या यह निरापद है? स्वार्थ पूछता है—क्या यह नीतियुक्त है? अहंकार पूछता है—क्या यह लोकप्रिय है? परन्तु अन्तःकरण पूछता है—क्या यह न्यायसंगत है?

—विलियन मार्ले पुंशोन

The torture of a bad conscience is the hell of a living soul.

जीवित मनुष्य के लिए दुष्ट अन्तःकरण की यंत्रणा तो नरक है।

—जान काल्विन

A quiet conscience sleeps in thunder.
शांत अन्तःकरण वज्रपात में भी सो लेता है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

Conscience is the chamber of justice.
अन्तःकरण न्यायालय होता है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

He that has no conscienece has nothing.
जिसका अन्तःकरण नहीं है, उसपर कुछ भी नहीं है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

He that has no shame has no conscience.
जो लज्जाविहीन है, वह अन्तःकरणविहीन है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

A guilty conscience needs no accuser.

अपराधी अन्तःकरण को किसी दोपारोपण करने वाले की आवश्यकता नहीं होती है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

अंत

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥

सभी संग्रहों का अंत क्षय है। सभी समुन्नतियों का अंत पतन है। सभी संयोगों का अंत वियोग है और जीवन का अन्त मरण है।

—वाल्मीकि (रामायण, २।१०५।१६)

विशाखान्तं गता मेघाः प्रसवान्तं हि यौवनम्।
प्रणामान्तं सतां कोपो याचनान्तं हि गौरवम्॥

विशाखा नक्षत्र के उपरान्त वर्षा काल, प्रसव के उपरान्त नारी का यौवन, प्रणाम करने के वाद सत्पुरुषों का क्रोध और याचना करने के बाद मनुष्य का गौरव समाप्त हो जाता है।

—अज्ञात

जीविउ जमेण सरीरु हुआसें।
सत्तइँ कालें रिद्धि विणासें॥

जीव का यम से, शरीर का आग से, शक्ति का समय से और ऋद्धि का अन्त से विनाश हो जाता है।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ५।२।७)

अंत भला सो सब भला।

—हिंदी लोकोक्ति

सब दिन सेवनी कासी।
मरे के वेर मगहर के वासी॥

—हिंदी लोकोक्ति

इस विश्व में हर वस्तु का अन्त होता है। पुस्तक की अन्तिम पंक्ति, अन्तिम उपदेश, अन्तिम भाषण, जीवन का अन्तिम कार्य और मृत्यु के समय कहे हुए अन्तिम शब्द-- सब इसी अटूट सत्य की ओर निर्देश करते हैं।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, अंतिम पंक्तियाँ)

In my end is my beginning.
मेरे अंत में ही मेरा प्रारम्भ है।

—मेरी स्टुआर्ट (१५६८ ई० के बाद इंग्लैंड में बन्दी बनाए जाने पर राजछत्र पर स्वयं अंकित ध्येय वाक्य)

This is not the end. It is not even the beginning of the end. But it is, perhaps, the end of the beginning.

यह अन्त नहीं है। यह अन्त का प्रारंभ भी नहीं है। लेकिन शायद यह प्रारंभ का अंत है।

—विंस्टन चर्चिल (भाषण, मैन्शन हाउस, लंदन, १० नवम्बर १९४२)

अंतर

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः
संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि
ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणोतः।

मनुष्य के दोनों हाथ एक-से हैं, परन्तु उनकी कार्य-शक्ति एक-सी नहीं होती। एक ही माँ की सन्तान दो गायें एक जैसी होने पर भी एक जैसा दूध नहीं देतीं। एक-साथ उत्पन्न हुए दो भाई भी समान बल वाले नहीं होते। एक वंश की सन्तान होने पर भी दो व्यक्ति एक जैसे दाता नहीं होते।

—ऋग्वेद (१०।११७।९)

जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा।
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूपद्रव्येण वा पुनः।

जाति और कुल में सभी एक समान हो सकते हैं परन्तु उद्योग, बुद्धि और रूप सम्पत्ति में सबका एक-सा होना संभव नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व १०७।३०-३१)

अतिदीप्तोऽपि खद्योतो न पावकः।
अत्यंत चमकता हो तो भी जुगनू अग्नि नहीं होता।

—चाणक्यसूत्राणि

वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम्।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम्॥

घोड़ा, हाथी, लोहा, लकड़ी, पत्थर, वस्त्र, स्त्री, पुरुष और जल का अन्तर[1] बहुत बड़ा अन्तर होता है।

—तंत्राख्यायिका (११४०)

महति दर्पणे महन्मुखं तदेव कनीनिकायामणु।
बड़े दर्पण में बड़ा मुँह, वही कनीनिका में छोटा होता है।

—अज्ञात

पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना कुण्डे कुण्डे नवं पयः।
जातौ जातौ नवाचारा नवा वाणी मुखे मुखे॥

व्यक्ति-व्यक्ति में बुद्धि भिन्न-भिन्न होती है। कुंड-कुंड में जल भिन्न-भिन्न होता है। जाति-जाति में नवीन आचार पाया जाता है। मुख-मुख में नवीन वाणी होती है।

—अज्ञात

न करि नाम रंग देखि सम, गुन बिन समझे बात।
गात धात गो-दूध तें, सेहुड[2] के ते घात॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

कोई प्यासा मर जाता है
कोई प्यासा जी लेता है
कोई परे मरण-जीवन से
कड़ुवा प्रत्यय पी लेता है।

—अज्ञेय (पूर्वा)

दीप और पतंगे में फ़र्क़ सिर्फ इतना है,
एक जल के बुझता है, एक बुझ के जलता है!

—गोपालदास 'नीरज' (सात मुक्तक : दर्द दिया है)

सौ सुनार की, एक लुहार की।

—हिंदी लोकोक्ति

कहां राजा भोज, कहां भोजवा तेली।

—हिंदी लोकोक्ति

---

१. अपने सजातीयों से ही अंतर।
२. थूहड़ का पेड़।

तुझे मंजिलें भी हैं रहगुज़र
मुझे रहगुजार भी मंजिलें।
यही फ़र्क़ है मेरे हमसफ़र[1]
वह तेरा चलन, यह मेरा चलन।
—फ़िराक़ गोरखपुरी (बज्मे जिंदगी, पृ० ३६)

शियाल बच्चां सौ जणे ते सोए विचारां,
सिंहण बच्चु एक जणे, पण एके हजारां।

सियारनी सौ बच्चे जनती है तो भी 'विचारी' ही कहलाएगी। सिंहनी एक ही संतान देती है, तो भी वह हजारों की बराबरी करता है।

—राजस्थानी लोकोक्ति

माणस माणसमां आंतरो,
कोई जवेर कोई कांकरो।

मनुष्य-मनुष्य में अन्तर होता है। कोई हीरा होता है, कोई कंकड़ होता है।

—गुजराती लोकोक्ति

अंतरात्मा

दे० 'अन्तःकरण'।

अंतर्ज्वाला

दे० 'चिन्ता'।

अंतर्ज्ञान

Intuition is the only touchstone of philosophy.

अन्तर्ज्ञान दर्शन की एकमात्र कसौटी है।

—शिवानंद

We invent by intuition though we prove by logic.

हम अन्तःज्ञान से आविष्कार करते है—यद्यपि हम तर्क से सिद्ध करते हैं।

—राधाकृष्णन् (दि आइडियलिस्ट व्यू आफ़ लाइफ़, पृ० १६७)

It is the heart always that sees, before the head can see.

मस्तिष्क देख सके इसके पहले हृदय सदैव देख लेता है।

—टामस कार्लाइल (चार्टिज्म)

अंतर्दाह

दे० 'अन्तर्वेदना'।

अंतर्द्वन्द्व

धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम।

मेरी बुद्धि धर्म और स्नेह के बीच में पड़कर झूल रही है।

—भास (अभिषेक नाटक, ६।२३)

इस वक्षस्थल में दो हृदय है क्या? जब अंतरंग 'हां' करना चाहता है, तब ऊपरी मन 'ना' क्यों कहला देता है?

—जयशंकरप्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

दो सत्य
दो संकल्प
दो-दो आस्थाएँ—
व्यक्ति में ही
अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।
—नरेश मेहता (संशय की एक रात, पृ० ३१)

स्वयं अपने ही भीतर
विरोधी सृष्टियाँ सोयी है।
—नरेश मेहता (संशय की एक रात, पृ० ६८)

मैं घृणा करता हूँ और प्रेम करता हूँ। कदाचित् तुम पूछोगे कि ऐसा कैसे हो सकता है? मैं नहीं जानता हूँ पर उसकी पीड़ा अनुभव करता हूँ।

—कैटुलस (कविताएँ)

When the fight begins within himself
A man's worth something.

जब मनुष्य अपने अन्दर युद्ध करने लगता है तब वह अवश्य ही किसी योग्य होता है।

—राबर्ट ब्राउनिंग (मेन एण्ड वीमेन, बिशप ब्लाउग्राम्स एपांलॉजी)

१. सहयात्री।

अंतर्बल

अंतर्बल ही रे जन भू-जीवन,
बाह्य शक्ति का नियत जगत् में क्षय,
आर्य बोध से कहता युग चारण,
मनुज सत्य विजयी होता निश्चय।

—सुमित्रानंदन पंत (लोकायतन)

अंतर-राष्ट्रीयता

Internationalism is the nationalism of nations.

अन्तरराष्ट्रीयता राष्ट्रों का समाजवाद है।

—हर्बर्ट जार्ज वेल्स (ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड, अध्याय ५६)

अंतर-राष्ट्रीय सम्बन्ध

अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं से विदेशनीति शासित नहीं होनी चाहिए अपितु विदेशनीति को अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं को शासित करना चाहिए।

—नेपोलियन बोनापार्ट

Interest does not tie nations together, it sometimes separates them. But sympathy and understanding does unite them.

राष्ट्रों को परस्पर संयुक्त रखने वाला स्वार्थ नहीं होता, यह तो कभी-कभी उन्हें पृथक् भी कर देता है। परन्तु सहानुभूति और समझ उन्हें मिला देती है।

—विलसन (भाषण, २७ अक्तूबर १९१३)

More than an end to war, we want an end to the beginning of all wars—Yes an end to this brutal, inhuman and thoroughly impractical method of settling the differences between governments.

युद्ध का अन्त करने से अधिक जाकर हम यह चाहते हैं कि सभी युद्धों के प्रारंभ का अन्त हो जाए—हाँ, सरकारों के पारस्परिक विवादों को निपटाने की इस पाशविक, अमानवीय और नितान्त अव्यावहारिक विधि का अन्त।

—रूजवेल्ट (जेफ़रसन दिवस पर सन्देश, १३ अप्रैल १९४५)

You cannot escape reality. Trouble in little nation can be the downfall of large nations.

आप यथार्थ से नहीं बच सकते। छोटे राष्ट्रों का संकट बड़े राष्ट्रों का पतन हो सकता है।

—ह्यूबर्ट हम्फ़्री (क्वोट मैगजीन, मार्च १९६५)

अंतर्वेदना

जबकि क़िस्मत में जलना ही था शमा[1] होते
कि पूछे तो जाते किसी अंजुमन[2] में।

—सफ़ी

कैसा भीषण ताण्डव इस हृदय के अन्दर हो रहा है। यह क्या पृथ्वी के किसी भी भूकम्प से छोटा है?

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० ३६)

अंधकार

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (१।३।२८)

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गतः॥

अंधकार मानो अंगों पर लेप कर रहा है। आकाश मानो अंजन बरसा रहा है। इस समय दृष्टि ऐसी निष्फल हो रही है जैसे दुष्ट पुरुषों की सेवा।

—भास (बालचरित, १।१५)

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः॥

मार्गरूपी नदियों में अन्धकार बह रहा है। गृह-माला तटों के समान प्रतीत हो रही है। दसों दिशाएं अन्धकार में डूबी हुई हैं। अन्धकार को मानो नौका से पार करना होगा।

—भास (अविमारक, ३।४)

इतना अनन्त था शून्य सार,
दीखता न जिसके परे पार!

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, दर्शन सर्ग)

---

१. दीपक। २. सभा, गोष्ठी।

धूप का ऐसा तना वितान,
अन्धेरा कठिनाई में फँसा,
भागने को न मिली जब राह,
आदमी के भीतर जा बसा।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल)

अन्धेरा ही एक ऐसी चीज है जो हर आदमी की शकल को एक बना देती है।

—लक्ष्मीकांत वर्मा (एक कटी हुई जिंदगी, एक कटा हुआ कागज़, पृ० १६८)

अन्धेरे में संगीत दो व्यक्तियों को कितना पास खींच लाता है!

—निर्मल वर्मा (वे दिन, पृ० ११४)

अन्धेरे में शायद इन्सान दबे पैरों अपने अन्दर उतरता जाता है, जैसे वह किसी ग़ैर के घर में चोरी के लिए दाख़िल हुआ हो और अपने अन्दर से सब कुछ बाहर निकाल लाता है।

—मोहन राकेश (अँधेरे बन्द कमरे, पृ० ४६१)

The darkness of night, like pain, is dumb,
The darkness of dawn, like peace, is silent.

रात्रि का अन्धकार, पीड़ा की भाँति, गूँगा होता है, और उषाकालीन अन्धकार, शांति की भाँति मौन होता हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (फ़ाइरफ्लाइज़)

अंधविश्वास

अन्धविश्वास जीवन की कविता है।

—गेटे

Superstition is the religion of feeble minds.

अन्धविश्वास दुर्बल मनों का मजहब है।

—एडमंड बर्क (फ्रांस की क्रांति पर विचार)

There is a superstition in avoiding superstition.

अन्धविश्वास से बचकर रहना भी एक अन्धविश्वास होता है।

—बेकन (एसेज, 'आफ़ सुपरस्टीशन')

अंधा

को वा महान्धो मदनातुरो यः।

महा अन्धा कौन है? जो कामातुर है।

—शंकराचार्य

हमारी आँखें हैं, इस कारण अन्धों के प्रति हमारा कुछ कर्तव्य है। हम अपनी आँखें दिन में एक बार, सप्ताह में एक बार या महीने में एक बार कुछ देर के लिए उन्हें उधार दे दें।

—लाला हरदयाल

चंचल-प्रकृति बालकों के लिए अन्धे विनोद की वस्तु हुआ करते हैं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४)

आँखें होते हुए अन्धा बनने वाले को कोई रास्ते नहीं लगा सकता।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३१२)

सौन्दर्य, आकार, अनुपात और क्रम के सारतत्त्व अंधों को सुलभ और हस्तगत हैं; सौन्दर्य और छंद इन्द्रियजन्य नहीं, बल्कि उससे गहरे, किसी आध्यात्मिक विधि के परिणाम हैं।

—हेलेन केलर (दि ओपिन डोर)

आँख वाले प्रायः इस तरह सोचते हैं कि अन्धों की, विशेषतः बहरे-अन्धों की दुनिया, उनके सूर्य-प्रकाश से चमचमाते और हँसते-खेलते संसार से बिलकुल अलग है और उनकी भावनाएँ और संवेदनाएँ भी बिल्कुल अलग है और उनकी चेतना पर उनकी इस अशक्ति और अभाव का मूलभूत प्रभाव है।

—हेलेन केलर (दि ओपिन डोर)

अंधानुकरण

गतानुगतिको लोकः।

लोग अन्धानुकरण करने वाले होते हैं।

—अज्ञात

पश्चिम में जो चीजें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिए। संस्कृत में सदैव आदान-प्रदान होता आया है; लेकिन अच्छी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १६६)

लज्जा प्रकाश ग्रहण करने में नहीं होती, अन्धानुकरण में होती है। अविवेकपूर्ण ढंग से जो भी सामने पड़ गया उसे सिर-माथे चढ़ा लेना, अन्ध-भाव से अनुकरण करना, जातिगत हीनता का परिणाम है। जहाँ मनुष्य विवेक को ताक़ पर रखकर सब कुछ की अन्ध भाव से नकल करता है, वहाँ उसका मानसिक दैन्य और सांस्कृतिक दारिद्र्य प्रकट होता है, किन्तु जहाँ वह सोच-समझकर ग्रहण करता है और अपनी त्रुटियों को कम करने का प्रयत्न करता है, वहाँ वह अपने जीवन्त स्वभाव का परिचय देता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार प्रवाह, पृ० १७१)

किसी महान् व्यक्ति के अनुयायी प्रायः अपनी आंखें बन्द रखते हैं ताकि वे उसका गुणगान अधिक अच्छी रीति से कर सकें।

—नीत्शे, (मिसेलेन्यस मैक्जिम्स एण्ड ओपिनियन्स, अंग्रेज़ी अनुवाद, ३६०)

People, like sheep, tent to follow a leader—occasionally in the right direction.

लोग, भेड़ों की तरह, नेता का अनुगमन करने में प्रवृत्त होते हैं—प्रासंगिक रूप में ही सही दिशा में।

—अलेक्जेंडर चेज़ (पर्सपेक्टिव्स)

अंधेरा

दे० 'अंधकार'।

अकर्मण्य

दे० 'आलस्य'।

अकेला

एकः स्वादु न भुंजीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥[1]

अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेले किसी विषय का निश्चय न करे, अकेले रास्ता न चले और बहुत से लोग सोये हों तो उनमें अकेला जागता न रहे।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३३।४६ अर्थात् विदुरनीति, १।४६)

१. यही सूक्ति पंचतंत्र (५।१०१) में निम्नलिखित रूप में मिलती है :

एकः स्वादु न भुंजीत नैकः सुप्तेषु जागृयात्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकश्चार्थान् प्रचिन्तयेत् ॥

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ॥

जैसे अकेला सूर्य अपनी किरणों से समस्त संसार को प्रकाश से परिपूर्ण कर देता है, वैसे ही अकेला शूर सारी पृथ्वी को पादाक्रान्त कर देता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १०९)

एकः सूर्यो ध्वान्तराशिं निहन्ति
व्याघ्रश्चैको हन्ति मेषान् सहस्रम्।
विद्वानेको मूर्खलक्षस्य जेता
हन्ति वप्पावंश्य एकोऽरिसंघम् ॥

अकेला सूर्य अन्धकार-समूह को नष्ट कर देता है, अकेला व्याघ्र हजारों मेषों को मार देता है, अकेला विद्वान् लाखों मूर्खों को जीत सकता है, वप्पा[1] के वंश का अकेला व्यक्ति भी शत्रु-समूह को मारने में सक्षम है।

—पंचानन तर्करत्न ('अमर मंगल' नाटक)

आदमी अकेला भी बहुत कुछ कर सकता है। अकेले आदमियों ने ही आदि से विचारों में क्रांति पैदा की है। अकेले आदमियों के कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है।

—प्रेमचंद (प्रतिज्ञा, पृ० ६)

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

—हिन्दी लोकोक्ति

यदि तोर डाक शुने केउ न आसे,
तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।

यदि तेरी पुकार सुनकर कोई न आए तो तू अकेला ही चल।

[बँगला] —रवीन्द्र नाथ ठाकुर

He travels the fastest who travels alone.

वही सबसे तेज़ चलता है जो अकेला चलता है।

—रडयार्ड किपलिंग (दि विनर्स)

The strongest man in the world is he who stands most alone.

संसार में सबसे शक्तिशाली मनुष्य वही है जो सबसे अधिक अकेला खड़ा रहता है।

—इब्सन

१. महाराणा प्रताप के पूर्वज।

अक्षर

दे० 'अ' भी।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।

सब प्राणी 'क्षर' हैं और कूटस्थ चैतन्य अक्षर कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३९।१७ अथवा गीता, १५।१७)

न क्षीयते न क्षरतीति वाऽक्षरम्।

जो क्षीण नहीं होता अथवा जो अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता, वह अक्षर है।

—पतंजलि (महाभाष्य, द्वितीय आह्निक)

अक्षरं नक्षरं विद्यात्।

अक्षर को नक्षर (जो क्षीण नहीं होता) समझे।

—कात्यायन (पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिक)

अख़बार

दे० 'समाचार-पत्र'।

अग्नि

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥

मैं अग्नि (भौतिक अग्नि अथवा परमेश्वर अथवा अग्रणी महापुरुष) की स्तुति करता हूँ जो पुरोहित है (अर्थात् आगे बढ़कर सबका हित-सम्पादन करता है), यज्ञ (कर्मकांडात्मक यज्ञ अथवा सत्कर्म) का देवता है। ऋत्विज (अर्थात् यज्ञ या सत्कर्म का अनुष्ठान करने वाला) है, होता (यज्ञ का होता अथवा बड़ी महिमा वाले कर्म को देने तथा ग्रहण करने वाला अथवा सहयोगियों का आह्वान करने वाला) है तथा रत्नों (अर्थात् सर्वोत्तम पदार्थों या श्रेष्ठ वैभव) का सर्वोत्तम प्रदाता (या धारक) है।

—ऋग्वेद (प्रथम मंत्र)

तेजो वा वाद्भ्यो भूयः।

तेज ही जल की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।११।१)

अमृतं शिशिरे वह्निः।

जाड़े में अग्नि अमृत है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १/१३९)

तयो मे, भिक्खवे अग्गी। कतमे तयो? रागग्गी, दोसग्गी, मोहग्गी।

ये तीन अग्नियाँ हैं। कौन तीन? रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि।

[पालि] —इतिवुत्तक (तीसरा निपात, पाँचवाँ वर्ग)

अच्छा-बुरा

संसार में बहुत-सी बातें बिना अच्छी हुए भी अच्छी लगती हैं और बहुत-सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, द्वितीय अंक)

अच्छा क्या है और बुरा क्या है? इसका निर्णय एकांगी दृष्टि से नहीं किया जा सकता। विष, चिकित्सक द्वारा अमृत-कल्प हो जाता है।

—जयशंकर प्रसाद (इरावती, पृ० २१)

आता तो सब ही भला, थोड़ा बहुता कुच्छ।
जाते तो दो ही भले, दालिद्दर और दुःख॥

—अज्ञात

आप भला तो जग भला।

—हिंदी लोकोक्ति

खाँड की रोटी, जहाँ तोड़ो वहाँ मीठी।

—हिंदी लोकोक्ति

गुदरी तो उजरी भली, बेटी तो सुंदरी भली।
बेटा बुलन्ता भला, घोड़ा कुदन्ता भला॥

—हिंदी लोकोक्ति

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ ज़ौक़
है बुरा वह ही कि जो तुझ को बुरा जानता है।

—ज़ौक़

गर चे ख़ूबी तू सूए ज़िश्त बख़ारी मनिगर
कंदरीं मुल्के चो ताऊस निगरस्त मगस।

तू भला है परन्तु इस पर भी बुरे से घृणा मत कर। बुरे से बुरे मनुष्य से भी भलाई की आशा की जा सकती है क्योंकि इस संसार में मक्खी के भी मोर के समान नक़्शोनिगार होते हैं।

[फ़ारसी] —सनाई

जीवन स्वयं में न तो अच्छा होता है, न बुरा। जैसा तुम इसे बना दो, यह तो वैसा ही अच्छा या बुरा बन जाता है।

—मांतेन (निबंध)

Nothing is so good as it seems beforehand.

कोई भी वस्तु इतनी अच्छी नहीं होती जितनी पहले प्रतीत होती है।

—जार्ज ईलियट (साइलस मार्नर)

When bad men combine, the good must associate; else they will fall one by one, an unpitied sacrifice in a contemptible struggle.

जब बुरे व्यक्ति संगठित हो जाते हैं, तब अच्छों को भी मिल जाना चाहिए; अन्यथा वे एक-एक करके पराजित हो जाएंगे।

—एडमंड बर्क (थाट्स आन दि काज आफ़ दि प्रेजेंट डिसकांटेंट्स)

अज्ञान-अज्ञानी

मा भवाज्ञो भव ज्ञस्त्वं जहि संसारभावनाम्।
अनात्मन्यात्मभावेन किमज्ञ इव रोदिषि॥

तुम अज्ञानी मत बनो, ज्ञानी बनो। संसार-भावना को त्याग दो। अनात्म पदार्थ में आत्म-भावना करके अज्ञानी की भांति क्यों रो रहे हो?

—महोपनिषद् (४।१३०)

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।

महाराज धृतराष्ट्र! दस प्रकार के लोग धर्म के तत्त्व को नहीं जानते, उनके नाम सुनो—नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।१०१-१०२)

नादत्त कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी का पाप लेता है और न किसी का पुण्य। अज्ञान द्वारा ज्ञान आवृत्त है, इस कारण जीव मोहित हो रहे हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २९।१५ अथवा गीता, ५।१५)

सर्व एव नरा मोहाद्दुराशापाशपाशिनः।
दोषगुल्मकसारंगा विशीर्णा जन्मजंगले॥

सभी मनुष्य मोहवश दुःख देने वाली आशाओं के पाश में बंधे हुए और दोषरूपी झाड़ों में अटके हुए मृगों के समान जन्म रूपी जंगल में भटक रहे हैं।

—योगवासिष्ठ (१।२६।४१)

इयं संसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः।
अज्ञस्योग्राणि दुःखानि सुखान्यपि दृढानि च॥

यह संसार रूपी प्रवाह अज्ञानी के प्रमाद से ही चल रहा है। अज्ञानी को ही घोर दुःख और सुख होते हैं।

—योगवासिष्ठ

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं,
व्यापारैर्बहुकार्य-भार-गुरुभिः कालो न विज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्म-जराविपत्ति-मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥

सूर्य के आने-जाने से प्रति दिन जीवन क्षीण हो रहा है। अनेक कार्यों के भार से बोझिल व्यापारों से समय ज्ञात नहीं होता। जन्म, बुढ़ापा, विपत्ति और मरण देखकर भी भय उत्पन्न नहीं होता। निश्चय ही यह जगत् अज्ञानमयी प्रमाद-मदिरा पीकर उन्मत्त हो गया है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ७)

विद्यैवाज्ञानहानाय न कर्माऽप्रतिकूलतः।
नाज्ञानस्याप्रहाणे हि रागद्वेषक्षयो भवेत्॥

अज्ञान की निवृत्ति में ज्ञान ही समर्थ है, कर्म नहीं, क्योंकि उसका अज्ञान से विरोध नहीं है और अज्ञान की निवृत्ति हुए बिना राग-द्वेष का भी अभाव नहीं हो सकता।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१।६)

अविद्यारतिर्दुःखतमारतिभ्यः।

दुखों में अज्ञान-दुःख सबसे बड़ा दुःख है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२४)

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्

अज्ञानवश डोंगी से सागर पार करने की इच्छा कर रहा हूँ।

—कालिदास (रघुवंश, १।२)

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः।

संसार में नीति, नियति, वेद, शास्त्र और ब्रह्म सबके जानने वाले मिल सकते है, परन्तु अपने अज्ञान के जानने वाले मनुष्य विरले ही हैं।

—अप्पय दीक्षित

अज्ञता कस्य नामेह नोपहासाय जायते।

अज्ञान किसके उपहास का कारण नहीं बनता ?

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

अरिं मित्रमुदासीनं मध्यस्थं स्थविरं गुरुम्।
यो न बुध्यति मन्दात्मा स च सर्वत्र नश्यति॥

शत्रु, मित्र, उदासीन, मध्यस्थ, संन्यासी तथा गुरु को जो मन्दात्मा नहीं जानता वह सब जगह विनाश को प्राप्त होता है।

—अज्ञात

उद्यन्तु शतमादित्या उद्यन्तु शतमिन्दवः।
न विना विदुषां वाक्यैर् नश्यताभ्यन्तरं तमः॥

चाहे सैकड़ों सूर्य उदित हों, चाहे सैकड़ों चन्द्रमा, अन्तःकरण का अन्धकार विद्वानों के वचनों के विना नष्ट नहीं होता।

—अज्ञात

तमाओ ते तमं जंति, मंदा आरंभनिस्सिया।

परपीड़ा में लगे हुए अज्ञानी जीव अन्धकार से अन्धकार की ओर जा रहे है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१।१।१४)

वाले पार्वोहि मिज्जती।

अज्ञानी मनुष्य पाप करके भी उस पर अहंकार करता है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।२।२।२१)

बालजणो पगब्भई।

अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१११२)

आणाणाय पुट्ठा वि एगे नियट्टंति,
मंदा मोहेण पाउडा।

मोहाच्छन्न अज्ञानी साधक संकट आने पर धर्म-शासन की अवज्ञा कर फिर जगत् की ओर लौट पड़ते हैं।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

वितहं पप्पऽखेयन्ने,
तम्मि अणम्भि चिट्ठइ।

अज्ञानी साधक जब कभी असत्य विचारों को सुन लेता है, तो वह उन्ही में उलझ कर रह जाता है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।३)

अलं बालस्स संगेणं।

अज्ञानी का संग नही करना चाहिए।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।५)

लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं।

यह समझ लो कि जगत् में अज्ञान तथा मोह ही अहित और दुःख करने वाला है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।१)

सुत्ता आमुणी,
मुणिणो सया जागरन्ति।

अज्ञानी सदैव सुप्त रहते हैं और ज्ञानी सदैव जागते रहते हैं।

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।१)

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख संभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्भि अणंतए॥

जितने भी अज्ञानी—तत्त्वबोधहीन पुरुष हैं, वे सब दुःख के पात्र हैं। इस अनंत सागर में वे मूढ़ प्राणी बार-बार विनाश को प्राप्त होते रहते हैं।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (६।१)

आसुरीयं दिसं बाला, गच्छन्ति अवसा तमं।

अज्ञानी व्यक्ति विवश हुए अन्धकाराच्छन्न आसुरी गति को प्राप्त होते हैं।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (७।१०)

अन्नाणी किं काही, किम् वा नाही सेयपावगं।

अज्ञानी क्या करेगा ? वह पुण्य एवं पाप को कैसे जान पाएगा ?

[प्राकृत] —दशवैकालिक (४।१०)

दीघो बालानं संसारो, पुनप्पुनं च रोदतं।

अज्ञानियों का संसार लम्बा होता है, उन्हें बार-बार रोना पड़ता है।

[पालि] **—थेरीगाथा (१६।१।४९७)**

जिन्ह कें अगुन न सगुन विवेका।
जल्पहिं कल्पित बचन अनेका।।
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं।
तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११५।३)

जिन्ह कृत महामोह मद पाना।
तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११५।४)

मूँदे आँख कतहुँ कोउ नाहीं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८०।४)

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१११ ख)

तुलसी मिटै न मोह-तम, किये कोटि गुन-ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि राम।

—तुलसीदास (वैराग्य-संदीपिनी, पृ० २)

बहु सुत बहु रुचि बहुवचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइवो, यह अज्ञान अपार।।

—तुलसीदास (सतसई)

नारी पीवै पुरुष को पुरुष नारि को खाइ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोन्यौं गये विलाइ।।

—दादू दयाल (श्री दादू दयाल जी की वाणी, पृ० २५०)

अज्ञान अंधकार-स्वरूप है। दीया बुझाकर भागने वाला यही समझता है कि दूसरे उसे देख नहीं सकते, तो उसे यह भी समझ रखना चाहिए कि वह ठोकर खाकर गिर भी सकता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, लज्जा और ग्लानि)

पास ही रे, हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान?

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता २५)

कहीं भी नहीं सत्य का रूप,
अखिल जग एक अन्ध-तम-कूप।

—निराला (गीतिका, कविता २५)

बारह वर्ष रामायण सुनी, पूछते हैं—राम राक्षस था या रावण?

—हिन्दी लोकोक्ति

नादाँ रा बेहतर अज़ ख़ामोशी नेस्त व अगर ईं मस्लहत बिदानिस्ते— नादान न बूदे।

अज्ञानी के लिए मौन से श्रेष्ठ कुछ नहीं है, और यदि वह यह युक्ति समझ ले तो अज्ञानी न रहे।

[फ़ारसी] **—शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, आठवाँ अध्याय)**

'बुल्ला' मुल्ला ते मसालची,
दोहयाँ इक्को चित्त,
लोकाँ करदे चाँदना,
आप हनेरे बिच्च।

मुल्ला और मशालची दोनों एक ही मत के हैं। औरों को तो ये प्रकाश देते हैं और स्वयं अंधकार में फँसे रहते हैं।

[पंजाबी] **—बुल्लेशाह**

अंधळयाचे काठी लागले अन्धळें।
घात एका वेळे पुढ़ेंमागें।।

अन्धे की लाठी पकड़ने वाला अन्धा हो तो दोनों ही गड्ढे में गिरते हैं।

[मराठी] **—तुकाराम (तुकाराम अभंगगाथा, ३४९०)**

चदुवनि वाडज्ञुंडगु।

अनपढ़ अज्ञानी होता है।

[तेलुगु] **—पोतना (भागवत)**

अक्कटा मोह मन्निदि कक्कजंबु
तेलिव दिव्वे चूपि तेलिपिन गानरु
मोह तिमिरमंदु मुनुगु वारु

मोह सबका मूल है। मोह रूपी अन्धकार में डूबे अज्ञानी, बुद्धि रूपी दीपक को दिखाने पर भी, देख नहीं सकते हैं।

[तेलुगु] **—आदि भट्ल नारायण दासु (सारंगधर)**

दुर्विषयांधुलतो मैत्रि जेयु प्राज्ञुडु गलडे।

बुरे व्यसनों में मग्न अन्धों से दोस्ती करना अज्ञान है ।

[तेलुगु] —तिरुपति वेंकटकवुलु (बुद्धचरित्रम्)

किरू कि तो वा
शिरादे या तोरि नो
सु ओ त्सुकुरु।

कटने वाले पेड़ पर अज्ञानी पक्षी अपना घोंसला बना रहा है।

[जापानी] —कोबायाशि इस्सा

अनेक विद्याओं का अध्ययन करके भी जो समाज के साथ मिलकर आचरणयुक्त जीवन व्यतीत करना नहीं जानते, वे अज्ञानी ही समझे जायेंगे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १४०)

न पाप है, न पुण्य है, सिर्फ़ अज्ञान है। अद्वैत की उपलब्धि से यह अज्ञान मिट जाता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग, १०, पृ० २१८)

किसी विषय में अधूरे ज्ञान से अच्छा है उस विषय में अज्ञान।

—पब्लीलियस साइरस

अज्ञान मस्तिष्क की रात्रि है परन्तु ऐसी रात्रि है जिसमें न चन्द्रमा है न तारा।

—कन्फ्यूशस

अज्ञान सदैव ही आत्मप्रशंसा के लिए तैयार रहता है।

—निकोलस बोइलो (ला आर्ट पोइटिक)

न जानना बुरा है परन्तु न जानने की इच्छा करना अधिक बुरा है।

—नाइजीरियाई लोकोक्ति

अज्ञान और उत्सुकता का अभाव दो बहुत कोमल तकिए हैं।

—फ्रांसीसी लोकोक्ति

ख़ाली दिमाग़ होने की अपेक्षा ख़ाली बटुआ होना अधिक अच्छा है।

—जर्मन लोकोक्ति

Where ignorance is, there suffering too must come.

जहाँ अज्ञान है वहाँ दुःख आकर ही रहेगा।

—श्री अरविन्द (सावित्री, ६।२)

Ignorance is the curse of God.
अज्ञान भगवान का शाप है।

—शेक्सपियर (हेनरी सिक्स्थ, भाग २, ४।७)

There is no darkness but ignorance.
अज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्धकार है ही नही।

—शेक्सपियर (ट्वेल्फ्थ नाइट, ४।२)

Ignorance is not innocence but sin.
अज्ञान निर्दोपता नहीं है, पाप है।

—राबर्ट ब्राउनिंग (दि इन ऐल्बम)

Ignorance is an evil weed, which dictators may cultivate among their dupes, but which no democracy can afford among its citizens.

अज्ञान ऐसा बुरा तृणक है जिसे तानाशाह लोग तो अपने प्रवंचितों में उगा सकते हैं किन्तु जिसे कोई भी जनतंत्र अपने नागरिकों में नहीं रहने दे सकता।

—लार्ड वेवेरिज (फ़ुल एम्प्लाएमेंट इन फ़ुल सोसायटी, भाग ४)

No man can justly censure or condemn another, because indeed no man truly knows another.

कोई व्यक्ति भी दूसरे की न्यायत: निन्दा या तिरस्कार नहीं कर सकता क्योंकि वस्तुत: कोई व्यक्ति भी सत्यत: दूसरे को जानता ही नहीं है।

—सर टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, २।४)

To be conscious that you are ignorant is a great step to knowledge.

यह बोध कि तुम अज्ञानी हो, ज्ञान की ओर एक बड़ा पग है।

— डिज़रायली (सिबिल)

Most ignorance is vincible ignorance. We don't know because we don't want to know.

अधिकांश अज्ञान समाप्य है। हम नहीं जानते क्योंकि हम जानना नहीं चाहते।

— एल्डस लिओनार्ड हक्स्ले

Persons of slender intellectual stamina dread competition, as dwarfs are afraid of being run over in the street.

'अल्प बौद्धिक क्षमता के लोग प्रतियोगिता के भय से आक्रांत रहते है जैसे बौने सड़क पर कुचले जाने के भय से।

—हैज़लिट (कैरेक्टरिस्टिक्स)

अज्ञेय

प्रकृति के द्वार पर कितना भी खटखटाओ, वह कभी बोधगम्य शब्दों में तुम्हें उत्तर नही देगी।

—तुर्गनेव (आन दि ईव)

All that we know is, nothing can be known

हम बस इतना जानते हैं कि कुछ भी नहीं जाना जा सकता।

—बायरन (चाइल्ड हेरॉल्ड)

All is riddle, and the key to a riddle is another riddle.

सब कुछ पहेली है और एक पहेली का हल दूसरी पहेली है।

—एमर्सन (दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़, इल्यूजंस)

अति

मधुरमपि बहुखादितमजीर्णं भवति।

मधुर पदार्थ भी अधिक खा लेने पर अजीर्ण कर देता है।

—भास, (चारुदत्त, ३।२ से पूर्व)

सर्वमतिमात्रं दोषाय।

सभी वस्तुओं की अति दोष उत्पन्न करती है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ६।५३)

अतिरूपेण वै सीता ह्यतिगर्वेण रावणः।
अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्॥

अतिरूपवती होने से सीता का अपहरण किया गया। अतिगर्वी होने से रावण मारा गया। अति उदारता के कारण बलि का नाश हुआ। अतः 'अति' सर्वत्र त्यागनी चाहिए।

—चाणक्यनीति

अत्यन्तमन्थनकदर्थनमुत्सहन्ते
मर्यादया नियमिताः किमु साधवोऽपि।

क्या मर्यादा से नियमित सज्जन भी अत्यधिक उत्तेजित किए जाने पर उस यातना को सहन करते हैं?

—अज्ञात

अतिदानात् बलिर्बद्धः अतिमानात् सुयोधनः।
विनष्टा रावणो लौल्यादति सर्वत्र वर्जयेत्॥

अधिक दान से बलि बँध गये, अधिक अभिमान से दुर्योधन मारा गया, अधिक लालच एवं चंचलता से रावण नष्ट हो गया—अति सभी स्थानों पर हानिकारक होती है, अतः अति को सर्वत्र छोड़ना चाहिए।

—अज्ञात

अतिपरिचयादवज्ञा इति यद्वाक्यं मृषैव तद्भाति।
अतिपरिचितेऽप्यनादौ संसारेऽस्मिन् न जायतेऽवज्ञा॥

अधिक परिचय से अवज्ञा होती है, यह कथन मिथ्या ही प्रतीत होता है। अनादि ब्रह्म से अतिपरिचय होने पर भी संसार में उसकी अवज्ञा नहीं होती।

—अज्ञात

अति संघरषन जो कर कोई।
अनल प्रगट चंदन ते होई॥

—तुलसीदास, (रामचरितमानस, ७।१११।८)

प्रकृति का नियम यही है एक,
कि अति का होगा ही विध्वंस।

—रांगेय राघव (मेधावी, पृ० २५३)

अति दरिद्रता भू-पथ की बाधा,
अति वैभव भी उन्नति-हित बंधन।

—सुमित्रानंदन पंत, (लोकायतन, पृ० ४६८)

गर्व न तो भव व्यर्थ अति,
अर्थहु अनृत दाय।
ज्यों तन अन बिनहु न रहे
भ्रश भोजन जिय जाय॥

धन के बिना संसार व्यर्थ है परन्तु अत्यधिक धन भी व्यर्थ है, जैसे अन्न के बिना तन नहीं रहता, परन्तु अत्यधिक भोजन करने से प्राण चले जाते हैं।

—दयाराम, (दयाराम सतसई, ४००)

ना अति बरखा ना अति धूप।
ना अति वकता[1] ना अति चूप[2]।।

—घाघ

अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प।।

—अज्ञात

न ढेर बलबल न ढेर चुप,
न ढेर बरखा न ढेर धुप।

—हिन्दी लोकोक्ति

अति चतुरेर भात नेइ, सुन्दरीर भातार नेइ।

अति चतुर को भोजन नहीं मिलता, अति सुन्दरी को पति नहीं मिलता।

—बँगला लोकोक्ति

अति झाले आणि हस् आले।

अति हुई और हँसी आई।

—मराठी लोकोक्ति

अळवुक्कु मिजिनाल् कोडुमुरुक्कागुम्।

अति से अमृत भी विष बन जाता है।

—तमिल लोकोक्ति

अति किसी की भी नहीं चाहिए।

—डेल्फ़ी के मन्दिर पर यूनानी भाषा में अंकित

अतिथि

कीर्ति च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति।

जो व्यक्ति अतिथि को भोजन कराने से पहले स्वयं भोजन खा लेता है, वह अपने घर की कीर्ति और यश को खा लेता है।

—अथर्ववेद (९।६।३)

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति
यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।

जो व्यक्ति अतिथि से पहले ही खा लेता है, वह अपने घर की श्री और ज्ञान को खा लेता है।

—अथर्ववेद (९।६।३)

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नाश्नीयात्।

जो वेदज्ञ है वही अतिथि है, इसलिए अतिथि को खिलाने से पहले भोजन नहीं करना चाहिए।

—अथर्ववेद (९।६।३)

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्।

यज्ञ की आत्मा के लिए और यज्ञ की निरन्तरता के लिए अतिथि के भोजन कर लेने के पश्चात् ही स्वयं खाये, यही नियम है।

—अथर्ववेद (९।६।३)

हिरण्यस्त्रग्यं मणि श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।
गृहे वसतु नो अतिथिः।

स्वर्ण की माला पहनने वाला, मणिस्वरूप यह अतिथि श्रद्धा, यज्ञ और महनीयता को धारण करता हुआ हमारे घर में निवास करे।

—अथर्ववेद (१०।६।४)

तन्न्वेवानवक्लृप्तम्। यो मनुष्येस्वनश्नत्सु पूर्वोऽश्नीयात्।

अतिथि को भोजन कराने से पूर्व स्वयं भोजन कर लेना पूर्णतया अनुचित है।

—शतपथ ब्राह्मण (१।१।१।८)

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद् वृंक्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति
ब्राह्मणो गृहे।

जिसके घर पर ब्राह्मण अतिथि बिना खाए-पिए रहता है, उस अल्पबुद्धि मनुष्य की आशा, प्रतीक्षा, संगति, श्रेष्ठ वाणी, इच्छा-पूर्ति, पुत्र और पशु सभी को वह नष्ट कर देता है।

—कठोपनिषद् (१।१।८)

---

१. बोलना। २. चुप रहना।

अतिथिदेवो भव।

अतिथि को देवता मानने वाले बनो।

—तैत्तिरीय उपनिषद् (१।११।२)

न कंचन् वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्।

अपने घर पर किसी भी अतिथि को प्रतिकूल उत्तर न दे। यह एक व्रत है।

—तैत्तिरीयोपनिषद् (३।१०।१)

यथामृतस्य संप्राप्तिः यथा वर्षमनूदके।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै॥
प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥

जैसे अमृत की संप्राप्ति, जैसे जलहीन स्थान पर वर्षा, जैसे निःसंतान मनुष्य को सदृश पत्नी से पुत्रजन्म, जैसे नष्ट सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति, जैसे हर्ष का अतिरेक, उसी प्रकार मैं आपका आगमन मानता हूँ। हे महामुनि! आपका स्वागत है।

—वाल्मीकि रामायण (१।१८।५०-५१)

चक्षुर्दद्यान्मनोदद्याद् वाचं दद्यात् सुभाषिताम्।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः।
प्रत्युत्थायाभिगमनं कुर्यान्न्यायेन चार्चनम्॥

घर आये व्यक्तियों को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखे, मन से उनके प्रति उत्तम भाव रखे, मीठे वचन बोले तथा उठकर आसन दे। गृहस्थ का सही सनातन धर्म है। अतिथि की अगवानी और यथोचित रीति से आदर सत्कार करे।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, २।५६)

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः॥

घर आये अथिति को प्रसन्न दृष्टि से देखे। मन से उसकी सेवा करे। मीठी और सत्य वाणी बोले। जब तक वह रहे उसकी सेवा में लगा रहे और जब वह जाने लगे तो उसके पीछे कुछ दूर तक जाए—ये पाँच कार्य गृहस्थ का पाँच प्रकार की दक्षिणा से युक्त यज्ञ है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, २।६१
तथा अनुशासन पर्व, ७।६)

अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।
नान्यस्तस्मात्परोधर्म इति प्राहुर्मनीषिणः॥

जिस गृहस्थ का अतिथि पूजित होकर जाता है, उसके लिए उससे बड़ा अन्य धर्म नहीं है—मनीषी पुरुष ऐसा कहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, २।७०)

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः॥

घर पर आए शत्रु का भी उचित आतिथ्य करना चाहिए। काटने के लिए आए हुए व्यक्ति पर से भी वृक्ष अपनी छाया को हटाता नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १४६।५)

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह उस गृहस्थ को अपना पाप देकर उसका पुण्य ले जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १९१।१२)

अज्ञातगोत्रनामानं अन्यग्रामादुपागतम्।
विपश्चितोऽतिथिप्राहुर्विष्णुवत् तं प्रपूजयेत्॥

जिसका नाम और गोत्र पहले से ज्ञात न हो और जो दूसरे गाँव से आया हो ऐसे व्यक्ति को विद्वान् पुरुष अतिथि कहते हैं। उसका विष्णु की भाँति पूजन करना चाहिए।

—नारदपुराण, (पूर्व भाग, प्रथम पाद, २७।७३)

प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः।
प्रभुः सूर्य प्रकाशाच्च सतां चाभ्यागतः॥

जलाने के लिए अग्नि प्रभु है। बीज बोने के लिए भूमि प्रभु है। प्रकाश के लिए सूर्य प्रभु है। सत्पुरुषों के लिए अभ्यागत प्रभु है।

—मत्स्यपुराण (३७।१३)

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

अतिथि के लिए तृण, भूमि, जल और मधुर वचन—इनका सज्जनों के घर पर कभी अभाव नहीं होता।

—मनुस्मृति (३।१०१) तथा महाभारत (वन पर्व, २।५४)

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत्॥

अस्त होते हुए सूर्य द्वारा सायंकाल को भेजा हुआ अतिथि गृहस्वामी को वापस नहीं करना चाहिए। चाहे वह उचित समय पर आये अथवा अनुचित। उसे भोजन कराके घर में रखना ही चाहिए।

—मनुस्मृति (३।१०५)

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।

जो अतिथि को न खिलाया जाए वह स्वयं भी नहीं खाना चाहिए।

—मनुस्मृति (३।१०६)

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात्।

जो मनुष्य केवल अपने लिए भोजन पकाता है, वह केवल पाप खाता है।

—मनुस्मृति (३।११८)

वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः।

मीठे वचनों से स्वागत ही सच्चा अतिथि सत्कार होता है।

—भास (प्रतिमा नाटक, ५।८ के पश्चात्)

आतिथ्यमार्यधर्मो हि स्यादतिथिर्यथा तथा।

अतिथि कैसा भी हो, उसका आतिथ्य करना श्रेष्ठ धर्म है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, १५।२२)

स्वात्मापि शीलेन तृणं विधेय देया विहायासनभूर्निजापि।
आनन्दबाष्पैरपि कल्प्यम्भः पृच्छा विधेया मधुभिर्वचोभिः॥

शिष्टाचार के कारण अपनी आत्मा को भी तिनके के समान लघु बनाना चाहिए, अपना आसन छोड़कर अतिथि को देना चाहिए, आनन्द के अश्रुओं से जल देना चाहिए और मधुर वचनों से कुशलक्षेम पूछना चाहिए।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ८।२१)

वपुषा विनयं वहन्ति केचिद्,
वचसा केऽपि चरन्ति चारुचर्याम्।
अतिथौ समुपागते सपर्य्यां
पुलकैः पल्लवयन्ति केऽपि सन्तः॥

अतिथि के आने पर कोई शरीर से विनय प्रकट करते हैं और कोई वाणी से शिष्टाचार दिखाते हैं, परन्तु कुछ संत ऐसे भी होते हैं जो रोमांच के द्वारा ही अतिथि का स्वागत प्रारंभ कर देते हैं।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, २।१२)

अपूजितोऽतिथिर्यस्य गृहाद्याति विनिश्वसन्।
गच्छन्ति विमुखास्तस्य पितृभिः सह देवता॥

जिसके घर से अतिथि असम्मानित होकर दीर्घश्वास छोड़ता हुआ चला जाता है, उसके घर से पितरों सहित देवता भी विमुख होकर चले जाते हैं।

— विष्णु शर्मा (पंचतंत्र)

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः॥

उत्तम वर्ण के व्यक्ति के घर आए हुए निम्नवर्ण के अतिथि की भी समुचित पूजा होनी चाहिए क्योंकि अतिथि सर्वदेवस्वरूप होता है।

— नारायण पंडित (हितोपदेश, मित्रलाभ, ६४)

सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।

अतिथि सबके आदर का पात्र है।

—अज्ञात

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिरात् दृश्यसे
का वार्त्ता कुशलोऽसि बालसहितः प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं ये समुपागतान् प्रणयिनः प्रह्लादयन्त्यादरात्
तेषां युक्तमशंकितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा॥

"यहां आइए। इस आसन पर विराजिए। बहुत दिनों बाद क्यों दिखाई पड़े? क्या हालचाल है? बालकों सहित सकुशल तो हैं? मैं आपके दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ।" जो लोग इस प्रकार घर पर आए हुए प्रियजनों का स्वागत-सत्कार कर उन्हें आनंदित करते हैं, उनके घर सदा निःशंक मन से जाना चाहिए।

—अज्ञात

जिहि घर साध न पूजिये, हरि की सेवा नाहिं।
ते घर मड़हट सारखे, भूत बसैं तिन माँहि॥

—कबीर

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

—कबीर

जा दिन सन्त पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करे फल जैसो दरसन पावत ॥
—सूरदास (सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, पद ३६०)

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान-मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहिं करिय पयान ॥
—रहीम (दोहावली, १६०)

'अतिथि' देव का अर्थ है समाज-देवता।
समाज अव्यक्त है, अतिथि व्यक्त है। अतिथि समाज की व्यक्त मूर्ति है।
— विनोबा

आतिथेय से बड़ा अतिथि ही माना जाता,
आतिथेय ही सदा अतिथि को माथ नवाता।
—रामखेलावन वर्मा (चन्द्रगुप्त मौर्य, १४)

कासा[1] दीजे, वासा[2] न दीजे।
अपरिचित अतिथि को भोजन दे परन्तु निवास न दे।
—हिंदी लोकोक्ति

वह आएँ घर में हमारे खुदा की क़ुदरत है
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं।
—ग़ालिब (दीवान, १०६।२)

दो दिन पावणो तीजे दिन अणखावणो।
दो दिन तो पाहुना (अतिथि), तीसरे दिन अनखाने वाला।
—राजस्थानी लोकोक्ति

घर आयो बैरी पामणो।
घर आया शत्रु भी अतिथि होता है।
—राजस्थानी लोकोक्ति

आओ' बैठो पीओ पाणी।
तीन बात तो मोल न आणी।
—राजस्थानी लोकोक्ति

कधीं येता पाहुणा जर घराला,
'तुझें घर हें' वदतोंच मी त्याला।
जब कोई अतिथि घर पर आता है तो मैं उससे कह देता हूं, "यह तुम्हारा ही घर है"।
[मराठी] —केशवसुत ('एक खेडें' कविता)

1. कांसा, थाली। 2. निवास।

वच्चिननाडु वरा चुट्टमु, मरुनाडु माडु चुट्टमु,
मुडवनाडु मुरिकि चुट्टमु।
अतिथि प्रथम दिन सुवर्ण, दूसरे दिन चाँदी, तीसरे दिन कचरा।
—तेलुगु लोकोक्ति

आतिथ्य का निर्वाह न करने की मूढ़ता ही धनी की दरिद्रता है। यह बुद्धिहीनों में होती है।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ८९)

मुँह टेढ़ा करके देखने मात्र से अतिथि का आनन्द उड़ जाता है।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ९०)

दरिद्रों में दरिद्र वह है जो अतिथि का सत्कार न करे।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १५३)

ठहरना चाहते अतिथि को जल्दी विदा कर देना और विदा चाहते अतिथि को रोक लेना समान रूप से आपत्ति-जनक होते हैं।
—होमर (ओडिसी, १५)

अतिथि कभी भी उस आतिथेय को नहीं भूलता है जिसने उससे सदय व्यवहार किया है।
—होमर (ओडिसी, १५)

आतिथेय और अतिथि के मध्य जो भावना होती है उससे अधिक सदय भावना और कौन-सी होगी?
—एस्किलस (दि लाइबेशन बियरर्स)

अतिथि की अवधि केवल सात दिन होती है।
—बर्मी लोकोक्ति

मछलियाँ और अतिथि तीन दिन के बाद गंध देने लगते हैं।
—डेनमार्क देश की लोकोक्ति

आतिथेय वर्ष भर में जो देखता है, उससे अधिक अतिथि एक घंटे में देख लेता है।
—पोलैंड देश की लोकोक्ति

हर अतिथि दूसरे अतिथियों से घृणा करता है। और आतिथेय सब अतिथियों से घृणा करता है।
—अल्बानिया देश की लोकोक्ति

Unbidden guests
Are often welcomest when they are gone.

अनाहूत अतिथि प्राय: चले जाने के बाद ही सबसे अधिक अभिनन्दित होते हैं।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी, भाग १, २।२)

True friendship's laws are by this rule expressed :
Welcome the coming, speed the parting guest.

सच्ची मित्रता के नियम इस सूत्र में अभिव्यक्त हैं—आने वाले अतिथि का स्वागत करो और जाने वाले अतिथि को जल्दी विदा करो।

—अलेक्ज़ेंडर पोप

My evening visitors, if they cannot see the clock, should find the time in my face.

यदि मेरे सन्ध्याकालीन अतिथि घड़ी नहीं देख सकते तो उन्हें मेरे मुखमंडल में समय देख लेना चाहिए।

—एमर्सन (जर्नल्स, १८४२)

Happy the man who never puts on face, but receives every visitor with that countenanec he has on.

सुखी है वह मनुष्य जो अतिथि को देखकर कभी मुँह नहीं लटका लेता है, अपितु हर अतिथि का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करता है।

—एमर्सन (जर्नल्स, १८३३)

To be an ideal guest stay at home,
आदर्श अतिथि होने के लिए, घर पर ही रहो।

—एडगर वाटसन होर्न (कंट्री टाउन सेइंग्स)

Humility is a virtue, and it is a virtue innate in guests:

विनम्रता एक गुण है और यह गुण अतिथियों में स्वाभाविक रूप से होता है।

—मैक्स बीरबोह्म (ऐंड ईविन नाउ, होस्ट्स ऐंड गेस्ट्स)

The hospitable instinct is not wholly altreistic. There is pride and egoism mixed with it.

अतिथि-सत्कार की प्रवृत्ति पूर्णतया परोपकारमयी नहीं है। इसमें अभिमान और अहंकार मिश्रित होते है।

—मैक्स बीरबोह्म (ऐंड ईविन नाउ, होस्ट्स ऐंड गेस्ट्स)

When hospitality becomes an art, it loses its very soul.

जब अतिथि-सत्कार कला बन जाता है, तो वह निष्प्राण हो जाता है।

—मैक्स बीरबोह्म (ऐंड ईविन नाउ, होस्ट्स ऐंड गेस्ट्स)

अतीत

हृदय के लिए अतीत एक मुक्ति-लोक है जहाँ वह अनेक प्रकार के बंधनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, रसात्मक बोध के विविध रूप)

'अतीत का राग' एक बहुत ही प्रबल भाव है। उसकी सत्ता का अस्वीकार किसी दशा में हम नहीं कर सकते··· अतीत का और हमारा साहचर्य बहुत पुराना है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग २, काव्य में रहस्यवाद)

अपने अतीत का मनन और मन्थन हम भविष्य के लिए संकेत पाने के प्रयोजन से करते हैं। वर्तमान में अपने आपको असमर्थ पाकर भी हम अपने अतीत में अपनी क्षमता का परिचय पाते हैं।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ७)

हमारा भविष्य जैसे कल्पना के परे दूर तक फैला हुआ है, हमारा अतीत भी उसी प्रकार स्मृति के पार तक विस्तृत है।

—महादेवी वर्मा (वृन्दावन लाल वर्मा कृत 'ललित विक्रम' की भूमिका)

नवीनर मेरुदण्ड अतीतर क्षीण अवशेष
भविष्यर शासक हे पुरातन हे पळितकेश !

अतीत का क्षीण अवशेष ही नवीन का मेरुदण्ड है। ओ सफेद केशों वाले पुरातन ! तुम्ही भविष्य के शासक हो।

[उड़िया] —कालिन्दीचरण पाणिग्राही ('प्राचीन ओ नवीन' कविता)

जब लोग दरिद्र हो जाते है, तब बाहर की ओर गौरव की खोज में भटकते है। तब वे केवल बातें कहकर गौरव करना चाहते है, तब वे पुस्तकों से श्लोक निकालकर गौरव का माल-मसाला भग्न स्तूप से संचय करते रहते है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भारतीय समाज, जीवन और आदर्श, पृ० ११२)

अतीतकाल रूपी गाड़ियों से तुम कहीं नहीं जा सकते।

—मैक्सिम गोर्की (दिलोअर डेव्य्स)

His cheek the map of days outworn.
उसका कपोल जीर्ण दिवसों का मानचित्र है।

—शेक्सपियर (सानेट, ६८)

What's done cannot be undone.
जो कृत है, उसे अकृत नहीं बनाया जा सकता।

—शेक्सपियर (ओथेलो, ५।१)

Time and words can't be recalled.
समय और शब्दों को वापस नहीं लाया जा सकता।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

Nothing is improbalele until it moves into the past time.
कुछ भी असम्भव नहीं है जब तक वह अतीत की बात न हो जाए।

—जार्ज एड (हैंडमेड फ़ेबिल्स, दि पोलाइट व्वाइजन काउंटर)

There was but one solitary thing about the past with remembering and that was the fact that it is past—can't be restored.
अतीत के विषय में केवल एक बात स्मरणीय है और वह यह तथ्य है कि यह अतीत है—इसे वापस नहीं लाया जा सकता।

—मार्क ट्वेन (विलियम डीन होवेल्स को १९ सितम्बर १८७७ का पत्र)

Those who do not remember the past are condemned to relive it.
जो अतीत का स्मरण नहीं करते, उन्हें अतीत में ही रहने का दंड मिलता है।

—जार्ज सांतायना (दि लाइफ़ आफ़ रियज़न)

अतीत और भविष्य

Yesterday is not ours to recover, but tomorrow is ours to win or to lose.
कल (विगत) वापस लौटकर हमारा होने वाला नहीं है परन्तु भविष्य हमारा है, चाहे हम उसे हारें या जीतें।

—लिंडन बी० जानसन (भाषण, २८ नवम्बर १९६३)

अतीत और वर्तमान

वर्तमान हमें अन्धा बनाए रहता है, अतीत बीच-बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, रसात्मक बोध के विविध रूप)

हे मानव, मुर्दे की पूजा करने के बदले हम जीवित की पूजा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं, बीती हुई बातों पर माथापच्ची करने के बदले हम तुम्हें प्रस्तुत प्रयत्न के लिए बुलाते हैं। मिटे हुए मार्ग के खोजने में व्यर्थ शक्ति-क्षय करने के बदले अभी बनाए हुए प्रशस्त और सन्निकट पथ पर चलने के लिए आह्वान करते हैं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० १४२)

'आज' से घृणा करना यह सिद्ध करता है कि 'कल' को ग़लत समझा गया है।

—मॉरिस मैटरलिंक (विज़डम ऐंड डेस्टिनी)

It is our past which has prolonged itself into the present. We are it : I mean the real we.
हमारा अतीत ही स्वयं को बढ़ाकर वर्तमान बन गया है। हम अतीत हैं, मेरा आशय वास्तविक हम से है।

—विष्णु स० सुकथंकर (सुकथंकर मेमोरियल एडीशन, खंड १, पृ० ४३९)

अतीत, वर्तमान और भविष्य

भूतकाल हमारा है, हम भूतकाल के नहीं हैं। हम वर्तमान के हैं और भविष्य को बनाने वाले हैं, भविष्य के नहीं।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, पृ० ३४८)

जिन बातों को मनुष्य भूल जाना चाहता है, वही उसे बार-बार क्यों याद आती हैं? क्या मनुष्य का अतीत एक वह भयानक पिशाच है जो उसके भविष्य में वर्तमान का पत्थर बनकर पड़ा रहता है?

—रांगेय राघव (मुर्दों का टीला, पृ० २३६)

भूतकाल के साँचों को तोड़ डालो परन्तु उनकी स्वाभाविक शक्ति और मूल भावना को सुरक्षित रखो, अन्यथा तुम्हारा कोई भविष्य ही नहीं रह जाएगा।

—अरविन्द (विचारमाला और सूत्रावली)

बीता हुआ कल आज की स्मृति है और आनेवाला कल आज का स्वप्न।

—खलील जिब्रान (जीवन-संदेश, पृ० ७३)

Life goes on not by repudiating the past but by accepting it and weaving it into the future in which the past undergoes a rebirth.

अतीत को त्यागने से नहीं अपितु स्वीकारने से और अतीत को भविष्य में ढालने से, जिसमें अतीत का पुनर्जन्म होता है, जीवन आगे बढ़ता है।

—राधाकृष्णन् (दि फ़िलासफ़ी आफ़ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, पृ० ११)

Trust no Future, howe'er pleasant!
Let the dead past bury its dead!
Act, act in the living present!
Heart within, and God o'erhead!

भविष्य चाहे जितना भी सुखद हो, उस पर विश्वास न करो, भूतकाल की भी चिन्ता न करो, हृदय में उत्साह भर-कर और ईश्वर पर विश्वास कर वर्तमान में कर्मशील रहो।

—लाँगफ़ेलो (ए साम आफ़ लाइफ़)

You can never plan the future by past.

आप कभी भी अतीत के द्वारा भविष्य की योजना नहीं बना सकते।

—एडमंड बर्क (नेशनल असेम्बली के एक सदस्य को एक पत्र में)

I believe the future is only the past again entered through another gate.

मैं तो ऐसा विश्वास करता हूँ कि भविष्य केवल दूसरे द्वार से प्रविष्ट अतीत ही है। —

—सर आर्थर विंगपिनेरो (दि सेकंड मिसेज टैंक्वरे)

How the past perishes is how the future becomes.

जिस प्रकार अतीत नष्ट होता है उसी प्रकार भविष्य निर्मित होता है।

—अल्फ़्रेड नार्थ ह्वाइटहेड (ऐडवेंचर्स इन आइडियाज़, १५)

All our yesterdays are summarized in our now, and all the tomorrows are ours to shape.

हमारे सभी कल (विगत) हमारे वर्तमान में साररूप में समाहित हैं और सभी कल (आगत) गढ़ने के लिए हमारे हैं।

—हाल बोरलैंड (सन डायल आफ़ दि सीज़न्स, दि टूमारोज़—दिसम्बर ३०)

अतृप्ति

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीसु चाहारकर्मसु।
अतृप्ताः मानवाः सर्वे याता यास्यंति यांति च॥

धन, जीवन, स्त्री और भोजन के विषय में सब प्राणी अतृप्त होकर गये, जाते हैं और जायेंगे।

—चाणक्यनीति

धर्मस्यार्थस्य कामस्य यशसो जीवितस्य च।
अतृप्ताः पुरुषा राजन्! याता यास्यन्ति यान्ति च॥

हे राजन्! धर्म, अर्थ, काम, कीर्ति और जीवन इनके विषय में मनुष्य सदा अतृप्त रहकर मरे है, मरेंगे और मर रहे हैं।

—अज्ञात

अरी उपेक्षा-भरी अमरते!
री अतृप्ति! निर्बाध विलास!
द्विधा रहित अपलक नयनों की
भूख भरी दर्शन की प्यास!

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, चिन्ता सर्ग)

One thing has been lent to youth and age in common discontent.

युवावस्था और वृद्धावस्था को एक वस्तु समान रूप से मिली है—असतोष।

—मैथ्यू आर्नोल्ड

अत्याचार

महद्भि चारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति।

महात्माओं के प्रति किया गया अत्याचार पूरी तरह अपने ऊपर पड़ता है।

—भागवत (५।६।१६)

अत्याचार सहन करने का कुफल यही होता है,
पौरुष का आतंक मनुष्य कोमल होकर खोता है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (दिनकर की सूक्तियाँ, पृ० ११३)

मनुज में शक्ति मनुज में भक्ति,
जनार्दन का जन है अवतार।
वही जन यदि ले मन में ठान,
ध्वस्त हो जाये अत्याचार ॥

—बलदेव प्रसाद मिश्र (साकेत-सन्त, पृ० १४६)

सितम[1] ऐसा नहीं देखा जफ़ा[2] ऐसी नहीं देखी
वो चुप रहने की कहते हैं जो हम फ़रियाद[3] करते है।

—रामप्रसाद 'बिस्मिल' (कविता, 'जो हम फ़रियाद करते हैं')

वह दिन है कौन-सा कि सितम[4] पर सितम नहीं,
गर ये सितम हैं रोज़ तो इक रोज हम नहीं ॥

—ज़ौक़

ज़ुल्म[5] की बात ही क्या, ज़ुल्म की औक़ात[6] ही क्या,
ज़ुल्म बस ज़ुल्म है, आग़ाज़[7] से अंजाम[8] तलक।
ख़ून फिर ख़ून है, सौ शक्ल[9] बदल सकता है,
ऐसी शक्लें कि मिटाओ तो मिटाए न बने।
ऐसे शोले[10] कि बुझाओ तो बुझाये न बने,
ऐसे नारे कि दबाओ तो दबाये न बने।

—साहिर लुधियानवी (तल्ख़ियाँ, पृ० १४४)

क़रीब है यार रोज़े महशर[11]
छुपेगा कुश्तों[12] का ख़ून कब तक।
जो चुप रहेगी ज़ुबाने ख़ंजर[13]
लहू पुकारेगा आस्तीं का।

—अज्ञात

अत्याचार की प्रकृति में यह रोग सुस्थिर और अन्तर्निहित है कि अत्याचारी व्यक्ति अपने मित्रों पर विश्वास नहीं करता।

—एस्किलस (प्रामिथ्युज बाउंड)

अत्याचार की तुलना में मृत्यु कोमलतर है।

—एस्किलस (एगामेमनन)

जो दूसरों के अत्याचार को नापसंद करते हैं, उनमें से अनेक लोग स्वयं अत्याचार करना पसंद करते हैं।

—नेपोलियन बोनापार्ट

Where law ends, there tyranny begins.

जहाँ कानून समाप्त होता है, वहाँ अत्याचार प्रारंभ होता है।

—विलियम पिट दि एल्डर (भाषण, हाउस आफ़ लार्ड्स में ६ जनवरी, १७७० को)

The closed door and sealed lips are prerequisites to tyranny.

बन्द द्वार और बन्द ओंठ अत्याचार के लिए पूर्वापेक्षित हैं।

—फ्रैंक लेब्नी स्टैंटन

Tyranny is always weakness.

अत्याचार सदा ही दुर्बलता है।

—जेम्स रसेल लावेल

अत्याचारी

अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम्।
तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम् ॥

जो प्रजा की रक्षा नही करता, केवल उसके धन को हरण करता है तथा जिसके पास कोई नेतृत्व करने वाला मंत्री नही है, वह राजा नहीं, कलियुग है। समस्त प्रजा को चाहिए कि ऐसे निर्दयी राजा को बांधकर मार डाले।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ६१।३२)

उत्पीड़न की चिनगारी को अत्याचारी अपने ही अंचल में छिपाए रहता है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

आततायी होने के लिए शस्त्र ग्रहण करना आत्महनन है किन्तु आततायी को रोकने के लिए शस्त्र ग्रहण न करना भी आत्महनन है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (नारद की वीणा, तीसरा अंक)

स्थिर, गंभीर, चुप, शान्त न रह सकता है अत्याचारी,
करता रहता है विनाश की अपने आप तैयारी।
अपना ही वह अविश्वास सबसे पहले करता है,
औरों के विश्वास-घात से मूढ़ व्यर्थ डरता है।

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पृ० ६४)

---

१. अत्याचार। २. अन्याय। ३. निवेदन। ४. अत्याचार। ५. अत्याचार। ६. शक्ति। ७. प्रारंभ। ८. अंत। ९. रूप। १०. अंगारे। ११. प्रलय का दिन। १२. मारे गए लोग। १३. खड्ग की जिह्वा।

समस्त अत्याचारी सरकारें एक दूसरे का उपकार करने के लिए सदा तैयार रहती ही है ।

—लाला हरदयाल (क्रांतिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स, पृ० २७)

गुप्तचर और सूचक व्यक्ति अत्याचारी शासकों के मुख्य साधन होते है। लोगों का ध्यान, दूसरी ओर लगाने तथा अपने को उनमें नेता के रूप में आवश्यक बनाने के लिए युद्ध उनका प्रिय व्यवसाय होता है।

—अरस्तू

एक अत्याचारी दूसरे अत्याचारी की सहायता करता है।

—हेरोडोटस (पुस्तक ८, १४२)

अत्याचारी कोई भी बहाना ले सकता है ।

—ईसप (कहानियां, भेड़िया व मेमना की कहानी)

अत्याचारी को न तो कभी सच्ची मित्रता का रस मिलता है, न पूर्ण स्वाधीनता का।

—डायोजेनेस

कानूनों के स्वामी के विरुद्ध कानूनों का प्रयोग नही किया जा सकता।

—वेविन्यूरो सेल्लिनो (आत्मकथा)

The tyrant claims feedom to kill freedom and yet to keep it for himself.

अत्याचारी स्वतन्त्रता का नष्ट करने और फिर भी अपने लिए स्वतंत्रता रखने के लिए स्वतंत्रता का दावा करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (फ़ायरफ्लाइज़)

Tyrants seldom want pretexts.

अत्याचारीगण बहाने नही चाहते।

—एडमंड बर्क (नेशनल असेम्वली के एक सदस्य को एक पत्र)

Nature has left this tincture in the blood,
That all men would be tyrants if they could.

प्रकृति ने हमारे रुधिर में ऐसा घोल दे रखा है कि सब लोग अत्याचारी हो जाएं यदि उनके लिए अवसर मिले।

—डेनियल डीफ़ो (दि कॅंटिश पेटिशन, एडेंडा)

So long as men worship the Caesars and Napoleons, Caesars and Napoleons will duly rise and make them miserable.

जब तक लोग क़ैसरों और नैपोलियनों की पूजा करते रहेंगे तब तक क़ैसर और नैपोलियन उदित होंगे और उन्हें दुःखी करते रहेंगे।

—एल्डस हक्स्ले (एंड्स ऐंड मीन्स)

Tyrants never perish from tyranny, but always from folly—when their fantasies have built up a palace for which the earth has no foundation.

अत्याचारी कदापि अत्याचार के कारण नष्ट नहीं होते अपितु सदैव ही मूर्खता के कारण नष्ट होते है, जब उनकी सनकें एक भवन बना चुकी होती है जिसके लिए पृथ्वी पर कोई नींव नहीं होती।

—वाल्टर सेवेज लेंडर (इमेजिनरी कनवर्सेशन्स)

A tyrant is most tyrant to himself.

अत्याचारी सबसे अधिक स्वयं के प्रति अत्याचारी होता है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

अदूरदर्शिता

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव च॥

जो निश्चित बातों को छोड़कर अनिश्चित बातों का सेवन करता है, उसकी निश्चित बातें नष्ट हो जाती है तथा अनिश्चित तो नष्ट हैं ही।

—बृहस्पतिनीतिसार

आग लगे पर कुआँ खोदना।

—हिन्दी लोकोक्ति

अद्वितीय

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम्।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गंगासमा सरित्॥

विष्णु के समान कोई ध्येय नही है, निराहार रहने से बढ़कर कोई तपस्या नही है, आरोग्य के समान कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है और गंगा जी के तुल्य दूसरी कोई नदी नही है।

—अग्निपुराण (३८२।१४)

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्॥

काम-वासना के समान कोई दूसरा रोग नही। मोह के

समान कोई दूसरा शत्रु नहीं। क्रोध के समान कोई आग नहीं। ज्ञान से बड़ा कोई सुख नहीं।

—चाणक्यनीति

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुः समं तेजः नास्ति धान्यसमं प्रियम्॥

मेघ के जल के समान दूसरा जल नही। आत्म-बल के समान दूसरा बल नहीं। चक्षु के समान दूसरा तेज नहीं। अन्न के समान कोई प्रिय नहीं।

—चाणक्यनीति

मात्रासमं नास्ति शरीरपोषणं चितासमं नास्ति शरीरशोषणम्।
भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणं विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्॥

माता के समान शरीर का पोषक नहीं, चिन्ता के समान शरीर का शोषक नहीं, पत्नी के समान शरीर का तोषक नहीं तथा विद्या के समान शरीर का आभूषण नही है।

—अज्ञात

राम सरीखा राम है संत सरीखे सत।
नाम सरीखा नाम है नही आदि नहि अत॥

—गरीबदास

वह चितवनि औरै कछू जिहिं बस होत सुजान।

—बिहारी (बिहारी सतसई, ५८८)

अद्वैत

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि।

वह जो पुरुष (तेजस्वी ब्रह्म) है, वही मैं हूँ।

—ईशावास्योपनिषद् (१६)

अहंकारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः।

अहंकारादि वाली देह का अन्त होने पर जगत् नहीं रहता और मैं अद्वय-रूप हो जाता हूँ।

—आत्मबोधोपनिषद्

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥

जो विष्णु को प्रणाम करते हैं, वे शंकर को ही प्रणाम करते हैं। जो भक्तिपूर्वक विष्णु की उपासना करते हैं, वे शंकर की ही उपासना करते है। जो शिव से द्वेष करते है, वे विष्णु से ही द्वेष करते है। जो शिव को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते।

—रुद्रहृदयोपनिषद् (५६)

सर्वं चिन्मात्रमेव।

सब कुछ चैतन्यमात्र ही है।

—तेजोबिन्दु उपनिषद् (२।३९)

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्॥

जो परब्रह्म सबका आत्मा है, विश्व का महान् आधार है, सूक्ष्म से सूक्ष्म है और अविनाशी है, वह तुम्ही हो, तुम वही हो।

—कैवल्योपनिषद् (१६)

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥

मुझमे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है। मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। मुझमें ही सब कुछ विलीन हो जाता है। वह अद्वय ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ।

—कैवल्योपनिषद् (१९)

अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमिदं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि॥

मै अणु से भी अणु हूँ, इसी प्रकार मैं महान् से भी महान् हूँ। यह विचित्र विश्व मेरा ही स्वरूप है। मैं पुरातन पुरुष हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं हिरण्यमय पुरुष हूँ। मैं शिवस्वरूप हूँ।

—कैवल्योपनिषद् (२०)

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

समस्त वेदों द्वारा मैं ही वेद्य (जानने योग्य) हूँ, मैं ही वेदान्त का कर्ता हूँ और वेदों का ज्ञाता भी मैं ही हूँ।

—कैवल्योपनिषद् (२१)

यन्नाम किंचित् त्रैलोक्यं स एवावयवो मम।
तरंगोऽब्धाविवेत्यन्तर्यः पश्यति स पश्यति॥

जो इस प्रकार देखता है कि जैसे लहर समुद्र का एक अंग है, वैसे ही तीनों लोकों में जो कुछ है, वह मेरा ही अंग है, वही यथार्थ देखता है।

—योगवासिष्ठ (४।२२।३३)

कुसुमेष्वहमामोदः पुष्पत्रेष्वहं छविः।
छविष्वहं रूपकला रूपेष्वनुभवोऽहम् ॥

पुष्पों में मैं सुगंध हूँ, फूल-पत्तियों में मैं सौन्दर्य हूँ। सुन्दर वस्तुओं की रूपकला मैं हूँ। सब रूपों में मैं अनुभव हूँ।

—योगवासिष्ठ (५।३४।५२)

अहं यः स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः।

जो मैं हूँ, वह आप ही हैं। जो आप हैं, वह सनातन पुरुष मैं ही हूँ।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व, १४।४८)

मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुंभो जले वीचिः कनके कटकं यथा ॥

जैसे मिट्टी में घड़ा, जल मे लहर और सुवर्ण में कटक विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मुझमे विनिर्गत (निकला) यह विश्व मुझमें ही लय को प्राप्त होगा।

—अष्टावक्रगीता (२।१०)

क्व भूतं क्व भविष्यद् वा वर्तमानमपि क्व वा।
क्व देशः क्व च वा नित्यं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अपनी महिमा में स्थित मेरे लिए कहाँ है भूतकाल, कहाँ है भविष्य, कहाँ है वर्तमानकाल? कहाँ है देश? कहाँ है नित्यता?

—अष्टावक्रगीता (१९।३)

परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।

वह नित्य परम ब्रह्म ही मैं हूँ।

—शंकराचार्य (विज्ञाननौका)

पांणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १३)

जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यौ गियानी ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०३)

राम खुदाय शक्ति शिव एकै,
कहुंधों काहि निबेरा ?[1]

—कबीर

हम सब माहिं, सकल हम माहिं,
हमते और दूसरा नाहिं।

—कबीर

तोही मोही, मोही तोही, अंतरु कैसा।
कनक कटिक, जल तरंग जैसा ॥

—रैदास

सब मैं हरि है हरि मैं सब हैं, हरि अपनौ जनि जाना।
आपनि आपि सापी नहिं दूसर, जाननहार सयाना ॥

—रैदास

अजब अनूपम आप है,
'दादू' नाम अनेक।

—दादू दयाल

सरिता मिलइ समुद्रहिं भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्महिं ब्रह्मइ होइ ॥

—सुन्दरदास (पूरबी भाषा बरवै, १९)

जो सुख नित्य प्रकास विभु, नाम रूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं सुद्ध अपार ॥

—साधु निश्चलदास (विचारसागर)

सो मुझ में मैं वाही माही, ज्यों जल मद्धे तारा है।

—बुल्ला साहेब (बुल्ला साहेब का शब्दसार, पृ० ३१)

'भीख' केवल एक है, किरतिम[1] भयो अनंत।
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं सत ॥

—भीखा साहब (भीखा साहब की बानी, पृ० ४६)

एक संप्रदा, सबद घट, एक द्वार सुख-संच,
इक आतमा सब भेष मों, दूजो जग-परपंच।

—भीखा साहब

लख वेद पुरान अनेक पढ़े,
सतसग बिना रँग लागे नहीं।
महबूब का मुख न देख सके
जो दुइ की नींद सूँ जागे नही।

—रोहल (शास्त्र अद्भुत ग्रंथ)

आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब सो आपु अकेला ॥
आपुहि मीच जियन पुनि आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहे कहाँ क दोसर कोइ ॥

—जायसी (पदमावत, २१६)

१. फिर यह भेदभाव कैसे किया?

१. कृत्रिम।

गगरी सहस पचास, सो कोउ पानी भरि धरै।
सूरज दिपै अकास, 'मुहमद' सब महँ देखिए॥
—जायसी

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तव भव मूल भेद भ्रम नासा।
—तुलसीदास (रामचरित मानस, ७।११८।१)

गुरु-परसादी दुरमति खोई,
जहँ देख्या तहँ एका सोई।
—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रंथ साहब)

तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममें,
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक?
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, १५६)

आपु हिरानो आपु भहं, आपहि खोजत आय।
आपु परम आनन्दमय, आपु सोक संताप॥
—रामदास गौड़ (कविता कौमुदी, पृ० ३६४)

मैं ही छबि रिझवार मैं, मैं राधा मैं श्याम।
शब्द अर्थ जल वीचि मैं, सकल रूप सब नाम।
—रामदास गौड़ (कविता कौमुदी, पृ० ३६५)

ज़माना आईना[1] राम का है, हर एक सूरत[2] से है वह पैदा।
जो चश्मे-हक़बी[3] खुली तो देखा, कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
—रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २, पृ० ८)

मुक़ाम पूछो तो लामकाँ[4] था, न राम ही था न मैं वहाँ था!
लिया जो करवट तो होश आया, कि राम मुझमें मैं राम में हूँ॥
—रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २, पृ० ८)

तू क्यों समझा मुझे ग़ैर[5] बता।
अपना रुख़े-ज़ेबा[6] न हम से छिपा॥
चिक पर्दा उठा, टुक सामने आ।
तुम और नहीं, हम और नहीं॥
—रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २, पृ० ३६)

तारे झमक-झमक के बुलाते हैं राम को
आँखों में उनकी रहता हूँ, जाऊँ किधर को मैं।
—रामतीर्थ, (राम वर्षा, भाग २, पृ० ४०)

१ दर्पण। २. रूप। ३. तत्त्वदृष्टि का नेत्र।
४. निवास-स्थान-रहित। ५. अन्य। ६. सुन्दर मुख।

इस 'मैं' ने फँसा रक्खा है, धोखे में, नहीं तो
है और कहाँ कोई, वहाँ आप यहाँ आप।
—'आरज़ू' लखनवी (सुरीली बाँसुरी, पृ० २२)

दी गई मंसूर को सूली
अदब के तर्क पर
था अनलहक़[1] हक़[2] मगर
यक लफ़्ज़े गुस्ताख़ाना[3] था।
—अज्ञात

नै वस्ल बेमाँद व नै वासिल।

वहाँ पर न मिलन ही रह जाता है और न मिलने वाला ही।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़

तू आँ जमई कि ऐने वहदत आमद
तू आँ वाहिद कि ऐने कसरत आमद।

तू मूल है जिससे सबकी उत्पत्ति होती है। तू वह इकाई है कि जिससे समूह बनता है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

हर आँ कस रा कि अन्दर दिल शके नेस्त
यक़ीं दानद के हस्ती जुज़ यके नेस्त।

हर वह मनुष्य जिसके हृदय में कोई संदेह नहीं है, वह यह बात पूर्ण रूप से समझ लेगा, कि एक हस्ती के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

दुई अज़ ख़ुद बदर करदम् यके दीदम् दो आलम रा
यके जोयम् यके दानम् यके बीनम् यके ख़ानम्।

मैंने द्वैत के आवरण को अपने अन्दर से निकाल दिया है। दोनों संसारों (नश्वर जगत् व अविनाशी जगत्) को मैं एक ही जानता हूँ। मैं एक ही को ढूँढ़ता हूँ और उसी को जानता हूँ। वही एक मेरी दृष्टि में है और वही एक मेरे हृदय में है।

[फ़ारसी) —मौलाना रूम

होवल अव्वल होवल आख़िर होवल ज़ाहिर होवल बातिन,
बजुज़ याहू व यामनहू कसे दीगर नमी दानम्।

वही आदि है और वही अंत है। वही प्रकट है और वही गुप्त है। जो बाहर है और जो मेरे अंदर है, उसके अतिरिक्त और किसी को मैं नहीं जानता।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

१. मैं ब्रह्म हूँ। २. सही। ३. अशिष्टता का शब्द।

सिफ़िक्री दर रूहे हैरानी बोअद,
रूहे वाहिद रूहे इंसानी बोअद।

पशु में भेद का भाव और मनुष्य में एक का ही भाव रहता है।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

अस्रारए अजलरा न तू दानी व न मन्
ई हर्फ़े मुअम्मा न तू ख्वानी व न मन्
हस्त अज पसे पर्दह गुफ़्त गूये मनो तू
चूं पर्दह वेउफ़्तद न तू मानी व न मन्।

इस रचना का मूल न तो तू जानता है और न मैं जानता हूँ। इस उलझी हुई चीज को न तू पढ़ सकता है और न मैं। पर्दे के पीछे कौन है, यह मेरे-तेरे के बीच की बात है। पर्दा उठ जाने पर न तू है और न मैं हूँ।

[फ़ारसी] —अज्ञात

मन नमी गोयम् अनलहक़ यार मी गोयद बगो।

मैं नहीं कहता कि 'मै ब्रह्म हूँ', मेरा प्रियतम मुझे विवश करता है कि मैं ऐसा कहूँ।

[फ़ारसी] —अज्ञात

मन तू शुदम, तू मन शुदी,
मन तन शुदम, तू जाँ शुदी
ता कस न गोयद बाद अज ईं,
मन दीगरम तू दीगरी।

'मैं' 'तू' हो जाऊँ, 'तू' 'मैं' हो जाए। 'मैं' शरीर हो जाऊँ, 'तू' प्राण हो जाए, जिससे कोई यह न कह सके कि 'मैं' दूसरा हूँ और तू दूसरा है।

[फ़ारसी] —अज्ञात

अद्वैतं तानल्लो नमुदकम्मिञ्जप्पाल् पिरवि,
तॉट्टद्वेषर नाम, अभेदर नाम, अनहंतर् नाम।

अद्वैत सिद्धान्त ही हमारे लिए माँ का दूध है। जन्म से ही हम द्वेष, भेदबुद्धि और अहं से रहित हैं।

(मलयालम) —**वल्लतोल नारायण मेनन**
('आपस में मदद करो')

अद्वैत-भाव को अंतिम बात जानना, वह वाक् और मन से अतीत, उपलब्धि का विषय है।

—**रामकृष्ण परमहंस (श्री रामकृष्णलीला प्रसंग, प्रथम खण्ड, पृ० ४४३)**

तुम जगत् की आत्मा हो। तुम्हीं सूर्य, चन्द्र, तारा हो, तुम्हीं सर्वत्र चमक रहे हो। समस्त जगत् तुम्हीं हो। किससे घृणा करोगे और किससे झगड़ा करोगे? अतएव जान लो कि तुम वही हो, और इसी साँचे मे अपना जीवन ढालो। जो व्यक्ति इस तत्त्व को जानकर अपना सारा जीवन उसके अनुसार गठित करता है, वह फिर कभी अन्धकार में मारा-मारा नहीं फिरता।

—**विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० १३२)**

Lo! the trees of the wood are my next of kin.
And the rocks alive with what beats in me.

देखो! वन के वृक्ष मेरे कुटुम्बी हैं। और मुझमें जो धड़क रहा है, उसी से शिलाएँ सजीव हैं।

—**रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड १, पृ० २३)**

All ears, my ears, all eyes, my eyes;
All hands, my hands; all minds, my minds;
I swallowed up death, all difference I drank up;
How sweet and strange food I find!

सब कान, मेरे ही कान है। सब नेत्र मेरे ही नेत्र है। सब हाथ मेरे ही हाथ है और सब मन मेरे ही मन हैं। मैं मृत्यु को खा गया और सभी भेदों को पी गया। कितना मधुर और पौष्टिक भोजन मैंने किया!

—**रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड १, पृ० ११०)**

अधर

दे० 'ओंठ'।

अधर्म

दे० 'पाप' भी।

कामात् क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद् बाल्येन वा पुनः।
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च॥

लोग, लोभ, काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष अथवा बालोचित चपलता के कारण धर्म के विरुद्ध कार्य करते तथा श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान कर बैठते हैं।

—**वेदव्यास (महाभारत, द्रोण पर्व, १९५।१०-११)**

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नां जयति समूलस्तु विनश्यति॥

पुरुष अधर्म से कुछ समय तक बढ़ता है, फिर कल्याण का अनुभव करता है, शत्रुओं को जीत भी लेता है, किन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाता है।

—मनुस्मृति (४।१७४)

अधिकता

अधिकस्याधिकं फलम्।

अधिक का अधिक फल होता है।

—अज्ञात

बहु संन्यासीरे भजन नाशा।

बहुत संन्यासियों से भजन-नाश होगा।

—उड़िया लोकोक्ति

The best principles, if pushed to excess, degenerate into fatal vices.

सर्वोत्तम सिद्धान्तों की भी यदि अति कर दी जाए तो वे घातक बुराइयों में बदल जाते हैं।

—आर्कीबोल्ड एलिसन

अधिकार

को नाम मानिनां पंक्तौ प्रविष्टोऽन्ते निजां भुवम्।
असिक्तां स्वांगरक्ताक्तां व्याघ्रः कृत्तिमिवोज्झति॥

कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति अन्त में अपनी भूमि को बिना अपने रक्त से सींचे उसी प्रकार नहीं छोड़ता, जिस प्रकार व्याघ्र अपने चर्म को।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।११९२)

जाको जहँ अधिकार न होई। निकटहि वस्तु दूरि है सोई॥

—नंददास (नंददास ग्रंथावली, पृ० १६१)

अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महादुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।

— मैथिलीशरण गुप्त (जयद्रथ वध, पृ० ५)

योग्य वयस्क व्यक्ति की थाती
कोई उसे न देवे,
तो उसका अधिकार, उसे वह
बलपूर्वक ले लेवे।

—मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर, पृ० १०१)

संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १६६)

अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है!

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, १।१)

मानव-स्वत्व मिला नहीं करते। उन्हें लेना पड़ता है। बल चाहिए—बल।

—गणेशशंकर विद्यार्थी (साप्ताहिक प्रताप, २४ मई, १९१४)

मैं किसानों को भिखारी बनते नहीं देखना चाहता। दूसरों की मेहरबानी से जो कुछ मिल जाय, उसे लेकर जीने की इच्छा की अपेक्षा अपने हक़ के लिए मर-मिटना मैं ज़्यादा पसंद करता हूँ।

— सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३१४)

अधिकार हज़म करने के लिए जब तक पूरी क़ीमत न चुकाई जाए, तब तक यदि अधिकार मिल भी जाए तो उसे गँवा बैठेंगे।

— सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३९३)

अधिकार केवल एक है और वह है सेवा का अधिकार, कर्तव्य-पालन का अधिकार।

—सम्पूर्णानन्द (अधूरी क्रांति, पृ० १३५)

आज के दिन सबको अपने अधिकारों की धुन है; कर्तव्य-क्षेत्र नहीं, अधिकार-क्षेत्र बढ़ाने के पीछे सभी पागल हो रहे हैं।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, पृ० २७)

जो जीवन में दूसरों के प्रति न अपने अधिकार मानता है, न कर्तव्य, वह पशु है।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिएँ तो ऐसे जिएँ, पृ० १३)

दावा झूठा, क़ब्ज़ा सच्चा।

—हिंदी लोकोक्ति

पर हथ[1] विद्या पर हथ धन,
न वह विद्या न वह धन।

—हिंदी लोकोक्ति

१. हाथ।

यां के सफ़ेदो-स्याह में हमको दख़्ल जो है सो इतना ही
रात को रो-रो सुबह किया और दिन को
ज्यूं त्यूं शाम किया।

—मीर (पहला दीवान)

हमारे पूर्वजों ने अधिकारों के लिए संघर्ष किया, आज की पीढ़ी को कर्तव्य के लिए संघर्ष करना है।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० ६)

It is the privilege of posterity to set matters right between those antagonists who, by their rivalry for greatness, divided a whole age.

महानता के लिए अपनी प्रतिद्वन्द्विता के द्वारा सम्पूर्ण युग को विभक्त कर देने वाले प्रतिद्वन्द्वियों के बीच की बातों को ठीक कर देना भावी पीढ़ियों का ही विशेष अधिकार है।

—एडीसन

Power, like a desolating pestilence
Pollutes whatever it touches.

अधिकार, विनाशकारी प्लेग के सदृश, जिसे छूता है उसे ही भ्रष्ट कर देता है।

—शेली (क्वीन माब, सर्ग ३)

अधिकारी

न भृत्यपक्षपाती स्यात् प्रजापक्षं समाश्रयेत्।
प्रजाशतेन संद्विष्टं स त्यजेदधिकारिणम्॥

अधिकारी का पक्षपाती न होकर प्रजा का पक्षपाती होना ही राजा का कर्तव्य है। यदि सौ प्रजाजन किसी अधिकारी के विरुद्ध आवेदन करें तो उस अधिकारी को निकाल देना चाहिए।

—शुक्रनीति (१।३७७)

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं,
जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः
स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः॥

जिस प्रकार जीभ पर रखे हुए मधु या विष के सम्बंध में कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूं, यह संभव नहीं है। उसी प्रकार राजा के अर्थ-सम्बंधी कार्यों पर नियुक्त कर्मचारी उस अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह संभव नहीं है।

—चाणक्य (अर्थशास्त्र, २।१०।३६)

मत्स्या यथान्तः सलिले चरन्तो
ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ताः
ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः॥

जिस प्रकार जल में रहती हुई मछलियाँ जल पीती हुई नहीं ज्ञात होतीं, उसी प्रकार अर्थ कार्यों पर नियुक्त हुए राज कर्मचारी धनों का अपहरण करते हुए ज्ञात नहीं होते।

—चाणक्य (अर्थशास्त्र, २।१०।३७)

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम्।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः॥

आकाश में उड़ते पक्षियों की गति को जाना जा सकता है परंतु गुप्त रूप से कार्य करते हुए अर्थ-सबंधी कार्यों पर नियुक्त अधिकारियों की गति को जानना संभव नहीं है।

—चाणक्य (अर्थशास्त्र, २।१०।३८)

अनुयातानेकजनः
परपुरुषैरुह्यतेऽस्य निजदेहः।
अधिकारस्थः पुरुषः
शव इव न शृणोति वीक्षते कुमतिः॥

अधिकार में स्थित पुरुष शव के समान कुदृष्टि से देखता है, सुनता नहीं और अनेक लोगों द्वारा अनुगमन किये जाते हुए उसका शरीर दूसरे पुरुषों द्वारा ढोया जाता है।

—अज्ञात

सत्ता के सामने सयानापन बेकार है। मोम का हाकिम लोहे के चने चबवाता है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ६१)

हाकिम के आँखें नहीं होतीं, कान होते है।

—हिन्दी लोकोक्ति

हुक़्मे हाकिम मर्गे मफ़ाजात।

अधिकारी की आज्ञा आकस्मिक मृत्यु के समान होती है।

—फ़ारसी लोकोक्ति

सभी पद रपटीले होते हैं।

—हालैंड की लोकोक्ति

Five things are requisite to a good officer—ability, clean hands, despatch, patience and impartiality.

अच्छे अधिकारी में पांच बातें चाहिए—योग्यता, स्वच्छ हाथ, शीघ्रता, धैर्य और निष्पक्षता।

—विलियम पेन

अध्ययन

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं, निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।

हे भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का अध्ययन कर चुका हूँ। इतिहास-पुराण रूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, पित्र्यविद्या (श्राद्ध कल्प), राशि (गणित), दैवविद्या (उत्पात ज्ञान), निधिविद्या, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या—इन सब का, हे भगवन्! मैं अध्ययन कर चुका हूँ।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१।२)

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

शास्त्र अनेक हैं, विद्याएँ भी बहुत हैं, समय थोड़ा है, विघ्न भी बहुत हैं। अतएव जैसे हंस जल-मिश्रित दूध में से दूध को ले लेता है, उसी प्रकार जो कुछ सारभूत हो, उसी को ग्रहण कर लेना चाहिए।

—चाणक्यनीति

चत्तारि ए अवायणिज्जा
अविणीए, विगरपडिवद्धे, अविओसितपाहुडे, माई।

चार व्यक्ति शास्त्राध्ययन के अयोग्य हैं—अविनीत, चटोरा, झगड़ालू और धूर्त।

[प्राकृत] —स्थानांग (४।३)

वेया अहीया न हवंति ताणं

अध्ययन कर लेने मात्र से वेद रक्षा नहीं कर सकते।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१४।१२)

सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि सन्ति सच्छन्दिनो जना।

सीखने योग्य बातों को सीखें। गुणग्राही लोग हैं।

—जातक (बाहिय जातक)

[पालि]

वेद पुरान पढ़त अस पांडे, खर चंदन जस भारा।
राम नाम तत समझत नांहीं, अंति पड़ै मुखि छारा॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १००)

वेद पढ्या का यहु फल पांडे सब घटि देखै रामा।
जन्म मरन थै तौ तू छूटै, सुफल होंहि सब कामा॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०१)

लिखि लिखि सिखि सिखि का भयो, पढ़ि गुनि गाय बजाय।
धरनी मूरति मोहिनी जौं लगि हिये न समाय।

—धरनीदास (धरनीदास जी की बानी, पृ० ४४)

पढ़ै बहुत पँ नेह न जाना।
सो गुलाम सूखा खरिहाना॥

—जायसी (मसलानामा)

सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है।

—दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

पढ़ने की बीमारी वाले मैंने यहाँ और दूसरी जगह बहुत देखे है। यह रोग तुम्हें भी सता रहा है। इस रोग से मुक्त होने के लिए भ्रमण करो, ईश्वर की लीला देखो, कुदरत की किताब पढ़ो, पेड़ों की भाषा समझो, आकाश में होने वाला गान सुनो, वहाँ रोज रात को होने वाला नाटक देखो। दिन में कातो, थकावट लगे तब सोओ, बढ़ई का काम हो सके तो करो, मोची का काम करो।

—महात्मा गांधी (वालजी गो० देसाई को पत्र, १६-१०-१९३२)

जिन विषयों के गंभीर अध्ययन से मनुष्य का मस्तिष्क परिष्कृत और हृदय सुसंस्कृत होता है, उसमें श्रम लगता है और उसके लिए बाजार आसानी से नहीं मिलता।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १६८)

जब साहित्य पढ़ो तब पहले पढ़ो ग्रन्थ प्राचीन।
पढ़ना हो विज्ञान अगर तो पोथी पढ़ो नवीन॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (नये सुभाषित, पृ० ३८)

ऐ दिल तलबे कमाल दर मदरसा चन्द
तकमीले उसूलो हिकमतो हिन्दसा चन्द।

हे हृदय ! तू कब तक इस संसारी ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहेगा ? सिद्धान्तों, दर्शनों व अक्षरों को समझने मे कब तक लगा रहेगा ?

[फ़ारसी] —जामी

पीर शौ बियामोज।

वृद्धावस्था तक पढ़ते ही जाओ।

[फ़ारसी] —अज्ञात

सभी अच्छी पुस्तकों का पढ़ना विगत शताब्दियों के सर्वोत्तम मनुष्यों से वार्तालाप करने के समान है।

—देकार्ते

अध्ययन का अर्थ है उधार लेना। अपने अध्ययन किए हुए मे से नयी रचना करने का अर्थ है ऋण को चुका देना।

—जार्ज क्रिस्टोफ़ लिख़्तेनवर्ग

After reading a good book you always rise with an elevation of spirit.

अच्छी पुस्तक पढ़ने के बाद आप सदैव मनोवृत्ति के उन्नयन के साथ उठते है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, ३० अगस्त १९५८)

Preserve proportion in your reeding. Keep your view of men and things extensive.

अपने अध्ययन में समानुपात को बनाए रखिए। मानवों और वस्तुओं के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यापक रखिए।

—टामस आर्नोल्ड (अपने विद्यार्थियों के बीच भाषण)

Histories make men wise; poets witty; the mathematics subtle; natural philosophy deep; moral grave; logic and rhetoric able to contend.

इतिहास मनुष्यों को बुद्धिमान बनाते हैं। कवि वाग्विदग्ध बनाते हैं। गणित सूक्ष्म बनाती है। विज्ञान गहन बनाता है। नीतिशास्त्र गम्भीर बनाता है। तर्कशास्त्र और वक्तृत्वकला तर्क-निपुण बनाते है।

—बेकन (एसेज, आफ़ स्टडीज)

Studies serve for delight, for ornament, and for ability.

अध्ययन आनन्द, अलंकरण तथा योग्यता के लिए उपयोगी है।

—बेकन (एसेज, आफ़ स्टडीज)

Read not to contradict and confute; nor to believe and take for granted; nor to find talk and discourse: but to weigh and consider.

खंडन करने और मिथ्या सिद्ध करने के लिए अध्ययन मत करो। विश्वास करने और यों ही मान लेने के लिए भी अध्ययन मत करो। भाषण और वार्ता करने के लिए भी मत करो, अपितु मूल्यांकन करने और विचार करने के लिए अध्ययन करो।

—बेकन (एसेज, आफ़स्टडीज)

Reading maketh a full man; conference a ready man and writing an exact man.

अध्ययन से ज्ञानपूर्ण मनुष्य का निर्माण होता है, सम्मेलन से दक्ष मनुष्य का निर्माण होता है और लेखन से सटीक मनुष्य का निर्माण होता है।

—बेकन (एसेज, आफ़ स्टडीज)

To spend too much time in studies is sloth.

अध्ययन में अत्यधिक समय लगाना काहिली है।

—बेकन (एसेज, आफ़ स्टडीज)

I would live to study and not study to live.

मैं अध्ययन करने के लिए जीवित रहूँगा लेकिन जीवित रहने के लिए अध्ययन नहीं करूँगा।

—बेकन (मेमोरियल आफ़ ऐक्सेस)

Other things may be seized by might, or purchased with money; but knowledge is to be gained only by study, and study to be prosecuted only in retirement.

दूसरी वस्तुएँ बल से छीनी जा सकती है अथवा धन से ख़रीदी जा सकती है, किन्तु ज्ञान केवल अध्ययन से प्राप्त हो सकता है और अध्ययन केवल एकान्त में किया जा सकता है।

—डॉ० जानसन

What is reading but silent conversation?

पढ़ना, मौन वार्तालाप के अतिरिक्त क्या है ?

—वाल्टर सेवेजे लैडोर (एरिस्टोटिल्स ऐंड कैलिस्थीन्स इमेजिनरी कनवर्सेशन्स)

As there is a partiality to opinions, which is apt to mislead the understanding so there is also a partiality to studies, which is prejudicial to knowledge.

जैसे मतों में पक्षपात होते हैं, जो बुद्धि को भ्रम में डालते हैं, वैसे ही अध्ययन में भी पक्षपात होता है जो ज्ञान के प्रतिकूल है।

—जान लाक

Choose an author as you choose a friend.

जैसे आप मित्र का चयन करते हैं, उसी प्रकार लेखक का भी चयन करें।

—वेंटवर्थ डिल्लन

I would never read a book if it were possible to talk half an hour with the man who wrote it.

यदि किसी पुस्तक के लेखक से आधे घण्टे वार्तालाप करना संभव हो तो मैं वह पुस्तक कभी नहीं पढ़ूंगा।

—विल्सन

अध्यवसाय

दे० 'उद्यम', 'परिश्रम', 'प्रयत्न'।

अध्यात्म

दे० 'आध्यात्मिकता'।

अध्यापक

दे० 'शिक्षक'।

अनन्त

शतं शतसहस्रं तु सर्वमक्षय्यवाचकम्।

'शत' और 'शतसहस्र' शब्द—ये सभी अनन्त संख्या के वाचक हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व, २१६।८)

अनशन

अनशन भी राक्षसी हो सकता है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, दिल्ली की प्रार्थनासभा, ५ जून १९४७)

अनाक्रमणीय

स्त्री अनाक्रमणीय कब होती है? जब वह माता बन जाती है। मनुष्य अनाक्रमणीय कब बनता है? जब वह विभूति बन जाता है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० ३५३)

अनाथ

जो जन हों असहाय अनाथ,
रखो उनके सिर पर हाथ।
शिक्षित बनें अकिंचन बाल,
निकलें वे गुदड़ी के लाल।

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू)

अनाथालय खोलने की अपेक्षा अपने समाज में कोई अनाथ ही न बन पाए, ऐसा प्रयत्न करना कितना अधिक अच्छा होगा!

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड ६, पृ० ७)

तेरह-चौदह वर्ष के अनाथ बच्चों का चेहरा और मन का भाव लगभग बिना मालिक के राह के कुत्ते जैसा हो जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (छुट्टी)

अनासक्ति

अनागतं यन्न ममेति विद्या-
दतिक्रान्तं यन्न ममेति विद्यात्।
दिष्टं बलीय इति मन्यमाना-
स्ते पण्डितास्तत्सतां स्थानमाहुः॥

जो वस्तु भविष्य में मिलने वाली है, उसे यही माने कि 'वह मेरी नहीं है' तथा जो मिलकर नष्ट हो चुकी हो, उसके विषय में भी यही भाव रखे कि 'वह मेरी नहीं थी'। जो ऐसा मानते हैं कि 'प्रारब्ध ही सबसे प्रबल है', वे ही विद्वान् है और उन्हें सत्पुरुषों का आश्रय कहा गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १०४।२२)

जीवियं नाभिकंखिज्जा मरणं नो वि पत्थए।
दुहओ वि न सज्जेज्जा जीविए मरणे तहा॥

साधक न जीने की आकांक्षा करे और न मरने की कामना करे। वह जीवन और मरण दोनों में ही किसी तरह की आसक्ति न रखे।

[प्राकृत] —आचारांग (१।८।८।४)

से हु चक्खू मणुस्साणं, जे कंखाए य अन्तए।

जिसने आसक्ति का अन्त कर दिया है वह मनुष्यों के लिए पथ-प्रदर्शक चक्षु है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१५।१४)

बगैर अनासक्ति के न मनुष्य सत्य का पालन कर सकता है, न अहिंसा का।

—महात्मा गांधी (एक पत्र, ३१-१०-१९३२)

अनासक्ति की एक परीक्षा है कि मनुष्य रामनाम लेकर सोने के समय एक क्षण में सो सकता है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ३२६)

काम करने पर भी उसका बोझ न लगे, यह अनासक्ति का रूप है।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र प्रेमा बहन के नाम, २८)

जगत् मात्र की सेवा करने की भावना पैदा होने के कारण अनासक्ति सहज ही आ जाती है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, १६०)

सबकी सेवा करनी हो, तो वह अनासक्तिपूर्वक ही हो सकती है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, १८१)

जो मनुष्य यह मेरा और वह तेरा मानता है, वह अनासक्त नहीं हो सकता।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ४२५)

आया जहाँ से सैर करने, हे मुसाफ़िर! तू यहाँ।
था सैर करके लौट जाना, युक्त तुझको फिर वहाँ॥
तू सैर करना भूल कर, निज घर बना कर टिक गया।
कर याद अपने देश की, परदेश में क्यों रुक गया॥

—भोले बाबा (वेदान्त छन्दावली, भाग २, पृ० १४)

राजा किसका पाहुना, जोगी किसका मीत?

राजा किसका अतिथि होता है? योगी किसका मित्र होता है?

—हिंदी लोकोक्ति

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ।

—अकबर इलाहाबादी

अनित्यता

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत् तत्र न पण्डितः॥

यौवन, रूप, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य और प्रियजनों का समागम ये सब अनित्य हैं। विवेकशील पुरुषों को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, २०५।४)

इतो मृत्युरितो व्याधिरितो विपदितो जरा।
चतुरंगा तुल्यबला हन्ति लोकमनित्यता॥

इधर मृत्यु है, व्याधियाँ हैं, विपत्तियाँ हैं, बुढ़ापा है। समान बल वाले इन चार अंगों के साथ अनित्यता लोक को प्रतिक्षण नष्ट करती है।

—अज्ञात

अनित्यते जगन्निन्द्ये वन्दनीयासि संप्रति।
या करोषि प्रसंगेन दुःखानामप्यनित्यताम्॥

संसार के द्वारा निन्द्य अरी अनित्यता, तू अब वन्दनीय हो गई है क्योंकि अपने प्रसंग से तू दुःखों को भी अनित्य (अस्थायी) बना देती है।

—अज्ञात

अनिमंत्रित

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय बिनु बोलेहु न सँदेहा।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्यानु न होई॥

—तुलसी (रामचरित मानस, १।६२।३)

अनिर्वचनीय

औरै कछु चितवनि चलनि, औरै मृदु मुसकानि।
औरै कछु सुख देति है, सकै न बैन बखानि॥

—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३७३)

अकथनीय मन बुद्धि पर कहै कवन विधि वैन ।
बनादास जानै कोऊ, सखी-मखी को सैन ॥

—बनादास

अनुकरण

दे० 'अंधानुकरण' भी ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उस-उसही के अनुसार व्यवहार करते है, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसके अनुसार व्यवहार करते हैं ।

—महाभारत (भीष्म पर्व, २७।२१
अथवा गीता, ३।२१)

महाजनो येन गतः स पन्थाः ।
यद् यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ।

प्रधान व्यक्ति जैसा-जैसा आचरण करता है, वैसा ही वैसा लोग अनुकरण करते हैं ।

—भागवत (५।४।१५)

किसी साहित्य में केवल बाहर की भद्दी नक़ल उसकी अपनी उन्नति या प्रगति नहीं कही जा सकती । बाहर से सामग्री आए, खू़ब आए, पर वह कूड़ा-करकट के रूप में न इकट्ठी की जाए । उसकी कड़ी परीक्षा हो, उस पर व्यापक दृष्टि से विवेचन किया जाय, जिससे हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे ।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का
इतिहास, पृ० ५५०)

परानुकरण से तो स्वप्रतिभा का लोप ही होता है ।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन,
खंड १, पृ० १४३)

चमगीदड़ों के घर मेहमान आए, हम भी लटकें तुम भी लटको ।

—हिंदी लोकोक्ति

मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है और जो अग्रतम है वह समूह का नेतृत्व करता है ।

—शिलर

दूसरों की नक़ल न कीजिए, अपने को पहचानिए और जो आप हैं वही बने रहिए ।

—डेल कार्नेगी (हाऊ टु स्टाप वरीयिंग
एंड स्टार्ट लिविंग, पृ० १२६)

To assimilate an ideal and make our own persons a demonstration of its power—this is not imitation.

किसी आदर्श को आत्मसात करना और अपने ही व्यक्तियों को उसकी शक्ति का प्रदर्शक बनाना—यह अनुकरण नहीं है ।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, खंड २,
दि० वेब आफ़ इण्डियन लाइफ़, पृ० ८२)

No man was ever great by imitation.
कोई आदमी कभी अनुकरण से महान नहीं बना ।

—डॉ० जानसन (रेसिलास, अध्याय १०)

Insist on yourself; never imitate.
स्वयं पर आग्रह करो; अनुकरण मत करो ।

—एमर्सन

अनुकरण और शिक्षा

यूरोप का अनुकरण करने से काम नहीं चलेगा, किन्तु यूरोप से हमें शिक्षा लेनी पड़ेगी । शिक्षा लेना और अनुकरण करना एक ही बात नहीं है । वस्तुतः अच्छी तरह शिक्षा लेने से ही अनुकरण करने के रोग से छुटकारा मिलता है ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुग्रह

दे० 'कृपा' ।

अनुचित

विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ।

विष-वृक्ष को भी स्वयं बढ़ाकर अपने ही हाथ से काटना ठीक नहीं ।

—कालिदास (कुमारसंभव)

अनुपम

दे० 'अद्वितीय'।

अनुभव

अनुभवे च को विकल्पः।

अनुभव हो जाने पर क्या शंका हो सकती है।

—वाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, चन्द्रापीड द्वारा महाश्वेता को आश्वासन का वर्णन, पृ० ५०८)

अनुभूतं न यद् येन रूपं नावैति तस्य सः।
न स्वतंत्रो व्यथां वेत्ति परतंत्रस्य देहिनः॥

जिसने जिसका अनुभव नहीं किया, वह उसके विषय में नहीं जानता। स्वतंत्र व्यक्ति परतंत्र शरीरधारी की व्यथा नहीं जानता।

—रामचन्द्र (नलविलास, ६।७)

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोई पूछै बात।
सो गूंगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद॥

—कबीर

दूध का जला छाछ को फूंक-फूंक कर पीता है।

—हिंदी लोकोक्ति

कमसिन हो अभी तजर्बा दुनिया का नही है।

—अकबर इलाहाबादी

कह दिया मैंने हुआ तजर्बा[1] मुझको तो यही
तजर्बा हो नहीं चुकता है कि मर जाते हैं।

—अकबर इलाहाबादी

खुश बुवद गर महके तजरबा आयद बम्यॉ
तासिया रू शवद हर कि दरोग़श बाशद।

अनुभव की कसौटी पर प्रत्येक कार्य को कसा जाना चाहिए जिससे अच्छा हो कि जो दोष हो वह काले मुख वाला हो जाए।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

शहनि हुन्द शिकार पॉज़ कव ज़ाने,
हॉठ कव ज़ाने पोतरय दोद।

शेरनी का शिकार बाज़ को क्या मालूम! बाँझ को पुत्र के प्रति वात्सल्य का क्या ज्ञान!

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख, १५३)

१. अनुभव।

जीवन में उम्र के साथ-साथ जो वस्तु मिलती है, उसका नाम है अनुभव। केवल पुस्तकें पढ़कर इसे नहीं पाया जा सकता। और न पाने तक इसका मूल्य नहीं मालूम होता। लेकिन इस बात को भी याद रखना चाहिए कि अनुभव, दूरदर्शिता आदि केवल शक्ति प्रदान ही नही करते, शक्ति का हरण भी करते है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८२)

जो अनुभव के स्रोत का जल पीने की उपेक्षा करता है, वह सम्भवतः अज्ञान रूपी मरुस्थल मे प्यासा ही मर जाएगा।

—लिङ् पो

तुम अनुभव का निर्माण नहीं कर सकते। तुम्हें अनुभव को भोगना ही पड़ेगा।

—काम् (नोट बुक्स, १९३५-१९४२)

Experience must come out in expression.

अनुभव, अभिव्यक्ति में प्रकट होना चाहिए।

—स्वामी शिवानंद

Experience and punishment teach lesson which other means do not convey.

अनुभव और दंड ऐसी सीख देते हैं जो अन्य उपायों से सम्प्रेषित नही होती।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, २६ जनवरी, १९५७)

All experience is an arch to build upon.

समस्त अनुभव एक मेहराब है जिस पर निर्माण कर सकते है।

—एडम्स हेनरी ब्रूक्स

Doubtless the world is quite right in a million ways; but you have to be picked about a little to convince you of the fact.

निस्सन्देह संसार लाखों प्रकार से बिलकुल ठीक है, परन्तु तुम्हें इस तथ्य का निश्चय हो जाने के लिए कुछ ठोकरें लगनी आवश्यक है।

—राबर्ट लुइ स्टीवेंसन

You know more of a road by having travelled it than by all the conjectures and discriptions in the world.

संसार में संभव सभी अनुमानों और वर्णनों से किसी सड़क के प्राप्त होने वाले ज्ञान की तुलना में तुम्हें उस पर यात्रा करने से उस सड़क का अधिक ज्ञान प्राप्त होगा।

—हैज़लिट (लिटरेरी रिमेन्स)

Everything happens to everybody sooner or later if there is time enough.

यदि पर्याप्त समय हो तो आगे-पीछे हर बात हर एक के साथ घटित होती है।

—जार्ज बर्नार्ड शॉ (बैक टु मेथुसेला)

Men are wise in proportion, not to their experience, but to their capacity for experience.

मनुष्य अपने अनुभव के अनुपात मे बुद्धिमान नहीं होते हैं, अपितु अनुभव के लिए अपनी क्षमता के अनुपात में।

—जार्ज बर्नार्ड शॉ (मैन एंड सुपरमैन)

Youth thinks intelligence a good substitute for experience, and his elders thinks experience a substitute for intelligence.

युवक समझता है कि बुद्धि अनुभव का एक अच्छा अनुकल्प है और उसके वयोवृद्ध समझते हैं कि अनुभव, बुद्धि का अनुकल्प है।

—लाइमैन लायड ब्रायसन

Experience the name men give to their mistakes.

अनुभव अर्थात् मनुष्यों द्वारा अपनी गल्तियों को दिया जाने वाला नाम।

—आस्कर वाइल्ड (वेरा, अंक २)

Experience is not what happens to you, it is what you do with what happens to you.

अनुभव वह नहीं है जो आपके साथ घटित होता है, अपितु जो आपके साथ घटित होता है उसका आप क्या करते है, वह अनुभव है।

—एल्डस हक्सले

It is far better to borrow experience than to buy it.

अनुभव को खरीदने की तुलना में उसे दूसरों से माँग लेना अधिक अच्छा है।

—चार्ल्स काल्टन (लैकोन)

Experience is the child of Thought, and Thought is the child of Action. We cannot learn men from books.

अनुभव विचार की सन्तान है और विचार कर्म की। हम मनुष्यों को पुस्तकों से नहीं जान सकते।

—डिज़रायली (विविअन ग्रे, ५।१)

अनुभूति

बाँझ कि जान प्रसव के पीरा।

—तुलसीदास (रामचरित मानस, १।९६।२)

जीवन की गहराई की अनुभूति के कुछ क्षण ही होते हैं, वर्ष नहीं। परन्तु यह क्षण निरन्तरता से रहित होने के कारण कम उपयोगी नहीं कहे जा सकते।

— महादेवी वर्मा (दीपशिखा,
चिंतन के कुछ क्षण, पृ० १५)

बात यह है कि अनुभूतियाँ
बातें नहीं हैं
और असल में विचार भी
शब्दों के फन्दे में आते नहीं हैं।

— अज्ञेय (सागर-मुद्रा, पृ० ५१)

फुरु इके या
कावाज़ु तोबिकोमु
मिज़ु नो ओतो।

ताल पुराना, मेंढक कूदा, पानी की आवाज़।

[जापानी] —मात्सुओ बाशो

अनुभूति ही हमारी एकमात्र शिक्षक है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ५७)

प्रत्यक्ष अनुभूति ही यथार्थ ज्ञान या यथार्थ धर्म है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ७१)

अनुमान

वह मेरी चीने-जबीं से ग़मे-पिन्हाँ समझा
राज़े-मकतूब ब-बेरब्ति-ए-उनवाँ समझा।

वह पीड़ा से संकुचित माथे की त्योरी मात्र से मेरी हृदय-पीड़ा को उसी प्रकार जान गया जैसे अव्यवस्थित शीर्षक से पत्र का रहस्य जान लिया जाए।

—ग़ालिब (दीवान, ३४।१)

सुव्वि अंदरे तिळियदे रागद मट्टु ।
आलाप से ही राग का पता लग जाता है ।

—कन्नड लोकोक्ति

अनुराग

दे० 'प्रेम' ।

अनुरूपता

सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति ।
बड़ी नदी समुद्र को छोड़कर और कहाँ जाती है ।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ३।१६ के पश्चात्)

रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ।
रत्न का सोने से उचित संयोग हो ।

—कालिदास (रघुवंश, ६।७६)

जस दूलहु तसि बनी बराता ।

—तुलसीदास (रामचरित मानस, १।६४।१)

अनुवाद

उत्तम से भी उत्तम अनुवाद मूल की बराबरी नही कर सकता और निकृष्ट से निकृष्ट अनुवाद में भी मूल का परिचय देने की उपयोगिता पायी जा सकती है ।

— भोलानाथ शर्मा ('फ़ाउस्ट' के हिंदी अनुवाद की भूमिका)

अनुवादक वचक होते हैं ।

—इटली की लोकोक्ति

अनुशासन

दे० 'आत्मानुशासन' भी ।

अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणसासिउं ।
जो अपने पर अनुशासन नही रख सकता, वह दूसरों पर अनुशासन कैसे कर सकता है ?

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१।२।१७)

आत्मसंयम, अनुशासन और बलिदान के बिना राहत या मुक्ति की आशा नहीं की जा सकती। अनुशासनहीन बलिदान से भी काम नही चलेगा ।

—महात्मा गांधी (यंग इण्डिया, २०-१०-१६२०)

सिपाही यह कहे कि हमें लड़ना तो है, मगर वे हथियार नही रखने हैं जो सेनापति बतलाता है, तो वह लड़ाई नही चल सकती ।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४५६)

मनुष्य स्वयं पर कठोर से कठोर अनुशासन के बंधन बहुत आनन्द से उस समय स्वीकार कर लेता है, जब उसको यह अनुभव होता है कि उसके द्वारा कोई महान् कार्य संपादित होने जा रहा है ।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खण्ड ६, पृ० १६)

A stern discipline pervades all nature, which is a little cruel that it may be very kind.
सम्पूर्ण प्रकृति में कठोर अनुशासन व्याप्त है। प्रकृति थोड़ी-सी क्रूर है ताकि वह बहुत दयालु हो सके ।

—एडमंड स्पेंसर

Discipline is the refining fire by which talent becomes ability.
अनुशासन परिष्कार की अग्नि है जिससे प्रतिभा योग्यता बन जाती है ।

—अज्ञात

Discipline is the life of a nation.
अनुशासन राष्ट्र का प्राण है ।

— अज्ञात

अनुसंधान

सत्य की खोज के लिए अनुसन्धान के अविश्रान्त स्रोत का प्रवाहित रहना, गवेषणा के आलोक का प्रदीप्त रहना और जहाँ तक हो सके, उसे ले जाए जाना नितान्त आवश्यक है ।

—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित, भूमिका)

The investigator should have a robust faith, yet not belief.
अन्वेषक में दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए, विश्वास नही ।

—क्लाड बर्नर्ड

अन्न

अन्नं वाव बलाद् भूयः।

अन्न ही बल की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।९।१)

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।

मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही अन्न उसके देवता भी ग्रहण करते है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०३।३०)

यादृशमन्नमश्नाति जायते तादृशी प्रजा।
दीपो भक्षयति ध्वान्त कज्जलं च प्रसूयते॥

जैसा अन्न खाया जाता है, वैसी ही प्रजा होती है। दीपक अन्धेरे को खाता है और काजल को उत्पन्न करता है।

—चाणक्यनीति

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठते।
यो हि यस्यान्नमश्नाति स तस्याश्नाति किल्विषम्॥

मनुष्यों का पाप अन्न में रहता है। जो जिसका अन्न खाता है, वह उसका पाप भी खाता है।

—अज्ञात

अण्णें धरिउ भुवणु सयरायरु। अण्णें धम्मु कम्मु पुरिसायरु॥
अण्णें रिद्धि-विद्धि वंसुब्भउ। अण्णें पेम्मु विलासु स-विब्भमु॥
अण्णें गेउ वेउ सिद्धक्खरु। अण्णें जाणु झाणु परमक्खरु॥

अन्न से ही धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ हैं। अन्न से ही ऋद्धि, वृद्धि और वंश की समुत्पत्ति होती है। अन्न से ही हाव-भाव सहित प्रेम और विलास उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही गेय, वाद्य और सिद्धाक्षर होते है। अन्न से ही ज्ञान, ध्यान और परमाक्षर पद प्राप्त होता है।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ३५।१)

आदमी अनाज का कीड़ा है।

—हिंदी लोकोक्ति

अन्नदान

क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः।

भूखे लोगों को अन्न तथा पेय दो।

—ऋग्वेद (१।१०४।७)

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः॥

विद्वान् होने पर भी जो आजीविका के साधन से रहित है और दुर्बल तथा दुखी है, ऐसे व्यक्ति की भूख मिटाने वाले के समान (पुण्यात्मा) पुरुष नहीं हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ५९।११)

येषां स्वादूनि भोज्यानि समवेक्ष्यन्ति बालकाः।
नाश्नन्ति विधिवत् तानि किं नु पापतरं ततः॥

जिनके स्वादिष्ट भोजन की ओर बालक लालायित दृष्टि से देखते रहें और विधिवत् खा न पाएं, तो उन्हें इससे बड़ा पाप क्या होगा ?

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ६१।२७)

अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशांसि च।
कीर्तिश्च वर्धते शश्वत् त्रिषु लोकेषु पार्थिव !

राजन् ! अन्नदान करने वाले मनुष्य के बल, ओज, यश और कीर्ति तीनों लोकों में सदा बढ़ते रहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ६३।३५)

अन्याय

स्थाल्येव चेद् भक्तमश्नाति ततः कुतो भोक्तुर्भुक्तिः।

थाली ही यदि भोजन को खा जाए तो खाने वाला क्या खाए ?

—नीतिवाक्यामृत (१०।१०६)

सहनशील होना अच्छी बात है। परन्तु अन्याय का विरोध करना उससे भी उत्तम है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १५०)

सम्मान एक बात है और अन्याय दूसरी बात है। सम्मान दिखाने पर ही क्या अन्याय भी सहन करना होगा ?

—विमलमित्र (परस्त्री, पृ० २५)

अन्याय करने वालों का अपराध जितना है, चुपचाप उसे बरदाश्त करने वालों का अपराध क्या उससे कम है ?

—विमलमित्र (साहब बीबी गुलाम, पृ० ६६)

अभाव में, ग़रीबी में, दुःख में, परेशानी में आदमी जो कुछ करता है, उससे उसका मूल्यांकन नहीं किया जाता, यह उसके प्रति अन्याय है।

—विमलमित्र (गवाह नं० ३)

I am a man,
More sinned against than sinning.

मैं ऐसा मनुष्य हूँ जिसने जितना अन्याय किया है, उससे अधिक उसके साथ अन्याय किया गया है।

—शेक्सपियर (किंग लियर, ३।२)

अन्योन्याश्रय

त्वया सा शोभते तन्वी तया त्वमपि शोभसे।
रजन्या शोभते चन्द्रश्चन्द्रेणापि निशीथिनी॥

वह सुन्दरी तुमसे सुशोभित होती है और तुम उससे सुशोभित होते हो। रात्रि से चन्द्रमा की और चन्द्रमा से रात्रि की शोभा है।

—अज्ञात (साहित्यदर्पण में उद्धृत)

अरण्यं रक्षितं सिंहात् तस्मात् सिंहः सुरक्षितः।
इत्यन्योन्यस्योपकारे मित्रत्वं तन्निबन्धनम्॥

अरण्य सिंह से रक्षित है तथा वन से सिंह सुरक्षित है। इस प्रकार एक-दूसरे के उपकार में उनका मित्रत्व है।

—अज्ञात

अपकार

योऽयं परापकरणाय सृजत्युपायं,
तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः।
धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्नि-
र्भूत्वाम्बुदः स शमयेत्सलिलैस्तमेव॥

दूसरे के अपकार हेतु, जो जिस उपाय की सृष्टि करता है, उसी उपाय से उसका विनाश होता है। अग्नि नयन को अन्धा करने वाले जिस धूम को उत्पन्न करता है, वही बादल होकर, सलिल द्वारा उसी का शमन करता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।१२५)

अपकीर्ति

दे० 'अपयश'।

अपथ्य

संतापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः।

अपथ्य भोजन करने वाले किस मनुष्य को रोग-पीड़ित नहीं करते?

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।११७)

अपना-पराया

परैः परिभवे प्राप्ते वयं पंचोत्तरं शतम्।
परस्परविरोधे तु वयं पंच शतं तु ते॥

परस्पर विरोध में हम[1], पाँच हैं और वे[2] सौ है किन्तु दूसरों से संघर्ष होने पर हम एक सौ पाँच है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, २४३।३ क)

क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा।
स्वपराभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम्॥

कौन अपना है और कौन पराया है—देहधारियों को ज्ञान के बिना यह अपने और पराये का दुराग्रह होता है।

—भागवत (७।२।६०)

अयं बंधुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु विगतावरणैव धीः॥

यह भाई है, यह नहीं, ऐसी गणना तुच्छ बुद्धि के व्यक्ति करते है। उदार-चरित व्यक्तियों की बुद्धि ऐसे अज्ञान के आवरण से रहित होती है।

—योगवासिष्ठ, (५।१८।६१)

अफलस्यापि वृक्षस्य छाया भवति शीतला।
निर्गुणोऽपि वरं बन्धुर् यः परः पर एव सः॥

फलरहित वृक्ष की भी छाया शीतल होती है; भाई गुण-हीन भी अच्छा होता है, जो पराया है, वह तो पराया ही है।

—अज्ञात

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।

—तुलसीदास (दोहावली, ५३४)

सोई अपनो आपने, रहै निरन्तर साथ।
होत परायो आपनो, गये पराये हाथ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

एक बिरानो ही भलो, जिहि सुख होत सरीर।
जैसें बन की औषधी, हरत रोग की पीर॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

अनकर बेटी आन सन, अपन बेटी प्रान सन।

दूसरे की पुत्री दूसरे की-सी लगती है किन्तु अपनी प्राण के समान।

—हिन्दी लोकोक्ति

---

१. पांडव, २. कौरव।

जिगर जिगर है, दिगर दिगर है।
अपना, अपना ही होता है और पराया, पराया ही।

हिन्दी लोकोक्ति

वही उसका है जो देता है किसी को कोई
अपनी वह चीज़ नहीं जोकि पराई न हुई।

—वर्क़ (मिर्ज़ा मुहम्मद रज़ा ख़ाँ)

अपना जब पराया हो जाता है तब उससे बिल्कुल नाता तोड़ देने के अतिरिक्त कोई गति नही रहती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६१)

अपभ्रंश

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः।
शास्त्रेषु संस्कृतादन्यद् अपभ्रंशतयोदितम् ॥

काव्य में आभीरादि की वाणी को अपभ्रंश कहा गया है तथा शास्त्रों में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य सब भाषाएँ अपभ्रंश कही गयी हैं।

—अज्ञात

अपमान

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥

हे भारत! मनुष्य को चाहिए कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे, क्योंकि ये सभी बड़े तेजस्वी होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।५९)

त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत।

हे भारत! यदि किसी गुरुजन को 'तू' कह दिया जाय तो यह उसका वध ही हो जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, कर्ण पर्व, ६९।८३)

सन्निकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम्।
गांगं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥

बहुत पास रहना मनुष्यों के अनादर का कारण होता है। गंगा-तट-वासी गंगा-जल को छोड़कर दूसरे जल के पास अपनी शुद्धि के लिए जाते है।

—भागवत (१०।८४।३१)

मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥

जो मनुष्य शत्रु द्वारा अपमान से प्राप्त दुःख से दग्ध होकर गर्हित जीवन बिताता है, उस जननी-क्लेशकारी का तो जन्म न होना ही ठीक है।

—माघ (शिशुपालवध, २।४५)

बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्।

बलवान् होकर भी यदि निस्तेज हो तो वह सब लोगों के अनादर का पात्र बन जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।१७३)

जद्यपि जग दारुन दुख नाना।
सब तें कठिन जाति अवमाना ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६३।४)

हमारी दी हुई विभूति से हमीं को अपमानित किया जाय, ऐसा नहीं हो सकता।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

है मरण से भी बुरा अपमान होना लोक में।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, ४४)

कुत्ता पाले वह कुत्ता, सास घर जमाई कुत्ता, बहन घर भाई कुत्ता।

—हिंदी लोकोक्ति

बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।

—ग़ालिब (दीवान, २०४।३)

चमन[1] में आह क्या रहना
जो हो बेआबरू[2] रहना।

—इक़बाल

अपमान अपराध में होता है, दण्ड में नहीं।

—कोंटे विट्टोरिओ अलफ़ियरी

अपमानों का या तो ठीक से बदला लेना चाहिए या उन्हें ठीक से सहन करना चाहिए।

—स्पेन की लोकोक्ति

The dust receives insult and in return offers her flowers.

---

१. उपवन। २. सम्मान रहित।

मिट्टी स्वयं अपमान पाती है और बदले में अपने पुष्प अर्पित करती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

An injury is much sooner forgotten than an insult.

अपमान की अपेक्षा चोट अधिक शीघ्र विस्मृत होती है।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र, ९।१०।१७४६)

No one can disgrace us but ourselves.

हमें केवल हम स्वयं कलंकित कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

—जोशिया गिलबर्ट हालैंड

अपयश

संभावितस्य चापकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरण से भी अधिक बुरी होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।३४ अथवा गीता, २।३४)

वरमप्राप्तिर्यशसो न पुनर्दुर्यशः।

यश की प्राप्ति भले ही न हो, किन्तु अपयश होना उचित नहीं।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा)

वरं हि मृत्युर्नाकीर्तिः।

मृत्यु अच्छी परन्तु अपयश होना अच्छा नहीं।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, १। तरंग ४)

पुणु वि पडीवउ चिन्तइ एव पाइँ धूमद्धउ।
काइँ दहेसमि एयहो जो अयसेण जि दड्ढउ।

आग फिर सोचने लगी, इसे[1] क्या जलाऊँ, यह तो अयश से पहले ही जल चुका है।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव के पुत्र त्रिभुवन (पउमचरिउ, ७७।७)

संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि-सम दारुन दाहू।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९५।४)

मैं कहूँगा और फिर कहूँगा। समय कहेगा और संसार कहेगा। इतिहास कहेगा और कहानियाँ कहेंगी। मुझे मार डालो, इससे आप लोगों की अपकीर्ति का प्रवाद रुकेगा नहीं।

—वृन्दावनलाल वर्मा (गढ़ कुंडार, पृ० ४२२)

१. चिता में रखे रावण के शव को।

होम करते हाथ जलें।

—हिंदी लोकोक्ति

घोड़े का गिरा सँभलता है, नजरों का गिरा नहीं सँभलता।

—हिंदी लोकोक्ति

वन तो राम जयबे करितथ केकई के अजस।

वन तो राम को जाना ही था, परन्तु कैकेयी को व्यर्थ ही अपयश का भागी बनना पड़ा।

—हिंदी लोकोक्ति (विहार प्रदेश)

हम तालिबे शोहरत है हमे नंग[1] से क्या काम
बदनाम भी गर होंगे तो क्या नाम न होगा।

—अज्ञात

अपराध, अपराधी

कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः।

अपराधी की पूजा तो केवल वध है।

—भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।२२)

संसार अपराध करके इतना अपराध नहीं करता, जितना वह दूसरों को उपदेश देकर करता है।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० २५७)

प्रभुत्व और धन के बल पर कौन-कौन से अपराध नहीं हो रहे हैं?

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १६९)

संसार में अपराध करके प्रायः मनुष्य अपराधों को छिपाने की चेष्टा नित्य करते है। जब अपराध नहीं छिपते, तब उन्हें ही छिपना पड़ता है और अपराधी संसार उनकी इसी दशा से संतुष्ट होकर अपने नियमों की कड़ाई की प्रशंसा करता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० २१७)

कहते क्यों नहीं कि मेरा यही अपराध है कि मैंने कोई अपराध नही किया?

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५९)

१. लज्जा।

समाज में प्रतिदिन जो अपराधों और दुष्कर्मों की संख्याएँ बढ़ती चली जा रही हैं, उसका प्रधान कारण आज के युग की यही सहानुभूतिरहित, संवेदनाशून्य प्रवृत्तियाँ, विषम सामाजिक परिस्थितियाँ और सामूहिक भ्रष्टाचार ही है।

—इलाचन्द्र जोशी (जहाज का पंछी, पृ० ६०)

इक़रारे जुर्म, इस्लाहे जुर्म।

अपराध को स्वीकार लेना ही उसका क्षमा हो जाना है।

—फ़ारसी लोकोक्ति

कोई भी क्यों न हो, जिसका कार्य-कारण हमें नहीं मालूम, उसे अगर हम क्षमा न भी कर सकें, तो उसका विचार करके कम-से-कम उसे अपराधी तो नहीं ठहरावें।

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० २६६)

जो स्वयं को क्षमा नहीं कर सकता वह कितना दुःखी व्यक्ति है!

—पब्लिलियस साइरस

I believe that every question between man and man is a religious question and that every social wrong is a moral wrong.

मेरा विश्वास है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच का हर प्रश्न, धार्मिक प्रश्न है और हर सामाजिक अपराध नैतिक अपराध है।

—हेलेन केलर

The guilty think all talk is of themselves.

अपराधी व्यक्ति सोचते हैं कि सब बात उन्हीं के विषय में है।

—चाउसर (दि कैंटरबरी टेल्स,
दि कैनन्स इयोमैन्स प्रोलाग)

Those who feel guilty are afraid, and they who are afraid somehow feel guilty.

जो अपने को अपराधी अनुभव करते हैं, वे भयभीत होते हैं और वे जो भयभीत होते है, स्वयं को अपराधी अनुभव करते हैं।

—एरिक हाफ़र (दि पैशनेट स्टेट आफ़ माइंड)

अपरिग्रह

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तसुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिंचनः॥

सबसे अधिक अच्छी लगने वाली वस्तुओं का परिग्रह ही पुरुष के लिए दुःखदायी है। जो अकिंचन है, वह विद्वान अनन्त सुख पाता है।

—भागवत (११।९।१)

सुवर्ण नियम यह है कि जो चीज़ लाखों को नहीं मिल सकती, उसे लेने से हम दृढ़तापूर्वक इनकार कर दें।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, १२३)

अपरिहार्यता

को सक्कदि उच्छिट्ठं णकरन्तो भुंजिदुं।

बिना जूठा किए कौन खा सकता है?

[प्राकृत] —भास (अविमारक, ५।१ के पश्चात्)

अपवाद

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।६।१)

अपव्यय

अवलहे कू रोज़े रौशन शमए काफ़ूरी निहद
ज़ूद बाशद किश् ब शब रौग़न न बाशद दर चिराग़।

जो मूर्ख प्रकाशमान दिन में कपूर का दीपक जलाता है, शीघ्र ही उसके दिये में रात को भी तेल नही होगा।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

अपहरण

परकाव्येन कवयः परद्रव्येण चेश्वराः।
निर्लोठितेन स्वकृतिं पुष्णन्त्यद्यतने क्षणे॥

आजकल दूसरे के काव्य से अपहरण करके कवि और दूसरे के द्रव्य से अपहरण करके राजा अपनी कृति सुन्दर बनाते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ५।१६०)

अपात्रता

आँखिन में बसत कलंक अंक ही जो अहै
कोउ तो मयंक लखि कैसे अवमोहैगो।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

लवण पाणियाचा थावो। माजि रिगोनि गेलें पाहों।
तव तें चिनाहीं मा काय घेवो। माप जळा!

नमक पानी की थाह लेने गया तो वह स्वयं ही नहीं रहा, फिर कितना गहरा पानी है, यह नाप कैसे लेगा?

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (चांगदेव पासष्टी, ४५)

अफ़वाह

अफ़वाह सुनना नहीं, सुनना तो मानना नही।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, पृ० २२७)

संकट में हर अफ़वाह सुनने योग्य समझी जाती है।

—पब्लिलियस साइरस

अभय

दे० 'निर्भयता'।

अभाव

किसी सम्बन्ध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है।

—मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, पृ० २७)

एकादशीचे घरी शिवरात्र।

एकादशी के घर पर अतिथि रूप में शिवरात्रि।

—मराठी लोकोक्ति

अभावों में अभाव है बुद्धि का अभाव। दूसरे अभावों को संसार अभाव नही मानता।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ८४१)

अभाव पर विजय पाना ही जीवन की सफलता है। उसे स्वीकार करके उसकी गुलामी करना ही कायरपन है।

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह, पृ० २७०)

Alas! I have nor hope nor health
Nor peace within nor calm around.
Nor that content surpassing wealth
The sage in meditation found
And walked with inward glory crowned.

खेद है कि न तो मेरे पास आशा है, न स्वास्थ्य, न आन्तरिक शान्ति, न बाह्य शान्ति और न ही सब धनों से श्रेष्ठ संतोष, जो कि संत ध्यान में पा लेता है और आन्तरिक गौरव का मुकुट धारे भ्रमण करता है।

—शैले (स्टैंजाज रिटिन इन डिजेक्शन, नियर नेपिल्स)

अभिनय

जो वास्तव है उसे दबाना, जो अवास्तव है उसका आचरण करना—यही तो अभिनय है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २८०)

Actors are the only honest hypocrites. Their life is a voluntary dream; and the height of their ambition is to be beside themselves. They wear the livery of other men's fortunes: their very thoughts are not their own.

अभिनेता ही ईमानदार ढोंगी होते हैं। उनका जीवन एक संकल्पित स्वप्न है और उनकी आकांक्षाओं की चरम परिणति है स्वय के अतिरिक्त कुछ होना। वे दूसरे मनुष्यों के भाग्यों की पोशाकें पहनते हैं। उनके अपने विचार भी अपने नहीं होते।

—हैज़लिट

अभिमत

Where an opinion is general, it is usually correct.

सर्वसामान्य अभिमत प्रायः सत्य होता है।

—जेन आस्टिन (मैन्सफ़ील्ड पार्क, अध्याय ११)

We are all of us more or less the slaves of opinion.

हम सभी कम या अधिक अभिमतों के दास है।

—हैज़लिट (पोलिटिकल एसेज़)

अभिमान

पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः।

अति अभिमान पराभव का द्वार है।

—शतपथ ब्राह्मण (५।१।१।१)

अयं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरन्त्यसमुन्नद्धो यः स पंडित उच्चते॥

जो अधिक धन या अधिक विद्या या अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी गर्वरहित होकर व्यवहार करता है, उसी को पंडित कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४०)

जरा रूपं हरति धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥

वृद्धावस्था रूप का, आशा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, दूसरों में दोष दृष्टि धर्माचरण का, काम लज्जा का, नीच पुरुषों की सेवा सदाचार का, क्रोध लक्ष्मी का और अभिमान सर्वस्व का ही नाश कर देता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।८)

कुलं वित्तं श्रुतं रूपं शौर्यं दानं तपस्तथा।
प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः॥

कुल, धन, ज्ञान, रूप, पराक्रम, दान और तप—ये सात मुख्य रूप से मनुष्यों के अभिमान के हेतु हैं।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।४)

अस्थिरः कुलसम्बन्धः सदा विद्या विवादिनी।
मदो मोहाय मिथ्यैव मुहूर्तनिधनं धनम्॥

कुल-संबंध अस्थिर है, विद्या सदा ही विवादपूर्ण है, और धन क्षण में ही नष्ट हो जाने वाला है, अतः इन मोह-जनक वस्तुओं पर अभिमान मिथ्या ही है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।२८)

जराजीर्णानि रूपाणि रोगार्तानि वपूंषि च।
आयूंषि काललीढानि दृष्ट्वा कस्य भवेन्मदः॥

जरा से जीर्ण रूपों को, रोग से क्षीण शरीरों को और काल से ग्रस्त आयु को देखकर किसे अभिमान हो सकता है!

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ४।६३)

तस्मान्न कार्यः सुधिया विचार्य
साश्चर्य-सौन्दर्य-विलासदर्पः।
संसार-मोहप्रसरे-घनेऽस्मिन्
विद्युल्लताविस्फुरितं हि रूपम्॥

अतः बुद्धिमान मनुष्य को, ससार में फैले हुए मोह रूपी बादल में यह रूप निश्चय ही बिजली की कौंध के समान है—ऐसा विचार करके आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्य-विलास का अभिमान नहीं करना चाहिए।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ४।७२)

नाभिमानः शुभार्थिनाम्।

शुभार्थियों को अभिमान नहीं होता।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।७४)

अजानतो हठात् कुर्वन् प्राज्ञमानी विनश्यति।

विना जाने हठ-पूर्वक कार्य करने वाला अभिमानी विनाश को प्राप्त होता है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

अवंशपतितो राजा मूर्खपुत्रश्च पण्डितः।
अधनी हि धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत्॥

अकुलीन मनुष्य राजा होने पर, मूर्ख का पुत्र पण्डित बनने पर तथा निर्धन धन पाकर जगत् को तृणवत् समझते हैं।

—चाणक्यनीति

अल्पं किंचिच्छ्रियं प्राप्य नीचो गर्वायते लघु।
पद्मपत्रतले भेको मन्यते दण्डधारिणम्॥

कुछ थोड़ी सम्पत्ति पाकर नीच व्यक्ति गर्वीला बन जाता है। मेंढक कमल-पत्र के नीचे पहुँचकर स्वयं को दण्डधारी समझता है।

—अज्ञात

विषभारसहस्रेण गर्वं नायाति वासुकिः।
वृश्चिको बिन्दुमात्रेण प्रोर्ध्वं वहति कंटकम्॥

सहस्र गुना अधिक विष होने पर भी वासुकि नाग गर्व नहीं करता है परन्तु केवल एक बूंद विष धारण करने पर बिच्छू अपनी दुम उठाकर अभिमानपूर्वक चलता है।

—अज्ञात

अल्पोदकश्चलत्कुंभो ह्यल्पदुग्धाश्च धेनवः।
अल्पविद्यो महागर्वी कुरूपी बहुचेष्टितः॥

कम जल वाला घड़ा छलकता है। कम दूध देने वाली गायें चंचल होती हैं। अल्पविद्या वाला मनुष्य महागर्वी होता है। कुरूप मनुष्य अधिक चेष्टाएँ करता है।

—अज्ञात

संपूर्णकुंभो न करोति शब्दमर्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वं गुणैर्विहीना बहु जल्पयंति॥

जल से भरा घड़ा आवाज़ नहीं करता है, आधे भरे घड़े से अवश्य ही आवाज़ होती है। कुलीन विद्वान् गर्व नहीं करता, गुणहीन मनुष्य अधिक बकवास करते हैं।

—अज्ञात

उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भङ्गभयाद् दिवः।
स्वचित्तकल्पितो गर्वः कस्य नात्रापि विद्यते॥

टिट्टिभ पक्षी आकाश को टूटकर गिर पड़ने से रोकने के लिए अपने पैर ऊपर उठाये रहता है। ऐसा अपने मन से कल्पित गर्व यहाँ (मनुष्यों में) भी किसमें नहीं होता?

—अज्ञात

अल्पविद्यो महागर्वी।

अल्प विद्या वाला महागर्वी होता है।

—अज्ञात

लोअह गव्व समुव्वहइ, हउँ परमत्थ पवीण।
कोडिअ मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण लीण॥
आगअ वेअ पुराणे पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क सिरीफले अलिअ जिम वाहेरीअ भमन्ति॥

व्यर्थ ही मनुष्य गर्व में डूबा रहता है और समझता है कि मैं परमार्थ में प्रवीण हूँ। करोड़ों में से कोई एक निरंजन में लीन होता है। आगम, वेद, पुराणों से पंडित अभिमानी वनते हैं किन्तु वे पके श्रीफल के वाहर ही वाहर चक्कर काटने वाले भौंरे के समान आगम आदि के वाह्य अर्थ में ही उलझे रहते हैं।

[अपभ्रंश] —कण्हपा (दोहाकोष)

वेदपुरान कहैं, जगु जान,
गुमान गोविंदहि भावत नाहीं।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकांड १३२)

अभिमानी नाहर वड़ो, भरमत फिरत उजारि।
सहजो नन्हीं वाकरी प्यार करै संसार॥

—सहजोवाई

नीच-नीच सव तरि गये, संत-चरन-लौलीन
जातिहि के अभिमान ते, डूबे वहुत कुलीन।

—तुलसी साहव

अभिमान एक व्यक्तिगत गुण है, उसे समाज के भिन्न-भिन्न व्यवसायों के साथ जोड़ना ठीक नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० ११५)

देव न थे हम और न ये हैं,
सव परिवर्तन के पुतले,
हाँ, कि गर्व-रथ में तुरंग-सा
जितना जो चाहे जुत ले।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

भूला हुआ लौट आता है, खोया हुआ मिल जाता है, परन्तु जो जान-बूझकर भूल-भुलैया तोड़ने के अभिमान से उसमें घुसता है, वह चक्रव्यूह मे स्वयं मरता है, और दूसरों को भी मारता है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, पृ० ६५)

हम सव ऋपियों की संतान हैं और इसलिए हमारे मनों में अपने पुरोहित या किसी वर्ण विशेप का होने के कारण अभिमान नही होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४६, पृ० ३१८)

प्रायः दुनिया का हर देश यह विश्वास करता है कि स्रष्टा ने उसे कुछ विशेप गुण देकर भेजा है, कि वही दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ जाति या समुदाय का है। चाहे दूसरे अच्छे हों या वुरे, लेकिन उनसे कुछ घटिया प्राणी हैं।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भापण, प्रथम खंड, पृ० ३३)

सत्ता का अभिमान, सम्पत्ति का अभिमान, वल का अभिमान, रूप का अभिमान, कुल का अभिमान, विद्वत्ता का अभिमान, अनुभव का अभिमान, कर्त्तव्य का अभिमान, चारित्र्य का अभिमान—ये अभिमान के नौ प्रकार हैं। पर मुझे अभिमान नही है, ऐसा भास होना इसके जैसा भयानक अभिमान दूसरा नही है।

—विनोवा (विचारपोथी, पृ० १३)

रस्सी जल गई, ऐंठ न गई।

—हिंदी लोकोक्ति

माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
जेहि मानै मुनिवर ठगे, मान सवन को खाय॥

—अज्ञात

ऐ तवंगर मफ़रोश ईं हमा नख़वत कि तुरा
सरवरी दरकाफ़े हिम्मते दरवेशांस्त।

हे धनवान ! तेरा यह सब अभिमान व्यर्थ है। तेरा अभ्युदय और पतन सब साधुओं के आशीर्वाद पर निर्भर है। [फ़ारसी]
—हाफ़िज़ (दीवान)

कल्लपसिडिकि कांति मेंडु।
नक़ली सुवर्ण में अधिक कान्ति होती है।
—तेलुगु लोकोक्ति

किरियालुं पट्टु पट्टु तन्ने।
फट गया तो भी रेशम तो रेशम ही है।
—मलयालम लोकोक्ति

त्याग का अभिमान धन के अभिमान से भी ज्यादा ख़तरनाक है।
—शिवानंद (दिव्योपदेश, १।३४)

अभिमानी व्यक्ति की शान और उसके अपयश के बीच केवल एक पग की दूरी है।
—पब्लिलियस साइरस (मारल सेइंग्स)

आत्म-प्रेम के कारण स्वयं को अनावश्यक महत्त्व देना अभिमान है।
—स्पिनोज़ा (एथिक्स)

अत्यधिक छोटे लोगों का अभिमान अत्यधिक बड़ा होता है।
—वाल्टेयर

स्वयं पर अभिमान जितना ठीक है, दूसरों को वह अभिमान दिखाना उतना ही हास्यास्पद है।
—ला रोशेफ़ाउकाल्ड (मैक्ज़िम्स)

अभिमान अपने ही दोषों को ढँकने के लिए प्रयुक्त मुखावरण है।
—हिब्रू लोकोक्ति

Pride must have a fall.
गर्व का पतन निश्चित है।
—शेक्सपियर (किंग रिचर्ड द्वितीय, ५।५)

He that is proud eats up himself.
अभिमानी व्यक्ति स्वयं को ही खा जाता है।
—शेक्सपियर (ट्रायलस ऐंड क्रोसिडा, २।३)

We think our fathers fools, so wise we grow,
Our wise sons, no doubt, will think us so.

जैसे-जैसे हम ज्ञान पाते है, हम अपने पिताओं को मूर्ख समझते हैं। निस्सन्देह हमारे अधिक बुद्धिमान पुत्र हमें भी ऐसा ही समझेंगे।
—अलेक्ज़ेंडर पोप (ऐन एसे आन क्रिटिसिज़्म)

Feminine vanity; that divine gift what makes women charming.

नारी-सुलभ गर्व, वह दिव्य उपहार है जो नारी को आकर्षक बनाता है।
—डिज़रायली (टैंक्रेड, २।८)

The proud are always most provoked by pride.

अभिमानी व्यक्ति सदैव अभिमान में ही सबसे अधिक उत्तेजित हो उठते है।
—विलियम कूपर (कन्वर्सेशन)

अभियोग

I impeach him in the name of the people of India, whose rights he has trodden under foot and whose country he has turned into a desert. Lastly in the name of human nature itself. in the name of both sexes, in the name of every age, in the name of every rank, I impeach the common enemy and opperessor of all.

मैं उस भारतीय जनता के नाम पर, जिसके अधिकारों को उसने पददलित किया है और जिसके देश को उसने उजाड़ कर दिया है, उस पर महाभियोग लगाता हूँ। अन्ततः स्वयं मानव प्रकृति के नाम पर, स्त्रियों और पुरुषों दोनों के नाम पर, हर उम्र के नाम पर, हर पद के नाम पर, मैं सभीके आम शत्रु और उत्पीड़क पर महाभियोग लगाता हूँ।
—एडमंड वर्क (वारेन हेस्टिंग्ज़ पर महाभियोग का भाषण)

अभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति मानव हृदय का स्वाभाविक गुण है।
—प्रेमचन्द (मेरे विचार, पृ० ४३)

वर्ण-चमत्कार
एक-एक शब्द बँधा ध्वनि मय साकार।
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता ८७)

पद-पद चल वही भाव-धारा,
निर्मल कल-कल में बँध गया विश्व सारा,
खुली मुक्ति बंधन से बँधी फिर अपार—
वर्ण-चमत्कार !
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता ८७)

हैं और भी दुनिया में सुख़नवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि 'ग़ालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और।
कवि तो संसार में और भी बहुत अच्छे है, परन्तु ग़ालिब की अभिव्यक्ति की निपुणता कुछ विशेष ही है।
—ग़ालिब (दीवान, ६२।११)

बहुत-सा विचार थोड़े शब्दों में व्यक्त करना एक महती कला है।
—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खंड, पृ० ३१३)

वृथा वाक्य कहता हूँ, पूरी बात कह न सका,
आकाश-वाणी के साथ आत्मा की वाणी का
बँधा नही स्वर अभी पूर्णता के स्वर मे,
करूँ क्या, भाषा जो मिली नहीं।
—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('रोगशय्या' गद्यकाव्य)

अभेद-दृष्टि

'भेदों में अभेद' दृष्टि ही सच्ची तत्त्व-दृष्टि है।
—रामचन्द्र शुक्ल (विश्वप्रपंच, भूमिका-खण्ड)

इसी[1] के द्वारा सत्ता का आभास मिल सकता है। यही अभेद ज्ञान और धर्म दोनों का लक्ष्य है। विज्ञान इसी अभेद की खोज में है, धर्म इसी की ओर दिखा रहा है।
—रामचन्द्र शुक्ल (विश्वप्रपंच, पृ० १५५)

पेक्कुलोक्कटिग जूचुवाडे प्राज्ञुडन विनवे।
जो मानव भिन्नत्व में एकत्व को देखता है वही प्राज्ञ माना जा सकता है।
[तेलुगु] —गुरजाड अप्पाराव (मुत्याल सरालु)

अभ्यास

अज्ञोऽपि तज्जज्ञतामेति शनैः शैलोऽपि चूर्ण्यते।
बाणोऽप्येति महालक्ष्यं पश्याभ्यासविजृम्भितम्॥

अभ्यास की शक्ति तो देखो—निरन्तर अभ्यास से किसी विषय का अज्ञ उस विषय का ज्ञाता हो जाता है, पर्वत भी धीरे-धीरे घिसकर चूर्ण बन जाता है और बाण भी अपने सूक्ष्म लक्ष्य तक पहुँच जाता है।
—योगवासिष्ठ

न किंचिदस्ति तद्वस्तु यदभ्यासस्य दुष्करम्।
कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो अभ्यास करने पर भी दुष्कर है।
—बोधिचर्यावतार (६।१४)

यद्यदेव प्रसक्तं हि वितर्कयति मानवः।
अभ्यासात्तेन तेनास्य नतिर्भवति चेतसः॥
मनुष्य जिस-जिस वस्तु का लगातार चिन्तन करता है, अभ्यासवश उसी-उसी की ओर उसके मन का झुकाव जाता है।
—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १५।१८)

चेष्टानां विरमेन्न हेतुविगमेऽप्यभ्यासदीर्घा स्थितिः।
हेतु न रहने पर भी चेष्टाओं के दीर्घ अभ्यास की स्थिति समाप्त नहीं हो जाती है।
—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।४२८)

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान॥
—वृन्द (वृन्द सतसई, ३१०)

कूदते-कूदते नचनिया हो जाता है।
—हिंदी लोकोक्ति

जे तो हर फ़ेल कि अव्वल गश्त ज़ाहिर
वराँ गर्दी बवारे चन्द क़ादिर।
जिस कार्य को तू पहले करता है, वह कुछ कठिन-सा ज्ञात होता है। परन्तु बार-बार करने से वही कार्य सरल हो जाता है।
[फ़ारसी] —शब्सतरी

तुका म्हणे कांहीं अभ्यासावांचुनी।
नव्हे हे करणी भलतीची।
अभ्यास के विना साध्य की प्राप्ति हो, यह संभव नहीं है।
[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २७)

१. भेद में अभेद की दृष्टि।

अमरता

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

मैं उस सब प्रकार से महान्, अंधकार से रहित, स्वप्रकाशस्वरूप पुरुष (आत्मा) को जानता हूँ। उसको जान लेने पर ही मृत्यु को जीता जाता है। मृत्यु से पार होने के लिए इस (आत्म-दर्शन) के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

—**यजुर्वेद (३१।१८)**

परैं तु मृत्युरमृतं न ऐतु।
मृत्यु हमसे दूर हो और अमृतपद हमें प्राप्त हो।

—**अथर्ववेद (१९।३।६२)**

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

जो उन दोनों—विद्या (ज्ञान) और अविद्या (कर्म)—को साथ-साथ जान लेता हैं, वह अविद्या (कर्म) से मृत्यु को पार करके विद्या (ज्ञान) से अमृतत्व को प्राप्त करता है।

—**ईशावास्योपनिषद् (११)**

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥

जो उन दोनों—सम्भूति (ब्रह्म) और विनाश (प्रकृति) को साथ-साथ जान लेता है, वह विनाश (प्रकृति) से मृत्यु को पार करके सम्भूति (ब्रह्म) से अमृतत्व को प्राप्त करता है।

—**ईशावास्योपनिषद् (१४)**

य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।
जो इस (ब्रह्म) को जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं।

—**कठोपनिषद् (२।३।९)**

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेन।
धन से अमृतत्व की आशा नहीं है।

—**बृहदारण्यकोपनिषद् (२।४।२)**

न खलु स उपरतो यस्य वल्लभः स्मरति।
प्रिय जिसकी याद करता है वह मृत नहीं है।

—**भवभूति (मालतीमाधव, पंचम अंक)**

आसण दिढ़ अहार दिढ़ जे न्यद्रा दिढ़ होई।
'गोरष' कहै सुणौं रे पूता मरै न बूढ़ा होई॥

—**गोरखनाथ (गोरखबानी)**

हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जियावन हारा।
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना॥

—**कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०२)**

हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरैं हम काहे कूँ मरिहै।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा॥

—**कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०२)**

तुम आए गए, जगत् का छल,
तुम हो, तुम होगे, सत्य अटल।

—**सुमित्रानंदन पंत (उत्तरा, कविता 'अमर्त्य')**

जो रहती है जाति जगत् में मरने को तैयार।
वही अमरता का पाती है ईश्वर से अधिकार॥

—**रामनरेश त्रिपाठी (मिलन, पृ० ५३)**

निर्माण में ही मनुष्य अमर है।

—**लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ ध्वज, दूसरा अंक)**

धर्म-धार में धैर्य-सहित नर जो बहते हैं।
चिरजीवी हो वही जगत् में नित रहते हैं॥
होते हैं जो रत सतत, बन्धु-कुशलता हेतु।
अमर वही हैं नर प्रवर, सौख्य-सेतु कुल-केतु।
मर्त्य इस लोक में॥

—**लोचनप्रसाद पाण्डेय (आत्मत्याग)**

हम अपना कर्तव्य पूरा करेंगे, और जो लोग हमारे बाद आएँगे—उस काम को चालू रखेंगे, क्योंकि देश के काम कभी खत्म नहीं होते। देश के लोग आते हैं और जाते हैं, लेकिन देश अमर होता है और क़ौम अमर रहती है।

—**जवाहरलाल नेहरू (लालक़िले के प्राचीर से, भाग १, पृ० १६)**

जिसे फ़ना[1] वह समझ रहे हैं बक़ा[2] का है राज़ उसी में मुजमर[3]
नहीं मिटाये से मिट सकेंगे वह लाख हमको मिटा रहे हैं।

—**अशफ़ाक़ उल्ला खाँ**

मरन माझें मरोन गेलें। भज केलें अमर।
मेरा मरण मुझे अमरत्व प्रदान कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया।

[मराठी] —**तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २३४८)**

---

१. मृत्यु। २. जीवन। ३. छिपा हुआ।

जो मनुष्य किसी भौतिक वस्तु से विचलित नहीं होता, उसने अमरता पा ली।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

जो वस्तु चकाचौंध-भर उत्पन्न करती है, वह क्षणजीवी होती है पर वास्तविक वस्तु भविष्य में भी अविनाशी बनी रहती है।

—गेटे (फ़ाउस्ट, रंगमंच पर प्रस्तावना)

Nothing but beauty and wisdom deserve immortality.

सौन्दर्य और ज्ञान ही अमरत्व के योग्य हैं।

—विल ड्यूरेंट

To live in hearts we leave behind
Is not to die.

हम जिन्हें छोड़ गए हैं उन हृदयों में जीवित रहना मृत्यु नहीं है।

—टामस कैम्पबेल (हैलोड ग्राउंड)

अमरीका

अमेरिकी स्वप्न में 'छोटा' कुछ नहीं हो सकता। यानी जो छोटा है उसे 'छोटा' कहा नहीं जा सकता। अगर आप चूहा-दौड़ में भी हैं, तो संसार की सबसे बड़ी चूहा-दौड़ में हैं, अगर बौने हैं तो भी विराट् बौने हैं।

—अज्ञेय (अद्यतन, पृ० २०)

Driven from every corner of the earth, freedom of thought and the right of private judgement in matter of conscience direct their steps to this happy country as their last asylum.

पृथ्वी के प्रत्येक कोने से निकाले गए, विचार-स्वातंत्र्य और अन्तरात्मा के विषय में निजी निर्णय का अधिकार, अंतिम शरणस्थली के रूप में इस प्रसन्न देश की ओर चरण बढ़ाते हैं।

—सैमुअल एडम्स (फ़िलाडेल्फ़िया में भाषण, १ अगस्त, १६१६)

The thing that impresses me most about America is the way parents obey their children.

अमरीका के विषय में मुझे सबसे अधिक प्रभावित करने वाली बात है वहाँ के माता-पिताओं द्वारा अपनी सन्तानों की आज्ञाओं के पालन की विधि।

—ड्यूक आफ़ विंडसर

What has happened to us as a nation? Profits are up...our standard of living is up... but so is our crime rate. So is the rate of divorce and juvenile delinquency and mental illness. So are the sales of tranquilizers and the number of children dropping out of school.

राष्ट्र के रूप में हमारा क्या हुआ है? लाभ बढ़े हैं··· हमारा जीवन स्तर ऊँचा हुआ है किन्तु साथ ही अपराधों की दर भी बढी है। और यही दशा तलाक़ और बाल-अपराध तथा मानसिक रुग्णता की भी है। यही दशा शामक औषधियों की तथा स्कूल छोड़ देने वाले बालकों की है।

—केनेडी

In America there is no forgotten man, no common man, no little man, no average man. There is only our fellow-man.

अमरीका में कोई विस्मृत मनुष्य नहीं है, कोई साधारण मनुष्य नही है, कोई छोटा मनुष्य नहीं है, कोई औसत मनुष्य नहीं है। केवल हमारा साथी मनुष्य है।

—रिचर्ड निक्सन (न्यूयार्क में एक प्रीतिभोज में भाषण, १८ अक्तूबर, १९५६)

America is God's crucible, the great melting pot where all races of Europe are melting and reforming.

अमरीका ईश्वर की घरिया[1] है जहाँ यूरोप की सभी जातियाँ पिघल रही हैं और सुधर रही हैं।

—इसरायल जैंगविल (दि मेल्टिंग पाट)

We need an America with the wisdom of experience. But we must not let America grow old in spirit.

हम अनुभवजन्य बुद्धिमत्ता से युक्त अमरीका चाहते हैं। परन्तु हमें अमरीका को उत्साह में वृद्ध नहीं बनने देना चाहिए।

—ह्यूबर्ट हम्फ़्री (एक भाषण, १९६५ ई०)

अमृत

भ्रूमध्ये तु ललाटे तु नासिकायास्तु मूलतः।
जानीयादमृतस्थानं तद् ब्रह्मायतनं महत्॥

१. द्रावण पात्र।

भ्रूमध्य, ललाट तथा नासिका-मूल को अमृतस्थान जानना चाहिए। वह महान् ब्रह्मस्थान है।

—ध्यानबिंदूपनिषद् (४०)

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम्।
अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीर-भोजनम्॥

शीत में अग्नि अमृत है, प्रिय का दर्शन अमृत है, राज-सम्मान अमृत है तथा क्षीर का भोजन अमृत है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।१३६)

गगन मंडल में औंधा कुवां, तहं अमृत का वासा।
सगुरा होइ सु भरि-भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा॥

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी २३)

घट-घट अमृत-सर भरे, पीवे कोई नाहि।
कह पानप अमृत तजे, जगत प्यासा जाहि॥

—पानपदास (पानपबोध, पृ० १४१)

संसार का अस्तित्व वर्षा पर आधारित होने के कारण वही संसार की सुधा कहलाने योग्य है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११)

अयोग्यता

दे० 'अपात्रता'।

अराजकता

Freedom and not servitude is the cure of anarchy; as religion, and not atheism, is the true remedy for superstition.

अराजकता का इलाज स्वतंत्रता है न कि दासता, वैसे ही जैसे अंधविश्वास का सच्चा इलाज नास्तिकता नहीं, धर्म है।

—एडमंड बर्क, (स्पीच आन कानसिलियेशन विथ अमेरिका)

अर्थ

दे० 'शब्द और अर्थ'।

अर्थ और काम

जो अनन्य भाव से अर्थ-साधना में ही लीन रहेगा वह हृदय खो देगा, जो आंख मूंदकर काम-साधना में ही लिप्त रहेगा वह किसी अर्थ का न रहेगा।

—रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियां, पृ० २३ की भूमिका)

अर्थशास्त्र

सच्चा अर्थशास्त्र तो न्याय-बुद्धि पर आधारित अर्थ-शास्त्र है।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपेनियन, दिनांक ४-७-१९०८)

अर्धनारीश्वर

अर्धनारीश्वर केवल इसी बात का प्रतीक नहीं है कि नारी और नर जब तक अलग हैं तब तक दोनों अधूरे हैं, बल्कि इस बात का भी कि जिस पुरुष में नारीत्व नहीं, वह अधूरा है एवं जिस नारी में पुरुषत्व नहीं, वह भी अपूर्ण है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (वेणु वन, अर्धनारीश्वर)

अर्हत्

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥

जो सर्वज्ञ है, राग आदि दोषों को जीत चुका है, त्रिलोक में पूजित है, वस्तुएँ जैसी हैं उन्हें वैसी ही कहता है, वही परमेश्वर अर्हत् देव है।

—हेमचंद्र सूरि (आप्तनिश्चयालंकार)

अलंकार

सौन्दर्यमलंकारः।

(काव्य में) सौन्दर्य का नाम अलंकार है।

—वामन (काव्यालंकार सूत्र, १।१।२)

भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं का रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १२९)

अलंकार भावों के अभाव का आवरण है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १३२)

अल्पज्ञ

दे० 'अज्ञान' भी।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।

जब मैं अल्पज्ञ था तो हाथी के समान मदांध था। तब मेरा मन अपने को सर्वज्ञ समझकर दंभ से भर गया। लेकिन जब मुझे पंडितों के संपर्क से कुछ ज्ञान हुआ तो पता चला कि मैं मूर्ख हूँ और मेरा दंभ ज्वर की तरह उतर गया।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८)

अल्पश्रुतलव एव प्रायः प्रकटयति वाग्विभवमुच्चैः।
अल्पज्ञ गायक ही प्रायः उच्च स्वर से गाता है।

—वल्लभदेव (सुभाषितावली, ३९६)

अधजल गगरी छलकत जाय।

—हिंदी लोकोक्ति

अल्पविद्या भयंकरी।

—संस्कृत लोकोक्ति

नीम हकीम खतरए जान,
नीम मुल्ला खतरए ईमान।

अधूरे चिकित्सक से प्राणों को ख़तरा होता है और अधूरे मुल्ला से धर्म को ख़तरा होता है।

—फ़ारसी लोकोक्ति

A little learning is a dangerous thing.
अल्प ज्ञान ख़तरनाक वस्तु है।

—अलेक्ज़ेंडर पोप (ऐन एसे आन क्रिटिसिज़्म, १।२१५)

अल्पभाषी

Men of few words are the best men.
अल्पभाषी व्यक्ति सर्वोत्तम होते हैं।

—शेक्सपियर (हेनरी फ़िफ्थ, ३।२)

अवकाश

Sunday clears away the rust of the whole week.
रविवार सप्ताह भर की ज़ंग साफ़ कर देता है।

—एडीसन (दि स्पेक्टेटर, क्र० ११२)

What is this life if full of care,
We have not time to stand and stare ?

यह जीवन भी क्या है यदि चिन्तापूर्ण होने के कारण हमारे पास खड़े होने तथा ध्यान से देखने का भी समय नहीं है ?

—विलियम हेनरी डेविस (लेज़र)

अवज्ञा

दे० 'उपेक्षा'।

अवतार

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की शिथिलता और अधर्म की प्रबलता होती है, तब-तब ही मैं[1] जन्म लेता हूँ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।७ अथवा गीता, ४।७)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

साधुओं की रक्षा, दुष्टों के नाश और धर्म की स्थापना के लिए मैं[2] युग-युग में जन्म लेता हूँ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।८ अथवा गीता, ४।८)

धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः॥

धर्म की रक्षा के लिए ही विष्णु संसार में अवतार लेते हैं।

—कालिदास (रघुवंश, १५।४)

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते।
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

हे दशावतारधारी कृष्ण ! तुम मत्स्यरूप में वेदों का उद्धार करते हो। कूर्म रूप में जगत् को धारण करते हो। नृसिंह रूप में दैत्य को नष्ट करते हो। वामन रूप में बलि को छलते हो। परशुराम रूप में क्षत्रियों का नाश करते हो। रामचन्द्र रूप में रावण को जीतते हो। बलराम रूप में हल को धारण

१. ईश्वर। २. ईश्वर।

करते हो। बुद्ध रूप में करुणा को वितरित करते हो, और कलि रूप में म्लेच्छों को नष्ट करते हो। तुम्हें नमस्कार है।

—जयदेव (गीतगोविन्द, १।१६)

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२४।१)

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं[1] कहि जाइ न सोई।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१२१।१)

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार[2]।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१९२)

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१९८)

व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस १।२०५)

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।२६)

जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझकर करता है, वही ईश्वर का अवतार है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, पृ० ११२)

जीवमात्र ईश्वर के अवतार हैं, परन्तु लौकिक भाषा में हम सबको अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान् पुरुष होता है, उसे भविष्य की प्रजा अवतार के रूप में पूजती है। इसमें मुझे कोई दोष नहीं मालूम होता।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ९४)

ये सभी अवतार महान् हैं, प्रत्येक ने हमारे लिए कुछ न कुछ वसीयत छोड़ी है, वे हमारे ईश्वर हैं। हम उनके चरणों में प्रणाम करते हैं, हम उनके क्षुद्र किंकर है। किन्तु इसके साथ-साथ हम स्वयं को भी नमस्कार करते हैं, क्योंकि यदि वे ईश्वर-पुत्र और अवतार है तो हम भी वही हैं। उन्होंने अपनी पूर्णता पहले प्राप्त कर ली है, और हम भी यहीं और इसी जीवन में पूर्णता प्राप्त कर लेंगे।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ७, पृ० १९३)

अवतारवर्ग धर्मजगत् में नवीन मत तथा नवीन पथ का आविष्कार करते है, स्पर्श मात्र से ही दूसरों के भीतर धर्मशक्ति संचारित कर देते हैं, उनकी दृष्टि इस अनित्य संसार में काम-कांचन के कोलाहल की ओर कभी भी आकृष्ट नही होती।

—सारदानंद (श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग, पृ० ४९८)

In Vishnu-Land what Avatar ?
विष्णु-लोक में कैसा अवतार ?

—राबर्ट ब्राउनिंग (वेयरिंग, १।६)

अवधूत

हर्ष न शोक न राग न रोष न बंध न मोक्ष की आस नहीं है,
वैर न प्रीति न हार न जीत न, मार न गीत सो रीत ग्रही है।
ऊँच न नीच न जात न पात, न द्यौस न रात सुदृष्टि मही है,
निर्गुन ज्ञान अनन्य कहै, अवधूत अतीत की रीत यही है।

—अक्षर अनन्य

जिसमें नहीं कर्तापना, भोक्तापना, गम्भीरता।
निर्भयपना, ज्ञानीपना, दानीपना, अरु धीरता।।
मन धर्म सारे छोड़कर, निज आत्म में विश्राम है।
नहिं भेद जिसको भासता, अवधूत उसका नाम है।।

—भोले बाबा (वेदांत छन्दावली, भाग १)

अवध्य

वृद्धबालौ न हन्तव्यौ न च स्त्री नैव पृष्ठतः।
तृणपूर्णमुखश्चैव तवास्मीति च यो वदेत्।।

युद्ध में वृद्ध, बालक और स्त्रियों का वध नहीं करना चाहिए। किसी भागते हुए की पीठ में आघात नहीं करना चाहिए। जो मुँह में तिनका लिये शरण में आ जाय और कहने लगे, "मैं आपका ही हूं," उसका भी वध नहीं करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, ९८।४८-४९)

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुंजीत ये च स्युः शरणागताः।।

१. बस यही है।
२. वे माया, उसके तीनों गुण और इन्द्रियों से परे हैं।

ब्राह्मण, गो, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३६।६६)

अवनति

दे० 'पतन'।

अवशेष

खंडहर बता रहे हैं, इमारत बुलंद थी।

—अज्ञात

अवसर

अकाले कृत्यमारब्धं कर्तुर्नार्थाय कल्पते।
तदेव काल आरब्धं महतेऽर्थाय कल्पते॥

असमय में शुरू किया गया कार्य करने वाले के लिए लाभदायक नहीं होता और वही उपयुक्त समय पर आरम्भ किया जाय तो महान् अर्थ का साधक होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १३८।९५)

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि॥

जब तक समय अपने अनुकूल न हो जाय, तब तक शत्रु को कंधे पर बिठाकर भी ढोना चाहिए, परन्तु जब अनुकूल समय आ जाय तब उसे उसी प्रकार नष्ट कर दे, जैसे घड़े को पत्थर पर पटककर फोड़ दिया जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १४०।१८)

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो वृद्धः सन्किं करिष्यसि।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये॥

जो अपने कल्याण की बात है, उसे आज ही कर। वृद्ध होकर क्या करेगा? क्योंकि वृद्धावस्था में तो अपने अंग भी भार जैसे ही हो जाते हैं।

—योगवासिष्ठ

का हानिः समयच्युतिः।

हानि क्या है? अवसर चूक जाना।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १०४)

संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।

भवन में आग लगने पर कुआँ खोदने का प्रयत्न कैसा?

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ८८)

समये हि सर्वमुपकारि कृतम्।

समय पर किया हुआ सब कुछ उपकारक होता है।

—माघ (शिशुपालवध, ९।४३)

क्षणसम्पदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः॥

पुरुषार्थ-साधन कराने वाली और सुदुर्लभ यह क्षण-सम्पत्ति मिली है। यदि यहाँ हित की चिन्ता न की गई तो यह संयोग फिर कहाँ?

—बोधिचर्यावतार (१।४)

न जात्ववसरे प्राप्ते सत्त्ववानवसीदति।

सत्त्वशाली व्यक्ति अवसर आने पर मोह में नहीं पड़ता।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ३।४)

कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारमपि मर्षयेत्।
काले काले च मतिमान् उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत्॥

बुद्धिमान पुरुष (असमय में) कछुए की तरह अंग सिकोड़ ले और मार खाकर भी चुप रह जाए किन्तु अवसर आने पर काले साँप के समान उठ खड़ा हो।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।२०)

अकाले कृतमकृतं स्यात्।

असमय में किया हुआ कार्य न किया हुआ जैसा ही है।

—अज्ञात

काले चरंतस्स उज्जमो सफलो भवति।

उचित समय पर काम करने वाले का ही श्रम सफल होता है।

[प्राकृत] —आचारांग चूर्णि (१।२।५)

खणातीता हि सोचन्ति।

समय चूकने पर पछताना पड़ता है।

[पालि] —सुत्तनिपात (२।२२।३)

काले कालं समायरे।

समय पर समय का उपयोग करना चाहिए।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१।७१)

अण्णो वक्करुन्तिकालो अण्णो कज्जविआरकाले।

हँसने का समय और होता है, काम करने का समय और होता है।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, २।६ के पश्चात्)

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करैगो कब॥

—कबीर

जन्म अकारथ खोइकै, कहा करै जिय साल।
औसर चूकी डोविनी, गावै ताल बेताल॥

—जायसी (मसलानामा, ११)

जेइँ न हाट एहि लीन्ह बेसाहा। ताकहँ आन हाट कित लाहा।

जिसने इस हाट में कुछ मोल नहीं लिया उसे दूसरे हाट में लाभ कहाँ?

—जायसी (पदमावत, ३७)

तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा।
मुएँ करइ का सुधा तड़ागा।
का वरषा जब कृषी सुखाने।
समय चुके पुनि का पछिताने॥

—तुलसी (रामचरितमानस, १।२६१।१-२)

मन पछितैहै अवसर बीते।

—तुलसीदास (विनय-पत्रिका, पद १६८)

अवसर-कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिए का लाख।
दुइज न चन्दा देखिए, उदौ कहा भरि पाख॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३४४)

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति, सुदिन कुदिन दिन दूक॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४४४)

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक॥

—रहीम (दोहावली, २५५)

नीको हू लागत बुरो, बिन औसर जो होय।
प्रात भए फीकी लगै, ज्यों दीपक की लोय॥

—नागरीदास

करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध।
नानक समिओ रमि गयो अब किउ रोवत अंध॥

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

प्रान तृषातुर के रहै, थोरेहूँ जलपान।
पीछे जलभर सहस घट, डारे मिलत न प्रान॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

नीकी[1] पै फीकी लगै बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस शृंगार न सुहात॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

फीकी पै नीकी[2] लगै, कहिए समय बिचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यौं विवाह में गारि॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

प्रत्येक प्राणी को जीवन में केवल एक बार अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर मिलता है, और वही भविष्य का निर्णय कर देता है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद १४)

बीती हुई घड़ियाँ ज्योतिषी भी नहीं देखता।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ५०३)

अवसर के देवता का मुख सन्मुख लटके केशों में छिपा रहता है। उसे पहचानना कठिन होता है परन्तु उसे वश में किया जा सकता है तो केवल अग्र केशों को पकड़ कर। अवसर के सिर का पिछला भाग केशहीन है। सामने से निकल जाने पर उसे सभी पहचान लेते हैं परन्तु गंजे सिर पर हाथ मारने से कुछ हाथ नहीं आता।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ४८)

आग लगने पर कुआँ खोदने से क्या लाभ?

—हिंदी लोकोक्ति

बूँद का चूका घड़े ढलकावे।

—हिंदी लोकोक्ति

वक्त पड़े बाँका, कहे गधे को काका।

—हिंदी लोकोक्ति

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

—हिंदी लोकोक्ति

आछे दिन पाछे गये, हरि से किया न हेत।
अब पछताये होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत॥

—अज्ञात

१. अच्छी। २. अच्छी।

कर गुजरे ऐन वक्त पर जो कुछ भी हो सका
पहले से कोई बात दिल में ठानते नहीं।

—अज्ञात

अगर्चे पेशे ख़िरदमन्द ख़ामुशी अदवस्त
ब वक़्ते मस्लहत आँ बिह्, कि दर सुख़ुन कोशी।
दु चीज़ तुर्रए अक़्लस्त दम फ़रो वस्तन्
वक़्ते गुफ़्तन् ओ गुफ़्तन् ब वक़्ते ख़ामोशी।

यद्यपि बुद्धिमानों के सामने चुप रहना शिष्टाचार है तथापि अवसर के समय यही ठीक है कि तू बोल। दो चीज़ें बुद्धि की लज्जा है—बोलने के समय चुप रहना और चुप रहने के समय बोलना।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

समुझणहार सुजान, नर मौसर[1] चूकै नहीं
अवसर का अहसाण, रहे घणा दिन[2] राजिया।।

[राजस्थानी] —कृपाराम

शत्रु में दोष देखकर बुद्धिमान झट वही क्रोध को व्यक्त नही करते है, अपितु समय को देखकर उस ज्वाला को मन में ही समाये रखते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४८७)

आपकी जिज्ञासा की उत्कटता ही, अभिमुखता की उत्कटता ही, अवसर बन जाती है। अवसर की कोई स्वतंत्र सत्ता नही है कि कोई उसे लाकर आपको देगा।

—विमला ठकार (पावक स्फुलिंग, पृ० १४)

जो कली एक बार पुष्प रूप में स्फुरित हो जाती है वह सदा को मुरझा जाती है।

—उमर ख़ैयाम (रुबाइयाँ)

ठीक स्थान पर दस लोगों के साथ उपस्थित रहना, दस हजार लोगों के साथ अनुपस्थित रहने की अपेक्षा अधिक अच्छा है।

—तैमूरलंग

अपना अवसर पहचानो।

—पित्तकु

हमें अपने जीवन में वीरता दिखाने के अवसर बहुत कम मिलते है, परन्तु कायरता न दिखाने का अवसर नित्य मिलता है।

—रेने फ्राँस्वा वाजाँ

१. अवसर। २. बहुत दिन।

जो अवसर को पकड़ ले वह ठीक व्यक्ति है।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

समय को समय दो।

—इटली की लोकोक्ति

It is not fit that you should sit here any longer! You shall now give place to better men.

अब और अधिक समय तक आपका यहाँ रहना उपयुक्त नहीं है। अब आप और अच्छे लोगों को स्थान दें।

—ओलिवर क्रामवेल (संसद में भाषण, २२ जनवरी, १६५४)

We must beat the iron while it is hot, but we may polish it at leisure.

हमें लोहे को अवश्य ही उस समय पीटना चाहिए जबकि वह गर्म हो किन्तु पालिश करना तो अवकाश के समय हो सकता है।

—ड्राइडेन ('एनिस', समर्पण)

अवसरवादिता

रामाय स्वस्ति, रावणाय स्वस्ति।

राम का भी कल्याण हो, रावण का भी कल्याण हो।

—अज्ञात

अवस्था

ह्यः पश्यद्भिरकारणस्मितसितं पाथोजकोशाकृति-
श्मश्रूद्भेदकठोरमद्य रभसादुत्तप्तताम्रप्रभम्।
प्रातर्जीर्णवलक्षकेशविकृतं वृद्धाजशीर्षोपमं
वक्त्रं नः परिहस्यते ध्रुवमिदं भूतैश्चिरस्थास्नुभिः।।

शैशव में कमल-कोश की आकृति वाला मुखमंडल अकारण हास्य-ज्योति से चमकता है। यौवन मे मूँछों के निकलने से कठिन होकर मुखमंडल सहसा उत्तम ताम्र वर्ण की प्रभा धारण करता है। तत्पश्चात् काल के प्रभाव से श्वेत दाढ़ी-मूँछ वाला मुख बूढ़े बकरे के मस्तक के समान प्रतीत होता है। चिरस्थायी प्राणी यह अवस्था देखकर निश्चय ही परिहास करते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३८६)

अविद्या

अविद्यमाना याविद्या तया विश्वं खिलीकृतम्।

जो अविद्या अविद्यमान है, उसी के द्वारा यह विश्व अभिभूत हो रहा है।

—महोपनिषद् (४।१३३)

अर्ध सज्जन-सम्पर्कादविद्याया विनश्यति।
चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थैश्चतुर्भागं स्वयत्नतः॥

सज्जनों के सम्पर्क से आधी अविद्या नष्ट हो जाती है। उसका चतुर्थांश शास्त्र के विचार से नष्ट हो जाता है और शेष चतुर्थांश अपने यत्न से नष्ट होता है।

—योगवासिष्ठ, (६।उ०।१२।३७)

अविनाशी

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

नाश रहित तो उसको जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत् व्याप्त है क्योंकि इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।१७ अथवा गीता, २।१७)

अविवेक

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका।

—तुलसी (रामचरितमानस, ७।१२१ क)

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

—तुलसी (रामचरितमानस ७।४१)

अविश्वास

जनि पतियाहु मधुर सुनि बातैं, लागे करन समीति।
ऐसी संगति सूर स्याम की, ज्यों भुस पर की भीति॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४२११)

देखैं बने, कहत रसना सौं, सूर बिलोकत और।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१७८)

अविश्वास भी डर की निशानी है।

—महात्मा गांधी (गांधीवाणी)

Distrust that man who tells you to distrust.

उस व्यक्ति पर अविश्वास करो जो तुम्हें अविश्वास करने के लिए कहता है।

—एला विलकाक्स (डिस्ट्रस्ट)

अव्यय

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

तीनों लिंगों में, सब विभक्तियों में और सब वचनों मे परिवर्तित नहीं होता है, वह अव्यय है।

—प्रणवोपनिषद् (३५।१०-११)

अव्यवस्था

अंधेर नगरी चौपट राजा,
टके सेर भाजी टके सेर खाजा[1]।

—हिंदी लोकोक्ति

अंधी पीसे कुत्ता खाय।

—हिंदी लोकोक्ति

अशान्ति

ताहि कि संपति सगुन शुभ सपनेहुँ मन विश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम विमुख रति काम॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ६।७८)

अशिक्षित

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

—अज्ञात

नाहिं पढ़ायो पुत्र को, सो पितु बड़ो अभाग।
सोहत सुत सो बुध-सभा, ज्यों हंसन में काग॥

—दीनदयाल गिरि (दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ० ८२)

अशिष्टता

There cannot be a greater rudeness than to interrupt another in the current of his discourse.

वार्तालाप के प्रवाह के मध्य किसी को हस्तक्षेप करने से बड़ी अशिष्टता नहीं हो सकती।

—जान लाक

अशुभ

अशुभस्य कालहरणं मुहूर्तमपि बहु मन्यन्ते नयवेदिनः।

1. एक प्रकार की मिठाई।

नीतिज्ञ व्यक्ति अशुभ का समय मूहर्त भर को भी टालना वहुत मानते हैं।

—मायुराज (तापसवत्सराज)

असंगति

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति ।।

—विहारी (सतसई)

सोहवत तुझे रक़ीब से मै अपने घर में दाग़
कीधर पतंग, शमअ कहां, अंजुमन कुजा ।

—सौदा

असंतोष

दे० 'अतृप्ति'।

असंभव

विधेर्विलासानब्धेश्च तरंगान् को हि तर्कयेत् ।

विधि के विलास और समुद्र की तरंगों को कौन जान सकता है ?

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ५।३)

नहि सुशिक्षितोऽपि वटुः स्वस्कंधमारोढुं पटुः ।

सुरक्षित वालकमी अपने कंधे पर नहीं चढ़ सकता ।

—संस्कृत लोकोक्ति

अहो चंदहो जोन्ह किं मइलज्जइ दूरि हुअ ।

क्या दूर होने पर चन्द्र की चन्द्रिका मलिन की जा सकती है ?

[अपभ्रंश] —धनपाल (भविसयत्त कहा, २१।३।५७)

असंभव का नाम न लो, इस संभव विश्व में असंभव कहाँ !

—रायकृष्णदास (साधना, पृ० ४२)

इमली के पात पर वरात का डेरा।

— हिंदी लोकोक्ति

दु चीज मुख़ालिफ़े अक्लस्त ख़ुर्दन् वेश अज रिज़्क़े मक़सूम ।
व मुर्दन् पेश अज वक्ते मालूम ।

दो चीज़े वुद्धि के विपरीत है—भाग्य से अधिक खाना और नियत समय से पूर्व मृत्यु ।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, आठवाँ अध्याय)

Asks the Possible to the Impossible, "Where is your dwelling place ?"

"In the dreams of the impotent", comes the answer."

संभव ने असंभव से प्रश्न किया तुम्हारा निवास स्थान कहां हैं ? उत्तर मिला—क्लीव के स्वप्नों में ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रेवर्ड्स, १२६)

The difficult is what takes a little time, the impossible is what takes a little longer.

कठिन वह है जो थोड़ा समय लेता है और असंभव वह है जो कुछ अधिक समय लेता है ।

—फ़्रित्ज़

असत्

विकल्पितं चाप्यसदित्यवस्थितम् ।

जो कुछ दृश्य है वह असत् है—यह वात निश्चित है ।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१६।७)

नो य उप्पज्जए असं ।

असत् कभी सत् नही होता ।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१।१।१६)

असत्य

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति ।

वह पुरुष अपवित्र है जो झूठ वोलता है ।

—शतपथ ब्राह्मण (१।१।१।१)

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।

झूठ बोलने वाले मनुष्य से सव लोग उसी तरह डरते हैं, जैसे सांप से ।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०६।१२)

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे,
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ।।

राजन् ! परिहासयुक्त वचन असत्य होने पर भी हानिकारक नहीं होता । अपनी स्त्रियों के प्रति, विवाह के समय, प्राण-संकट के समय तथा सर्वस्व का अपहरण होते समय

विवश होकर असत्य भाषण करना पड़े तो वह दोषकारक नहीं होता। ये पाँच प्रकार के असत्य पापशून्य कहे गये हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व ८२।१६)

विभेमि न तथा मृत्योर्यथा विभ्येऽनृतादहम्।

मैं मृत्यु से भी उतना नहीं डरता, जितना झूठ से डरता हूं।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ३०२।६)

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥

पृथ्वी ने कहा है—असत्य से बढ़कर दूसरा अधर्म नहीं है। सब कुछ सह सकती हूं झूठे का भार नहीं सह सकती।

—भागवत (८।२०।४)

नावाचालो मृषाभाषी।

जो वाचाल नहीं है, वह मिथ्या नहीं बोलता।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६०)

अणणुवीइ भासी से निग्गंथे समावइज्जा मोसं वयणाए।

जो विचारपूर्वक नहीं बोलता है, उसका वचन कभी-कभी असत्य से दूषित हो सकता है।

[प्राकृत] —आचारांग (२।३।१५।२)

नहि असत्य सम पातक-पुंजा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२८।३)

झूठ विना फीकी लगैं, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलिये, ज्यों आटे में लौन॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ४०२)

झूठ की सूरत देखने में कैसी चिकनी-चुपड़ी होती है।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली, दुर्लभ बन्धु, पृ० २४३)

असत्य अधिक आकर्षक होता है।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, चतुर्थ अंक)

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उस पर क्रोध होने के बजाय स्वयं अपने ही ऊपर अधिक कोप होता है, क्योंकि मैं जानता हूं कि अभी मेरे अन्दर—तह में—असत्य का वास है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, २७-११-१९२१)

सबसे अच्छा तो यही है कि झूठ का कोई जवाब ही न दिया जाए। झूठ अपनी मौत मर जाता है। उसकी अपनी कोई शक्ति नहीं होती। विरोध पर वह फलता-फूलता है।

—महात्मा गांधी, (हरिजन सेवक, २२-६-४०)

तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मैं भी करता हूं; परन्तु जो समाजव्यवस्था झूठ को प्रश्रय देने के लिए ही तैयार की गयी है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण-कार्य करना चाहो, तो तुम्हें झूठ का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० ९९)

झूठ के पाँव नहीं होते।

—हिंदी लोकोक्ति

तब लग झूठ न बोलिए, जब लग पार बसाय।

—अज्ञात

झूठे की कुछ पत नहीं, सज्जन झूठ न बोल।
लाखपती का झूठ से, दो कौड़ी हो मोल॥

—अज्ञात

दरोग़े मस्लहत आमेज बिह् अज रास्ती फ़ित्ना अंगेज॥

उत्पात खड़ा करने वाले सत्य से अधिक उत्तम वह असत्य है जो नीतियुक्त हो।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, ७३)

असत्यवादी जब सत्य बोलता है तो भी उस पर कोई विश्वास नही करता।

—ईसप (नीतिकथाएँ)

मैं असत्य बोलकर, जिससे असत्य बोलता हूँ, उसकी अपेक्षा अपनी अधिक हानि करता हूँ।

—मांतेन (एसेज)

Falsehood has a perennial spring.

असत्य चिरस्थायी स्रोत वाला होता है।

—एडमंड बर्क (अमरीकी करारोपण पर भाषण, १७७४)

असफलता

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

—रहीम (दोहावली, १२९)

उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो रोटी खाता हुआ मिठाई वाले की आवाज़ सुनकर उसके पीछे दौड़े, ठोकर खाकर गिर पड़े, पैसा हाथ से निकल जाए और वह रोता हुआ घर लौट आये।

—प्रेमचंद (रंगभूमि, परिच्छेद १४)

दोनों दीन से गये पाँडे, हलुआ मिले न माँडे।

—हिंदी लोकोक्ति

Often timen the very unrest for the future success causes failure.

वहुधा तो भावी सफलता के सम्बन्ध में व्यग्रता ही असफलता का कारण होती है।

—स्वामी रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन, खण्ड २, पृ० १०)

There is no loneliness greater than the loneliness of a failure. The failure is a strang:r in his own house.

असफलता के एकाकीपन से बड़ा एकाकीपन नहीं है। असफलता अपने ही घर में अपरिचित होती है।

—एरिक हाफ़र (दि पैशनेट स्टेट आफ़ माइंड)

असम-प्रदेश

असम सुकीया देश भारत वुकत
सुकीया जीवन गति आचार विचार
आदि सभ्यतारे परा असमे राखिछे
निजर उज्ज्वल नाम बिक्रम सम्मान
बृहत् बुरंजी जोरा आत्मा सन्मानत
सन्मानित सुप्राचीन असमीया जाति
रीति कृष्टि साहित्य सभ्यता
साज पार आचुतीया नीति।

भारत के वक्ष पर असम एक विशिष्ट देश है। यहाँ की रीति-नीति, जीवन-गति भी विशिष्ट है। आदि-सभ्यता से ही असम ने अपना विक्रम, नाम और सम्मान उज्ज्वल कर रखा है। रीति-नीति, संस्कृति सभ्यता, वेश-भूपा आदि में अपनी विशिष्ट नीति को अपनाए हुए सुप्राचीन असमिया जाति अपने सम्पूर्ण इतिहास में आत्म-सम्मान के कारण सम्मानित है।

[असमिया] —नलिनीवाला देवी (कवि-श्रीमाला, पृ० ११०)

पूर्व भारत तर चिर-उन्नत गौरव मुहुरर
जेउति चराइ रूप—गरिमारे उज्ज्वल रलमल
रस-रङि्याल सपोन-पुरीर कोहिनुर जलमल
शुना, गाओ गीत चिर-सेउजीया अनुपम असमा।

पूर्व भारत के चिर उन्नत गौरव-मुकुट का कान्ति-भूपित रूप-गरिमा से उज्ज्वल, झिलमिल रस-रंगीन स्वपन्न-पुरी का कोहेनूर। सुनो, मैं गाता हूँ गीत चिरश्यामला अनुपमा असम भूमि का।

[असमिया] —अम्बिका गिरिराय चौधुरी (एये मरो अनुपम सोणर असम कविता)

असमानता

हमहि तुम्हहि सरिवरि कसिनाथा।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८२।३)

पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं।

—हिंदी लोकोक्ति

असहायता

मुझे कलंक कालिमाःके कारागार में बंद कर मर्म वाक्य के धुएँ से दम घोंटकर मार डालने की आशा न करो। आज मेरी असहायता मुझे अमृत पिला कर मेरा निर्लज्ज जीवन वढ़ाने के लिए तत्पर है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

असह्य

चेप्पुलोनि रायि चेविलोनि जोरीग
कंटि लोनि नलुसु कालि मुल्लु
इंटि लोनि पोरु निंतिंत गादया।

जूतों में कंकड़, कान में कीड़े का झनकार, आँख में रेत की रेणु, पैर में काँटों की चुभन, घर में लड़ाई-झगड़े—इनको सहन करना बहुत मुश्किल है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

असावधानी

उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।

कार्य-सिद्धि के उपायों में लगे रहने वाले भी असावधानी से अपने कार्यों को नष्ट कर देते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, २।८०)

पश्यस्यद्रौ ज्वलदग्निं न पुनः पादयोरधः।

पर्वत पर जलती अग्नि को तो देखते हो। किन्तु पैर के नीचे की नहीं देखते।

—अज्ञात

आँख बची माल दोस्तों का।

—हिंदी लोकोक्ति

असुर

अद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्य-सुराणां ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते।

इस संसार में जो दान न देने वाला, श्रद्धा न करने वाला और यज्ञ न करने वाला पुरुष होता है, उसे 'असुर' कहा जाता है। यह उपनिषद् असुरों की ही है। वे ही मृतपुरुष के शरीर को भिक्षा, वस्त्र और अलंकार से सजाते हैं और ऐसा मानते हैं कि इसके द्वारा परलोक प्राप्त करेंगे।

—छान्दोग्योपनिषद् (८।८।५)

अस्तित्व

किन्तु हम हैं दीप। हम धारा नहीं है।
स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं है। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लावन होगा। ढहेंगे। सहेंगे।
वह जाएंगे।

—अज्ञेय (हरी घास पर क्षण भर)

न था कुछ, तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता?

जब कुछ भी नहीं था, तब भगवान था। जब कुछ भी नहीं रहेगा, तब वही रहेगा। हाय रे। यह अस्तित्व मुझे ले डूबा। यदि मैं न होता तो क्या होता। भगवान् होता।

—ग़ालिब (दीवान, ३२।१)

Whether we be young or old
Our destiny, our being's heart and home
Is with infinitude, and only there.

हम चाहे युवा हों अथवा वृद्ध, हमारा भाग्य, हमारी अस्मिता का हृदय व घर अनन्तता में होता है और केवल अनन्तता में।

—वर्ड्सवर्थ (दि प्रिल्यूड, ६।६०३)

Still glides the Stream and,
Shall forever glide;
The Form remains,
The Function never dies.

नदी अब भी बहती है और सदैव बहती रहेगी। रूपाकृति सदा रहती है और कार्य कभी नहीं मरता।

—वर्ड्सवर्थ (दि रिवर डुड्डॉन, ३४, आफ़्टर थॉट)

अस्थिर चित्त

दे० 'चंचलता तथा मन'।

अस्पृश्यता-निवारण

पंडित, देखहु मन महँ जानी।
कहुधौं छूत कहाँ ते उपजी,
तबहि छूत तुम मानी।
नादे-बिंदे रुधिर के संगे,
घर ही महँ घर सपचै,
अष्टकवँल होय पुहुमी आया,
छूत कहाँ ते उपजै?
लख चौरासी नाना बासन
सो सब सरि भो मारी,
एकै पाट सकल बैठाये,
छूत लेत धौं का की?
छूतहि जेवन, छूतहि अँचवन,
छूतहि जगत उपाया,
कहहि कबीर, सो छूत-विवर्जित,
जाके संग न माया।

—कबीर

और के छुए लेत हो सींचा,
तुमतें कहो कौन है नीचा?

—कबीर

जो हिन्दू अद्वैतवाद को मानता है, वह अस्पृश्यता को कैसे मान सकता है ?

—**महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ५०)**

अस्पृश्यता सहस्र फनों वाला एक सर्प है और जिसके एक-एक फन में विषैले दाँत हैं। इसकी कोई परिभाषा संभव ही नहीं है। उसे मनुष्य अन्य प्राचीन स्मृतिकारों की आज्ञा से भी कुछ लेना-देना नही है। उसको अपनी निजी और स्थानीय स्मृतियां हैं।

—**महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० २०५)**

आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते है उसके लिए शास्त्र में कोई प्रमाण नहीं है।

—**महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० २१३)**

अस्पृश्य तो वे है जो पापात्मा होते हैं। एक सारी जाति को अस्पृश्य बनाना एक बड़ा कलंक है।

—**महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, दिल्ली की प्रार्थना सभा, २६ अक्तूबर, १९४७, पृ० २७०)**

मत छूना हम तो अछूत है !
हमसे तो पशु भी अच्छे है, उनको छूना पाप नहीं,
लो पुचकार श्वान को चाहे, भूल न छूना हमें कहीं,
निर्धन हैं, पवित्र कैसे हों ? नही मिलेगी मुक्ति हमें,
स्वर्ण-कुटी में आप विचरना, हमें छोड़ दो विप्र यहीं।
क्या हो सकते हम सपूत है ?
दूर रहो हम तो अछूत हैं !

—**श्रीमन्नारायण (रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ० ४२-४३)**

तू इतना भर कह दे कि 'मैं छूऊंगा' कि अस्पृश्यता मर जायेगी।···इतना महँगा कर्तव्य कभी इतना सस्ता नहीं हुआ।

—**विनायक दामोदर सावरकर (सावरकर विचारदर्शन, पृ० १४४)**

अस्पृश्य की व्याख्या आप जानते हैं। प्राणी के शरीर में से जब प्राण निकल जाते हैं, तब वह अस्पृश्य बन जाता है। मनुष्य हो या पशु, जब वह प्राणहीन बनकर शव होकर पड़ जाता है—तब उसे कोई नहीं छूता, और उसे दफनाने या जलाने की क्रिया होती है। मगर जब तक मनुष्य या प्राणि-मात्र में प्राण रहते है; तब तक वह अछूत नहीं होता। यह प्राण प्रभु का एक अंश है और किसी भी प्राण को अछूत कहना भगवान के अंश का, भगवान का तिरस्कार करने के बराबर है।

—**सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० २०६)**

जिसने ईश्वर को पहचान लिया, उसके लिए तो दुनिया में कोई अछूत नहीं है। उसके मन में ऊँच-नीच का भेद नहीं है।

—**सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४२०)**

बचपन में हम जितनी गंदगी करते हैं, वह माता साफ़ करती है। इसी तरह से भंगी हमारी माता का काम करते हैं।

—**सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४३९)**

अपने मंदिरों को अछूतों के लिए खोलकर सच्चे देव-मंदिर बनाइये। आपके ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर के झगड़ों की दुर्गंध भी कँपकँपी लाने वाली है। जब तक आप इस दुर्गंध को नहीं मिटाएँगे, तब तक कोई काम नही होगा।

—**सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० २०२)**

बाल-बाल बिके हैं बेहाल रहते हैं सदा,
इनके बवाल आज भी गये न कूते हैं।
तो भी काठ का-सा है कलेजा हिन्दुओं का बना,
प्यार के न आँसू बंद लोचनों से चूते हैं॥
'हरिऔध, छलछंद छोड़ो लो बादल आँखें,
छीजी जाती जाति के ए सच्चे बलबूते हैं,
छाती से लगा लो कौन छूत इनमें ही लगी,
छूते क्यों नहीं हो यह अछूत तो अछूते हैं।

—**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (मर्मस्पर्श, पृ० १६४)**

एक दिन हम भी किसी के लाल थे,
आँख के तारे किसी के थे कभी।
बूंद भर गिरता पसीना देखकर,
था बहा देता घड़ों लोहू कोई॥
हाय ! हम ने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया प्यार से पाले गये।

जी बचे फूले-फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीचतर माने गये ॥

जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में,
अन्न खाया औ, यहीं का जल पिया।
धर्म हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम है भगवान का ॥

पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय है संसार से जाता रहा।
श्वान छूना भी जिसे स्वीकार है,
हैं उन्हें भी हम अभागों से घृणा ॥

जिस गली से उच्च कुल वाले चलें,
उस तरफ़ चलना हमारा दंड्य है।
धर्म-ग्रन्थों की व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है ॥

छोड़ कर प्यारे पुराने धर्म को,
आज ईसाई मुसलमाँ हम बने।
नाथ, कैसा यह निराला न्याय है,
तो हमें सानन्द सब छूने लगे ॥

जो दयानिधि कुछ तुम्हें आये दया,
तो अछूतों की उमड़ती आह का।
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में,
पाँव जम जावे परस्पर प्यार का ॥

—रामचन्द्र शुक्ल

परम भागवत ऊँचे आर्य,
कहते हैं अपने आचार्य—
"जाति-पाँति पूछे नहीं कोय,
हरि को भजै सो हरि को होय।"

अपने विभु के बाहु विशाल,
शबरी हो या गुह चांडाल।
सोख सूर्य सम सारे पंक,
भर लेते हैं उनको अंक ॥

कुत्ते बिल्ली से भी दूर,
रखे अपने को जो क्रूर,
क्या अचरज यदि उनको अन्य,
समझे घृण्या, असभ्य, जघन्य ॥

बने विधर्मी वे अनजान,
मुसलमान किंवा क्रिस्तान
तो हो जाते हैं सुस्पृश्य,
हा दैव क्या दारुण दृश्य !
दलित बन्धु शुचिता के दूत,
उठो कि छूमन्तर हो छूत।
करो समुन्नति का प्रारंभ,
मिटे द्विजों का मिथ्या दम्भ।
करो हमारा क्यों न विरोध,
पर स्वधर्म पर करो न क्रोध।
रहो स्वच्छता सहित सुदृश्य,
मलिन भाव ही है अस्पृश्य।
जन्म जहाँ चाहे दे दैव,
निज-वश है गुण-कर्म सदैव।
पंकज-रूप-रंग या गन्ध
रखते नहीं पंक-सम्बन्ध।
करो अछूतों का उद्धार,
उन्हें सिखाओ शुद्धाचार ॥

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दुत्व, पृ० १०५-१११)

हिंदू धर्म वेदप्रणीत है और वेदों में अस्पृश्यता के लिए कुछ भी आधार नहीं है।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

अस्पृश्यता वैदिकधर्म को मंजूर नहीं है।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

राष्ट्र का अन्तिम कल्याण होता हो, तो मैं अस्पृश्य लोगों के साथ सभी व्यवहार करने के लिए तैयार हूँ।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

अस्पृश्यता एक रूढ़ि मात्र है। उसे नष्ट करना ही होगा। उसे समाप्त होना ही पड़ेगा।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

भगवान यदि अस्पृश्यता को सहता हो, तो मैं उसे भगवान मानने को ही तैयार नहीं हूँ

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

अहम्

अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः।
परमार्थस्त्वसंलाप्यो वचसां गोचरो न यः ॥

'अहं' तथा 'मम' तथा इनका व्यवहार अर्थात् 'अहन्ता' तथा 'ममता' अविद्या ही है। परमार्थ तो अनिर्वचनीय है क्योंकि वह वाणी का विषय नही है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ४७।७५)

अहंताममतानाशे सर्वथा निरहंकृता।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ॥

अहंता और ममता के नाश से सर्वथा अहम्-विहीन होने पर जब जीव स्वरूपस्थ हो जाता है तो उसे कृतार्थ कहा जाता है।

—वल्लभाचार्य (बालबोध, पृ० ७)

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल विनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २७)

जहाँ राम तहँ मैं नही, मैं तहँ नाँही राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नाँही ठाम ॥

—दादू दयाल (श्री दादू दयालजी की वाणी, पृ० ६२)

तुलसिदास मैं मोर गये विनु जिउ सुख कबहुँ न पावै।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १२०)

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों
लगा गूँजने कानों में।
मैं भी कहने लगा, 'मैं रहूँ'
शाश्वत नभ के गानों में।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

जब किसी जाति का अहं चोट खाता है,
पावक प्रचंड होकर बाहर आता है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १६)

जब कभी अहं पर नियति चोट देती है,
कुछ चीज अहं से बड़ी जन्म लेती है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० २२)

यश तो अहं की तृप्ति है।

—रांगेय राघव (पक्षी और आकाश, पृ० ३८)

वास्तव मे 'मै' ही समाज बनकर उपस्थित होता है। 'मैं' का सम्बन्ध यदि शरीर तक ही होता तो कोई भी किसी राष्ट्रीय महापुरुषों को कितना ही भला-बुरा कहे तो कुछ भी नहीं बिगाड़ता। किन्तु इस 'मैं' में ये महापुरुष कहीं अवश्य विराजमान हैं।

—विश्वनाथ लिमये (मैं या हम, पृ० ४४)

आप ही आप यहाँ, तालिबो[1]-मतलूब[2] है कौन
मैं जो आशिक़[3] हूँ कहा था मुझे मालूम न था।
वजह मालूम पड़ी तुझसे न मिलने की सनम[4]
मैं ही खुद परदा बना था मुझे मालूम न था।

—अज्ञात

ता बा ख़ुदम अज़ अदम कम कम।
चूं बा तो शुदम हमा जहानम् ॥

जब तक मैं 'अहं' हूँ, तब तक मैं नश्वर हूँ और तुच्छ हूँ। परन्तु जब मैं 'तू' हो जाऊँगा तब सारा संसार हो जाऊँगा।

[फ़ारसी] —सनाई

आपु गइआ भ्रमु भउ गइआ जनम मरन दुख जाहि।
गुरमति अलखु लखाईऐ अतम मति तराहि ॥

[पंजाबी] —गुरु नानक (गुरु ग्रन्थ साहब)

हउमै करी ताँ तू नाही तू होवहि हउ नाहि।

यदि अहं भाव करता हूँ तो हे ईश्वर! तू प्राप्त नहीं होता और यदि तू प्राप्त हो जाता है तो अह-भाव नही रह पाता।

[पंजाबी] —गुरु नानक (गुरु ग्रन्थ साहब)

गया गयाँ गल्ल मुकदी नहीं,
भावें कितने पिंड भराय;
'बुल्लेशाह' गल ताईं मुकदी,
जब 'मैं' खड्याँ लुटाय।

गया जाने से बात समाप्त नहीं होती, वहाँ जाकर चाहे तू कितना ही पिंडदान दे। बात तो तभी समाप्त होगी, जब तू खड़े-खड़े इस 'मैं' को लुटा दे।

[पंजाबी] —बुल्लेशाह

मनुष्य जितनी देर अहं से जुड़ा हुआ है, उतनी देर वह दोषयुक्त है, लेकिन उसका वह अहं-बोध घटते ही वह देवत्व की ओर अग्रसर होता है।

—विमलमित्र (जोगी मत जा, पृ० ६५)

---

१. चाहने वाला। २. जिसको चाहा जाए। ३. प्रेम। ४. प्रिय।

अच्छा गृहस्थ, भला सामाजिक मनुष्य, भला देशभक्त होने के लिए शुरू में ही अहं को त्यागना होगा। अहं को त्यागने से ही अहं का विस्तार होता है।

—विमलमित्र (चलते-चलते, पृ० ५१-५२)

The sense of frustration springs from. egoism.

हताशा का भाव अहं-भाव से उत्पन होता है।

—श्रीकृष्णप्रेम (१४ मई १९४६ का एक पत्र)

अहंकार

गुण ममेमं जानातु जनः पूजां करोतु मे।
इत्यहंकारिणामीहा न तु तन्मुक्तचेतसाम् ।।

लोग मेरे इस गुण को जानें और मेरी पूजा करें ऐसी इच्छा अहंकारियों को ही होती है, जिनका चित्त अहंकार से मुक्त है, उनकी नहीं।

—योगवासिष्ठ (निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध)

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रंजयति ।।

अज्ञानी व्यक्ति को प्रसन्न करना सरल है, विद्वान् को प्रसन्न करना उससे भी सरल है, लेकिन ज्ञान के लव मात्र से दुर्विदग्ध मनुष्य को प्रसन्न कर सकना ब्रह्मा के लिए भी असंभव है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ३)

आप्तवाक्यमनादृत्य दर्पेणाचरितं यदि।
फलितं विपरीतं तत् का तत्र परिदेवना ।।

यदि श्रेष्ठ पुरुष के कथन का अनादर कर दर्पपूर्वक कार्य किया जाय तथा वह विपरीत फल दे, तो उसमें शोक क्या है?

—अज्ञात

जब लगि नदी न समुंद समावै, तब लगि बढ़े हंकारा।
जब मन मिल्यौ राम-सागर सूं, तब यह मिटी पुकारा ।।

—रैदास

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाचे संतजन, केवल सांति अधार ।।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, ५३)

चेतना जब आत्मा में ही विश्रान्ति पा जाए, वही पूर्ण अहंभाव है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ७६)

जो हम करते हैं वह दूसरे भी कर सकते हैं—ऐसा मानें। न मानें तो हम अहंकारी ठहरेंगे।

—महात्मा गांधी, (नवजीवन, २९।८।१९२०)

मनुष्य का अहकार ऐसा है कि प्रासादों का भिखारी कुटी का अतिथिदेवता बनना भी स्वीकार नही करेगा।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण)

छोटेपन में अहंकार का दर्प इतना प्रचण्ड होता है कि वह अपने को ही खण्डित करता रहता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (चारुचन्द्रलेख, पृ० ३४२)

यह दुनिया एक है। अनेकों ऐसी-ऐसी असंख्य दुनियाओं में से एक है। मैं उस पर का एक नगण्य बिन्दु हूँ। फिर अहंकार कैसा!

—जैनेन्द्रकुमार (परख, पृ० ११)

हम दुर्बल मनुष्य राग-द्वेष से ऊपर रहकर कर्म करना नहीं जानते, अपने अभिमान के आगे जाति के अभिमान को तुच्छ समझ बैठते हैं।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी' (प्रतिशोध, पृ० ४०)

थोथा चना, बाजे घना।

—हिंदी लोकोक्ति

जागृति का जो विस्मरण है वही स्वप्नसृष्टि का विस्तार है। वस्तु से विमुख जो अहंकार है वही त्रिगुणात्मक संसार है।

—एकनाथ (एकनाथी भागवत)

आत्मस्वरूप को भूलकर जो अहंभाव उठता है वही अहंकार है, जो विकार से त्रिगुण को क्षुब्ध करता है।

—एकनाथ (एकनाथी भागवत)

अहंकार करने के लिए सत्य का उपयोग, सत्य का अपमान है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (भारतीय समाज, जीवन और आदर्श, पृ० ११२)

अहंकार किसी का ऋणी नहीं होना चाहता और स्व-प्रेम किसी का ऋण चुकाना नहीं चाहता।

—ला रोशेफ़ूकाल्ड (मैक्जिम्स)

Conceit in weakest bodies strongest work.
दुर्बलतम शरीरों में अहंकार प्रबलतम होता है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, ३।४)

अहिंसा

मा हिंसीः पुरुषं जगत्।
मनुष्य और जंगम पशुओं की हिंसा मत करो।

—यजुर्वेद (१६।३)

अहिंसा परमो धर्मः।
अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है।

—वेदव्यास, (महाभारत आदि पर्व, ११।१३)

प्राणिनामवधस्तात ! सर्वज्यायान् मतो मम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन्॥
तात ! मेरे विचार से प्राणियों की हिंसा न करना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। किसी की प्राण-रक्षा के लिए झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, किन्तु उसकी हिंसा किसी तरह न होने दे।

—वेदव्यास, (महाभारत, कर्ण पर्व, ६६।२३)

यत् स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्॥
सिद्धान्त यह है कि जिस कार्य में हिंसा न हो, वही धर्म है। महर्षियों ने प्राणियों की हिंसा न होने देने के लिए ही धर्म का प्रवचन किया है।

—वेदव्यास, (महाभारत, कर्ण पर्व, ६६।५७)

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥
अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम सत्य है, क्योंकि उससे धर्म प्रवर्तित होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ११५।२३)

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥
अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है तथा अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है तथा अहिंसा परम सुख है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ११६।२८-२६)

सव्वे पाणा पिआउया, सुहसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो, जीविउ कामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं, नाइवाएज्ज कंचणं।
सब को अपने प्राण प्यारे है। सबको सुख अच्छा लगता है और दुःख बुरा। सबको वध अप्रिय है और जीवन प्रिय है। सब प्राणी जीवन चाहते हैं। सबको जीवन प्रिय है। अतः किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।३)

काहे को दुख दीजिए, साईं है सब माँहि।
'दादू' एकै आतमा, दूजा कोई नाँहि।

—दादूदयाल

अहिंसात्मक युद्ध में अगर थोड़े भी मर मिटने वाले लड़ाके होंगे तो वे करोड़ों की लाज रखेंगे और उनमें प्राण फूकेंगे। अगर यह मेरा स्वप्न है, तो भी मेरे लिए मधुर है।

—महात्मा गांधी, (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४१, पृ० ३१७)

अहिंसापूर्वक सत्य का आचरण करके आप संसार को अपने चरणों में झुका सकते हैं।

—महात्मा गांधी, (यंग इंडिया, १०-३-१६२०)

अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १५-१०-२५)

मेरी अहिंसा का सिद्धान्त एक अत्यधिक सक्रिय शक्ति है। इसमें कायरता तो दूर, दुर्बलता तक के लिए स्थान नहीं है। एक हिंसक व्यक्ति के लिए यह आशा की जा सकती है कि वह किसी दिन अहिंसक बन सकता है, किन्तु कायर व्यक्ति के लिए ऐसी आशा कभी नहीं की जा सकती। इसी लिए मैंने इन पृष्ठों में अनेक बार कहा है कि यदि हमें अपनी, अपनी स्त्रियों की, और अपने पूजास्थानों की रक्षा सहनशीलता की शक्ति द्वारा अर्थात् अहिंसा द्वारा करना नहीं आता, तो अगर हम मर्द हैं तो, हमें इन सबकी रक्षा लड़ाई द्वारा कर पाने में समर्थ होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, सितम्बर, १६२७)

अहिंसा श्रद्धा और अनुभव की वस्तु है, एक सीमा से आगे तर्क की चीज़ वह नहीं है।

—महात्मा गांधी (हरिजन, १२।१०।३५)

सत्यमय बनने का एकमात्र मार्ग अहिंसा ही है।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, पृ० ४३२)

अहिंसा केवल बुद्धि का विषय नहीं है, यह श्रद्धा और भक्ति का विषय है। यदि आपका विश्वास अपनी आत्मा पर नहीं है, ईश्वर और प्रार्थना पर नहीं है, तो अहिंसा आपके काम आने वाली चीज़ नहीं है।

—महात्मा गांधी (गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग, २७-३-१९३८)

अहिंसा परम श्रेष्ठ मानव-धर्म है, पशुबल से वह अनन्त गुना महान् और उच्च है।

—महात्मा गांधी

जो बात शुद्ध अर्थशास्त्र के विरुद्ध हो, वह अहिंसा नहीं हो सकती। जिसमें परमार्थ है वही अर्थशास्त्र शुद्ध है। अहिंसा का व्यापार घाटे का व्यापार नहीं होता।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० २०२)

अहिंसा और प्रेम एक ही चीज है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, १९)

हिंसा का अहिंसा से प्रतिशोध करने के लिए महाप्राण चाहिए।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी' (अमर आन, पृ० ७८)

अहिंसा कायरता के आवरण में पलने वाला कर्तव्य नहीं है। वह प्राण-विसर्जन की तैयारी में सतत जागरूक पौरुष है।

—मुनि नथमल (श्रमण महावीर, पृ० १६१)

परुल हिंस सेयकुन्ना परमधर्म मंते चालु
परुलनु रक्षितुं ननि पल्क नेटिके।

दूसरों को कष्ट न पहुँचाना ही परम धर्म है। दूसरों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की आवश्यकता नहीं है।

[तेलुगु] **—रामदास (रामदासु चरित्र)**

जो कोई तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर दूसरा गाल भी कर दे।

—नवविधान (मत्ती, ५।३९)

जीवन छोटे जीवों की रक्षा से सफल होता है, उनके नाश से नहीं।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियां, पृ० ६७)

आ

आँख

दे० 'नेत्र'।

आंदोलन

सामर्थ्य आहे चळवळीचे। जो जो करील तयाचे।
परि तेथे भगवंताचे। अधिष्ठान पाहिजे।

आंदोलन में सामर्थ्य है और जो-जो आंदोलन करेगा उसे अनुभव होगा, परन्तु वहाँ ईश्वर का अधिष्ठान होना चाहिए।

[मराठी] —समर्थ रामदास

आँसू

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥

प्रियजनों में दृढ़ हुए प्रेम को छोड़ना कठिन है। बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नया-सा हो जाता है। इस दशा में आँसू बहाना ही एकमात्र उपाय है। इससे प्रिय जन के प्रेम से उऋण होकर मन प्रसन्न होता है।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ४।७)

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ॥

—रहीम

बिन देखे दुख के चलैं, देखे सुख के जाहिं।
कहो लाल इन दृगन तें, अंसुवा क्यों ठहराहिं?

—मतिराम (मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ३२६)

गोपिन के अँसुवान के नीर जे मोरी बहे बहिकै भये नारे।
नारे भये नदिया बढ़कै नदिया नदते भये फाट करारे।
वेगि चलो तो चलो उतको कवि 'तोप' कहें ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिन्धु भये पुनि सिन्धु ते ह्वै हैं जलाहल सारे॥

—तोष

डरो न इतना, धूल धूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार।
धो डाला है इनको प्रियवर, इन आँखों के आँसू द्वार॥

—जयशंकर प्रसाद (झरना, खोलो द्वार, पृ० १७)

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ११)

उच्छ्वास और आँसू में
विश्राम थका सोता है।
रोई आँखों में निद्रा
बनकर सपना होता है।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ५३)

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन-सा
आँसू इस विश्व-सदन में।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ७९)

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० १४)

यह सच, आँसू ही से धुलकर
होता मानव का मुख पावन।

—सुमित्रानंदन पंत (पतझर)

अश्रु हैं नयनों के शृंगार।

—महादेवी वर्मा (नीहार, पृ० ७५)

कोई यह आँसू आज माँग ले जाता !

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, कविता २४)

क्यों अश्रु नहीं शृंगार मुझे ?

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, कविता ३५)

क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है, या यों कहिए कि आँसू अव्यक्त भावों ही का रूप हैं।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प)

शोक के समान हम हर्ष में भी रोते हैं,
अश्रु तीर्थ में ही सुख-दुःख एक होते है।

—मैथिलीशरण गुप्त (यशोधरा, पृ० १३७)

आँसू भी समय-असमय की बात जानते हैं।

—सियारामशरण गुप्त (नारी, पृ० २९)

आँसू में जीवन तरंगित होता रहता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (मेघदूत एक पुरानी कहानी)

वह लोक कितना नीरस और भोंडा होता होगा जहाँ विरह-वेदना के आँसू निकलते ही नहीं और प्रिय-वियोग की कल्पना से जहाँ हृदय में ऐसी टीस पैदा ही नहीं होती, जिसे शब्दों में व्यक्त न किया जा सके।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (मेघदूत एक पुरानी कहानी)

'सागर' की बस याद दिलाते नयनों में दो जल-कण खारे !

—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० ७१)

संसार में आँसू की जो महिमा है, वह आँखों की भी शायद ही हो, आँख यदि ज़हर है, तो आँसू अमृत। एक यदि रूप है तो दूसरा स्वरूप।

—श्रीरंजन सूरिदेव (मेघदूत : एक अनुचिंतन, पृ० ९४)

जितना मिलना है मिल लो,
जितना रोना है रो लो।
वैभव के सुख-सपनों को,
आँसू के जल से धो लो॥

—श्यामनारायण पाण्डेय (जौहर)

यौवन की मादकताएँ
जल हुई विकल होने से।

—श्यामनारायण पाण्डेय (जौहर, १९वीं चिनगारी)

उसके स्वरूप की सुधा ही नेत्र-नीर है।

—गोपालशरण सिंह (कविता 'वह')

जीवन की रामायण पढ़कर, पाया हमने यही ज्ञान है।
साधनहीन समस्याओं का केवल आँसू समाधान है॥

—रामावतार त्यागी (आज के लोकप्रिय कवि, पृ० १०२)

जो औरों के लिए रोते हैं, उनके आँसू भी हीरों की चमक को हरा देते हैं।

—रांगेय राघव (पाँच गधे, पृ० ५७)

प्रेम से प्रेम करने वाली आँख का पानी जब घास पर पड़ता है तो ओस का हीरा बनकर चमकता है, जब इन्सान पर जुल्म देखा है तो अंगारा बन कर गिरता है, जब दर्द देखकर गिरता है तो लहू की बूंद बनकर, और जब इन्सान को भूखा देखता है तो वह गेहूँ बन जाता है। और नफ़रत से प्रेम करने वाली आँखों का पानी जब घास पर पड़ता है तो घास झुलस जाती है, जब इन्सान पर जुल्म देखता है तो उसमें बर्फ की-सी बेदिल ठंडक आ जाती है, जब दर्द देखकर गिरता है तो बन्दूक की गोली बनकर, और जब इन्सान को भूखा देखता है तो वह गुलामी का दस्तावेज़ बन जाता है।

—रांगेय राघव (पाँच गधे, पृ० १०६-१०७)

आँसू से भरने पर आँखें
और चमकने लगती हैं।
सुरभित हो उठता समीर
जब कलियाँ झड़ने लगती हैं।

—अज्ञेय (पूर्वा, 'लक्षण' कविता)

मुत्तसिल[1] रोते ही रहिये तो बुझे आतिशे दिल[2]
एक दो आँसू तो और आग लगा देते है।

—मीर

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सबने कह-कहकर।
हुए थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह-बहकर॥

—सौदा

आँसू तो बहुत से हैं, आँखों में 'जिगर' लेकिन।
बिंध जाए सो मोती है, रह जाए सो दाना है।

—जिगर

१. निरन्तर। २. हृदयाग्नि।

आँसू गिरा जो आँख से तक़दीर ने कहा—
"मिलते हैं देख ख़ाक में यूँ आबरूपसन्द"[1]।
—दाग़

आता है अब तो जोफ़[2] में आँसू भी इस तरह
जैसे मुसाफ़िर आये थका माँदा राह का।
—दाग़

निवाओ वासनावह्नि नयनरे नीरे।

आँख के जल से वासना की आग बुझा दो।

[बँगला] **—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, निष्फल कामना)**

दुखेरे मिलन टूटीवार नय
नहि आर भय नाहि संशय,
नयन सलिले जा हासि फूटेगी
रय लाहाद्य चिर दिन रय।

दुख से होने वाला मिलन टूटने वाला नही है। इसमें न भय है और न संशय। आँसुओ से जो हँसी फूटती है वह रहती है, रहती और चिर दिन रहती है।

[बँगला] **—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (मायार खेला)**

बिफलता लैये एइ रचिलों जीवन-गीति
सरि परे टुचकुर नीर,
विशाल विश्वत माथों नयनर लोरे मोर
उपचिले सागरर तीर।

विफलता को लेकर ही इस जीवन-संगीत की मैंने रचना की है। दोनों आँखों से आँसू की बूँदें टपकती है। इस विशाल विश्व में केवल नयनाश्रुओं से ही मेरा सागर-तट भर गया।

[असमिया] **—नलिनीबाला देवी (कवि-श्रीमाला, पृ० ८६)**

कभी-कभी आँसुओं में शब्दों का वज़न होता है।
—ओविड

It is the tears of the earth that keep her smiles in bloom.

धरती के आँसू ही उसकी मुस्कानों को खिलाते हैं।
—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ४)

आकर्षण

बशीरीं जबानी व लुत्फ़ो ख़ुशी
तवानी कि फ़ीले बमूये कशी।

मधुर वाणी, प्रेम और प्रसन्नता से तू कितने भी बलवान हाथी को एक बाल से खींच सकता है।

[फ़ारसी] **—शेख़ सादी**

When a rose blooms, there is no sca city of bees. Where there is honey, ants must seek it.

जब गुलाब खिलता है, तब मधु-मक्खियों की कमी नहीं रहती। मधु होगा तो चींटियाँ उसे खोजेंगी ही।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ गाड रियलाइजेशन, खण्ड २, पृ० १३६)

Every ship is a romantic object except that we sail in.

जिस जहाज़ में हम यात्रा कर रहे हों, उसके अतिरिक्त प्रत्येक जहाज़ रोमानी वस्तु होता है।

—एमर्सन (एसेज, भाग २, १८४४)

आकांक्षा

दे० 'इच्छा'।

आकाश

आकाशो वाव तेजसो भूयः।

आकाश ही तेज की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१२।१)

आकृति

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम्।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम्॥

कोई अपने आकार को कितना भी छिपाए, उसके भीतर का भाव कभी छिप नही सकता। बाहर का आकार पुरुषों के आन्तरिक भाव को बलात् प्रकट कर देता है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, १७।६४)

अन्तरंगमनुभावमाकृतिः संयमो गुरुकुलं श्रुतं शमः।
वागियं च तव तात सौष्ठवं साधु सेधयति मार्दवं क्षमा॥

हे तात! तुम्हारी यह आकृति मन के भावों को बता रही है, आत्मनियंत्रण महान् कुल को, शान्ति शस्त्र-ज्ञान को, वचन शिष्टता को और सहिष्णुता कोमलता को भली-भाँति प्रकट कर रही है।

—धनंजय (द्विसंधान महाकाव्य, १०।२३)

---
१. सम्मान-प्रिय। २. दुर्बलता।

उपकारसमर्थस्य तिष्ठन् कार्यातुरः पुरः।
मूर्त्या यामार्त्तिमाचष्टे न तां कृपणया गिरा ॥

कार्यार्थी मनुष्य उपकार करने में समर्थ मनुष्य के सामने पहुँचकर जितना अपनी रूपाकृति से कह जाता है, उतना वह कृपण वाणी से नहीं कह सकता।

—अज्ञात

बयाँ कर दी मेरी सूरत ने सब कैफ़ियतें दिल की।

—'जिगर' मुरादाबादी (आज की उर्दू शायरी)

आक्षेप

हीनांगानतिरिक्तांगान् विद्याहीनान् विगर्हितान्।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥

हीन अंग वाले, अधिक अंग वाले, विद्याहीन, निन्दित रूपहीन, धनहीन तथा बलहीन मनुष्यों पर आक्षेप नहीं करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १०४।३५)

आग

दे० 'अग्नि'।

आचरण

दे० 'व्यवहार'।

आचार

दे० 'सदाचार'।

आचार्य

वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो हतदाम्भिकाः।
सम्यग्विनीतामृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥

वृद्ध, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, दंभहीन, अति विनम्र तथा मृदु स्वभावशील को आचार्य कहते है।

—मत्स्य पुराण (१४४।२९-३०)

जह दीवा दीवसय, पईप्पए सो य दीप्पए दीवो।
दीवसमा आयरिया, अप्पं च परं च दीवंति ॥

जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशमान होता हुआ अपने स्पर्श से अन्य सैकड़ों दीपक जला देता है, उसी प्रकार सद्गुरु आचार्य स्वयं ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित होते हैं एव दूसरों को प्रकाशमान करते हैं।

—आचार्य भद्रबाहु (उत्तराध्ययन, निर्युक्ति,)

जं देइ दिक्ख सिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा।

जो कर्म को क्षय करने वाली शुद्ध दीक्षा और शुद्ध शिक्षा देता है, वह आचार्य है।

—आचार्य कुंदकुंद (बोध पाहुड, १६)

जो सांगोपांग वेदविद्याओं का अध्याचार, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह 'आचार्य' कहाता है।

—स्वामी दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश)

आज्ञा

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।

गुरुजनों की आज्ञा पर तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए।

—कालिदास (रघुवंश, १४।४६)

गुरु-पितु-मातु-स्वामि-हित बानी।
सुनि, मनमुदित करिअ, भल जानी ॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस, २।१७७।२)

आज्ञा का उल्लंघन सद्गुण केवल तभी हो सकता है जब वह किसी अधिक ऊँचे उद्देश्य के लिए किया जाये और उसमें कटुता, द्वेष या क्रोध न हो।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १०-११-१९२०)

आज्ञा देने की क्षमता प्राप्त करने से पहले प्रत्येक व्यक्ति को आज्ञापालन करना सीखना चाहिए।

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग ४, पृ० २५५)

आडम्बर

बेष बिसद बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइए, भए बिषय जल मीन ॥

—तुलसीदास (दोहावली, १५३)

अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्त्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३९)

सचमुच संसार बड़ा आडम्बर-प्रिय है !

—जयशंकर प्रसाद (छाया, पृ० १२६)

मनुष्य के भीतर जो कुछ वास्तविक है, उसे छिपाने के लिए जब वह सभ्यता और शिष्टाचार का चोला पहनता है, तब उसे सम्हालने के लिए व्यस्त होकर कभी-कभी अपनी आँखों में ही उसको तुच्छ बनना पड़ता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १७०)

तुम लोग इज्जतों में और पदों में रहकर जाने किन-किन व्यर्थताओं को अपने साथ लपेट लेते हो और उनमें गौरव मानते हो। यह सब तुम लोगों की झूठी सभ्यता है, ढकोसला है। फिर कहते हो, हम सच को पाना चाहते हैं। तुम्हारा सच कपड़ों में है, लिबास में है और सच्चाई से डरने में है।

—जैनेन्द्र कुमार (मुक्तिबोध, पृ० ७६)

जितने भी अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होते है वे सब अनायास ही नम्रतापूर्वक और बिना किसी आडम्बर के हुआ करते है। न तो हल चलाने का कार्य और न इमारत बनाने या पशु चराने या सोचने के कार्य ही वर्दी पहनकर, दीपों की चमक-दमक मे और तोपों की गर्जन के बीच किए जा सकते हैं। इसके विपरीत दीपो की जगमगाहट, तोपों की गड़गड़ाहट, संगीत, वर्दी, सफ़ाई और चमक-दमक यह प्रकट करते हैं कि उनके बीच जो कुछ भी हो रहा है वह सब महत्त्वहीन है। महान् और सच्चे कार्य सदा सरल और विनम्र होते हैं।

—'तोल्सतोय' (ह्वाट शैल वी डू देन)

आततायी

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥

गुरु, बालक, वृद्ध या बहुश्रुत ब्राह्मण भी आततायी होकर आता हो तो उसे बिना विचार किए (तत्काल) मार देना चाहिए।

—मनुस्मृति (८।३५०)

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति॥

सबके सामने या एकान्त में आततायी का वध करने में वधकर्ता को दोष नहीं होता है क्योंकि क्रोध उस क्रोध को बढ़ाता है।

—मनुस्मृति (८।३५१)

आततायित्वमापन्नो ब्राह्मणः शूद्रवत् स्मृतः।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन्॥

आततायिभाव को प्राप्त ब्राह्मण शूद्रवत् समझा जाता है। आततायी के वध में कोई दोष नहीं होता है।

—शुक्रनीति (४।३२५)

उद्यम्य शस्त्रमायान्तं भ्रूणमप्याततायिनम्।
निहत्य भ्रूणहा न स्यादहत्वा भ्रूणहा भवेत्॥

मारने के लिए शस्त्र उठाये हुए आततायी बालक को भी मार कर 'भ्रूणहा'[1] नहीं कहा जाएगा अपितु उसे नहीं मारने से वह 'भ्रूणहा' होगा।

—शुक्रनीति (४।३२६)

उद्यतासिर्विषाग्निभ्यां शापोद्यतकरस्तथा।
आथर्वण हन्ता च पिशुनश्चापि राजनि॥
भार्यारिक्थापहारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः।
एवमाद्यान्विजानीयात् सर्वानेवाततायिनः॥

मारने के लिए उद्यत तलवार वाला, विष लिये हुए, अग्नि लिये हुए, शाप देने के लिए उद्यत हाथ वाला, तंत्र-विधि से मारने वाला, राजा से चुगली करने वाला, स्त्री या धन का अपहरण करने वाला, सर्वदा दोषान्वेषण में तत्पर इत्यादि लोगों को आततायी ही जानना चाहिए।

—मनुस्मृति में प्रक्षिप्त श्लोक

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिनः॥

आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र हाथ में लिये किसी का वध करने को उद्यत, धन का, खेत का और पत्नी का अपहरण करने वाला— ये छह आततायी बतलाये गए हैं।

—मनुस्मृति में प्रक्षिप्त श्लोक

वाखर घउनि आलें। त्यासी तरवारेनें हालें॥

जो शत्रु हाथ में शस्त्र लेकर आया है, उसे तलवार से ही नष्ट करना चाहिए।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ७८१)

आतुरता

अर्थातुराणां न गुरुर्न बन्धुः, कामातुराणां न भयं न लज्जा।
विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा, क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला॥

[1] गर्भनाशक, बाल-हत्यारा।

धन के लिए अधीर व्यक्ति के लिए न कोई गुरु होता है, न भाई। कामान्ध के लिए न भय होता है, न लज्जा। विद्या प्राप्त करने के लिए व्याकुल व्यक्ति के लिए न सुख होता है, न नींद। भूखे व्यक्ति के लिए न (पदार्थों में) रुचि की बात होती है और न (भोजन) वेला की।

—अज्ञात

प्रीत न जाने जात-कुजात,
नीद न जाने टूटी खाट।
भूख न जाने बासी भात,
प्यास न जाने धोबी घाट॥

—हिंदी लोकोक्ति

उकतानी कुम्हारी, नाखून से मिट्टी खोदे।

—हिंदी लोकोक्ति

आत्मकथा

सुनकर क्या तुम भला करोगे—मेरी भोली आत्मकथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा॥

—जयशंकर प्रसाद (लहर)

No man's story of his own life can fail to be of interest to others, if it is written in sincerity.

किसी व्यक्ति की भी आत्मकथा, यदि निष्ठापूर्वक लिखी गयी है, तो अन्यों को रुचिकर होगी ही।

—डॉ० राधाकृष्णन् (दि फ़िलासफ़ी आफ़ सर्वपल्लि राधाकृष्णन्, पृ० ५)

Evry artist writes his own autobiography.

हर कलाकार अपनी ही आत्मकथा को अंकित करता है।

—हेनरी हैवलाक एलिस (दि न्यू स्प्रिट, टालसटाय द्वितीय)

आत्मज्ञान

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति॥

इस शरीर में रहते हुए ही यदि हम उसे (आत्मा को) जान लेते हैं तो ठीक है, यदि उसे नहीं जाना तो बड़ी हानि है। जो उसे जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते है, किन्तु दूसरे लोग तो दुःख को ही प्राप्त होते हैं।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।१४)

विज्ञानात्मा तथा देहे जाग्रतस्वप्नसुषुप्तितः।
मायया मोहितः पश्चाद्बहुजन्मान्तरे पुनः॥
सत्कर्म परिपाकात्तु स्वविकारं चिकीर्षति।
कोऽहं कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः॥

आत्मा अपने मूल रूप में विज्ञानमय होता है, पर देह में आकर वह मायावश जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं को प्राप्त होकर विमोहित हो जाता है। कितने ही जन्मों के पश्चात् जब शुभ कर्म उदय होते हैं, तब उसके भीतर अपने विकारों को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं वास्तव में कौन हूँ और यह दोषमय संसार कहाँ से आ गया ?

—योगकुण्डल्युपनिषद् (३।२७-२८)

आत्माज्ञानाज्जगद् भाति आत्मज्ञानान्न भासते।
रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद् भासते न हि॥

आत्म-अज्ञान से जगत् प्रतीत होता है, आत्मज्ञान से प्रतीत नहीं होता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प प्रतीत होता है, रस्सी के ज्ञान से प्रतीत नहीं होता है।

—अष्टावक्र गीता (२।७)

न हि दीपान्तरापेक्षा यद्वद् दीपप्रकाशने।
बोधस्यात्मस्वरूपत्वान्न बोधोऽन्यस्तथेष्यते॥

जिस प्रकार दीपक को प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य दीपक की अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार बोध आत्म-स्वरूप होने के कारण उसे किसी अन्य बोध की अपेक्षा नहीं होती।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१७।४१)

अधीत्य चतुरो वेदान् व्याकृत्याष्टादश स्मृतीः।
अहो श्रमस्य वैफल्यम् आत्मापि कलितो न चेत्॥

चारों वेद पढ़कर, अठारह स्मृतियों का विवेचन करके भी यदि आत्मा को नहीं जाना, तो यह श्रम भी व्यर्थ है।

—शार्ङ्गधर पद्धति

इतो न किंचित् परतो न किंचिद्
यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्यमाणं हि जगन्न किंचित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किंचिद्॥

यहाँ कुछ नहीं है। वहाँ कुछ नहीं है, जिधर जाता हूँ, वहाँ भी कुछ नहीं है विचार करने पर जगत् कुछ नहीं है। आत्मज्ञान के अतिरिक्त यहाँ कुछ भी नहीं है।

—अज्ञात

ण याणंति अप्पणो वि, किन्तु अण्णेसिं।

जो अपने को ही नही जानता, वह दूसरों को तो क्या जानेगा !

[प्राकृत] —आचारांग चूर्णि (१।३।३)

काहे री नलिनी तू कुमिलानी,
तेरे ही नालि सरोवर पानी ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०८)

परान परान पर गयि खोली
खर गयि किताब बोर ह्यथ,
यिम दिल निश बाखबर गयि
तिम नर गयि तार तरिथ व्यथ।

पोथी पढ़-पढ़कर तुम शक्तिहीन हो गये और गधे तुम्हारी पोथियों के ढेर ढो गए किन्तु फिर भी आत्मज्ञान तुम्हें प्राप्त न हो सका। जो मन की गहराई में खोकर उसके रहस्य को जान गये, वे ही नर भवसागर को पाकर गये।

[कश्मीरी] —शेख नूरुद्दीन

अपनी आत्मा को जानो, अपने वास्तविक आत्मा को ईश्वर जानो और उसे अन्य सब के आत्मा के साथ एक जानो।

—अरविन्द (गीता-प्रबन्ध)

देवों से प्राप्त उक्ति है—'स्वयं को जानो।'

—डेल्फी के मन्दिर पर यूनानी में अंकित

आत्मज्ञानी

लोकत्रयेऽपि कर्तव्यं किंचिन्नास्यात्मवेदिनाम्।

आत्मज्ञानियों के लिए तीनों लोकों में भी कोई कर्तव्य नहीं है।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (१।२४)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

जो सब प्राणियों की रात्रि होती है, उसमें संयमी मनुष्य जागता है और जिस अवस्था में सब प्राणी जागते हैं, वह तत्त्वज्ञ मुनि की रात्रि होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।६९ अथवा गीता, २।६९)

आत्मानमद्वयं कश्चिज्जानाति जगदीश्वरम्।
यद् वेत्ति तत् स कुरुते न भयं तस्य कुत्रचित् ॥

दुर्लभ आत्मज्ञानी व्यक्ति स्वयं को अद्वय और जगदीश्वर जानता है। जो करने योग्य समझता है उसे करता है, उसके लिए कहीं भी भय नहीं है।

—अष्टावक्रगीता (४।६)

किमिवावसादकरमात्यवताम्।

आत्मज्ञानियों के लिए कौन-सी वस्तु दुःखकारक है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ६।१९)

आह ! कितना शान्तिपूर्ण हो जाता है उस व्यक्ति का कर्म जो मनुष्य की ईश्वरता से सचमुच अवगत हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता, सिवाय इसके कि वह लोगों की आँखें खोलता रहे। शेष सब अपने आप हो जाता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ० १२७)

आत्मतत्त्व

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥

जो मानता है कि आत्मतत्त्व जानने में नहीं आता, उसका वह जाना हुआ है। जो मानता है कि (आत्मतत्त्व) जाना हुआ है, वह नहीं जानता। जिसमें जानने का अभिमान है, उनके लिए वह अविज्ञात है। जिनमें जानने का अभिमान नहीं है, उनके लिए वह विज्ञात है।

—केनोपनिषद् (२।३)

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

यदि तुमने इस मनुष्य-जन्म में आत्मतत्त्व को जान लिया तो कुशल है। यदि यहाँ नहीं जाना तो महाविनाश है।

—केनोपनिषद् (२।५)

त्वयि सर्वमिदं प्रोतं जगत् स्थावरजंगमम्।
बोधे नित्योदिते शुद्धे सूत्रे मणिगणा यथा ॥
न जायसे न म्रियसे त्वमजः पुरुषो विराट्।
चिच्छुद्धा जन्ममरणभ्रान्तयो मा भवन्तु ते ॥

जैसे सूत में मणियां पिरोयी होती है, उसी प्रकार नित्य

प्रकाशमान शुद्धबुद्धस्वरूप तुममें यह सारा चराचर जगत् पिरोया हुआ है। तुम्हारा न जन्म होता है न मृत्यु। तुम अजन्मा हो, अन्तर्यामी और विराट पुरुष हो। शुद्ध चैतन्य ही तुम्हारा स्वरूप है।

—योगवासिष्ठ (उपशम प्रकरण, २६।४७-४८)

अहं ब्रह्मास्मि सर्वोऽस्मि शुद्धो बुद्धोऽस्म्यतः सदा।
अजः सर्वत एवाहमजरश्चाक्षयोऽमृतः॥

मैं ब्रह्म हूँ, मैं सर्वरूप हूँ, अतः मैं सदा ही निर्विकार और बोध-स्वरूप हूँ। सब ओर से अजन्मा तथा अजर-अमर और अक्षय हूँ।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१३।१८)

मदन्यः सर्वभूतेषु बोद्धा' कश्चिन्न विद्यते।
कर्माध्यक्षश्च साक्षी च चेता नित्योऽगुणोऽद्वयः॥

सम्पूर्ण प्राणियों में मुझसे भिन्न कोई और योद्धा नहीं है, तथा मैं समस्त कर्मो का द्रष्टा, साक्षी, प्रकाशक, नित्य, निर्गुण और अद्वय हूँ।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१३।१६)

न सच्चाहं न चासच्च नोभयं केवलः शिवः।
न मे संध्या न रात्रिर्वा नाहर्वा सर्वदा दृशेः॥

मैं न सत् हूँ, न असत् हूँ और न उभयरूप हूँ। मैं तो केवल शिव हूँ। न मेरे लिए संध्या है, न रात्रि है, और न दिन है, क्योंकि मैं नित्य साक्षीस्वरूप हूँ।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१३।२०)

आत्मलाभः परो लाभ इति शास्त्रोपपत्तयः।
अलाभोऽन्यात्मलाभस्तु त्यजेत्तस्मादनात्मताम्॥

आत्मलाभ ही परम लाभ है—ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है। अन्य पदार्थो का लाभ तो अलाभ ही है। इसलिए अनात्मबुद्धि का त्याग करना चाहिए।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१६।४४)

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥
भजगोविन्दं भजगोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते!

हे मूढ़मति! तू कौन है? मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया? मेरी माता कौन है? मेरा पिता कौन है? ऐसा विचार कर इस असार व स्वप्न सदृश विश्व को त्यागकर निरन्तर भगवान की उपासना कर।

—शंकराचार्य (चर्पटपंजरिका स्तोत्र)

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं।

विविध भाषाओं का पांडित्य मनुष्य को दुर्गति से नहीं बचा सकता। फिर भला विद्याओं का अध्ययन किसी को कैसे बच सकता है।

—उत्तराध्ययन (६।११)

सब ही साहूकार है, सबकी गाँठी लाल।
गाँठ खोल देखे नहीं, तासों फिरे कँगाल॥

—पानपदास (पानपबोध, पृ० १४६)

खंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख्म कर सके
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू।

—स्वामी रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २, पृ० २)

बादशाह दुनिया के हैं मोहरे मेरी शतरंज के
दिल्लगी की चाल है सब रंग सुलहो-जंग[1] के

—स्वामी रामतीर्थ, (राम वर्षा, भाग २, पृ० ३)

चक्कर में है जहान[2], मैं मर्कज़[3] हूँ मेहर[4]-सा
धोके से लोग कहते हैं, सूरज चढ़ा है आज।

—स्वामी रामतीर्थ, (राम वर्षा, भाग २, पृ० ५०)

मूढ़ो क्रय छ्य न धारुन तें पारुन,
मूढ़ो क्रय छ्य न रछिन्य् काय।
मूढ़ो क्रय छ्य न दीह संदारुन
सहज व्यचारुन छुय व्यपदीश॥

हे मूढ़! व्रतधारण और साज-सज्जा कर्तव्य कर्म नहीं है। न ही मात्र काया की रक्षा कर्तव्य कर्म है। भोले मानव! देह की सार-संभाल ही कर्तव्य कर्म नहीं। सहज विचार (आत्म-तत्त्वचिंतन) वास्तविक उपदेश है।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

ज्यां लगी आतमा-तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व जूठी।

यदि आतम-तत्त्व को नहीं पहचाना तो सारी साधना व्यर्थ है।

[गुजराती] —नरसी मेहता

---

१. युद्ध और सन्धि। २. संसार। ३. केन्द्र। ४. सूर्य।

Oh! the splendour and glory of yourself makes the pomp of kings ridiculous.

अरे! तुम्हारी आत्मा की विभूति और महिमा इन राजाओं के आडम्बर को लज्जित और हास्यास्पद बना देती है।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन, खण्ड १, पृ० ५०)

आत्म-दर्शन

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

हे मनुष्यों, उठो, जागो! श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर आत्मतत्त्व को जान लो। कविगण (ज्ञानी लोग) उस पथ को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के समान दुर्गम बतलाते है।

—कठोपनिषद् (१।३।१४)

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

पर (ब्रह्म) और अवर (सृष्टि) को जान लेने पर इस (जीवात्मा) की हृदय-ग्रंथि खुल जाती है, सभी सशय दूर हो जाते हैं, और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

—मुंडकोपिनिषद् (२।२।८)

हा३वु हा३वु हा३वु। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्।
अहमन्नादो३ऽहमन्नादोऽहमन्नादः।
अहंश्लोककृदहंश्लोककृदहंश्लोककृत्।

आश्चर्य! आश्चर्य! आश्चर्य! मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ। मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ, मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ, मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ। मैं इनका संयोग कराने वाला हूँ, मैं इनका संयोग कराने वाला हूँ, मैं इनका संयोग कराने वाला हूँ।

—तैत्तिरीयोपनिषद् (३।१०।५)

न त्वं देहो न ते देहो कर्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर॥

न तो तुम शरीर हो, न शरीर तुम्हारा है। और तुम कर्ता भी नहीं हो। तुम चिद्रूप हो, सदा साक्षी हो और निरपेक्ष (स्वतंत्र) हो। सुखपर्वक विचरण करो।

—अष्टावक्रगीता (१५।४)

ओंकारे सत्प्रदीपे मृगय गृहपतिं सूक्ष्ममेकान्तरस्थं
संयम्य द्वारवाहं पवनमविरतं नायकं चेन्द्रियाणाम्।
वाग्जालं कस्य हेतोर्वितरसि हि गिरां दृश्यते नैव किंचिद्
देहस्थं पश्य नाथं भ्रमसि किमपरे शास्त्रमोहान्धकारे॥

इस शरीररूप गृह के अन्तःकरणनिवासी, एक, सूक्ष्म गृहस्वामी को ओंकार रूपी उत्तम दीपक से ढूँढ़ो। इन्द्रिय-रूपी द्वारों को संचालित करने वाले गतिमान प्राणरूपी वायु को तथा इन्द्रियो के स्वामी मन को नियन्त्रित करो। वाणी का जाल क्यों फैलाते हो? वाणी में तो कुछ दृष्टि-गोचर होता नहीं। उस स्वामी (आत्मा) को देह में, अर्थात् अपने में ही देखो। अन्यत्र शास्त्रों के मोहान्धकार में क्या रखा है?

—अज्ञात

इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्यायकर्मणाम्।
अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्॥

यज्ञ, आचार, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय आदि कर्मों से यह बड़ा धर्म है कि योग के द्वारा आत्मदर्शन करे।

—अज्ञात

आत्मानन्दरसज्ञानाम् अलं शास्त्रावलोकनम्।
भक्षितव्या ह्यपूपाः किं गण्यानि सुषिराणि किम्॥

आत्मानन्द के रस को जानने वाले व्यक्ति को शास्त्र देखना व्यर्थ है। हमें पुए खाने है या उनके छिद्रों को गिनना है?

—अज्ञात

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आतमा, ताथैं सदा हजूरि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४)

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।६०।४)

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै॥

—तुलसीदास (विनय-पत्रिका, १११)

जब इस मनसूँ मन को खोजा
मनसूँ सुरत मिलाई जी।
कह पानप वह अलख अमूरत
मेरी दृष्टि समाई जी।

—पानपदास (पानपबोध, पृ० ३)

कासौं कहौं कौन पतियावै, कौन करै बकवाद।
केसै कै कहि जात गदाधर, गूँगे को गुड़ स्वाद॥

—गदाधर

आनन्दमय आत्मा की उपलब्धि विकल्पात्मक विचारों और तर्कों से नहीं हो सकती।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३)

मनुष्य जीवन का उद्देश्य आत्मदर्शन है। और उसकी सिद्धि का मुख्य एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीव-मात्र की सेवा करना है, उसमें तन्मयता तथा अद्वैत के दर्शन करना है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ३३२)

जब जगत् दीखता है तब स्वरूप दिखलाई नहीं देता और जब स्वरूप का दर्शन होता है तब जगत् नहीं दिखता।

—रमण महर्षि (मैं कौन हूँ ?)

Spiritual realisation automatically makes in love everybody.

आत्मसाक्षात्कार स्वयं ही हमें हर व्यक्ति के प्रति प्रेम-पूर्ण बना देता है।

—स्वामी रामदास (रामदास स्पीक्स, खण्ड २, पृ० ४३)

आत्मनिग्रह

काम क्रोध मदाद्यमैन यसुहृद्वर्गम्बुलन् गेल्वने,
धीमंतुडु समर्थु डातंडु विरोधि व्रातमुं गेलचु।

काम, क्रोध, मद आदि छह अंतःशत्रुओं को जो धैर्य सामना करके जीत सकता है, वह अपने सभी विरोधियों को जीतने में समर्थ हो सकता है।

[तेलुगु] —एर्रना (नृसिंहपुराण)

आत्मप्रशंसा

न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः।
परेणोक्ता गुणा गौण्यं यान्ति वेदार्थसम्मिताः॥

तात ! मनीषी पुरुष अपने मुख से अपने गुणों का बखान नहीं करते। दूसरे के द्वारा वर्णित या प्रशंसित हुए गुण ही सफल होते और वेदार्थ के तुल्य प्रामाणिक माने जाते हैं।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व, २३।८)

वदिता न लघीयसोऽपरः स्वगुणं तेन वदत्यसौ स्वयम्।

छोटे लोगों के गुण का वर्णन करने वाला अन्य कोई नहीं मिलता, अतएव वह स्वयं ही उसे कहता है।

—माघ (शिशुपालवध, १६।३१)

अपरप्रथितं निजं यशो न यशस्वी स्वयमेव भाषते।

अन्यों द्वारा प्रख्यात अपने यश को यशस्वी व्यक्ति स्वयं नहीं कहता है।

—हरिदत्त सिद्धान्तवागीश (रुक्मिणीहरण, ४।६७)

न स्तुवन्ति गुणान् स्वीयान् पण्डिता दीर्घदर्शिनः।

दीर्घदर्शी पण्डित अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करते।

—अचित्यानन्दवर्णी (श्रीहरिलीलाकल्पतरु, २।२७।३३)

आत्मप्रशंसा मरणं परनिन्दा च तादृशी।

आत्म-प्रशंसा मरण है और दूसरे की निन्दा भी वैसी ही है।

—अज्ञात

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥

जिसके गुण शत्रु द्वारा कहे जाते हैं, वह निर्गुण भी गुणी हो जाता है। स्वयं कहे गये गुणों से इन्द्र भी लघु हो जाता है।

—अज्ञात

यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खासि पुच्छितो।
असप्प संसको पोसो नायं अस्माक रुच्चति॥

जो पूछा है, वह नहीं कहता। पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशंसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नहीं लगता।

[पालि] —जातक (२०५ गंगेय्य जातक)

अपने मुँह न बड़ाई छाजा।

—जायसी (पदमावत, ३०६)

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।

—तुलसीदास (रामचरित मानस, १।८।७)

तुलसी अपनो आचरण भलो न लागत कासु।

—तुलसीदास (दोहावली, ३५५)

अपने गुण आप देखें और उसकी स्तुति दूसरों से करें, उससे बढ़के नीचता कैसी होगी ?

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ३२६)

अपने मुंह से अपनी तारीफ़ करना हमेशा ख़तरनाक-चीज़ होती है। राष्ट्र के लिए भी वह उतनी ख़तरनाक है, क्योंकि वह उसे आत्मसंतुष्ट और निष्क्रिय बना देती है, और दुनिया उसे पीछे छोडकर आगे बढ़ जाती है।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय, खंड ३, पृ० १८८)

आजकल आध्यात्मिकता के प्रचार के केन्द्रों का आधार भी अधिकतर आत्मश्लाघा ही रहती है। जो स्वयं भी भोग-लालसा का सूक्ष्मतम तथा कठोरतम स्वरूप है। इससे प्रेरित इसके प्रसारक व्यक्ति आत्म-प्रवचना तो करते ही है, साथ ही में वास्तविक सत्य को न समझ दूसरों को भी भटका देते हैं।

—अशोकानन्द (तत्त्व-चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ९८)

हमार दादा घीव खात रहले, देखौ हमार बाँह महकत वा।

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

हिस की पत्थर कैलक बड़ाई।
हमहूँ छिकों महादेव के भाई॥

देखादेखी पत्थर ने आत्मप्रशंसा की कि मैं भी तो शिव का भाई हूँ।

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

निजेर दइ केउ टक बले ना।

अपने दही को कोई खट्टा नहीं कहता।

—बाँगला लोकोक्ति

दूसरा व्यक्ति तुम्हारी प्रशंसा करे, न कि तुम्हारा अपना मुख; कोई अपरिचित मनुष्य, न कि तुम्हारे अपने होंठ।

—पूर्वविधान (लोकोक्तियाँ, २७।२)

जो सहृदयता दर्पण में अपना मुख निरखती है, पत्थर बन जाती है। और सत्क्रिया जो अपने को सुन्दर नामों से सम्बोधित करती है, अभिशाप की जननी बन जाती है।

—खलील जिब्रान (जीवन-संदेश, पृ० ९८)

ईश्वर ने हमें बनाया और हम अपनी प्रशंसा करते हैं।

—स्पेन की लोकोक्ति

Tis pleasant sure to see one's name in print.
A book's a book although there is nothing in it,

अपना नाम छपा हुआ देखना निश्चित ही सुखद होता है। पुस्तक तो पुस्तक ही है भले ही उसमें कुछ न हो।

—बायरन

आत्मबल

दे० 'आत्मशक्ति'।

आत्मविकास

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

हे अर्जुन! वेद तीन गुणों के विषयों से युक्त हैं। तू तीनों गुणों के परे (अर्थात् नित्य सत्त्वगुण में स्थित), द्वन्द्वों से मुक्त, योग-क्षेम का विचार न करने वाला और आत्मबल से युक्त हो।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।४५ अथवा गीता, २।४५)

वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात् कुर्यान्नरः सदा।
उत्थायोत्थाय बोधव्यं किम्मयाऽद्यकृतं कृतम्॥

मनुष्य को चाहिए कि सदा वेदोक्त धर्म का ही पालन करे। बार-बार सावधान होकर पुरुष स्वयं यह विचार करे कि आज मेरे द्वारा कौन-कौन-सा कार्य हो गया।

—देवीभागवत पुराण (११।१।३२)

यावत् स्वस्थो ह्ययं देहो, यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति॥

जब तक यह देह स्वस्थ है, जब तक मृत्यु दूर है, अर्थात् अभी आयु छोटी है, तब तक मनुष्य को आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए। प्राणों की समाप्ति पर मनुष्य क्या कर सकेगा अर्थात् कुछ नही कर सकेगा।

—अज्ञात

नाणेणं दसणेणं य, चरित्तेणं तवेण य।
खंतीए मुत्तीय य, वड्ढमाणो भवाहि य।

ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, क्षमा और निर्लोभता की दशा में निरन्तर बढ़ते रहिए।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (२२।२६)

अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धने मलमत्तनो।

मेधावी साधक अपनी आत्मा के दोष को उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा क्षण-क्षण में साफ़ करता रहे, जिस प्रकार सुनार चाँदी के मैल को साफ़ करता है।

[पालि] —अभिधम्मपिटक (१।४।२७८)

मौत महा उत्कंठ चढ़ै नहिं सूझत अन्ध अभागहु रे।
चित चेतु गँवार विकार तजो जब खेत पड़े कित भागहु रे।
जिन बुंद विकार सुधार कियो तन ज्ञान दियो पगु तागहु रे।
'धरनी' अपने अपने पहरे उठि जागहु जागहु जागहु रे॥

—धरनीदास

यके रह बरतर अज कौनो मकाँ शौ
जहाँ बेगुजारो खुद दर खुद जहाँ शौ।

एक बार तू इस क्षणिक जगत् से ऊपर चला जा और अपने अन्दर एक दूसरे ही जग का निर्माण कर।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

आलमे सिफ़ली न जाए तुस्त अज़ीं जा वर गुज़र।
जेहदे आं कुन ता कुनी दर आलमे उलवी क़रार॥

यह आलमे सिफ़ली (निम्न संसार) तेरे रहने योग्य स्थान नहीं है। अतएव यहाँ से चल दे और उस लोक में पहुँचने का प्रयत्न कर जो आलमे उलवी (उच्च-संसार) है।

[फ़ारसी] —सनाई

मेरा मूलमंत्र है कि जहाँ जो कुछ अच्छा मिले, सीखना चाहिए।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, पृ० ३६७)

तुम्हारे ऊपर जो प्रकाश है, उसे पाने का एक ही साधन है—तुम अपने भीतर का आध्यात्मिक प्रदीप जलाओ, पाप और अपवित्रता का तमिस्र स्वयं भाग जायेगा। तुम अपनी आत्मा के उदात्त रूप का चिन्तन करो, गर्हित रूप का नहीं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० २३६)

हमें इसकी क्या चिन्ता कि मुहम्मद अच्छे थे या बुद्ध? क्या इससे मेरी अच्छाई या बुराई में परिवर्तन हो सकता है? आओ, हम लोग अपने लिए और अपनी जिम्मेदारी पर अच्छे बनें।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ८, पृ० १४३)

अन्त-समय सुधारना हो तो प्रति क्षण सुधारो।

—डोंगरे जी महाराज

आत्मविजय

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

जिसने अपने आपको जीत लिया, वह स्वयं अपना बंधु है। परन्तु जिसने अपने आपको नहीं जीता, वह स्वयं अपने शत्रुत्व में शत्रुवत् वर्तता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३०।६ अथवा गीता, ६।६)

जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य
गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम्।

आत्मा में रमने वाले जितेन्द्रिय विद्वान् का गृहस्थाश्रम क्या अनिष्ट कर सकता है?

—भागवत (५।१।१७)

प्रभवति न तदा परो विजेतुम्
भवति जितेन्द्रियता यदात्मरक्षा।

जब जितेन्द्रियता ही अपनी रक्षा करे तो शत्रु जीत नहीं सकता।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १०।३५)

उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्।

जो जितेन्द्रिय नहीं हैं, उनके नेत्र उच्छृंखल इन्द्रिय रूपी अश्वों द्वारा उठी धूल से भर जाते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २२)

विजेतुकामाः हि परं परार्ध्याः स्वात्मानमेव प्रथमं जयन्ति।

दूसरों को जीतने की इच्छा वाले श्रेष्ठ पुरुष पहले स्वयं को जीतते हैं।

—अभिनंद (रामचरित, १७।७३)

जे एगं नामे, से बहु नामे।

जो एक[1] को जीत लेता है, वह समग्र संसार को जीत लेता है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।४)

---

१. स्वयं को।

यह सुख कैसा शासन का ?
शासन है रे मानव मन का !

—जयशंकर प्रसाद (लहर, पृ० ३७२)

जो घर तज्यो तो कह भयो, राग तज्यो नहिं वीर।
साँप तजै ज्यों कंचुकी, विष नहिं तजै शरीर॥

—भैया भगवतीदास (ब्रह्मविलास, फुटकर छंद)

कोई भीतरी महान् वस्तु ऐसी अवश्य है जिसके होने से मनुष्य को जितेन्द्रियता प्राप्त होती है या प्राप्त करने की इच्छा होती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० ३६)

यही लाता है ख़राबी यही करता है ज़लील
बादशाही है अगर दिल पै हुकूमत रखे।

—बहर

It is self-restraint, control from within, that makes art artistic, beauty beautiful and order orderly and enjoyable.

आत्म-संयम अर्थात् आत्मानुशासन ही कलात्मक सौन्दर्य को सुन्दर एवं व्यवस्था को सुव्यवस्थित और आनन्ददायक बनाता है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (राजाजीज़ स्पीचिज़, भाग २, पृ० १८०)

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure
I never felt the kiss of love,
Nor maiden's hand in mine.

दस नवयुवकों की शक्ति मुझमें है, क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है। कामासक्त होकर न तो मैंने कभी प्रेम के चुंबन का अनुभव किया और न किसी तरुणी के कोमल कर-स्पर्श का।

—टेनिसन

He that would govern others, first should be the master of himself.

जो दूसरों को शासित करने की इच्छा रखता है, उसे पहले अपना स्वामी होना चाहिए।

—फ़िलिप मैसिंजर (दि बेंडमैन, १।३)

आत्मविश्वास

प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः॥

बड़े लोगों से प्राप्त सम्मान अपने गुणों में विश्वास उत्पन्न कर देता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ६।२०)

जो है आत्मविश्वासी वही तो अस्तित्ववादी[1] है।

—मैथिलीशरण गुप्त (पृथिवीपुत्र, पृ० ४२)

अतीत सुखों के लिए सोच क्यों, अनागत भविष्य के लिए भय क्यों, और वर्तमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूंगा, फिर चिंता किस बात की ?

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, पृ० ५२)

जो गिरना नहीं चाहता, उसे कोई गिरा नही सकता।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अलका, पृ० १७३)

आत्म-विश्वास का अर्थ है अपने काम में अटूट श्रद्धा।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृ० २३०)

आत्मविश्वास रावण का-सा नहीं होना चाहिए जो समझता था कि मेरी बराबरी का कोई है ही नहीं। आत्म-विश्वास होना चाहिए विभीषण-जैसा, प्रह्लाद-जैसा। उनके जी में यह भाव था कि हम निर्बल है मगर ईश्वर हमारे साथ है और इस कारण हमारी शक्ति अनंत है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी, वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ५११)

मनुष्य के अहंकार और आत्मविश्वास में पहिचान करना कई बार बड़ा कठिन होता है।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड ३, पृ० १५)

साहसिक कार्य बड़ा हो या छोटा, उसे कभी दूसरों के बलबूते पर आरंभ न करो। अपने भरोसे पर, पार जाने के लिए गंगा में भी कूद पड़ो, परन्तु केवल दूसरे के सहारे का भरोसा रखकर घुटनों तक के पानी में भी पाँव न रखो।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति (पत्रकारिता के अनुभव, पृ० ३२)

जिसको स्वयं पर विश्वास नही, वही नास्तिक है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० ४९)

1. आस्तिक।

इन तथाकथित अमीरों और प्रतिष्ठितों की ओर मत निहारो, इन हृदयहीन बुद्धिवादी लेखकों की चिन्ता मत करो, न उनके द्वारा अख़बारों में प्रकाशित उत्तेजनात्मक लेखों की परवाह करो। आत्मविश्वास और सहानुभूति ! प्रबल आत्म-विश्वास एवं तीव्र सहानुभूति ! यही तुम्हारा एकमात्र सम्बल है। विश्वास ! विश्वास !! विश्वास !!! अपने में विश्वास, ईश्वर में विश्वास—बस यही मानवता का मूल मन्त्र है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० ४६)

अपना केन्द्र अपने से बाहर मत रखो, यह तुम्हारा पतन कर देगा। अपने में अपना पूर्ण विश्वास रखो, अपने केन्द्र पर डटे रहो, कोई चीज़ तुम्हें हिला तक न सकेगी।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० २०)

कोई भी मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि उसमें आत्मबल का विश्वास न हो। जिसमें यह विश्वास अधिक है, वह स्वयं भी बढ़ा है और औरों को भी आगे बढ़ाता है।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ३८)

यदि तुम अपने पर विश्वास कर सको तो दूसरे प्राणी भी तुम में विश्वास करने लगेंगे।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

Self-trust is the first secret of success.
आत्मविश्वास सफलता का प्रथम रहस्य है।

—एमर्सन

आत्मविस्मृति

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।

—ग़ालिब (दीवान, १६१।८)

बेख़ुदी छा जाए ऐसी, दिल से मिट जाए ख़ुदी
उससे मिलने का तरीक़ा अपने खो जाने में है।

—अज्ञात

आत्मशक्ति

आत्मा की शक्ति को पहचानना ही आत्म-ज्ञान है। आत्मा तो बैठे-बैठे दुनिया को हिला सकती है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग १, १२०)

जिसका आत्म-बल पर विश्वास है, उसकी हार नहीं होती, क्योंकि आत्म-बल की पराकाष्ठा का अर्थ है मरने की तैयारी।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, ६)

अनुचित इच्छायें तो उठती ही रहेंगी। उनका हम ज्यों-ज्यों दमन करेंगे त्यों-त्यों दृढ़ बनेंगे और हमारा आत्म-बल बढ़ेगा।

—महात्मा गांधी (पत्र जमनादास गांधी को, १७ मार्च १९१४)

पशुबल अस्थायी है और अध्यात्मबल या आत्मबल या चैतन्यवाद एक शाश्वत बल है। वह हमेशा रहने वाला है क्योंकि वह सत्य है। जड़वाद तो एक निकम्पी चीज़ है !

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, दिल्ली की प्रार्थना सभा, २७ जून १९४७, पृ० २००)

व्यक्ति का आत्मबल उसकी जड़-पूजा से अवरुद्ध हो जाता है। जिसके पास ये जड़-बन्धन जितने ही कम होते है, वह उतनी ही जल्दी सत्यपरायण हो जाता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य-सहचर, पृ० २५)

जो ईश्वर पर विश्वास करता है, उसी में आत्मशक्ति है, नास्तिक में आत्मशक्ति नहीं होती।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० ४१)

पहले अपने में अन्तर्निहित आत्मशक्ति को जाग्रत करो, फिर देश के समस्त व्यक्तियों में जितना संभव हो, उस शक्ति के प्रति विश्वास जमाओ।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ० १५६)

यदि कोई सामाजिक बन्धन तुम्हारे ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बाधक है, तो आत्मशक्ति के सामने अपने आप ही वह टूट जाएगा।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ० ३८१)

If you once sit still for a second and feel, feel that you are the universal man, you are the infinite power, you will see that all this you are.

एक क्षण के लिए यदि आप शान्त बैठकर ऐसा विचार करें कि आप विश्वमानव हैं, आप अनंत शक्ति हैं, तो आप देखेंगे कि आप वास्तव में वही हैं।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड १, पृ० ७५)

If you think you are being saved through the name of Christ or Buddha or Krishna or any other saint, remember, the real virtue does not lie in the Christ or the Buddha or Krishna or any body; the real virtue lies in your ownself.

यदि तुम यह समझते हो कि ईसा या बुद्ध या कृष्ण या किसी अन्य महात्मा के नाम के कारण तुम्हारा उद्धार हो रहा है, तो स्मरण रखो कि ईसा, बुद्ध, कृष्ण या किसी दूसरे व्यक्ति में यथार्थ गुण निहित नहीं हैं, वास्तविक शक्ति तो तुम्हारी आत्मा में है।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड २, पृ० १६०)

Spiritual alone is real power.
आत्मिक शक्ति ही वास्तविक शक्ति है।

—शिवानंद

आत्मशुद्धि

तेरे भावे जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायन तू बैठके, अपनो भवन बुहार॥

—नारायण स्वामी

आत्मशुद्धि सबसे पहली चीज़ है, वह सेवा की अनिवार्य शर्त है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण, गांधी वाङ्मय खण्ड ४०, पृ० १५०)

आत्मशुद्धि के विना अहिंसाधर्म का पालन थोथा स्वप्न ही रहेगा।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ५४)

आत्मसम्मान

जो व्यक्ति स्वयं अपने सम्मान का ख्याल नहीं करता वह दास ही बन जाता है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १५-१२-१९२१)

विना मान तजि दीजियो, स्वर्गहुँ सुकृत समेत।
रहो मान तो कीजियो नरकहुँ नित्य निकेत॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, सातवाँ शतक)

सदा स्वतंत्र कार्यकर्ता और दाता बनो। अपने चित्त को कभी भी याचक तथा आकांक्षी की दशा में न डालो।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १७)

करो दोस्तो! पहले आप अपनी इज्ज़त
जो चाहो करें लोग इज्ज़त ज़्यादा।

—हाली

जे नाहर मरि जाय, रज-त्रण भखै न राजिया॥

हे राजिया! यदि सिंह मर भी जाए तो भी वह मिट्टी या घास नहीं खाता।

[राजस्थानी] —कृपाराम (राजिया रा दूहा)

Better to die ten thousand deaths than wound my honour.

अपने सम्मान को आहत करने की अपेक्षा दस हजार वार मरना अधिक अच्छा है।

—एडीसन

आत्मसात्करण

संघर्ष को विकास का चिह्न मानना तुम्हारी बड़ी भूल है। बात ऐसी कदापि नहीं है। आत्मसात्करण ही उसका चिह्न है। हिन्दू धर्म आत्मसात्करण की प्रतिभा का ही नाम है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ० १३१)

वर्तमान समाजवादी और नवीन जनतांत्रिक संस्कृतियों से ही नहीं, अपितु अन्य राष्ट्रों की प्रारंभिक संस्कृतियों से भी हमें आज के लिए उपयोगी जो कुछ हो, उसे आत्मसात् करना चाहिए।

—माओ-त्से-तुंग (न्यू डेमोक्रेसी, १९४०)

आत्मसुधार

मकुन दोजख बखुद बर खूए बद रा
बहिश्ते दीगरां कुन खूए खुद रा।

बुरे स्वभाव से अपने लिए नरक न बना। अपने स्वभाव को दूसरों के लिए स्वर्ग बना।

[फ़ारसी] —निज़ामी

अन्तर्मुखी होकर देखो, परन्तु इस पर भी अगर तुम अपने को सुन्दर न पाओ, तो वैसा ही करो जैसा एक मूर्तिकार करता है। अपनी मूर्ति को सुन्दर बनाने के लिए वह कुछ यहाँ काट फेंकता है, कुछ वहाँ चिकना करता है, इस रेखा को कुछ हल्की बनाता है, तो उस रेखा को कुछ ज़्यादा निखारता है, और तब तक इस कार्य में जुटा रहता है जब तक मूर्ति का चेहरा सौन्दर्य की आभा से आलोकित नहीं हो उठता। ठीक यही काम तुम्हें करना है, जो कुछ अतिरिक्त है, उसे काट फेंको, जो कुछ टेढ़ा-मेढ़ा है, उसे काट-छाँटकर सीधा कर डालो, जितना कुछ अंधकाराच्छन्न है, उस पर प्रकाश का पुंज डालो। अपने समस्त व्यक्तित्व को सौन्दर्य की एक दीप्ति में ढाल लो। अपनी प्रतिभा को तराशना तब तक बन्द न करो जब तक उसमें से ईश्वरीय गुणों की आभा विकीर्ण होकर तुम्हें आलोकित न कर दे।

—प्लाटिनस

हे वैद्य ! स्वयं अपनी चिकित्सा कर।

—नवविधान (लूकास, ४।२३)

आत्महत्या

आत्महत्या का विचार करना सरल है, आत्महत्या करना सरल नहीं।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, २१)

आत्महत्या या स्वेच्छा से मरने के लिए प्रस्तुत होना—भगवान की अवज्ञा है। जिस प्रकार सुख-दुःख उसके दान हैं, उन्हें मनुष्य झेलता है, उसी प्रकार प्राण भी उसकी धरोहर है।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, पृ० ५६)

पुराने आघातों का स्मरण करना मानसिक अन्धकार है और आघातकर्ताओं से बदला लेने का विचार करना मानसिक आत्मघात है।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियाँ, पृ० ७०)

आत्मा

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता नान्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥

अमर (आत्मा) मरण धर्मा (शरीर) के साथ रहता है। वह कभी अन्नमय शरीर पाकर पुण्य से ऊपर जाता है, कभी पाप से नीचे जाता है। ये दोनों विरुद्ध गति वाले संसार में सर्वत्र एक साथ रहते हैं। अज्ञानी संसारी प्राणी उनमें एक (मरणधर्मा शरीर) को पहचानता है, दूसरे (अमर आत्मा) को नहीं।

—ऋग्वेद (१।१६४।३८)

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।

यह सबसे उत्तम, सब सुखों का ग्रहण करने वाला व देने वाला है। इसका दर्शन करो। मरणशील शरीरों में यह अमृत ज्योति है।

—ऋग्वेद (६।९।४)

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

आत्मा (ब्रह्म) कामना रहित, धीर, अमर, स्वयंभू, रस से तृप्त तथा अभाव से रहित है। उस धीर, जरारहित तथा चिरयुवा आत्मा को जानने वाला मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

—अथर्ववेद (१०।८।४४)

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः।

वहाँ (उस आत्मा तक) न तो नेत्र जाता है, न वाणी, न मन।

—केनोपनिषद् (१।३)

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।

मनुष्य आत्मा (ब्रह्म) से ज्ञान-शक्ति प्राप्त करता है और ज्ञान से अमृततत्त्व को।

—केनोपनिषद् (२।४)

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्—
नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

ज्ञानस्वरूप आत्मा न तो जन्म लेता है, न मरता है।

यह न तो स्वयं किसी से हुआ है, न इससे कोई भी हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर का नाश होने पर इसका नाश नहीं किया जा सकता।

—कठोपनिषद् (१।२।१८)

अणोरणीयान्महतो महीयान्।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, महान् से भी महान्।

—कठोपनिषद् (१।२।२०)

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

आत्मा को रथी जानो। शरीर को रथ जानो। बुद्धि को सारथी जानो और मन को लगाम जानो। मनीषी लोग इन्द्रियों को घोड़े बतलाते हैं और विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग कहते है। शरीर, इन्द्रिय और मन से युक्त जीवात्मा ही भोक्ता है, ऐसा कहते हैं।

—कठोपनिषद् (१।३।३-४)

तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मा-दन्तरतरं यदयमात्मा।

वह यह आत्मा पुत्र से अधिक प्रिय है, धन से अधिक प्रिय है और अन्य सबसे भी अधिक प्रिय है, क्योंकि यह आत्मा उनकी अपेक्षा अन्तरतर है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (१।४।८)

स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते, न हाऽस्य प्रियं प्रमायुकं भवति।

जो आत्मारूप प्रिय की ही उपासना करता है, उसका प्रिय अत्यंत मरणशील नहीं होता।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (१।४।८)

य आत्मानमेव लोकमुपासते न हाऽस्य कर्म क्षीयते। अस्माद्ध्येवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते॥

जो पुरुष आत्मा की ही उपासना करता है, उसका कर्म क्षीण नहीं होता। इस आत्मा से पुरुष जिस-जिस वस्तु की कामना करता है, उसी-उसी को प्राप्त कर लेता है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (१।४।१५)

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किए जाने के योग्य है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (२।४।५)

आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस सब का ज्ञान हो जाता है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (२।४।५)

यो यमात्मा इदममृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम्।

जो यह आत्मा है, यह अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्व है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (२।५।१)

आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम्।

यह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इससे भिन्न सब नाशवान हैं।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (३।७।२३)

आत्माऽगृह्यो, न हि गृह्यते, अशीर्यो न हि शीर्यते, असंगो न हि सज्यते, असितो न हि व्यथते, न रिष्यति।

यह आत्मा ग्रहण नहीं किया जा सकता, नष्ट नहीं होता, संसक्त नहीं होता, हिंसा को प्राप्त नही होता।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (३।६।२६)

अयमात्मा ब्रह्म।

यह आत्मा ब्रह्म है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।५)

यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते।

जो यह जानता है कि 'मै मनन करूं' यह आत्मा है। मन उसका दिव्य नेत्र है। वह यह आत्मा इस दिव्य चक्षु के द्वारा भोगों को देखता हुआ रमण करता है।

—छान्दोग्योपनिषद् (८।१२।५)

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते, तेन तेन स रक्ष्यते॥

यह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है। वह जिस-जिस शरीर को ग्रहण करता है, उस-उस से सम्बद्ध हो जाता है।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (५।१०)

आत्मा शुद्धः सदा नित्यः सुखरूपः स्वयंप्रभः।
अज्ञानात्मलिनो भाति ज्ञानाच्छुद्धो भवत्ययम् ॥

आत्मा सदा शुद्ध, नित्य, सुखरूप तथा स्वयंप्रकाश है। अज्ञानवश ही यह मलिन प्रतीत होता है। ज्ञान से यह शुद्ध होता है।

—जाबालदर्शन उपनिषद् (५।१३-१४)

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥

यह आत्मा न तो प्रवचनों से प्राप्त हो सकता है, न बुद्धि से, न अध्ययन से ही। जिसका यह वरण कर लेता है, उसी को प्राप्त होता है और उसके लिए यह आकर अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

—मुंडकोपनिषद् (३।२।३)

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।

इस आत्मा को बलहीन व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, प्रमाद से भी यह अप्राप्त है और प्रयोजनहीन तप से भी।

—मुण्डकोपनिषद् (३।२।१४)

पंचरूपपरित्यागादर्वरूपप्रहाणतः ।
अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत् ॥

पाँचों रूपों—अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप—के परित्याग से तथा अपने स्वरूप के अपरित्याग से अधिष्ठान रूप जो एक सत्ता बची रहती है, वही महान् परम तत्त्व है।

—बह्वृचोपनिषद्

तत्त्वतश्च शिवः साक्षाच्चिजीवश्च स्वतः सदा।

वस्तुतः तो चिन्मय जीवात्मा सदा स्वतः साक्षात् शिव है।

—रुद्रहृदयोपनिषद् (४४)

अतश्चात्मनि कर्तृत्वमकर्तृत्वं च वै मुने।
निरिच्छत्वादकर्तासौ कर्ता संनिधिमात्रतः ॥

हे मुनि ! कर्तापन और अकर्तापन दोनों ही आत्मा में है। इच्छारहित होने के कारण आत्मा अकर्ता है और सन्निधिमात्र से वह कर्ता है।

—महोपनिषद् (४।१४)

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।

आत्मा ही अपना साक्षी है। आत्मा ही अपनी गति।

—(मनुस्मृति, ८।८४)

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।१९, अथवा गीता, २।१९)

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

यह आत्मा न तो कभी जन्मता है और न मरता ही है। ऐसा भी नही है कि यह एक बार होकर फिर न हो। यह तो अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है और शरीर का नाश होने पर भी नही मरता।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२१ अथवा गीता, २।२१)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है। उसी प्रकार न तो इसको पानी गला सकता है और न वायु सुखा सकता है। यह आत्मा कभी न कटने वाला, न जलने वाला, न भीगने वाला और न सूखने वाला तथा नित्य सर्वव्यापी, स्थिर, अचल एवं सनातन है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२३-२४, अथवा गीता, २।२३-२४)

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

यह आत्मा अव्यक्त[1], अचिन्त्य[2] और विकाररहित[3] कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२५, अथवा गीता, २।२५)

१. इन्द्रियों का अविषय। २. मन का अविषय। ३. अपरिवर्तनशील।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥

कोई ही इस आत्मा को आश्चर्यवत् देखता है और वैसे ही दूसरा कोई ही आश्चर्यवत् (इसके तत्त्व को) कहता है और दूसरा (कोई ही) इस आत्मा को आश्चर्यवत् सुनता है। और कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२९
अथवा गीता, २।२९)

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत !

हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीर में सदा ही अवध्य है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।३०,
अथवा गीता, २।३०)

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

शरीर से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं। इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है वह आत्मा है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २७।४२
अथवा गीता, ३।४२)

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा।
आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः॥

भगवान् का कोई प्रिय, अप्रिय अपना अथवा पराया आदि नहीं है। उनके लिए सभी प्राणी प्रिय है क्योंकि वे सबकी आत्मा है।

—भागवत (६।१७।३३)

कायस्थोऽपि न कायस्थः कायस्थोऽपि न जायते।
कायस्थोऽपि न भुंजानः कायस्थोऽपि न बध्यते॥

काया में स्थित होने पर भी वह काया में स्थित नहीं है। काया में स्थित होने पर भी उसका जन्म नहीं होता है। काया में स्थित होने पर भी वह भोगता नहीं है। काया में स्थित होने पर भी वह बँधा हुआ नहीं हैं।

—उत्तरगीता

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।
असंगो निस्पृहः शान्तो भ्रमात् संसारवानिव॥

आत्मा साक्षी है, विभु है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है, चित् है, अक्रिय है, असंग है, निस्पृह है, शान्त है और भ्रमवश ही संसारवान प्रतीत होता है।

—अष्टावक्र गीता (१।१२)

उपलब्धिः स्वयंज्योतिर्दृशिः प्रत्यक् सदक्रियः।
साक्षात् सर्वान्तरः साक्षी चेता नित्योऽगुणोऽद्वयः॥

आत्मा ज्ञानस्वरूप, स्वयंप्रकाश, चित्स्वरूप, प्रत्यक्, सत् एवं अक्रिय है। वह साक्षात् सर्वान्तिर्यामी, सबका द्रष्टा, प्रकाशक, नित्य निर्गुण और अद्वितीय है।

—शंकराचार्य (उपदेश साहस्री, २।१८।२६)

नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो
देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहं-
कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम्॥

मैं न जन्म लेता हूँ, न बड़ा होता हूँ, न नष्ट होता हूँ। प्रकृति से उत्पन्न सभी धर्म देह के कहे जाते हैं। कर्तृत्व आदि अहंकार के होते है। चिन्मय आत्मा के नहीं। मैं स्वयं शिव हूँ।

—शंकराचार्य (आत्मपंचक, ५)

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

मेरे लिए न मृत्यु है, न भय, न जाति-भेद, न पिता न माता, न जन्म, न बन्धु, न मित्र और न गुरु। मैं चिदानन्द रूप हूँ। मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

—शंकराचार्य (निर्वाणषट्क, ५)

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

मैं निर्विकल्प (परिवर्तन रहित) निराकार, विभुत्व के कारण सर्वव्यापी, सब इन्द्रियों के स्पर्श से परे हूँ। मैं न मुक्ति

हूँ न मेय (मापने में आने वाले)। मैं चिदानन्दरूप हूँ। मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ।

—शंकराचार्य (निर्वाणषट्क, ६)

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया। तं पडुच्च पडिसंखाए॥

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है। जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति होती है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।५।५)

जह जह सुज्झइ सलिलं, तह तह रूवाइं पासई दिट्ठी।
इय जह जह तत्तरुई, तह तह तत्तागमो होइ॥

जल ज्यों-ज्यों स्वच्छ होता है त्यों-त्यों द्रष्टा उसमें प्रतिबिम्बित रूपों को स्पष्टतया देखने लगता है। इसी प्रकार अन्तर् में ज्यों-ज्यों तत्त्व-रुचि जाग्रत होती है त्यों-त्यों आत्मा तत्त्वज्ञान प्राप्त करता जाता है।

—आचार्य भद्रबाहु (आवश्यकनिर्युक्ति, ११६३)

सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहि आन।
माटी एक सकल संसारा, बहु विधि भांड़े घड़ै कुंभारा॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०५)

दुइ दूर करो कोई सोर नहीं, हिंदु तुरक कोइ होर नहीं।
सब साधु लखो कोइ चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है[1]॥

—बुल्लेशाह

जात हमारी ब्रह्मा है, मात पिता है राम।
गिरह[2] हमारा सुन्न[3] में, अनहद[4] में बिसराम[5]॥

—दरिया साहब मारवाड़ के

दारक में पावक बसै, यों आतम घट माहि।
'हरिया' पय में घृत है, बिन मथियाँ कुछ नाहि॥

—हरिरामदास महाराज

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खंड कल्पना रोपित, आप अखंड स्वरूप री॥

—आनन्दघन संत

१. कुछ अंतर से यह सूक्ति रामानन्द साहब लुकिमान के नाम से भी मिलती है (देखिए 'कल्याण' वा संतवाणी अंक, पृ० ५४०)।
२. गृह। ३. शून्य। ४. अनाहत नाद। ५. विश्राम।

राम कहो, रहमान कहो कोउ, कान्ह कहो, महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री॥

—आनन्दघन संत

आइयेगा, लो उड़ा दीजियेगा मेरे जिस्म[1] को।
नाम मिट जाने से मिलता हूँ, मुझे पकड़ो कोई॥

—रामतीर्थ (रामवर्षा, भाग २, पृ० ३०)

ऐ दरूनत बर ह्वा अज तक़वा।
के अज बरूं जामाए रेया दारी॥

अरे! तेरा आभ्यन्तर दिखावा मात्र है, पवित्रता से शून्य है क्योंकि तू मक्कारी का कपड़ा पहनता है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, दूसरा अध्याय)

बरौ ऐ ख़्वाजा ख़ुद रा नेक बेशनास।

जा, हे ख़्वाजा अपने आपको अच्छी तरह पहचान ले।

[फ़ारसी] —शब्स्तरी

मन कसे दर ना कसी दरयाफ़्तम।
बस कसे दर ना कसी दर बाख़्तम॥

मैं कौन हूँ और कौन नहीं हूँ, इसको जानने में मैंने बहुत-सी चीज़ें जान ली हैं। और वह कौन है और कौन नहीं है इसी को जानने में बहुत-सी चीज़ें मैंने खो दी हैं।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

आकांक्षार धन नहे आत्मा मानवेर।

मानव की आत्मा आकांक्षा का धन नहीं है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, निष्फल कामना)

तुमि नित्य निरंजन नारायण
आमिओ अंश तोमार।

हे नारायण! तुम नित्य और निरंजन (पवित्र) हो। मैं भी तुम्हारा अंश हूँ।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, ४।२०।७५)

ज्ञानदेव म्हणे नामरूपें-विण तुझें साच आहे आपणपें।
तें स्वानन्दजीवनपें। सुखिया होईं।

ज्ञानदेव कहते हैं—नामरूप रहित तेरा आत्मत्व सत्य है। इसी आत्मानन्द-युक्त जीवन से सुखी हो जाओ।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (चांगदेव पासष्टी, ५९)

१. शरीर।

चिंतामणि पेरंतुटं चिंतिसदनं
कोडुव पेययुं टघुर्दारं ।
चिंतिसु निजात्मनं चिच्चितामणी ताने
कुड्डुगुमक्षयसुखमं ।।

अपनी आत्मा में जिस वस्तु का चिन्तन करते है उसको देने में समर्थ चिंतामणि के समान आत्मा ही चिंतामणि है। ऐसे अपने अन्दर रहने वाले आत्मास्वरूप को छोड़कर क्या और कोई चिंतामणि है? अतः हे योगी! निज आत्मा का ध्यान करो वही चित्-चिंतामणि तुझे अक्षय सुख को प्राप्त कराने वाली है।

[कन्नड] —मुनि बालभद्र (योगामृत, छंद ६८)

जो आत्मा शरीर में रहता है, वही ईश्वर है और चेतना रूप से विवेक के द्वारा सब शरीरों का काम चलाता है। लोग उस अन्तर्देव को भूल जाते है और दौड़-दौड़ कर तीर्थों में जाते है।

—समर्थ रामदास (दासबोध, पृ० ३२५)

हिन्दुओं की यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसकी परिधि कहीं नही है किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है; और मृत्यु का अर्थ है, इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना।

—स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ० १०)

भारत का सदैव यही सन्देश रहा है। आत्मा प्रकृति के लिए नहीं वरन् प्रकृति आत्मा के लिए है।

—स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ० १२७)

दार्शनिक की आत्मा उसके मस्तिष्क में निवास करती है कवि की आत्मा उसके हृदय में, गायक की गले में, किन्तु नर्तकी की आत्मा उसके अंग-प्रत्यंग में बसती है।

—ख़लील जिब्रान (बटोही, पृ० ३६)

Our birth is but a sleep and a forgetting
The soul that rises with us, our life's star
Hath had elsewhere its setting
And cometh from afar.

हमारा जन्म तो निद्रा और विस्मरण मात्र है। हमारा जीवन-नक्षत्र आत्मा जो हमारे साथ उदित होता है, वह तो कहीं अन्यत्र अस्त हुआ था और दूर से आता है।

—वर्ड्सवर्थ (ओड, इंटिमेशन्स आफ़ इम्मारटलिटी, ५)

आत्मानुशासन

उपाय अंततः वही अधिक सार्थक होगा जिसमें सरकारी प्रशासन से आत्मानुशासन के मूल्य पर अधिक बल हो।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० ७६)

Those who can command themselves command others.

जो स्वयं को शासित कर सकते हैं, वे दूसरों को शासित करते हैं।

—हैज़लिट

आत्मानुसंधान

ढूंढता फिरता हूँ ऐ 'इक़बाल' अपने-आपको।
आप ही गोया मुसाफ़िर, आप ही मंजिल हूँ मै।।

—इक़बाल

अपने मन में डूब कर पा जा सुराग़े ज़िन्दगी[1]।
तू अगर मेरा नही बनता न बन, अपना तो बन।।

—इक़बाल

आत्मालोचन

विरूपो यावदादर्शेनात्मनः पश्यते मुखम्।
मन्यते तावदात्मानमन्येभ्यो रूपवत्तरम्।।

कुरूप व्यक्ति जब तक दर्पण में अपना मुँह नहीं देख लेता, तब तक वह अपने को दूसरों से अधिक रूपवान समझता है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व, ७४।८७)

सब देखै पै आपनौ, दोष न देखै कोइ।
करै उजेरो दीप पै, तरे अंधेरो होइ।।

—वृन्द (वृन्द-सतसई)

सब दीननि की दीनता, सब पापिन को पाप।
सिमट आइ मों में रह्यौ, यह मन समुझहु आप।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

1. जीवन-रहस्य।

बेनहे आईनए अन्दर बराबर।
दरो बेनिगर बे बीं आँ शख़्से दीगर ॥

तू अपने सम्मुख दर्पण रख ले और उसमें अपने को निरख, तुझे एक दूसरा ही मनुष्य दिखलाई पड़ेगा।
[फ़ारसी] —शब्सतरी

How I like to be liked, and what I do to be liked!

मुझे लोग पसंद करें, यह मैं कितना चाहता हूँ परन्तु लोग मुझे चाहें, इसके लिए मैं करता क्या हूँ।

—चार्ल्स लैम्ब (पत्र—डोरोथी वर्ड्सवर्थ को, ८ जनवरी, १८२१)

It is difficult to see the picture when you are inside the frame.

जब आप चौखटे के भीतर हैं तो चित्र को देख पाना कठिन है।

—अज्ञात

आत्मीयता

सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति।

सभी आत्मीय को सुन्दर समझते हैं।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २।७ के पश्चात्)

जिसके हृदय सदा समीप हैं,
वही दूर जाता है.
और क्रोध होता उस पर ही
जिससे कुछ नाता है।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, कर्म सर्ग)

दो दिन के जीवन में मनुष्य मनुष्य को यदि नहीं पूछता, स्नेह नहीं करता, तो फिर वह किसलिए उत्पन्न हुआ है?

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ८६)

आत्मोद्धार

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

मनुष्य अपना उद्धार अपने-आप करे, स्वयं अपनी अवनति या दुर्गति न करे। प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३०।५, अथवा गीता, ६।५)

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च॥

मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है, स्वयं ही अपना शत्रु है, स्वयं ही अपने कर्म और अकर्म का साक्षी है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ६।२७)

यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद्वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः।
विमोचितुं कामदृशां विहार-
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः॥

चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो, यदि उस गरीब ने अपने को कामिनियों के मनोरंजन का सामान, उनका क्रीड़ामृग बना लिया है और सन्तान की बेड़ी पहन ली है तो वह अपना उद्धार नहीं कर सकता।

—भागवत (७।६।१७)

सच्छास्त्रसाधुसम्पर्कैः कर्दमात् सारमुद्धरेत्।

सत्पुरुषों के संग द्वारा अज्ञान रूपी कीचड़ से आत्मा का उद्धार करना चाहिए।

—योगवासिष्ठ (निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्द्ध)

संत सटासटि राम रटारटि काम घटाघटि दाम निवारे।
लोभ कटाकटि पाप फटाफटि मोह नटानटि मानहुँ डारे॥
चाल चटापटि सग लटापटि वेग उटापटि कारिज सारे।
खोहि खटापटि मंन हटाहटि तीन मिटामिटि आप उधारे॥

—रामजन

आदर

न पूजयन्ति ये पूज्यान् मान्यान् न मानयन्ति ये।
जीवन्ति निन्द्यमानस्ते मृताः स्वर्गं न यान्ति च॥

जो अपने पूज्य जन की पूजा नहीं करते, जो अपने मान्य जन का सम्मान नहीं करते वे निन्दित होते हुए जीते हैं और मरने के बाद स्वर्ग नहीं जाते हैं।

—शुकसप्तति (१।५)

अधीरः कर्कशः स्तब्धःकुचेलः स्वयमागतः।
एते पंच न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥

अधीर, कर्कश, जड़, कुवस्त्रधारी तथा बिना बुलाए स्वयं आया हुआ—ये पाँच यदि बृहस्पति के समान हों तो भी नहीं पूजे जाते।

—अज्ञात

अन्तर्धृतगुणैरेव परेषां स्थीयते हृदि।

दूसरों के हृदय में अपने अन्दर धारण किए गए सद्गुणों से ही स्थान पाया जा सकता है।

—अज्ञात

सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उपपादेदि।

सत्कारपूर्वक स्वीकार किया गया सत्कार ही सन्तोष उत्पन्न करता है।

[प्राकृत] —भास (स्वप्नवासवदत्ता, ४।८ के पश्चात्)

स्वामी के सनेह स्वानहू को सनमानु है।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ६४)

बड़ी ठौर की लघु लहै, आए आदर भाय।
मलयाचल की ज्यौं पवन, परसैं मंद सुहाय ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ६९२)

जो आदमी दूसरों के भावों का आदर करना नहीं जानता, उसे दूसरे से भी सद्भावना की आशा नहीं करनी चाहिए।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १४३)

राख पत रखाव पत।

अपनी लज्जा की रक्षा चाहो तो दूसरों की लज्जा की रक्षा करो।

—हिंदी लोकोक्ति

बहुता जाइए, भरम गवाइए।

अधिक आना जाना, मान खोना।

—हिंदी लोकोक्ति

तिरस्कारमय अमृत नरक है और मानयुक्त नरक सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

—अन्तरा (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ३६)

आगे क़ाज़ी, परे हाजी, शेषे पाजी।

पहले क़ाज़ी कहा, फिर हाजी कहा, अंत में पाजी कहा, प्रतिदिन सम्मान गिरता गया।

—बँगला लोकोक्ति

आदर्श

परले सिरे का कुचरित्र मनुष्य भी साधुवेश रखने वालों से ऊँचे आदर्श पर चलने की आशा रखता है, और उन्हें आदर्श से गिरते देखकर उनका तिरस्कार करने में संकोच नहीं करता।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १२१)

कार्य-क्षेत्र में स्वार्थों की संघर्षस्थली में महान् आदर्शों की रक्षा करना कठिन काम है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० २८)

जीवन का आदर्श साँचे में ढाला पुरजा नहीं है, वृक्ष पर खिला पुष्प है। वह बटन दबाते ही खिंच जाने वाला फोटो नहीं, ब्रश और उँगलियों की कारीगरी से धीरे-धीरे बनने वाला चित्र है।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुसकराई, पृ० ३०)

जीवन-शुद्धि और जीवन-समृद्धि यही हमारा आदर्श हो।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवन-दृष्टि, पृ० १९३)

जगत् में सब कुछ क्षण-भंगुर है, केवल एक वस्तु नष्ट नहीं होती और वह वस्तु है भाव या आदर्श, हमारे आदर्श ही हमारे समाज की आशा है।

—सुभाषचन्द्र वसु (इनसीन जेल से श्री गोपाल लाल सान्याल को पत्र, ५-४-२७)

आदर्श की प्राप्ति समर्पण की पूर्णता पर निर्भर है।

—सुभाषचन्द्र वसु (इनसीन जेल से श्री गोपाल लाल सान्याल को पत्र, ५ अप्रैल १९२७)

किसी उच्चादर्श में कुछ आस्था होना—अपने जीवन को सार्थक करने और हमें बाँधे रखने के लिए आवश्यक है।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, खण्ड १, पृ० ५१)

इनसान भले ही तारों तक पहुँच न पाए, लेकिन उनकी तरफ देखा तो करता ही है। तो सिर्फ इसलिए अपने आदर्शों को नीचे करना ठीक नहीं, कि वे बहुत ऊँचे हैं—भले ही आप उनको पूरा-पूरा हासिल न कर सकें।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, खण्ड १, पृ० १०१)

मनुष्य में मुसीवतों का सामना करने की अपार क्षमता है। यह क्षमता तभी उजागर होती है, जब उसे महान् आदर्शोन्मुखी वातावरण मिले। अंतःकरण आदर्शोन्मुखी वातावरण से ही बनता है।

—बाबा पृथ्वीसिंह आजाद (लेनिन के देश में, पृ० १३८)

हम आदर्श को अपनी कमियों की आँखों से देखते है।

—नीत्शे (मिसेलेनियस मैक्जिम्स एण्ड ओपिनियन्स)

समस्त प्राणियों पर सम प्रेम रखना ही आदर्श नियम, आदर्श जीवन और आदर्श स्थिति है।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियाँ, पृ० ७८)

I will die now near the ideal rather than live away from it.

मैं अब अपने आदर्श से हटकर जीने की अपेक्षा आदर्श के समीप मरना अधिक पसन्द करूँगा।

—लाला हरदयाल (श्री राना को पत्र)

Let us set before ourselves the master ideas even in things relative. "I do not make good screws, sir, I make the best that can be made," said an indignant workman in reply to too casual an inquiry. This ought to be our attitude ···Nothing less than the utmost, Nothing easy. Nothing cheap.

सामान्य बातों में भी हमें अपने सामने महान् आदर्श ही रखने चाहिएं। सामान्य से पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में एक रोषयुक्त शिल्पी ने कहा था—'श्रीमान् जी, मैं केवल अच्छे पेंच नहीं, सर्वोत्तम पेंच बनाता हूँ।' यही हमारी मनोवृत्ति होनी चाहिए···सर्वोत्कृष्ट से तनिक भी कम नहीं। कुछ भी सरल नहीं, कुछ भी सस्ता नहीं।

—भगिनी निवेदिता (रेलिजन एंड धर्म)

Ideals never die.

आदर्श कभी नहीं मरते।

—भगिनी निवेदिता ('दि ब्रह्मवादिन' पत्रिका, १८९८)

The powers of muscle and of money have opportunities of inmediate satisfaction, but the power of the ideal must have infinite patience.

बाहुबल और धनबल में तत्काल संतुष्टि के अवसर रहते हैं परन्तु आदर्श के बल को तो अनन्त धैर्य रखना ही चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, वूमॅन एंड होम, पृ० १६२)

आदिशक्ति

पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाथवा।

निर्गुण अथवा सगुण चिन्मयी पराशक्ति पूजनीय है।

—देवीभागवत (१।९।८७)

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वथैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥

मैं और ब्रह्म एक ही हैं। मुझमें और इस ब्रह्म में कभी किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। जो वह है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वह है। बुद्धि के भ्रम से भेद प्रतीत हो रहा है।

—देवीभागवत (३।६।२)

एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ।
या शक्तिः परमात्मासौ योऽसौ सा परमा मता॥

नारद! वे परमात्मा और आद्याशक्ति दोनों एक रूप, चिन्मयस्वरूप, निर्गुण और निर्मल हैं। जो शक्ति है, वही परमात्मा है और जो परमात्मा है, वही शक्ति है—ऐसा सिद्धान्त है।

—देवीभागवत (३।७।१४)

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।
सापि मत्तः पृथङ् माया नास्त्येव परमार्थतः॥
व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम्॥

मेरी मायाशक्ति ने सम्पूर्ण चराचर जगत् की रचना की है। परमार्थ-दृष्टि से तो वह माया भी मुझसे भिन्न कोई

वस्तु नहीं है। व्यवहार की दृष्टि से वही 'माया' और 'विद्या' के नाम से प्रसिद्ध हैं। तत्त्वदृष्टि से पृथक् कुछ भी नहीं। तत्त्व केवल एक ही है।

—देवीभागवत (७।३३।१-२)

सगुणा निर्गुणा चेति द्विविधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः॥

पराशक्ति को मनीषीजन सगुण और निर्गुण दो रूपों में बताते हैं। संसार में आसक्त साधकजन देवी के सगुण भाव को और विरक्त जन देवी के निर्गुण भाव को अपनाकर आराधना करते है।

—देवीभागवत

शंभोर्ज्ञानक्रियेच्छाबलकरणमनः शान्तितेजः शरीर-
स्वर्लोकागारदिव्यासनवरमहिषीभोग्यवर्गादिरूपा।
सर्वैरेतैरुपेता स्वयमपि च परब्रह्मणस्तस्य शक्तिः
सर्वाश्चर्यैकभूमिर्मुनिभिरभिनुता वेदतन्त्राभियुक्तैः॥

जिन्हें परब्रह्म शिव की शक्ति कहा जाता है, वे ही शम्भु का ज्ञान, क्रिया, इच्छा, बल, करण, मन, शान्ति, तेज, शरीर, स्वर्गलोक, आवास, दिव्यासन, महारानी तथा समस्त भोग्यवर्गरूपा है। वे स्वयं भी इन्ही सब गुणों से सम्पन्न होकर विद्यमान रहती हैं। सम्पूर्ण आश्चर्यो की वे एकमात्र भूमि है। मुनिगण, वेद, तन्त्र और कवि उनकी वन्दना करते रहते है।

—अप्पयदीक्षित (आनन्दलहरी, ७)

प्रभातप्रोन्मीलित्कमलवनसंचारसमये
शिखाः किंजल्कानां विदधति रुजं यत्र मृदुलाः।
तदेतन्मातस्ते चरणमरुणश्लाघ्यकरुणं
कठोरा मद्वाणी कथमियमिदानीं प्रविशतु॥

मां! प्रातः खिलते हुए कमलवन में विचरण करते समय पद्म-पुष्पों के मृदुल केसर जिन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं, श्लाघ्य करुणा से पूर्ण आपके उन्हीं अरुण चरणों में मेरी इस कठोर वाणी का व्यापार उचित नहीं, अतः अब मौनावलम्बन ही कल्याणकर है।

—पण्डितराज जगन्नाथ (लक्ष्मीलहरी)

तदेकं परमं वस्तु शक्तिमेके प्रचक्षते।
स्वरूपं केऽपि विद्वांसो ब्रह्मान्ये पुरुषं परे॥

उस एक परम वस्तु को कोई 'शक्ति' कहते हैं, कोई विद्वान् उसे 'स्वरूप' कहते हैं, कोई 'ब्रह्म' तथा कोई 'पुरुष'।

—श्रीरमणगीता (१२।२८)

शौरिश्चकास्ति हृदयेषु शरीरभाजां
तस्यापि देवि हृदये त्वमनुप्रविष्टा।
पद्मे तवापि हृदये प्रथते दयेयं
त्वामेव जाग्रदखिलातिशयां श्रयामः॥

माँ! भगवान् विष्णु समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान है और तुम उनके हृदय में विराजती हो, पर तुम्हारे हृदय में भी दया विराजती है, अतः हम तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं।

—अज्ञात

महाशक्ति वैचित्र्यमयी वह नव नव चित्र बनाती।
किसी भाव के वश होकर फिर उन्हें तुरन्त मिटाती॥

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' (तारकवध, पृ० २८)

जगत् में शक्ति की सभी अभिव्यक्तियाँ माँ ही हैं। वही प्राणरूपिणी हैं, वही बुद्धिरूपिणी हैं, वही प्रेमरूपिणी हैं। वे समग्र जगत् के भीतर विराजमान हैं, फिर भी वे जगत् से सम्पूर्ण पृथक् हैं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ३६)

अपनी सृष्टि का पथ कर रखा है आकीर्ण तुमने
विचित्र छलना-जाल में
हे छलनामयी!
मिथ्या विश्वास का बिछाया जाल निपुण हाथ से
सरल जीवन में।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('आरोग्य' गद्यकाव्य)

अनायास ही सह लेता जो जगत् की छलनाएँ
पाता वह तुम्हारे हाथ से
शान्ति का अक्षय अधिकार है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('आरोग्य' गद्यकाव्य)

माँ के लिए ब्राह्मण और शूद्र क्या, माँ तो जगदम्बा है, जगत्-जननी।

—विमल मित्र (साहब बीबी गुलाम, पृ० १९)

आधुनिक

यदि पुरानी दुनिया (मध्य युग) अति वैयक्तिकता के पक्षपात से पीड़ित थी तो नई दुनिया अति सामाजिकता के दलदल में फँसने जा रही है।

—सुमित्रानंदन पंत ('उत्तरा', भूमिका, पृ० १५)

सांप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूं—(उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना—
विष कहाँ पाया ?

—अज्ञेय (इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ० २९)

तर्क, बुद्धि और प्रमाण की तुलना पर सही उतरने वाले तत्त्वों को एक ऐतिहासिक सार्थक प्रवाह-चेतना में जोड़ते हुए सम्पूर्ण वैश्विक मानवता की उपलब्धि के प्रकाश में व्यक्ति और समाज को अपना सर्वोत्तम देते हुए जीवन को सार्थकता प्रदान करने की चेष्टा ही आधुनिकता है।

—शिवप्रसाद सिंह (शिखरों का सेतु, पृ० ७)

एक तरफ़ निर्दयता में यह सदी बहुत बढ़ी हुई है, तो दूसरी तरफ़ न्याय की इच्छा में भी।

—राममनोहर लोहिया (सात क्रांतियाँ, १)

नये युग को अत्यन्त संक्षेप में बताना हो तो कहेंगे यह युग मानवता का युग है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य सहचर, पृ० १७६)

नया जीवन-बोध सन्तुष्ट नहीं होता
ऐसे जवाबों से जिनका सम्बन्ध
आज से नहीं अतीत से है,
तर्क से नही रीति से है।

—कुँवर नारायण (आत्मजयी, पृ० १०)

पुरानी रोशनी में और नयी में फ़र्क़ इतना है
उसे किश्ती नहीं मिलती इसे साहिल[1] नहीं मिलता।

—अकबर इलाहाबादी

१. तट।

मनुष्य का आज का धर्म हो गया है—आगे बढ़ते चलो—सबको पीछे छोड़ते चलो—धक्का मार कर, चोट पहुँचाकर—किसी भी तरह बढ़ते चले जाओ।

— विमल मित्र (गवाह नं० ३)

आज के युग में हमारे समान[1] व्यक्ति के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा कर लेना ही ऐसी जिम्मेदारी हो गयी है कि सत्य बचा या नहीं, धर्म की रक्षा हो पायी या नहीं, यह ध्यान हम रखें कब ?

—विमल मित्र (परस्त्री, पृ० ९)

आज के समाज में प्रतिभा तो बहुत है, परन्तु श्रद्धा नहीं है। ज्ञान तो है परन्तु व्यावहारिक बुद्धि नही है। आडम्बर-पूर्ण सभ्यता तो है, परन्तु प्रेम व सहानुभूति नहीं है।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० २०)

यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि जिन सिद्धान्तों को हमारे पूर्वज अपने जीवन के व्यवहार में लाते थे, हम उन पर केवल चर्चा ही करते रहते है।

— सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० २३)

Speak of the moderns without contempt, and of the ancient without idolatory.

आधुनिकों के विषय में बिना घृणा के बोलो और प्राचीनों के विषय में बिना अन्ध-श्रद्धा के।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र
२२ फरवरी, १७४८)

आधुनिकता

विश्व को व्यक्तिगत आसक्त-भाव से न देखकर निर्विकार तद्गत-भाव से देखना ही आधुनिकता है। यह देखना ही उज्ज्वल है, विशुद्ध है, यह देखना ही विशुद्ध आनन्द है। आधुनिक विज्ञान जिस निरासक्त भाव से वास्तव का विश्लेषण करता है, काव्य भी ठीक वैसे ही निरासक्त चित्त से विश्व को समग्र दृष्टि से देखे, यही शाश्वत रूप से आधुनिकता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('आधुनिक काव्य' निबन्ध)

१. मध्यम वर्ग गृहस्थ।

आध्यात्मिकता

सुविशालमिदं विश्वं पवित्रं ब्रह्ममन्दिरम्।
चेतः सुनिर्मलं तीर्थं सत्यं शास्त्रमनश्वरम्॥

विश्वासो धर्ममूलं हि प्रीतिः परमसाधनम्।
स्वार्थनाशस्तु वैराग्यं ब्राह्मैरेवं प्रकीर्त्यते॥

ब्राह्मसमाजी कहते हैं कि यह बड़ा ही विशाल विश्व ब्रह्म का पवित्र मंदिर है, शुद्ध चित्त ही पुण्य-क्षेत्र है, सत्य ही शाश्वत धर्मशास्त्र है, श्रद्धा ही धर्म का मूल है; प्रेम ही परम साधन है और स्वार्थ-नाश ही वैराग्य है।

—(ब्राह्मसमाज का सिद्धान्त)

जिहि घर दीपक राम का, तिहि घर तिमिर न होइ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ॥

—दादूदयाल

पशुबल अस्थायी है और अध्यात्मबल या आत्मबल या चैतन्यवाद एक शाश्वत बल है। वह हमेशा रहने वाला है, क्योंकि वह सत्य है। जड़वाद तो एक निकम्मी चीज़ है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, २००)

हमें शरीर के चिकित्सक की बजाय आत्मा के चिकित्सकों की आवश्यकता है।

—महात्मा गांधी (मोहन माला, २२)

आध्यात्मिक अनुभव विचार से भी अधिक गहरे होते हैं।

—महात्मा गांधी (सिलेक्शन्स फ़्राम गांधी, १८)

सत्य, संयम, सेवा—यह पारमार्थिक जीवन की त्रिसूत्री है।

—विनोबा (विचार पोथी, ५)

अध्यात्म बुढ़ापे की बुढ़भस नहीं, तरुणाई की उत्तुंगतम उड़ान है।

—जयप्रकाश नारायण (सम्पूर्ण क्रांति, पृ० ७६)

दृष्टि में द्रष्टा का चिन्तन अध्यात्म-चिन्तन है।

—अखंडानंद सरस्वती (विभूतियोग, पृ० २१७)

वास्तव में व्यक्ति में स्नेह, मधुरता, मृदुलता की मात्रा ही उसके विकास का मापदण्ड है। जग में स्नेह तथा उस पर आधारित मधुरता, मृदुलता उसी प्रेम रूप, मधु रूप, रस रूप भगवान की अभिव्यक्ति है। उसी के स्नेह, मधुरता मृदुलता, का प्रतिबिम्ब है। अतः यही उसके नैकट्य की द्योतक भी है।

—अशोकानंद (तत्त्व-चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ९९)

शाहे शाहानेम् जाहिद चूं तो उरियाँ नेस्तम्।
शौक़ो जाके शोरशम् लेकिन परीशों नेस्तम्।
बुत परस्तम् काफ़िरम् अज अहले ईमाँ नेस्तम्।
सूए मस्जिद मीरवम् अम्माँ मुसल्माँ नेस्तम्।

ऐ जाहिद! मैं शाहों का शाह हूँ—तेरी तरह नंगा कंजूस नही हूँ, मूर्तिपूजक और काफ़िर हूँ, ईमान वाले मुसलमानों से मैं अलग हूँ, यों मैं कभी-कभी मस्जिद की ओर भी जा निकलता हूँ, पर मुसलमान नहीं हूँ।

[फ़ारसी] —सरमद

ख़्वाही के तुरा रुतबते असरार रसद,
मपसंद के कस राजे तू आजार रसद,
अज़ मर्ग मे अन्देश वग़मे रिज़्क मख़ुर्द,
के ईं हर दो बवक़्त ख़ेश नाचार रसद।

यदि तू चाहता है कि तुझको भगवान के भेद प्राप्त हो जाएँ तो ऐसे कार्य कर कि जिनसे किसी को कष्ट न पहुँचे। मृत्यु का भय मत कर और रोटियों की चिंता त्याग दे क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ समय पर स्वयं ही आ उपस्थित होती हैं।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, २९९)

दूसरों की आध्यात्मिकता का हृदय से आदर करने से ही मनुष्य में आध्यात्मिकता उत्पन्न होती है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० २६६)

सच्ची आध्यात्मिकता, जिसकी शिक्षा हमारे पवित्र ग्रंथों में दी गई है, वह शक्ति है जो आन्तरिकता तथा बाह्यता के पारस्परिक शान्तिपूर्ण संतुलन से निर्मित होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साधना, पृ० १२६)

अगर तुमको अपनी आध्यात्मिक प्रगति की थाह लेनी है तो तुम इतना देख लो कि पहले जितने सेवा के अवसरों

को तुम हाथ से जाने देते थे, आज भी उतने ही जाने देते हो या कम।

—अरण्डेल (सेवा के मन्त्र)

अध्यात्म का पहला सोपान है जीवन की अविभाज्यता को, अखंडता को पहचानना।

—विमला ठकार (पावक स्फुलिंग, पृ० ६)

Character is spirituality.
चरित्र ही आध्यात्मिकता है।

—भगिनी निवेदिता (भगिनी निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ५०६)

Heaven's call is rare, rarer the heart that heeds.
ईश्वरीय पुकार दुर्लभ है परन्तु वह हृदय जो उस पर ध्यान देता है, दुर्लभतर है।

—अरविन्द (सावित्री, ६।१)

Spiritual life is complete selflessness.
आध्यात्मिक जीवन पूर्ण निःस्वार्थता है।

—शिवानंद

आनंद

यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।
मायामात्रं जगत् कृत्स्नं तदा भवति निर्वृत्तिः॥

जब मनुष्य केवल अपने आत्मा को परमार्थतः—अर्थात् परब्रह्मरूप में देखता है और सम्पूर्ण जगत् को माया का विलासमात्र मानता है, तब उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (६।१२)

विद्वान् नित्यं सुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया।
विद्वान् को चैतन्य रस से पूर्णबुद्धि के द्वारा नित्य सुख में स्थित रहना चाहिए।

—तेजोबिन्दु उपनिषद् (१।५०)

लब्धदिव्यरसास्वादः को हि रज्येद् रसान्तरे।
दिव्य रस का आस्वाद प्राप्त कर लेने के अनन्तर रसान्तर में कौन अनुरक्त हो सकता है।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ३।४)

हरष विवस तन दसा भुलानी।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१४८।४)

तुलसी जेहि आनंद मगन मन,
क्यों[1] रसना बरनै सुख सो री!

—तुलसीदास (गीतावली, पद १०५)

शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आनंद सर्ग)

प्रतिफलित हुईं सब आँखें
उस प्रेम ज्योति विमला से,
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आनंद सर्ग)

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनंद अखंड घना था।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आनंद सर्ग)

सत्, चित् और आनंद—ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनंद' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनंद की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी—साधनावस्था और सिद्धावस्था।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि भाग १, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था)

अधर्म-वृत्ति को हटाने में धर्मवृत्ति की तत्परता—चाहे वह उग्र और प्रचण्ड हो, चाहे कोमल और मधुर—भगवान की आनंद-कला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है।··· यह गति आदि से अंत तक सुन्दर होती है—अंत चाहे

---

1. कैसे।

सफलता के रूप में हो, चाहे विफलता के।

—रामचन्द्र शुक्ल, (चिंतामणि भाग १, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था)

आनन्द, आनन्द, कहाँ है आनन्द ! हाय ! तेरी खोज में मैंने व्यर्थ जीवन गँवाया।

—रायकृष्ण दास (साधना, पृ० ५३)

साहित्य और कला की हमारी पूरी परम्परा में, जीव की प्रधान कामना आनन्द की अनुभूति है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वैशाली में वसन्त, पृ० ७)

सच्चा आनन्द केवल सेवाव्रत में है।

—शिवानी (कृष्णकली, पृ० ५१)

हर बात मे लज्जत है अगर दिल में मजा हो।

—अमीर

शमा औ परवाने की हालत से यह जाहिर हुआ
ज़िन्दगी का लुत्फ़ कुछ जल-जल के मर जाने मे है।

—अज्ञात

कर्म भूमिकायि दीजि धर्मुक सग।
संतोष ब्यालि बवि आनंदुक फल॥

कर्म-भूमि में संतोष के बीज को धर्म के पानी से सींचने पर जो प्राप्ति होगी, वह आनन्दरूपी फल होगा।
[कश्मीरी] —परमानन्द

'आनंद' किस रूप में अपने को प्रकाशित करता है? प्राचुर्य में, ऐश्वर्य में, सौंदर्य में।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निबन्ध-उत्सव)

जगत् में हमारा आनन्द और हमारा प्रेम ही सत्य के प्रकाश रूप की उपलब्धि है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निबन्ध-उत्सव)

मनुष्य का स्थायी आनन्द किसी वस्तु के ग्रहण में नहीं, वरन् अपने को उसके प्रति समर्पित करने में है, जो अपनी अपेक्षा अधिक महान् है, तथा अपने को उन विचारों के प्रति समर्पित करने में है, जो वैयक्तिक आत्मा की अपेक्षा अधिक विशाल हैं—जैसे अपने देश का विचार, मानवता का विचार, परमात्मा का विचार।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (साधना, पृ० १५२)

प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ अपने हृदय को एकाकार करना, मन को संयत करके, प्रकृति की भाषा समझने का प्रयास करना, कष्टसाध्य अवश्य है, परन्तु सामान्य रूप में यदि कोई यह कर सके तो उसका हृदय आनन्द से ओत-प्रोत हो जाएगा।

—सुभाषचन्द्र बसु (श्रीमती विभावती वसुदेवी को पत्र, १९२७)

आनन्द सर्वदा अन्तरात्मा से प्रकट होता है, वाह्य पदार्थों से नहीं।

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, १०१५७)

आनन्द का अवतरण तब होता है जबकि जीव परमात्म-स्वरूप में विलीन होता है।

—शिवानन्द (दिव्योदेश, १०१५८)

Imperfect is the joy not shared by all.
जिस आनन्द में सभी सहभागी न हों, वह अपूर्ण है।

—अरविन्द (सावित्री, ११।१)

Oh how bitter a thing it is to look into happiness through another man's eyes.
आनन्द को दूसरों की आँखों से देखना कितना दुःखद है !

—शेक्सपियर (ऐज़ यू लाइक इट, ५।२)

Sleep after toil, port after stormy seas,
Ease after war, death after life does greatly please.

परिश्रम के पश्चात् नींद, तूफानी समुद्र के पश्चात् बन्दरगाह, युद्ध के पश्चात् विश्राम और जीवन के पश्चात् मृत्यु अत्यधिक आनन्दप्रद होते हैं।

—एडमंड स्पेन्सर (दि फ़ेयरी क्वीन, १।९।११)

Joy rul'd the day, and love the night.
आनन्द दिन पर शासन करता था और प्रेम, रात्रि पर।

— जान ड्राइडेन (ऐक़्यूलर मास्क)

Rarely, rarely, comest thou Spirit of Delight !
ओ आनन्द की भावना ! तुम कभी-कभी आती हो।

—शैले 'रेयरली, रेयरली कम्स्ट दाउ' गीत)

Nothing can permanently please, which does not contain in itself the reason why it is so, and otherwise.

ऐसा क्यों है और ऐसा क्यों नहीं—इसका कारण न बताने वाली बात स्थायी रूप से आनन्द नहीं दे सकती।

—कालरिज

आपत्ति

निषिद्धमप्याचरणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वथा।
घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले क्वचिद्बुधैरप्यपथेन गम्यते ॥

जिस आपदा में अच्छी क्रिया से किसी प्रकार आत्मा की रक्षा न हो सके उसमें निषिद्ध कर्म भी करना चाहिए। क्योंकि जब सड़क पर वर्षा से कीचड़ हो जाती है तब पंडित लोग भी कभी-कभी कुमार्ग से जाते है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ६।३६)

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजंघा हि वत्सस्य स्तम्भी भवति बन्धने ॥

हितैषी भी आती हुई आपत्तियों का हेतु बन जाता है, बछड़े के लिए माता की जंघा बन्धन का स्तम्भ बन जाती है।

—अज्ञात

आपत्तियाँ यों ही उपस्थित नहीं होतीं। वे तो परमात्मा की कृपा सूचित करती हैं। संकटों द्वारा हमें कसोटी पर कसने और उसमें सफल होने पर आगे का उन्नत मार्ग हमें दिखाने की ईश्वरेच्छा उससे व्यक्त होती है।

—डॉ० केशव बलीराम हेडगेवार

आभूषण

समरागं समद्वन्द्वमशक्तं मृषतं स्थिरम्।
सुविमृष्टमसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम्।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥

सुवर्ण के बने आभूषणों में निम्नलिखित गुण होते हैं—एक-सा रंग होना, भार व रूप आदि में एक-दूसरे के समान होना, बीच में कहीं गाँठ आदि का न होना, टिकाऊ होना, अच्छी तरह साफ़ करके चमकाया हुआ होना, ठीक ढंग पर बना हुआ होना, विभक्त अवयवों वाला होना, धारण करने में सुखद होना, स्वच्छ, कान्तियुक्त व मनोहर आकृति वाला होना, एक-सा होना, मन व नेत्रों को अभिराम लगने वाला होना।

—चाणक्य (अर्थशास्त्र, २।१४।६६-६७)

ण भूषणं भूसयते सरीरं, विभूसणं सील हिरी य इत्थिए।

नारी का आभूषण शील और लज्जा है। बाह्य आभूषण उसकी शोभा नहीं बढ़ा सकते।

[प्राकृत] —बृहत्कल्पभाष्य

जे रुअमुक्का वि विहूसयंति ताणं अलंकार वसेण सोहा।
णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलदि भूसणेहिं ॥

जो स्त्रियाँ सुन्दर नही होती हैं, वे अलंकारों से अपने को सजाती हैं और उनका सौन्दर्य अलंकारों पर ही निर्भर है। निसर्ग-सुन्दर मनुष्य को अलंकारों की अपेक्षा नही होती है, किन्तु अलंकार उसके सौन्दर्य को और अधिक उत्कृष्ट बनाते हैं।

—राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।३१)

आस्यं सहास्यं नयनं सलास्यं
सिन्दूर बिन्दूदयशोभिमालम्।
नवा च वेणी हरिणीदृशश्चेद्
अन्यैरगण्यैरपि भूषणैः किम् ॥

यदि मुख हास-पूर्ण है, नयनों में लास्य विद्यमान है मस्तक सिन्दूर के तिलक से शोभायमान है, नवीन वेणी है, दृष्टि हरिणी के समान है, तो अन्य अगणित आभूषणों से क्या लाभ ?

—अज्ञात

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान ॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति-पद, तुलसी अमल-अदाग ॥

—तुलसीदास (वैराग्य-संदीपिनी, पृ० ४३-४४)

सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य की आत्मा सुभूषित कभी नही हो सकती क्योंकि आभूषणों के धारण करने से

केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु भी सम्भव है।

—दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

रोग-जर्जर शरीर पर अलंकारों की सजावट, मलिनता और कलुष के ढेर पर बाहरी कुंकुम-केसर का लेप गौरव नही *बढ़ाता।*

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६१)

नहीं मोहताज जेवर का जिसे ख़ूबी ख़ुदा देवे,
कि आख़िर वदनुमा लगता है देखो चाँद का गहना।

—आबरू

राजार मतो वेरो तुमि साजाओ जे शिशुरे,
पराओ जारे मणिरतनहार—
खेला धूला आनन्द तार सकलइ जाय घुरे,
वसनभूषण हय जे विषम भार।

माँ! तुम बच्चे को राजा के समान वेशभूषा तथा मणि-रत्नहार पहनाती हो इससे उसके खेल का सारा आनन्द नष्ट हो जाता है। उसे ये वस्त्र और आभूषण भार बन जाते हैं।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, ८)

रडे अलंकार दैन्याचियै कांती।

कांतिहीन के अंग पर अलंकार भी अपने भाग्य को रोते हैं।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ९१०)

आय-व्यय

अल्पेन विभवेनैव व्ययाधिक्यं न युक्तितः।

अल्प वैभव में व्यय की अधिकता उचित नही है।

—अज्ञात

इदमेव हि पांडित्यं चातुर्य्यमिदमेव हि।
इदमेव सुबुद्धित्वमायादल्पतरो व्ययः॥

विद्वत्ता, चतुराई और बुद्धिमानी की बात यही है कि मनुष्य अपनी आय से कम व्यय करे।

—अज्ञात

आगतव्ययशीलस्य कृशत्वमतिशोभते।
द्वितीयश्चन्द्रमा वन्द्यो न वन्द्यः पूर्णचन्द्रमाः॥

उपार्जित धन में से व्यय करने वाले व्यक्ति का दैन्य अधिक सुशोभित होता है; द्वितीया का चन्द्रमा ही पूज्य होता है, पूर्णमासी का नहीं।

—अज्ञात

मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसमें बरकत होती है।

—प्रेमचन्द ('नमक का दारोगा' कहानी)

तेते पाँव पसारिए, जेती लाँबी सौर।

—हिंदी लोकोक्ति

एण्णेगे बत्तिगे नेर।

जितना तेल, उतनी बाती।

—कन्नड लोकोक्ति

आयु

न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति।

विद्वानों के स्थिर किए व्रत का अतिक्रमण करके कोई सौ वर्ष तक भी नही जीता।

—ऋग्वेद (१०।३३।९)

शतं जीव शरदो वर्धमानः
शतं हेमन्तांछतमु वसन्तान्।

हम प्रतिदिन वर्धमान रहते हुए सौ शरद्, सौ हेमन्त और सौ वसन्त तक जीते रहें।

—ऋग्वेद (१०।१६१।४)

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक अच्छी प्रकार बोलें, सौ वर्ष तक पूर्णतया अ-दीन होकर रहें और सौ वर्ष से अधिक भी।

—यजुर्वेद (३६।२४)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

इस जगत् में कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए।

—अज्ञात

अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः॥

—वाल्मीकि (रामायण)

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥

सदाचारी, श्रद्धावान् और ईर्ष्यारहित मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है चाहे वह सब प्रकार के शुभ लक्षणों से हीन हो।

—मनुस्मृति (४।१५८)

आयुरत्यन्तचपलं मृत्युरेकान्तनिष्ठुरः।
तारुण्यं चातितरलं बाल्यं जडतया हृतम्॥

आयु अत्यन्त चपल है। मृत्यु पूर्ण क्रूर है। युवावस्था अति चंचल है। बाल्यावस्था अज्ञान में ही नष्ट हो जाती है।

—योगवासिष्ठ (१।२६।९)

देशकालक्रिया द्रव्यशुद्ध्यशुद्धौ स्वकर्मणाम्।
न्यूनत्वे चाधिकत्वे च नृणां कारणमायुषः॥

मनुष्यों की आयु के कम व अधिक होने में देशकाल, क्रिया, द्रव्यशुद्धि-अशुद्धि तथा स्वकर्मों की शुद्धि-अशुद्धि ही कारण होते हैं।

—योगवासिष्ठ (३।५४।२९)

आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते।
नीयते तद् वृथा येन प्रमादः सुमहानहो॥

आयु का एक क्षण भी संसार के सब रत्नों से नहीं पाया जा सकता। उस आयु को यदि कोई व्यर्थ में खोता है, तो अहो! बड़ा भारी प्रमाद है।

— योगवासिष्ठ (६।उ०।१७५।७८)

आयुर्वायुप्रचलनलिनीवारिबिन्दूपमानम्।

आयु तो वायु से चंचल कमल-पत्र पर स्थित जलबिन्दु के समान है।

भानुदत्त (रसतरंगिणी, ८।१७)

व्रजन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितां यथा।
आयुरादाय मर्त्यानां तथा रात्र्यहनी सदा॥

जैसे नदियों का बहाव आगे ही जाता है, पीछे नहीं लौटता। इसी तरह रात और दिन मनुष्यों की आयु लेकर आगे ही भागते जाते हैं पीछे नहीं लौटते।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।७६)

अपर्यन्तस्य कालस्य कियानंशः शरच्छतम्।
तन्मात्रपरमायुर्यः स कथं स्वप्तुमर्हति॥

निःसीम काल का सौ वर्ष कितना-सा अंश है? मनुष्य की वह परम आयु है अतः वह कैसे सो सकता है?

—सूर्य (सूक्तिरत्नहार)

इदं लब्धमिदं नष्टमिदं लप्स्ये मनोरथम्।
इदं चिन्तयतामेव जीर्णमायुः शरीरिणाम्॥

यह प्राप्त कर लिया, यह नष्ट हो गया, यह मनोरथ प्राप्त करूँगा—यह सोचते हुए ही शरीरधारियों की आयु समाप्त हो गयी।

—अज्ञात

अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि।

आयु पूर्ण होने पर धन्वन्तरि वैद्य भी क्या कर सकता है?

—अज्ञात

वओ अच्चेति जोव्वणं च।

आयु और यौवन प्रतिक्षण बीता जा रहा है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।१)

यथा वारिवहो पूरो गच्छन्नुपनिवत्तति,
एवमायु मनुस्सानं गच्छन्नुपनिवत्तति।

जिस तरह भरी हुई नदी चली ही जाती है, रुकती नहीं है, उसी प्रकार मनुष्यों की आयु चली ही जाती है, रुकती नहीं है।

[पालि] —जातक (मृगपवख जातक)

जब तब वैसौ ही दिखं, तनु दिपसिख नदि नार।
पै वह वहन अकुंठ त्यौं, तेरो आयु विचार॥

तन, दीपशिखा और नदी का प्रवाह जब देखो तब वैसा का वैसा ही दिखाई देता है। किन्तु वहना नित्य चलता रहता है, उसी प्रकार आयु निरन्तर बढ़ती जाती है।

—दयाराम (दयाराम सतसई, दोहा ६६७)

वारह वरिस लै कूकर जीयैं, और तेरह लै जिये सियार।
वरस अठारह छत्री जीयैं, आगे जीअन को धिक्कार॥
—जगनिक (आल्ह खंड)

साठा सो पाठा।

साठ वर्ष की आयु में लोगों में और भी अधिक शक्ति आ जाती है।

—हिंदी लोकोक्ति

जाती आयुष्याचे दिवस हे चारी।

आयु केवल चार दिन की है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४४३६)

ईर्ष्या और क्रोध जीवन को छोटा कर देते हैं।
—एपोक्रिफ़ा, (पुरोहित, ३०।२४)

At twenty, the will reigns; at thirty, the wit; at forty, the judgment; afterward proportion of character.

बीस वर्ष की अवस्था में संकल्प शासन करता है। तीस वर्ष की अवस्था में बुद्धि, चालीस पर निर्णयात्मकता, और बाद में चरित्र का अंश।

—हेनरी ग्रेटन

आयुर्वेद

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥ ४०॥

जिस शास्त्र में हितमय, अहितमय, सुखमय, दुखमय, आयु तथा आयु के लिए हितकर और अहितकर द्रव्य, गुण कर्म आदि के प्रमाण एवं लक्षण का वर्णन होता है, उसका नाम आयुर्वेद है।

—चरक संहिता

आरंभ

दे० 'प्रारंभ'।

आराध्य

प्रानहू के प्रान से, सुजीवन के जीवन से
प्रेम हू के प्रेम रंक कृपिन के धन है।
तुलसी के लोचन-चकोरन के चन्द्रमा से
आछे मन मोर चित्त चातक के घन है॥
—तुलसीदास (गीतावली, पद २६)

पाप ते, साप ते, ताप तिहूँ ते
सदा तुलसी कहँ सो रखवारो।
—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, १६)

आर्य

न त्वेवार्यस्य दासभावः।

आर्य दास नहीं हो सकता।
—चाणक्य (अर्थशास्त्र ३।१३।७)

राष्ट्र विप्लव होते-होते ईरान, असीरिया और मिस्र वाले तो अपने प्राचीन साहित्य आदि के उत्तराधिकारी न रहे, परन्तु भारतवर्ष के आर्य लोगों ने वैसी ही अनेक आपत्तियाँ सहने पर भी अपनी प्राचीन सभ्यता के गौरव रूपी अपने प्राचीन साहित्य को बहुत कुछ बचा रखा और विद्या के सम्बन्ध में सारे भूमण्डल के लोग थोड़े-बहुत उनके ऋणी हैं।

—गौरीशंकर हीराचंद ओझा
(भारतीय प्राचीन लिपि, भूमिका, पृ० १)

पर-पद-दलित, पर-मुखापेक्षी,
पराधीन, परतंत्र, पराजित
होकर कहीं आर्य जीते हैं?
पामर, पशु-सम पतित, पराश्रित।
—रामनरेश त्रिपाठी (स्वप्न, ५।१३)

ऐ सबसे पुरानी क़ौम दुनिया की सलाम
ऋषियों ने बताये तुझे वह राजे-दवाम[1]
कहते हैं जिन्हें रूहे-रवाने-तहज़ीब[2]
मुज़मर[3] जिनमें है ज़िन्दगी के पैग़ाम।
—'फ़िराक़' गोरखपुरी (बज़्मे ज़िन्दगी, पृ० २०)

१. स्थायित्व का रहस्य। २. संस्कृति का स्रोत।
३. छिपे हुए।

आर्यत्व

आर्यत्व न तो रंग में ही है और न कुल में है, जहाँ देवों की शरण में जाने की शक्ति है, वहीं आर्यत्व है।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (भगवान परशुराम, पृ० ३७२)

आर्यदेश

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इस देश में उत्पन्न श्रेष्ठ जन्म वाले लोगों से पृथ्वी के सभी मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लें।

—मनुस्मृति (२।२०)

आर्यलिपि

इस बीसवी शताब्दी में भी हम संसार की बड़ी उन्नतिशील जातियों की लिपियों की तरफ़ देखते हैं तो उनमें उन्नति की गंध भी नहीं पाई जाती। कहीं तो ध्वनि और उसके सूचक चिह्नों (अक्षरों) में साम्य ही नहीं है. जिससे एक ही चिह्न से एक से अधिक ध्वनियाँ प्रकट होती है और कहीं एक ध्वनि के लिए एक से अधिक चिह्नों का व्यवहार होता है और अक्षरों के लिए कोई शास्त्रीय क्रम ही नही। कहीं लिपि वर्णात्मक नहीं किन्तु चित्रात्मक ही है। ये लिपियाँ मनुष्य जाति के ज्ञान की प्रारंभिक दशा की विकीर्ण स्थिति से अब तक कुछ भी आगे नहीं बढ़ सकीं परन्तु भारतवर्ष की लिपि हज़ारों वर्ष पहले भी इतनी उच्च कोटि को पहुँच गई थी कि उसकी उत्तमता की कुछ भी समानता संसार की कोई दूसरी लिपि अब तक नही कर सकती। इसमें प्रत्येक आर्य ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न होने से जैसा बोला जावे वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जावे वैसा ही पढ़ा जाता है तथा वर्ण-क्रम वैज्ञानिक रीति से स्थिर किया गया है।

—गौरीशंकर हीराचंद ओझा (भारतीय प्राचीन लिपिमाला, भूमिका, पृ० ७)

आर्यसमाज

आर्यसमाज की विवादग्रस्त बातें समय आने पर विस्मृत हो जायेंगी, लेकिन आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द ने हिन्दू समाज की जो सेवा की है वह सदा अमर रहेगी।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० १२२)

मेरे मत में, आर्यसमाज हिन्दू धर्म की शाखा है और हर एक आर्यसमाजी हिन्दू ही है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० १२२)

आलस्य

अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम्।
निःसंशयं फलं लब्ध्वा दक्षो भूतिमुपाश्नुते॥

आलसी सोने वाले मनुष्य को दरिद्रता प्राप्त होती है तथा कार्य-कुशल मनुष्य निश्चय ही अभीष्ट फल पाकर ऐश्वर्य का उपभोग करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ३२।४२)

आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः
का न स्याद् बहुधनको बहुश्रुतो वा।
आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता
संपूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च॥

यदि जगत् में आलस्यरूपी अनर्थ न होता तो संसार में कौन धनी या विद्वान् न होता? आलस्य के कारण ही यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी निर्धन नरपशुओं से भरी हुई है।

—योगवासिष्ठ (२।५।३०)

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८७)

न तस्स पञ्ञा च सुतं च वड्ढति,
यो सालसो होति नरो पमत्तो।

जो मनुष्य आलसी और प्रमत्त है, न उसकी प्रज्ञा बढ़ती है और न उसका ज्ञान ही बढ़ पाता है।

[पालि] —सुत्तनिपात (२।२१।६)

आलस्य तजि रतनावली जथा समय करि काज।
अबको करिबौ अबहि करि तबहि पुरैं सुख साज॥

—रत्नावली

आलस्य मृत्यु है।

—सरदार पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

खाधा ताँ रज के सुणताँ मुह कज के।
पेट भर खाना चाहिए और मुँह ढँक के सोना चाहिए।

—पंजाबी लोकोक्ति

यह बात असंभव नहीं कि किसी रोग की औषध न मिले, परन्तु दरिद्रता के साथ यदि आलस्य भी हो जाय, तो ऐसे रोग के औषध की सम्भावना ही नहीं है।

—इस्माइल इब्न अबीबकर (अरबी-काव्य दर्शन, पृ० ११३)

हमारी कठिनाई अज्ञानता न होकर जड़ता है।

— डेल कार्नेगी (हाउ टू स्टाप वरीयिंग एंड स्टार्ट लिविंग, भूमिका)

We would all be idle if we could.
यदि संभव होता तो हम सभी आलसी होते।

—डा० जानसन (वासवेल द्वारा लिखित जीवनी, खण्ड ३, पृ० १३)

If you are idle, be not solitary; if you are solitary, be not idle.

यदि आप आलसी है तो अकेले मत रहिए, यदि आप अकेले हैं तो आलसी मत बनिए।

—डा० जानसन (वासवेल द्वारा लिखित जीवनी, खण्ड ३, पृ० ४१५)

आलोचना

दे० 'आलोचना और आत्म-निरीक्षण' भी।

हम अपनी पीठ स्वयं नहीं देख सकते, किन्तु अगर दूसरे इसे देखकर गन्दगी की बात हमें बतायें, तो हम उसे भी नहीं सुनना चाहते।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड, ४०, पृ० ३५५)

यहाँ के समाचार पत्र आदि मेरे विषय में जो कुछ भी लिखते है, उसे मैं अग्निदेव को समर्पित करता हूँ। तुम भी वही करो, यही उचित रीति है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ३४६)

आलोचना की उपेक्षा कर पूर्ण शक्ति से उत्तम कार्य करो।

—डेल कार्नेगी (हाउ टू स्टाप वरीयिंग एंड स्टार्ट लिविंग)

जब कोई मनुष्य किसी दूसरे के दोषों पर अँगुली उठाता है तो उसे ध्यान रखना चाहिए कि उसकी शेष तीन अँगुलियाँ उसी की ओर संकेत कर रही होती है।

—अज्ञात

Give every man thine ear, but few thy voice
Take each man's censure, but reserve thy judgment.

प्रत्येक व्यक्ति की बात सुनो परंतु किसी से भी कुछ मत कहो। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा निन्दा सुन लो पर अपना निर्णय सुरक्षित रखो।

—शेक्सपियर (हैमलेट, १।३)

It is much easier to be critical than to be correct.

सही होने की अपेक्षा आलोचना करना कहीं सरल है।

—डिज़रायली (भाषण, २४ जनवरी, १८६०)

A man must serve his time to every trade
Save censure critics all are ready made.

आलोचना को छोड़कर हर व्यवसाय सीखने में मनुष्य को अपना समय लगाना चाहिए क्योंकि आलोचक तो सब बने बनाये ही हैं।

—बायरन (इंग्लिश बार्ड्स एंड स्काटिश रिव्युअर्स, ६३)

आलोचना और आत्मनिरीक्षण

औरों की कमजोरियों की तरफ न देखें, औरों की नुक़्ताचीनी न करें—अपनी तरफ़ देखें। अगर हर एक आदमी अपना-अपना कर्तव्य करता है, अपना-अपना फ़र्ज़ अदा करता है, तो दुनिया का काम बहुत आगे जाएगा।

—जवाहरलाल नेहरू (लाल किले के प्राचीर से, भाग १, पृ० ५१)

दूसरों की गलतियों की आलोचनाएँ जरूर की जाएँ लेकिन हमें अपनी तरफ भी जरूर देखना चाहिए।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, प्रथम खंड, पृ० ११५)

आवश्यकता

अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः।
जातरूपेण कल्याणि मणिः संयोगमर्हति॥

हे देवी ! खान से निकले हुए सर्वोत्तम रत्न को भी सोने में जड़ने की आवश्यकता तो पड़ती ही है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, ५।१८)

जब हम कुछ भी लेते हैं, तब दूसरों के मुंह से निकालते हैं। इसलिए हरेक चीज़ लेने के समय हम देखें कि आवश्यक चीज़ ही लें और आवश्यकता कम-से-कम रखें।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २६५)

हमें चार चीज़ों की जरूरत है। हवा, पानी, रोटी और कपड़ा। दो चीज़ें भगवान ने मुफ्त दी हैं। और जैसे रोटी घर में तैयार होती है, वैसे ही कपड़ा भी हमारे घर में बनना चाहिए।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४१६)

चार छावें, छह निरावें। तीन खाट, दो बाट।
छप्पर छाने के लिए चार मनुष्य चाहिए। खेत निराने के लिए छह मनुष्य चाहिए। खाट बुनने के लिए तीन मनुष्य चाहिए। राह चलने के लिए दो मनुष्य चाहिए।

—घाघ

आवश्यकता कोई क़ानून नहीं जानती।

—पब्लिलियस् साइरस

Necessity is a tyrant.
आवश्यकता अत्याचारी होती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, वूमन ऍंड होम, पृ० १५८)

There is no virtue like necessity.
आवश्यकता के समान कोई गुण नहीं है।

—शेक्सपियर (किंग रिचर्ड सेकेंड, १।३)

Necessity makes an honest man a knave.
आवश्यकता ईमानदार आदमी को धूर्त्त बना देती है।

—डेनियल डीफ़ो (सीरियस रिफ़्लेक्शन्स आफ़ रॉबिंसन क्रूसो, अध्याय २)

Necessity is the mother of invention.
आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

—अंग्रेज़ी लोकोक्ति

आवागमन

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पंडितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

स्वयं को धीर और पंडित मानने वाले मूर्ख लोग नाना योनियों में भटकते हुए वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं, जैसे अन्धे मनुष्य के द्वारा ले जाए जाने वाले अंधे लोग।

—कठोपनिषद् (१।२।५)
तथा मुंडकोपनिषद् (२।८)

यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसंतरत्।
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किंचित् सत्त्वं नराधिप॥
एवं संसारगहने उन्मज्जननिमज्जने।
कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाल्पबुद्धयः॥

राजन् ! जैसे क्रीड़ा के लिए पानी में तैरता हुआ कोई प्राणी कभी डूबता और कभी ऊपर आ जाता है, उसी प्रकार इस अगाध संसार-समुद्र में जीवों का डूबना और ऊपर आना (मरना और जन्म लेना) लगा रहता है। मन्दबुद्धि मनुष्य ही यहाँ कर्म-भोग से बँधते और कष्ट पाते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्री पर्व, ३।१८-१९)

नाचत ही निसि-दिवस मर्‌यो।
तब ही ते न भयो हरि थिर जबतें जिव नाम धर्‌यो।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ९१)

जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषय-आस मन माहीं।
तुलसीदास जग जोनि भ्रमत तब लगि सपनेहु सुख नाहीं॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १२३)

आकर चारिलाख चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।४४।२-३)

आविष्कार

Invention breeds invention.
आविष्कार से आविष्कार का जन्म होता है।

—एमर्सन (सोसायटी एंड सालीट्यूड, वर्क्स एंड डेज़)

One minute gives invention to destroy what to rebuild will a whole age employ.
आविष्कार से एक क्षण में इतना विनाश हो जाता है जिसके पुनर्निर्माण में सारा युग लगता है।

—विलियम कान्ग्रीव (दि डबिल डीलर, १।३)

आविष्कारक

आविष्कारक और प्रतिभाशाली लोगो को अपने जीवन के प्रारंभ मे (और बहुधा अन्त मे) सदैव मूर्ख माना गया है।

—चार्ल्स कैलेब कोल्टन (लैकोन १।५२१)

Time is the greatest innovator.
समय सबसे बड़ा नवप्रवर्तक है।

—बेकन (एसेज, आफ़ इन्नोवेशंस)

Name the greatest of all inventions.
Accident.
सबसे बड़े आविष्कारक का नाम बताइए।
संयोग।

—मार्क ट्वेन (नोटबुक)

आवेग

आवेग एक वस्तु है, जीवन दूसरी। जीवन जल का पात्र है, आवेग उसमें एक बुदबुदा मात्र। जीवन की सफलता के लिए किसी समय आवेग का दमन आवश्यक हो जाता है, जैसे रोग में पथ्य अरुचिकर होने पर भी उपयोगिता के विचार से ग्रहण किया जाता है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ९०)

यह कैसा जादू है कि भुजाएँ फड़कती हैं शत्रु के सहार के लिए भी और कुसुमो को इस वल्लरी को कसकर बाँधने को भी!

—जगदीशचन्द्र माथुर (पहला राजा, पृ० ५३)

आवेश

अपथे पदमर्पयन्ति हि
श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः॥

विद्वान् लोग भी आवेग से अन्धे होने पर कुपथ में पैर धर ही देते है।

—कालिदास (रघुवंश, ९।७४)

उत्तेजना में विचार मन्द हो जाता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ध्वज, दूसरा अंक)

आशंका

सुहृदामनिष्टाशंकिमानसम्।
मित्रों का हृदय अनिष्ट की आशंका ही किया करता है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय, ५।४)

आशा

आशा वाव स्मराद् भूयः।
आशा ही स्मरण की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१४।१)

सुखं निराशः स्वपिति नैराश्यं परमं सुखम्।
वास्तव में जिसे किसी प्रकार की आशा नहीं है, वही सुख से सोता है। आशा का न होना ही परम सुख है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १७४।६२)

अंगं गलितं पलितं मुण्डं
दन्तविहीनं जातं तुण्डम्।
करधृतकम्पितशोभितदण्डं
तदपि न मुंचत्याशापिण्डम्॥

अंग गल गए हैं, बाल सफ़ेद हो गए है, दाँत गिर गए है, काँपते हाथों में डंडा लिया हुआ है, फिर भी आशा मनुष्य का पिण्ड नहीं छोड़ती।

—शंकराचार्य (मोहमुद्गर स्तोत्र)

य नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञा
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

जो कोई इस कृति के प्रति अवज्ञा दिखाते हैं वे जानते है कि उनके लिए मेरी कृति नहीं है। अवश्य ही मेरा कोई समानधर्मा पुरुष उत्पन्न होगा, क्योंकि काल तो अनन्त है और पृथ्वी विशाल है।

—भवभूति (मालतीमाधव, १।६)

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥

भीष्म समाप्त हो गए, द्रोण मारे गए, कर्ण का भी नाश हो गया। अब पाण्डवों को शल्य जीत लेगा ऐसी आशा है। हे राजन्! आशा बड़ी बलवती होती है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ५।२३)

आशया हि किमिव न क्रियते।

आशा से क्या नहीं किया जाता?

—बाणभट्ट (कादम्बरी)

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्त्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥

आशा एक नदी है जिसमें मनोरथ रूपी जल है, तृष्णा रूपी तरंगें उठ रही हैं, राग रूपी ग्राह है, वितर्क रूपी पक्षी है। यह नदी धैर्य रूपी वृक्ष को उखाड़ फेंकने वाली है। इसमें अज्ञान रूपी भँवर हैं, जिनके पार जाना कठिन है और जो अतिगहन हैं। इसके चिन्ता रूपी तट बहुत ऊँचे हैं। उसके पार जाकर विशुद्ध मन वाले योगीराज ही आनन्दित होते है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ४५)

आशैव राक्षसी पुंसामाशैव विषमंजरी।
आशैव जीर्णमदिरा नैराश्यं परमं सुखम् ॥

मनुष्यों के लिए आशा ही राक्षसी है, आशा ही विषमंजरी है और आशा ही जीर्ण मदिरा है। आशारहित होना ही परम सुख है।

—अज्ञात

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ॥

जो आशा के दास है, वे सम्पूर्ण लोक के दास हैं तथा आशा जिनकी दासी है, सम्पूर्ण लोक उनका दास बन जाता है।

—अज्ञात

आशा नाम मनुष्याणां काचिदाश्चर्यशृंखला।
यया बद्धाः प्रधावन्ति मुक्तास्तिष्ठन्ति पंगुवत् ॥

आशा मनुष्यों की कोई आश्चर्यमयी श्रृंखला है, जिससे बँधे हुए मनुष्य तो दौड़ लगाते हैं तथा जिससे मुक्त व्यक्ति पंगु के समान स्थिर रहते है।

—अज्ञात

आसिंसेथेव पुरिसो, न निब्बिन्देय्य पंडितो।

मनुष्य को चाहिए कि वह आशावान रहे, पंडित निराश न हो।

[प्राकृत] —जातक (सरभमिग जातक)

जाही ते कुछ पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझत पिआस ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मंदाकिनी है।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रिय प्रवास, १०।८२)

आशा से ज्यादा दीर्घजीवी और कोई वस्तु नही होती।

-- प्रेमचन्द (रंगभूमि, पृ० १३२)

निराश होना खिलाड़ियों के धरम के विरुद्ध है। अबकी हार हुई तो फिर कभी जीत होगी।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४४)

आशा मरती नही केवल सो जाती है।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन, भाग २, पृ० १५७)

आशाओं के बाग़ लगाने में हम कितने कुशल है! यहाँ हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौधों को सींचकर शीतल छाँह में बैठते हैं। हा, मंदबुद्धि!

—प्रेमचंद ('माता का हृदय' कहानी)

जो देख चुके जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन प्रभात !

—सुमित्रानंदन पंत (युगांत, कविता ६)

पेट जितना भी भरा रहे, आशा कभी नहीं भरती। वह जीवों को कोई-न-कोई अप्राप्य, कुछ नहीं तो केवल रंगों की माया का इन्द्र-धनुष प्राप्त करने के मायावी दलदल में फँसा ही देती है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अलका, पृ० १६)

अनुकूल अवसर पर दयामय फिर दया दिखलायेंगे।
वे दिन यहाँ फिर आयेंगे, फिर आयेंगे, फिर आयेंगे ॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १८६)

कर्तव्यनिष्ठ पुरुष कभी निराश नहीं होता।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, —पृ० १७८)

अजनबीपन प्रेम के अभाव का द्योतक है; संन्यास भविष्य की उज्ज्वलता के विषय में निराशा का परिणाम है और अनास्था समाज के प्रतिष्ठित कहे जाने वाले लोगों के आचरणों के भोग-परायण होने का फल है। इसमें आशा का केवल एक ही स्थान है—वह है साधारण जनता का स्वस्थ मनोबल।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (दिनमान, १३ अगस्त, १९६७)

सासू जितरै सासरो, आसू जितरै मेह।
जब तक सास जीवित रहती है, तब तक (दामाद) को ससुराल के सुख की आशा रहती है और जब तक आश्विन मास रहता है तब तक वर्षा की आशा रहती है।

—भड्डरी (कहावतें)

जब तक साँस तब तक आस।

—हिंदी लोकोक्ति

कहते है जीते हैं उम्मीद[1] पै लोग
हमको जीने की भी उम्मीद नहीं।

—ग़ालिब (दीवान)

१. आशा।

क़दम-क़दम पर ऐ हम-सफ़ीरों[1]
है एहतमामे सितम[2] तो क्या ग़म
अँधेरे होते हैं और गहरे
नमूदे-रंगे-सहर[3] से पहले।

—शारब

क्या के क़स्रे अमल सख़्त सुस्त बुनियादस्त।
बयार बादा के बुनियाद उम्र बर्बादस्त।
आशाओं के भवन की नीव बहुत कमजोर है। उसकी दीवारें क्षण भर में गिर सकती है। और मदिरा ला। जीवन का कोई भरोसा नहीं है।

[फ़ारसी] **—हाफ़िज़**

उठिवे अमत, देरी नाई आर, उठियाछे हलाहल।
अमृत भी आयेगा। अब विलम्ब नहीं है। हलाहल तो ऊपर आ चुका है।

[बँगला] **—काजी नजरुल इस्लाम (संचिता)**

न पाहे आणिकांची आस। शूर बोलिणे तयास।
जो अन्य से आशा नहीं करता, वही शूर है।

[मराठी] **—तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३४१०)**

आश चालिचुटे आनंद पदंब।
आशा का निर्मूलन आनन्द पद की प्राप्ति है।

[तेलुगु] **—श्रीनाथ (पलनाटि वीर चरित्रमु)**

दु:समय में जब मनुष्य को आशा और निराशा का कोई किनारा नहीं दिखाई देता तब दुर्बल मन डर के मारे आशा की दिशा को ही खूब कस कर पकड़े रहता है।

—शरत्चन्द्र (देवदास, पृ० ३५)

जिसे कुछ आशा है, वह एक तरह से सोचता है और कोई आशा नहीं होती, वह कुछ और ही प्रकार से सोचता है। पूर्वोक्त चिन्ता में सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुःख है और उत्कंठा है। इसलिए वह मनुष्य को श्रान्त कर देती है—वह अधिक समय तक नहीं सोच सकता। लेकिन आशा-हीन को न तो सुख है, न दुःख है, न उत्कंठा है, फिर भी तृप्ति है।

—शरत्चन्द्र (देवदास, पृ० ८६)

१. सहयात्रियों। २. अत्याचार का प्रबन्ध। ३. प्रभात का उजाला।

Hope is a lover's staff.
आशा ही प्रेमी का सहारा है ।

—शेक्सपियर (दि टू जेण्टिलमेन आफ़ वेरोना, ३।१)

The miserable have
No other medicine but only hope.
दुःखी व्यक्तियों के पास आशा ही एकमात्र औषधि होती है।

—शेक्सपियर (मेजर फार मेजर, ३।१)

Hope is a good breakfast, but it is a bad supper.
आशा जलपान के रूप में अच्छी है, भोजन के रूप में खराब।

—बेकन (एपोथेग्म)

If winter comes, can spring be far behind ?
यदि शीत ऋतु आ गयी है, तो क्या वसन्त ऋतु अधिक दूर हो सकती है ?

—शैले (ओड टू दि वेस्ट विंड)

For hope shall brighten days to come
And memory gild the past !
आशा भावी दिनों को चमका देगी और स्मृति अतीत को आकर्षक बना देगी।

—टामस मूर (एक गीत)

He has no hope who never had a fear.
जिसे कभी भय नहीं हुआ उसे कोई आशा भी नहीं होती।

—विलियम कूपर

आशा-निराशा

आशा मद है, निराशा मद का उतार। नशे में हम मैदान की तरफ दौड़ते हैं, सचेत होकर हम घर में विश्राम करते हैं। आशा जड़ की ओर ले जाती है, निराशा चैतन्य की ओर। आशा आँखें बन्द कर देती है, निराशा आँखें खोल देती है। आशा सुलाने वाली थपकी है, निराशा जगाने वाला चाबुक।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद १३)

आशावाद

आशावाद आस्तिकता है। सिर्फ नास्तिक ही निराशावादी हो सकता है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २३ अक्तूबर, १९२१)

And Winter slumbering in the open air
Wears on his smiling face a dream of Spring.
मुक्त वायु में सुप्त शिशिर अपने सस्मित अधरों पर वसन्त का स्वप्न देखता है।

—कालरिज (वर्क विदाउट होप)

आशीर्वाद

गाँग जउँन जौं लहि जल तौं लहि अम्मर माथ ।
जब तक गंगा-यमुना में जल है, तब तक तुम्हारा मस्तक अमर रहे।

—जायसी (पदमावत, १५)

चित्त की सभी कामनाएँ आशीर्वाद में समा जाती हैं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कल्पतरु, पृ० ३)

तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार।।

—ग़ालिब (सम्राट् बहादुरशाह को आवेदन पत्र में)

आश्चर्य

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीहि यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ।।
संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक में जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीते रहने की इच्छा करते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा ?

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ३१३।११६)

पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ।।
हे देवोत्तम ! देखते हुए कि लोगों के सामने उनकी मृत्यु खड़ी रहती है, मनुष्य स्वयं मृत्युरहित व्यक्ति के समान ही आचरण करता है—यह बड़े आश्चर्य की बात है।

—मत्स्य पुराण (२११।२३)

जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति सृष्टेः सृष्ट्यतिशयाः।

विधाता के संसार में सृष्टि के उत्कृष्ट परन्तु अदृष्टपूर्ण दृश्य अत्यन्त धीर लोगों को भी आश्चर्यचकित कर देते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २५)

किं चित्रं यदि राजनीतिकुशलो राजा भवेद्धार्मिकः।
किं चित्रं यदि वेदशास्त्रनिपुणो विप्रो भवेत् पण्डितः।
तच्चित्रं यदि रूपयौवनवती साध्वी भवेत् कामिनी।
तच्चित्रं यदि निर्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्यात् क्वचित् ॥

राजनीति में कुशल राजा यदि धार्मिक हो तो क्या आश्चर्य ? वेदशास्त्र में निपुण ब्राह्मण यदि पण्डित हो तो क्या आश्चर्य ? परन्तु रूप-यौवन-सम्पन्ना कामिनी यदि पतिव्रता हो तो आश्चर्य है और निर्धन होने पर भी पुरुष पाप न करे तो आश्चर्य है।

—अज्ञात

मिटाते है जो वो हमको तो अपना काम करते हैं
मुझे हैरत तो उन पर है जो इस मिटने पै मरते हैं।

—अकबर इलाहाबादी

आश्रम

जिस प्रकार अन्न की उत्पत्ति के लिए आदर्श बीज भंडारों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव-विकास के लिए श्रद्धालु, सतोपी एवं दृढ़व्रती व्यक्तियों के आश्रमों की आवश्यकता होती है।

—भोलानाथ शर्मा ('गांधी हृदय' निबंध)

आश्रय

सर्वो हि नोपगतमप्यपचीयमानं-
वर्धिष्णुमाश्रयमनागतमप्युपैति ॥

सभी लोग उपस्थित आश्रय को क्षीण होते देखकर अनागत आश्रय को अपनाते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, ५।१४)

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।

जिसके कुल और शील का ज्ञान न हो ऐसे किसी व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिए।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।५६)

अनर्घमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते।
विनाश्रयं न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः ॥

बहुमूल्य होने पर भी माणिक्य सोने के आश्रय की अपेक्षा रखता है। पण्डित, स्त्री और लता बिना आश्रय के शोभा नहीं देते।

—अज्ञात

आश्रय की जरूरत जब सबसे ज्यादा होती है, तब आश्रय कितना दुर्लभ होता है।

—विमल मित्र (साहब बीबी गुलाम, पृ० ४२६)

आसक्ति

ज्ञानाच्च रौक्ष्याच्च विना विमोक्तुं
न शक्यते स्नेहमयस्तु पाशः।

यह स्नेहमयपाश ज्ञान और रूखेपन के विना नही तोड़ा जा सकता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ७।१५)

न सव्व सव्वत्थमिरोयएज्जा।

हर कहीं, हर किसी वस्तु में मन को मत लगा बैठिए।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (२१।१५)

वह (असक्ति) शुभ नहीं है, शान्त नहीं है, वह मन की तरह लाल है, मद की तरह तीव्र है, वह बुद्धि को स्थिर नही रहने देती, वह एक वस्तु को दूसरी ही वस्तु करके दिखाती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६९)

आसुरी सम्पत्ति

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥

हे अर्जुन ! आसुरी सम्पत्ति के साथ उत्पन्न हुए मनुष्य में दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व ४०।४ अथवा गीता, १६।४)

आस्तिकता

द्रष्टुं वधूजनमुखानि सुरालयेषु
सायं-प्रभात इह यत्क्रियते प्रयाणम्।
लोकाः स्तुवन्तु यदि नाथ तदेव नूनं
हा हा हतं जगदधीश तदाऽऽस्तिकत्वम् ॥

हे जगदीश, जो लोग कामिनी जनों की ओर घूरने ही के लिए देवालयों को, सबेरे और सायंकाल जाते है, उन्हीं की सब कोई यदि प्रशंसा करे तो हाय ! हाय ! आस्तिकता अस्त हो गई समझनी चाहिए।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी (सुमन)

संतों की वाणी सुनो, शास्त्र पढ़ो, विद्वान् हो लो, लेकिन अगर ईश्वर को हृदय में स्थान नहीं दिया तो कुछ नहीं किया।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, पृ० ३०)

कमसिन हो अभी तजर्बा दुनिया का नहीं है
तुम ख़ुद ही समझ जाओगे ख़ुदा भी है कोई चीज़।

—अकबर इलाहाबादी

तुरा मन न दानम कि यज़्दाँ शनास
बरामद ज़ि तो कारहा दिल ख़राश।

मैं तुझे ईश्वर को जानने वाला आस्तिक नहीं मानता, क्योंकि तुझसे अनेक हृदयों को दु:ख पहुँचाने वाले काम मिले हुए हैं।

—गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, पृ० १०५)

आस्था

आस्था का कर पकड़
चढ़ो अन्त: शिखरों पर।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, पृ० ८६)

आस्था तर्क से परे की चीज है। जब चारों ओर अँधेरा ही दिखाई पड़ता है और मनुष्य की बुद्धि काम करना बन्द कर देती है उस समय आस्था की ज्योति प्रखर रूप से चमकती है और हमारी मदद को आती है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० ६५)

आह

इस शिथिल आह से खिचकर
तुम आओगे—आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रो कर अपनाओगे।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ५२)

निकल मत बाहर दुर्बल आह
लगेगा तुझे हँसी का शीत।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, पृ० ५६)

आह जो दिल से निकाली जाएगी,
क्या समझते हो कि खाली जाएगी !

—अकबर इलाहाबादी (दर्द-ए-दिल, पृ० १२)

आह में अपनी असर होता तो शिकवा[1] क्या था,
बस है रोना तो यही आह में तासीर[2] नहीं।

—'राज़' (राज़ो नियाज़, पृ० १२)

हज़ूर कुन् दज़े दूदे दरूँहाये रेश
कि रेशे दरूँ आक़बत सर कुनद।
बहम बर मकुन ता तवानी दिले
कि आहे जहाने बहम बर ज़नद।

घायल हृदयों के धुएँ मे सावधान रह क्योंकि भीतर का घाव आखिर फूट निकलता है। किसी हृदय को मत उखाड़ जब तक संभव हो, क्योंकि एक आह एक संसार को उखाड़ सकती है।

[फ़ारसी] **—शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, प्रथम अध्याय)**

---

१. शिकायत। २. प्रभाव।

इ

इंग्लैंड

England is the mother of Parliaments.
इंग्लैण्ड संसदों की जननी है।

—जान ब्राइट (हाउस आफ़ कामन्स में भाषण, १८ जनवरी १८६५)

All places, all airs make unto me one country; I am in England, everywhere, and under any meridian.

सभी स्थान, सभी वातावरण मेरे लिए एक ही देश है। मैं तो जहाँ भी हूँ और जिस भी याम्योत्तर रेखा के नीचे हूँ, सदा इंग्लैण्ड में ही हूँ।

—सर टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, २।१)

England is the paradise of individuality, eccentricity, heresy, anomalies, hobbies and humours.

इंग्लैंड वैयक्तिकता, सनक, अनधिकृतमत असंगतियों, शौकों और मजाक़ों का स्वर्ग है।

—जार्ज सांतायना (सालिलाक्वीज़ इन इंग्लैंड)

इंद्रिय

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

हे अर्जुन! मन को मथने वाली इन्द्रियाँ प्रयत्न करने वाले ज्ञानी पुरुष के मन को भी बलात्कारपूर्वक हर लेती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।६० अथवा गीता, २।६०)

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

इन्द्रियों का असंयम आपत्तियों का मार्ग कहा गया है, उन पर विजय सम्पत्तियों का मार्ग है, जो अभीप्सित हो उससे जाओ।

—अज्ञात

इच्छा

पुलुकामो हि मर्त्यः।
मनुष्य विभिन्न कामनाओं से घिरा रहता है।

—ऋग्वेद (१।१७६।५)

न वै कामानामतिरिक्तमस्ति।
कामनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

—शतपथ ब्राह्मण (८।७।२।१६)

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

विषय-भोग की इच्छा विषयों का उपभोग करने से कभी शान्त नहीं हो सकती। घी की आहुति डालने से अधिक प्रज्वलित होनेवाली आग की भाँति वह और भी बढ़ती ही जाती है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व, ७५।५०)

यद् यत् त्यजति कामानां तत् सुखस्याभिपूर्यते।
कामस्य वशगो नित्यं दुःखमेव प्रपद्यते॥

मनुष्य जिस-जिस कामना को छोड़ देता है, उस-उस की ओर से सुखी हो जाता है। कामना के वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दुःख ही पाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १७७।४८)

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

मुझे राज्य की कामना नहीं है, न स्वर्ग की, न मोक्ष की। मैं दुःख से सन्तप्त-प्राणियों के कष्ट-निवारण की कामना करता हूँ।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किंचित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥

इस संसार में इच्छा के बिना किसी मनुष्य का कोई काम कभी भी दिखाई नहीं देता। मनुष्य जो कुछ करता है वह सब इच्छा के कारण।

—मनुस्मृति (२।४)

क्व धनानि क्व मित्राणि क्व मे विषयदस्यव।
क्व शास्त्रं क्व च विज्ञानं यदा मे गलिता स्पृहा॥

जब मेरी इच्छा नष्ट हो गयी तब कहाँ धन हैं, कहाँ मित्र हैं, कहाँ मेरे विषयरूपी दस्यु (लुटेरे) है, कहाँ शास्त्र हैं, और कहाँ विज्ञान है !

—अष्टावक्र गीता (१४।२)

सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति।

सभी राजा राजकुमारी को उसी प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार मल्ल लोग विजय-पताका को चाहा करते हैं।

—भास (अविमारक, १।६)

रमते तृषितो धनश्रिया
रमते कामसुखेन बालिशः।
रमते प्रशमेन सज्जनः
परिभोगान् परिभूय विद्या॥

तृष्णावान् व्यक्ति का मन धन-सम्पत्ति में और मूर्ख का काम-सुख में रमता है। जो सज्जन है वह ज्ञान द्वारा भोग-इच्छा को जीतकर शान्ति में रमता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ८।२६)

मनोरथानामगतिर्न विद्यते।

मनोरथों की परिधि से बाहर कुछ भी नही है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।६४)

[इसी से मिलती-जुलती सूक्ति अन्य भी है—

नास्त्यगतिर्मनोरथानाम्।

मनोरथों की गति से बाहर कुछ भी नही है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, २।११ के पश्चात्)]

अहो विरुद्धसंवर्धन ईप्सितलाभो नाम।

अरे, इच्छित वस्तु मिल जाने पर कैसे विरोधी प्रभाव[1] होते हैं !

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ३।१६ के पश्चात्)

पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्।

पिण्ड खजूर से अरुचि उत्पन्न हुए व्यक्ति को इमली की इच्छा होती है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, २।८ के बाद)

क्षीरिण्यः सन्तु गावो, भवतु वसुमतीसर्वसंपन्नसस्या,
पर्जन्यः कालवर्षी सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः॥

गायें दुग्धशालिनी हो जाएँ, पृथ्वी सब प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण हो जाए, मेघ समय पर वर्षा करें, सभी लोगों के मन को आनन्द देने वाली हवा वहे, प्राणी हर्षित हों, ब्राह्मण स्वधर्म का अनुष्ठान करने वाले और सदाचारशील हों तथा लक्ष्मी से युक्त धर्मात्मा राजा शत्रुओं का नाश करके पृथ्वी की रक्षा करें।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १०।६०)

वार्यमाणस्य वांछा हि विषयेष्वभिवर्धते।

किसी बात से रोकने पर मनुष्य की आकांक्षा उसके लिए और भी अधिक बढती है।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ६।५)

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदः।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः॥

निर्धन धन की इच्छा करते है, जानवर वाणी की इच्छा करते है। मनुष्य स्वर्ग की इच्छा करते है और देवता मोक्ष की इच्छा करते हैं।

—अज्ञात

इतराश्चार्थमिच्छन्ति रूपमिच्छन्ति दारिकाः।
ज्ञातयः कुलमिच्छन्ति स्वर्गमिच्छन्ति तापसाः॥

साधारण व्यक्ति धन चाहते हैं, कुमारियाँ रूप चाहती हैं, सम्बन्धी कुल चाहते हैं तथा तपस्वी स्वर्ग चाहते हैं।

—अज्ञात

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।

इच्छाएं आकाश के समान अनंत हैं।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (९।४८)

१. पहले अच्छे न लगने वाली वस्तुएं भी कैसी अच्छी लगने लगती है।

कामा दुरतिक्कम्मा ।

कामनाओं का पार पाना वहुत कठिन है ।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।५)

दुक्खा सापेक्खस्स कालं किरिया ।

कामनायुक्त मृत्यु दुःख रूप होती है ।

[पालि] —दीघनिकाय (२।४।१३)

छन्दे सति पियाप्पियं होति,
छन्दे असति पियाप्पियं न होति ।

कामना के होने से ही प्रिय-अप्रिय होते हैं। कामना के न होने से प्रिय-अप्रिय नहीं होते ।

[पालि] —दीघनिकाय (२।८।३)

छन्दजं अघं, छन्दजं दुक्खं,
छन्दविनया अघविनयो अघविनया दुक्खविनयो ।

इच्छा से पाप होता है। इच्छा से दुःख होता है। इच्छा को दूर करने से पाप दूर हो जाता है। पाप दूर होने से दुःख दूर हो जाता है ।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।१।३४)

अद्दसं काम ते मूलं संकप्पा काम जायसि ।
न तं संकप्पयिस्सामि एवं काम न होहिसि ॥

हे कामना ! मैंने तेरे मूल को देख लिया। तू संकल्प से उत्पन्न होती है। अव मैं तेरा संकल्प नहीं करूँगा। इस प्रकार हे कामना ! तू उत्पन्न नही होगी।

[पालि] —जातक (गंगमाल जातक)

यं लभति न तेन तुस्सति
यं पत्थेति लद्धं हीलेति,
इच्छा हि अनन्तगोचरा
वीतिच्छानि नमो करोमसे ॥

जो मिलता है, उससे संतुष्ट नहीं होता। जिसकी इच्छा करता है, वह मिलने पर उसका अनादर करता है। इच्छा की गति अनन्त है। जो वीतेच्छा हैं, उन्हें हम नमस्कार करते हैं।

[पालि] —जातक (वीतिच्छ जातक)

उक्कट्ठे सूरमिच्छंति मन्तीसु अकुतूहलं
पियंच अन्नपानम्हि अत्थे जाते च पंडितं ।

संग्राम में शूर मिले ऐसी इच्छा होती है। मंत्रणा करने में जो वात प्रकट न करे ऐसा मनुष्य मिले, ऐसी इच्छा होती है। भोजन सामग्री रहने पर प्रिय व्यक्ति मिले, ऐसी इच्छा होती है। और, कोई समस्या आ पड़ने पर बुद्धिमान मनुष्य मिले ऐसी इच्छा होती है।

[पालि] —जातक (महासार जातक)

मनह मनोरथ छाड़ि दे, तेरा किया न होइ ।
पाणी मैं घीव नीकसै, रूखा खाइ न कोइ ॥

—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ३०)

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी ।
चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।८।४)

कीट मनोरथ दारु सरीरा ।
जेहि न लाग घुन को असधीरा ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७१।३)

सुत वित लोक ईषना तीनी ।
केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥

—तुलसी (रामचरितमानस, ७।७१।३)

नर चाहत कछु अउर अउरै की अउरै भई ।
चितवत रहिओ ठगउर नानक फासी गलि पड़ी ॥

—गुरु तेगवहादुर (गुरु ग्रंथ साहब)

हाय रे मनुष्य के मनोरथ, तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है! वालू पर की दीवार तो वर्षा में गिरती है, पर तेरी दीवार विना पानी-वूंद के ढह जाती है, आँधी में दीपक का कुछ भरोसा किया जा सकता है, पर तेरा नहीं। तेरी अस्थिरता के आगे वालकों का घरौंदा अचल पर्वत है, वेश्या का प्रेम सती की प्रतिज्ञा की भाँति अटल ।

—प्रेमचंद ('वज्रपात' कहानी)

विजयों की सीमा है, परन्तु अभिलाषाओं की नहीं ।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

इच्छा भी एक प्रकार का मनोवेग ही है, पर 'भाव' तक पहुँचता हुआ स्वतन्त्र विधान नहीं ।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० १३९)

कामना न रहे तो फिर यह संसार न रहे।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, प्रथम अंक)

चाह चमारी चूहड़ी, सब नीचन ते नीच।
तू तो पूरन ब्रह्म था, चाह न होती बीच॥

—किनाराम अघोरी

चाह नहीं, चिंता नहीं, मनवाँ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए, सो जग साहंसाह॥

—मस्तराम महात्मा

दूर हो अभिमान, संशय,
वर्ण-आश्रम-गत महाभय,
जाति-जीवन हो निरामय।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अणिमा, ८)

आन्तरिक प्रवृत्तियों का मंगलमय सामंजस्य बाहर मनोरथ-सौन्दर्य के रूप में प्रकट होता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (चारु चन्द्रलेख, पृ० ३१)

कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें,
इतनी जगह कहाँ है दिले-दागदार में।

—बहादुरशाह 'ज़फ़र' (दर्द-ए-दिल)

साथ जाता नहीं कुछ जुज़ अमले-नेक[1] अनीसी,
इस पै इंसान को है ख़ाहिशे दुनिया[2] क्या क्या।

—मीर 'अनीस'

यह हसरत रह गई क्या-क्या मज़ों से ज़िन्दगी करते,
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बाग़वाँ अपना।

—मजहर 'जानजानानां'

वक़्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आस्माँ[3]
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।

—रामप्रसाद 'बिस्मिल'
('सरफ़रोशी की तमन्ना' कविता)

दमे मर्ग[4] तक रहेंगी ख्वाहिशें[5],
यह नीयत कोई आज भर जाएगी?

—दाग़ (दीवान)

जन्नत-परस्त जाहिद कब हक़-परस्त है?

जो स्वर्ग की कामना करता है वह साधक ब्रह्म का उपासक कैसे कहा जा सकता है?

—अज्ञात

दिल के वीराने में भी हो जाये दम भर चाँदनी।

—अज्ञात

इश्क़ो शबाबो रिन्दी मजमूए मुरादस्त।

प्रेम, युवावस्था और फ़क़ीरी उद्देश्य को पूर्ण करने वाले हैं।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

ब रूए ख़ुद दरे इतमाअ बाज़ नतवाँ कर्द
चु बाज़ शुद ब दुरुश्ती फ़राज़ न तवाँ कर्द।

अपनी ओर से किसी के लिए कामना का द्वार नहीं खोलना चाहिए परन्तु जब खुल जाए तो कठोरता से बन्द नहीं करना चाहिए।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, प्रथम अध्याय)

ब शाखे ज़िंदगिये मा नमीज़े तिश्ना बसस्त
तलाशे चश्मए हैवाँ दलीले बे तलबीस्त।

मेरी जीवन रूपी शाखा के लिए तृषा की तरी ही पर्याप्त है। अमृतकुंड की खोज में भटकना आकांक्षा के अभाव का प्रमाण है।

[फ़ारसी] —इक़बाल

इच्छा रखनी ही है तो पुनः जन्म न लेने की इच्छा रखनी चाहिए।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३६२)

जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यही है कि एक ऐसा चक्र-प्रवर्तन कर दूं, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार-द्वार पहुँचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर लें।

— विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खंड, पृ० ३२१)

कामना का दूसरा नाम है दरिद्रता, अपूर्णता—यही नहीं, मृत्यु भी।

—शिवानंद (दिव्योपदेश, १।४४)

---

१. अच्छे कर्मों के अतिरिक्त। २. सांसारिक इच्छा।
३. आकाश। ४. मृत्यु-क्षण। ५. इच्छाएं।

दुनिया में जिसे जुआ खेलना आता है वह फूटी हुई पाई लेकर भी खेल सकता है। जो भला होगा और रहना चाहता है, उसके लिए सभी रास्ते खुले हैं।

—विमल मित्र (साहब बीबी गुलाम, पृ० ७७)

The bird wishes it were a cloud.
The cloud wishes it were a bird.

पक्षी आकांक्षा करता है कि वह मेघ होता। मेघ आकांक्षा करता है कि वह पक्षी होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ३५)

I long for the Island of songs across this heaving sea of Shouts.

मैं इस उफनते कोलाहल के समुद्र में गीतों के द्वीप के लिए लालायित हूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ३१६)

Twin-sisters are longing and tears.

इच्छा और आँसू जुड़वाँ बहने हैं।

—वासवानी (दि लाइफ़ ब्युटिफुल, १११)

Desire is poverty.

इच्छा दरिद्रता है।

—शिवानंद (वायस आफ़ दि हिमालयाज़)

Desire is ever of the future; the desire to become is inaction in the present.

इच्छा सदैव भविष्य की होती है। कुछ होने की इच्छा वस्तुत: वर्तमान में निष्क्रियता है।

—जे० कृष्णमूर्ति

The will of man is by his reason swayed.

मनुष्य की इच्छा उसके विवेक के द्वारा नियन्त्रित होती है।

—शेक्सपियर (ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम, २।३)

We look before and after;
And pine for what is not;
Our sincerest laughter
With some pain is fraught.

हम भूत और भविष्य को देखते हैं और जो नहीं है उसकी कामना करते है। हमारा निष्कपट हास्य भी किसी वेदना से युक्त होता है।

—शैले (टू ए स्काईलार्क)

इतिहास

इतिहास मनुष्य को देशकाल में जड़कर पकड़ना चाहता है। वह सत्य घटनाओं को ढूंढ़ता है। लीला मानवी जीव की नित्य व्याख्या प्रस्तुत करती है। लीला-वपु रसमय और आनन्दी होता है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (कल्पवृक्ष, 'कृष्ण का लीला-वपु')

भूमि-गर्भ में
मृण्मय प्रस्तर प्रतिमाओं में
युग-युग का इतिहास छिपा है
अमर सृजन का !
मनुज पीढ़ियों का
हृत्स्पन्दन जिनमें बंदी !

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ७५)

अतीत के जिस अंश तक प्रमाण की किरणें पहुँच सकती हैं, उसे हम इतिहास की संज्ञा देते हैं। जो जीवन के स्पन्दन से रहित इतिवृत्त मात्र है। जो हमारे तर्क की सीमा के पार घटित हो चुका है वह पुराण की सीमा में आबद्ध होकर जीवन की ऐसी गाथा बन जाता है जिसमें इतिवृत्त का सूत्र खोजना कठिन है।

—महादेवी वर्मा (वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'ललित विक्रम' की भूमिका)

इतिहास विश्वास की नहीं, विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्म-विश्लेषण है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ७)

इतिहास याने अनादिकाल से अब तक का सारा जीवन। पुराण याने अनादि काल से अब तक टिका हुआ अनुभव का अमर अंश।

—विनोबा (विचार पोथी, पृ० १९)

इतिहास का अध्ययन, याने अपने पूर्व-जन्मों का निरीक्षण।

—विनोबा (विचार पोथी, पृ० १५६)

इतिहास का अर्थ है मनुष्य जाति के सम्मुख उपस्थित हुए प्रश्नों का उल्लेखन।

—काका कालेलकर (जीवन-साहित्य, पृ० १३)

तारीख़े और सन् संवत् की सूची बनाने से इतिहास पूर्ण नहीं होता। उसका गौरव कृति में है। देशकाल और पात्रों के समन्वय में कृति को समन्वय करना ही इतिहास है।

—रत्नाकर शास्त्री (भारत के प्राणाचार्य, पृ० ६१)

हमारे घरों में प्रतिदिन इन तीर्थों की कथाएँ और चर्चाएँ कुछ यों ही नहीं आ गयी हैं, उनमें इतिहास की सत्यता है जिस पर विश्व का इतिहास खड़ा है। लोग भारतीयों को रूढ़ि के घेरे में बंद कहते हैं, किन्तु सत्य यह है कि हमारे इतिहास को विदेशियों ने भ्रांति के एक घेरे में परिवेष्टित कर दिया है। इस घेरे की रूढ़ियों को तोड़ो और तब देखो, इतिहास के क्षितिज पर कौन प्रकाशमान है?

—रत्नाकर शास्त्री (भारत के प्राणाचार्य, पृ० ५८)

दुनिया को इन्क़लाब[1] की याद आ रही है आज
तारीख़[2] अपने आप को दोहरा रही है आज।

—फ़िराक़ गोरखपुरी (बज़्मे ज़िन्दगी, पृ० ४३)

इतिहास का खेल न्यारा है। सदा नये चमत्कार होते रहते हैं। नये गुल भी खिलते रहते हैं। सम्भव और असम्भव ये दोनों शब्द इतिहास में निरर्थक हैं।

—लाला हरदयाल

पुराने विवादों और संघर्षों की स्मृति को अपने हृदय में चिरस्थायी रखने की दृष्टि से इतिहास का अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए और न ही आज भी 'मातृभूमि' और 'ख़ुदा' के नाम पर रक्तपात किया जाना ही अभीष्ट है। इतिहास का कार्य तो उन मौलिक कारणों की खोज करना है, जो झगड़े, फ़िसाद एवं रक्तपात को मिटाकर मानव को मानव से, जो एक परम पिता-परमात्मा की संतान है और एक ही माता वसुन्धरा की पावन गोदी में खेले है, पले है, मिला दे और अन्ततः इस धराधाम पर सार्वभौम मानवीय प्रजातन्त्र की स्थापना का स्वप्न साकार हो सके।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दू पद पादशाही, भूमिका)

इतिहास तो एक सिलसिलेवार मुकम्मिल चीज़ है, और जब तक तुम्हें यह मालूम न हो कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में क्या हुआ—तुम किसी एक देश का इतिहास समझ ही नहीं सकतीं।

—जवाहरलाल नेहरू (विश्व-इतिहास की झलक, भाग १, पृ० ६)

वर्तमान भारत का इतिहास भी यथार्थ में विविध संस्कृतियों के संघर्षों एवं संग्रहों का इतिहास है।

—लक्ष्मणशास्त्री जोशी (वैदिक संस्कृति का विकास, पृ० ८)

मूल्यों की स्थापना का यह इतिहास ही यथार्थ में मानव जाति का इतिहास है।

—लक्ष्मणशास्त्री जोशी (वैदिक संस्कृति का विकास, पृ० ४)

इतिहास उदाहरणों से व्युत्पन्न दर्शन है।

—प्लूटार्क

मानव जाति के सबसे आनन्द के काल इतिहास के कोरे पृष्ठ हैं।

—लियोपाल्ड फ़ान रंके

History is a novel which did take place; a novel is history that could take Place.

इतिहास एक उपन्यास है जो घटित हुआ था और उपन्यास, इतिहास है जो घटित हो सकता था।

—एडमंड और जूल्स डि गोनकोर्ट (इडीज एट सेंसेशंस)

विश्व का इतिहास विश्व का न्यायालय है।

—शेलिंग (इतिहास-प्राध्यापक के रूप में, प्रथम भाषण, २६ मई १७८९)

---

१. क्रान्ति। २. इतिहास।

अनुभव और इतिहास बताता है कि लोगों और सरकारों ने इतिहास से न कभी कुछ सीखा और न इतिहास से निकले नियमों के अनुसार कार्य किया।

—हेगेल (दर्शनशास्त्र का इतिहास, भूमिका)

History is continuity and advance.
इतिहास निरन्तरता और प्रगति है।

—डा० राधाकृष्णन् (दि फ़िलासफ़ी आफ़ सर्वपल्लि राधाकृष्णन्, पृ० १०)

History is not only seeing, but also thinking. Thinking is always constructive, if not creative. Historical writing is a creative activtiy. It is different from historical research.

इतिहास केवल देखना नहीं चिंतन भी है। चिंतन सदैव रचनात्मक होता है, चाहे सर्जनात्मक न भी हो। इतिहास-लेखन सर्जनात्मक क्रिया है। यह इतिहासपरक अनुसंधान से भिन्न है।

—डा० राधाकृष्णन् (दि फ़िलासफ़ी आफ़ सर्वपल्लि राधा कृष्णन्, पृ० ११)

It is the true office of history to represent the events themselves, together with the counsels, and to leave the observations and conclusions thereupon to the liberty and faculty of every man's judgement.

इतिहास का सच्चा कार्य है स्वयं घटनाओं को, परामर्शों के साथ प्रस्तुत करना और उन पर अभिमतों व निष्कर्षों को जन-जन के निर्णय की स्वाधीनता व क्षमता पर छोड़ देना।

—बेकन (एडवांसमेट आफ़ लर्निंग)

The use of history is to give value to the present hour and its duty.

इतिहास का प्रयोजन वर्तमान समय और उसके अनुसार कर्तव्य को महत्त्व देना है।

—एमर्सन (सोसायटी एंड सालीट्यूड, वर्क्स एंड डेज)

There is properly no history; only biography.
यथार्थ में इतिहास कुछ नहीं है, केवल जीवनचरित्र है।

—एमर्सन (एसेज, 'हिस्ट्री')

History after all is the true poetry.
इतिहास अन्ततः सच्चा काव्य है।

—बासवेल कृत लाइफ़ आफ़ जानसन

History is the essence of innumerable biographies.
इतिहास अगणित जीवनचरितों का सार है।

—कार्लाइल (आन हिस्ट्री)

History, a distillation of rumour.
इतिहास अर्थात् अफ़वाह का आसव।

—कार्लाइल (दि फ़्रेंच रेवोल्यूशन, १७१५)

All history···is an inarticulate Bible.
सम्पूर्ण इतिहास···अस्फुट बाइबिल है।

—कार्लाइल (लैटरडे पैम्फलेट्स नं० ८, जे सुइटिज़्म)

"History repeats itself" and "History never repeats itself" are about equally true—We never know enough about the infinitely complex circumstances of any past event to prophesy the future by analogy.

"इतिहास की पुनरावृत्ति होती है" और "इतिहास की पुनरावृत्ति नही होती है" लगभग समान रूप से सत्य है। किसी अतीत घटना की अनन्त जटिल परिस्थितियों के विषय में हम कदापि इतना पर्याप्त नहीं जान पाते कि हम सादृश्य से भविष्य-वाणी कर सकें।

—जार्ज मैकाले ट्रैवेल्यन

इतिहास और राजनीति

History is past politics, and politics present history.

इतिहास विगत राजनीति है और राजनीति वर्तमान इतिहास है।

—सर जॉन सीले

इतिहासकार

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥

वही गुणवान प्रशंसनीय है जिसकी वाणी रागद्वेषों का बहिष्कार कर न्यायाधीश के समान भूतकालीन घटनाओं को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।७)

The poet is the truest historian.

कवि सबसे सच्चा इतिहासकार होता है।

—जेम्स एंथोनी फ्राउड (होमर)

इतिहासकार ऐसा पैगम्बर है जिसका मुख पीछे की ओर घूमा हुआ है।

—श्लेगेल

इतिहास-ग्रन्थ

विस्तीर्णाः प्रथमे ग्रंथाः स्मृत्यै संक्षिप्तो वचः।
सुव्रतस्य प्रबंधेन छिन्ना राजकथाश्रयाः॥

पूर्वकालीन इतिहास ग्रंथ विस्तृत थे। उन्हें स्मरण रखने के लिए सुव्रत ने उनका संक्षिप्त संस्करण कर दिया था। अतः वे लुप्त हो गये।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।११)

इनकार

टाँटे[1] से नाटा[2] भला, देवे तुरत जवाब।
वह टाँटा किस काम का, बरसों करे ख़राब॥

—अज्ञात

१. झगड़ा करने वाला। २. मना करने वाला।

ई

ईमानदारी

ईमानदारी वैभव का मुँह नहीं देखती, वह तो मेहनत के पालने पर किलकारियाँ मारती है और सन्तोष पिता की तरह उसे देखकर तृप्त हुआ करता है।

—रांगेय राघव (पक्षी और आकाश, पृ० ७)

जो व्यक्ति छोटे कामों को ईमानदारी से करता है, वही बड़े कामों को ईमानदारी से कर सकता है।

—सैमुएल स्माइल्स (ड्यूटी)

An honest man's the noblest work of God.
ईमानदार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्तम रचना है।

—अलेक्ज़ेंडर पोप (ऐन एसे आन मैन)

Honesty is the best policy.
ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

ईर्ष्या

प्रायः समानविद्याः परस्परयशः पुरोभागाः ॥

प्रायः समान विद्या वाले लोग एक-दूसरे के यश से ईर्ष्या करते हैं।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।२०)

आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सारिणो वयम् ॥

जिस प्रकार सागर रत्नों की खान है, उसी प्रकार जो शास्त्रों की खान है, उसके गुणों से भी हम संतुष्ट नहीं होते जब हम उससे ईर्ष्या करते हैं।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस)

नानीर्ष्यो नित्यदुःखितः।

जो ईर्ष्या-रहित है वह नित्य दुःखी नहीं रहता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६१)

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी।

ईर्ष्या विवेक की विरोधी है।

—सोमदेव भट्ट(कथासरित्सागर, १।५)

आकर्ण्याम्रफलस्तुतिं जलमभूत तन्नारिकेलान्तरं
प्रायः कण्टकितं तथैव पनसं जातं द्विधोर्वारुकम्।
आस्तेऽधोमुखमेव कादलफलं द्राक्षाफलं क्षुद्रतां
श्यामत्वं बत जाम्बवं गतमहो मात्सर्यदोषादिह ॥

आम्र फल की प्रशंसा सुनकर नारियल के अन्दर जल हो गया, कटहल कण्टकित हो गया, ककड़ी दो भागों में विभक्त हो गयी, केले का मुख नीचा हो गया, द्राक्षाफल छोटा पड़ गया तथा जामुन का रंग काला पड़ गया। यह सब मात्सर्य-दोष का परिणाम है।

—अज्ञात

गरीबों में अगर ईर्ष्या और वैर है तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और वैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में उँगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और वैर केवल आनन्द के लिए है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १८)

ईर्ष्या व्यक्तिगत होती है और स्पर्द्धा वस्तुगत।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि भाग १, ईर्ष्या)

स्पर्द्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्ष्या कमी।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि भाग १, ईर्ष्या)

ईर्ष्या का दुःख प्रायः निष्फल ही जाता है। अधिकतर तो जिस बात की ईर्ष्या होती है, वह ऐसी बात होगी जिस पर हमारा वश नहीं होता।

—रामचन्द्र शुक्ल, (चिंतामणि भाग १, ईर्ष्या)

ईर्ष्या की सबसे अच्छी दवा है उद्योग और आशा।

—रामचन्द्र शुक्ल, (चिंतामणि भाग १, ईर्ष्या)

अपने घर के अन्धकार में दूसरे का प्रकाश असह्य हो उठता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (चक्रव्यूह, दूसरा अंक)

ओरुल गोप्य जूचि योर्वलेकुंडिन
वाडु तप्पकुंड कीडु पोंदु।

दूसरों के ऐश्वर्य (बड़प्पन) को देखकर ईर्ष्यालु होने वाले का नाश अनिवार्य है।

[तेलुगु] —आदिभट्ल नारायण दासु
(अंबरीष चरित्र)

ईर्ष्या मन का पीलिया रोग है।

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, ५।१०)

The player envies only the player, the poet envies only the poet.

खिलाड़ी को केवल खिलाड़ी से ईर्ष्या होती है, कवि को केवल कवि से ईर्ष्या होती है।

—हैज़लिट (स्केचिज़ ऐंड एसेज़, एन्वी)

ईश्वर

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

परमात्मा ने प्रत्येक रूप के अनुरूप अपना रूप बना लिया।

—ऋग्वेद (६।४७।१८)

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

जो हमारा पिता, स्रष्टा तथा विधाता है, जो समस्त स्थानों तथा पदार्थों को जानता है, जो अद्वितीय समस्त देवों के नामों को धारण करने वाला है, उसकी अन्य लोग भी प्रश्नों द्वारा जिज्ञासा व खोज करते हैं।

—ऋग्वेद (१०।८२।३)

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।

परमेश्वर ही यह सब है—जो उत्पन्न हुआ और जो भविष्य में जन्म लेने वाला है।

—ऋग्वेद (१०।९०।२)

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः।

महद् यश नाम वाले परमात्मा की कोई प्रतिमा (उपमा) नहीं है।

—यजुर्वेद (३२।३)

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

तू स्त्री है और तू पुरुष भी है। तू कुमार है और कुमारी भी है। तू वृद्ध होकर दण्ड हाथ में लेकर जाता है। तू प्रकट होकर सब ओर मुख करने वाला होता है।

—अथर्ववेद (१०।८।२७)

सात्विकत्वात् समष्टित्वात् साक्षित्वाजगमतामपि।
जगत् कर्तुमकर्तुं वा चान्यथा कर्तुमीशते।
यः स ईश्वर इत्युक्तः सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः॥

सात्विक होने के कारण, समष्टि रूप होने के कारण, तथा जगत् के साक्षी रूप होने के कारण वह ईश्वर जगत् की सृष्टि करने, न करने तथा अन्यथा करने में समर्थ है।

—सरस्वतीरहस्योपनिषद्

सा माया स्ववशोपाधिः सर्वज्ञस्येश्वरस्य हि।
वश्यमायत्वमेकत्वं सर्वज्ञत्वं च तस्य तु॥

वह माया सर्वदा ईश्वर की अपने अधीन रहने वाली उपाधि है। माया को वश में रखना, एकत्व और सर्वज्ञता ईश्वर के लक्षण हैं।

—सरस्वतीरहस्योपनिषद्

तद् वै देवा उपासते तस्मात् सूर्यो विराजते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

सब देवता उन सनातन भगवान् की उपासना करते हैं, उन्हीं के प्रकाश से सूर्य प्रकाशित होते हैं और योगी जन उन्हीं का साक्षात्कार करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ४६।१)

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

हे अर्जुन! मुझसे अधिक श्रेष्ठ दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत्, सूत्र में मणियों के सदृश, परमात्मा में गुँथा हुआ है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३१।७,
अथवा गीता ७।७)

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

हे अर्जुन ! मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल हूं और सब प्राणियों मे धर्म के अनुकूल 'काम' हूं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३१।११,
अथवा गीता, ७।११)

पितामहस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

मै इस जगत् का माता, पिता, धारणकर्ता, पितामह, ज्ञेय, पवित्र वस्तु, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद हूं। मैं अतिम गति, पोषणकर्ता, स्वामी, साक्षी, निवासस्थान, शरण जाने योग्य, मित्र, उत्पत्तिकर्ता, लयकर्ता, मध्य की अवस्थिति, भडार और अविनाशी बीज हूं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३३।१७-१८,
अथवा गीता, ९।१७-१८)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥

आप जानने योग्य परम अक्षर है। आप इस विश्व के परम निधान हैं। आप अविनाशी हैं। आप शाश्वत धर्म के रक्षक है। आप सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३५।१८,
अथवा गीता, ११।१८)

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धामं
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

आप आदि देव और पुराण पुरुष हैं। आप इस जगत् के परम आश्रय हैं। आप जानने वाले तथा जानने योग्य और परमधाम है। हे अनन्तरूप ! आपसे यह सब जगत् व्याप्त है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३५।३८,
अथवा गीता, ११।३८)

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

आप इस चराचर जगत् के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एव अति पूजनीय है। हे अप्रतिम-प्रभाव ! तीनों लोकों मे आप के समान भी दूसरा कोई नही है, फिर अधिक श्रेष्ठ कैसे होगा ?

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३५।४३,
अथवा गीता, ११।४३)

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

हे अर्जुन ! शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से घुमाता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४२।६१,
अथवा गीता, १८।६१)

न स्त्री पुमान् नापि नपुंसकं च
न सन्न चासत् सदसच्च तन्न।
पश्यन्ति यद् ब्रह्मविदो मनुष्या-
स्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि ॥

वह न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। न सत् है, न असत् है और न सदसत् उभयरूप ही है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही उसका साक्षात्कार करते है। उसका कभी क्षय नही होता, इसलिए वह अविनाशी परब्रह्म परमात्मा अक्षर कहलाता है। यह समझ लो।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, २०१।२७)

इन्द्रियेभ्यो मनः पूर्वं बुद्धिः परतरा ततः।
बुद्धे परतरं ज्ञानं ज्ञानात् परतरं महत् ॥

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से ज्ञान श्रेष्ठतर है, और ज्ञान से परात्पर परमात्मा श्रेष्ठ है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, २०४।१०)

सूक्ष्मेण मनसा विद्मो वाचा वक्तुं न शक्नुमः।
मनो हि मनसा ग्राह्यं दर्शनेन च दर्शनम् ॥

हम ध्यान द्वारा शुद्ध और सूक्ष्म हुए मन से परमात्मा के स्वरूप का अनुभव तो कर सकते है, किन्तु वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि मन के द्वारा ही मानसिक विषय का ग्रहण हो सकता है और ज्ञान के द्वारा ही ज्ञेय को जाना जा सकता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, २०६।२४)

द्रष्टा द्रष्टव्यं श्रावित्ता श्रावणीयं
ज्ञाता ज्ञेयं सगुणं निर्गुणं च।
यद् वै प्रोक्तं तात सम्यक् प्रधानं
नित्यं चैतच्छाश्वतं चाव्ययं च ॥

वही द्रष्टा और द्रष्टव्य है। वही सुनाने वाला और सुनाने योग्य वस्तु है। वही ज्ञाता और ज्ञेय है तथा वही सगुण और निर्गुण है। हे तात ! जिसे सम्यक् प्रधान तत्त्व कहा गया है, वह भी यह पुरुष ही है। यह नित्य सनातन और अविनाशी तत्त्व है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, ३५१।१८)

ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा।
ईश्वर के वश में सभी लोग कठपुतली जैसे है।

—भागवत (१।६।७)

यद् वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः
सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय
प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥

हे वत्स, जिस प्रकार रस्सी से नथा हुआ पशु मनुष्यों का बोझ ढोता है, उसी प्रकार परमात्मा की वाणी रूप बड़ी रस्सी में गुण, कर्म और वाक्यों की डोरी से जकड़े हुए हम लोग उनके द्वारा कर्म मे लगे रहते हैं और उसके द्वारा उनकी पूजा करते रहते हैं।

—भागवत (५।१।१४)

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥

सभी देहधारियों का एक ही परम आत्मा है, मूर्खो को वही नाना प्रकार से दिखाई देता है जैसे ज्योति और आकाश।

—भागवत (१०।५४।४४)

यस्य नादिर्न मध्यं च नान्तमस्ति जगद्यतः।
कथं स्तोष्यामि तं देवमवाङ्मनसगोचरम् ॥

जिनका न आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है जिनसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है तथा जो मन और वाणी के विषय नहीं हैं उस परम तत्त्व की स्तुति मैं कैसे कर सकूँगी।

—शिव पुराण (रुद्रसंहिता, सती खण्ड)

यत् सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत्
यद् भूतं परमिदं च यद् भविष्यत्।
यत् किंचिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वं पुरुषवरः प्रभुः पुराणः ॥

जो सत्य है, जो अमृत है, जो अक्षर है, जो परम है, जो परम भूत है, जो भविष्यमाण है, जो कुछ भी जगत् में चर व अचर रूप में विद्यमान है तथा उसके अतिरिक्त भी जो कुछ है, वह सब कुछ पुराण पुरुष श्रेष्ठ प्रभु ही है।

—मत्स्य पुराण (१६३।२८)

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः।
वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः ॥
वासुदेवात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजंगमम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते ॥

समस्त धर्मों के फल भगवान् वासुदेव हैं। तपस्या का चरम लक्ष्य भी वासुदेव ही हैं। वासुदेव के तत्त्व को समझ लेना ही उत्तम ज्ञान है तथा वासुदेव को प्राप्त कर लेना ही उत्तम गति है। ब्रह्मा जी से लेकर कीटपर्यन्त यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् वासुदेव स्वरूप है, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

—नारद पुराण (पूर्वभाग, प्रथम पाद, ३।८०)

शिवं शैवा वदन्त्येनं प्रधानं सांख्यवेदिनः।
योगिनः पुरुषं विप्राः कर्म मीमांसका जनाः ॥
विभुं वैशेषिकाद्याश्च चिच्छक्ति शक्तिचिन्तकाः।
ब्रह्माद्वितीयं तद्वन्दे नानारूपक्रियास्पदम् ॥

इनको शैव 'शिव' कहते हैं और सांख्य तत्त्वज्ञ 'प्रधान' कहते है। हे ब्राह्मणो ! योगी इन्हें 'पुरुष' कहते हैं, मीमांसक लोग 'कर्म' कहते हैं, वैशेषिक इन्हें 'विभु' कहते हैं। आदि-शक्ति का चिन्तन करने वाले इन्हें 'शक्ति' कहते हैं। नाना

प्रकार के रूपों और क्रियाओं के चरम आश्रय उन अद्वितीय ब्रह्म की मै वन्दना करता हूँ।

—नारद पुराण (उत्तर भाग, ८२।५६-५७)

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

जैसे आकाश से गिरा हुआ जल समुद्र को चला जाता है, उसी प्रकार सब देवताओं को किया गया नमस्कार केशव को प्राप्त होता है।

—पांडव गीता (उपसंहार, ८०)

दिविभूमौ तथाऽऽकाशे वहिरन्तश्च मे विभुः।
यो विभात्यवभासात्मा तस्मै सर्वात्मने नमः॥

जो प्रकाश-स्वरूप सर्वव्यापी परमात्मा स्वर्ग में, भूतल में, आकाश मे तथा हमारे अदर और बाहर—सर्वत्र प्रकाशित हो रहे हैं, उन सर्वात्मा को नमस्कार है।

—योगवासिष्ठ (वैराग्य प्रकरण, सर्ग २)

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।

क्लेशों, कर्मों, विपाकों[1] और आशयों[2] से अस्पृष्ट पुरुष-विशेष ही ईश्वर है।

—पतंजलि (योगसूत्र, १।२४)

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

ईश्वर मे सर्वज्ञ-बीज[3] की निरतिशयता[4] है।

—पतंजलि (योगसूत्र, १।२५)

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

ईश्वर प्राचीन गुरुओं का भी गुरु है क्योंकि वह काल से अनवच्छिन्न है।

—पतंजलि (योगसूत्र, १।२६)

तस्य वाचकः प्रणवः।

ईश्वर का वाचक प्रणव[5] है।

—पतंजलि (योगसूत्र, १।२७)

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणा-
दौदार्यादघशोषणादगणितश्रेयः पदप्रापणात्।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेते हि तत्साक्षिणः
प्रह्लादश्चविभीषणश्च करिराट् पांचाल्यहल्या ध्रुवः॥

वात्सल्य, अभयदान की प्रतिज्ञा, आर्त-दुःख-निवारण, उदारता, पाप के विनाश और असंख्य कल्याण पदों की प्राप्ति कराने के कारण सभी लोकों के लिए लक्ष्मीपति नारायण ही सेव्य है। इस विषय में प्रह्लाद, विभीषण, गजेन्द्र, द्रौपदी, अहल्या और ध्रुव—ये सभी साक्षी हैं।

—शंकराचार्य (आर्तत्राणपरायणनारायणाष्टादशस्तोत्र)

विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मा सुरेन्द्रोऽथवा
भानुर्वा शशलक्षणोऽथ भगवान् बुद्धोऽथ सिद्धोऽथवा।
रागद्वेषविषार्त्तिमोहरहितः सत्त्वानुकम्पोद्यतो
यः सर्वैः सह संस्कृतो गुणगणैस्तस्मै नमः सर्वदा॥

चाहे वह विष्णु हो, शिव हो, ब्रह्मा हो, इन्द्र हो, सूर्य हो चन्द्र हो, भगवान बुद्ध हो अथवा सिद्ध हो, जो भी राग-द्वेष रूप विष के उपद्रवों से शून्य तथा अज्ञान से रहित हो, जीवों पर दया करने को उद्यत हो एवं जो समस्त गुणसमूह से व्याप्त हो उस प्रभु को सर्वदा नमस्कार है।

—हेमाचार्य (वल्लभाचार्य कृत सुभाषितावलि में २४वां श्लोक)

ज्योतिः शान्तमनन्तमद्वयमजं तत्तद्गुणोन्मीलनाद्
ब्रह्मेत्यच्युत इत्युमापतिरिति प्रस्तूयतेऽनेकधा।
तैस्तैरेव सदागमैः श्रुतिमुखैर्नानापथप्रस्थितै-
र्गम्योऽसौ जगदीश्वरो जलनिधिर्वारां प्रवाहैरिव॥

शान्त, अनन्त, अद्वितीय, अजन्मा, ज्योति को उस-उस गुण के प्रकाश से ब्रह्मा, विष्णु, शिव ऐसे अनेक प्रकार से कहा जाता है। भिन्न-भिन्न तथा अनेक पथों में गतिशील शास्त्रों के द्वारा वही एक ईश्वर कहा जाता है जैसे भिन्न-भिन्न तथा अनेक पथों में गतिशील जल-प्रवाह समुद्र में ही गिरते है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय, ५।६)

यज्जातीयो यादृशो यत्स्वभावः
पादच्छायां संश्रितो योऽपि कोऽपि।
तज्जातीयस् तादृशस् तत्स्वभावः
श्लिष्यत्येनं सुन्दरो वत्सलत्वात्॥

जो भगवान् के चरणों की छाया का आश्रय करता है, भगवान सुन्दरराज (विष्णु) वात्सल्यभाव से उसे गले लगाते

१. कर्म का फल। २. कर्म-विपाक के अनुरूप समस्त वासनाएं।
३. सर्वज्ञता। ४. क्रमशः वृद्धि से रहित। ५. 'ओ३म्' शब्द।

हैं। भक्त जिस जाति का, जिस स्वभाव का और जैसा होगा, भगवान उसके लिए उस जाति के, उस स्वभाव के और वैसे बन जाते हैं।

—कूरथल्वार

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

वेद, सांख्य, योग, पाशुपत मत, वैष्णव मत, इत्यादि परस्पर भिन्न मार्गों में 'यह बड़ा है, यह हितकारी है', इस प्रकार रुचि की विचित्रता से अनेक प्रकार के सीधे या टेढ़े पंथ को अपनाने वाले मनुष्यों के लिए हे परमात्म देव! आप ही एकमात्र प्राप्त करने योग्य स्थान है, जैसे नदियों के लिए समुद्र।

—पुष्पदंत (शिवमहिम्नस्तोत्र, ७)

दैव्याः शक्तेः पुरो न बलवती मानवी शक्तिः।
ईश्वरीय शक्ति के सम्मुख मानवी शक्ति बली नहीं है।

—दण्डी (दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका)

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकाररसतामेति पुष्कलम्॥

भगवान् स्वयं परमानन्द-स्वरूप हैं अतः जब वे मन में प्रवेश कर जाते हैं, तब वह मन पूर्ण रूप से भगवान् के आकार का होकर रसमय बन जाता है।

—मधुसूदन सरस्वती (भक्ति रसायन, १।१०)

पृथिव्यां पाथसि पावके च पवने दिक्ष्वन्तरिक्षे पुनर्
मार्तण्डे शशिमण्डलेऽस्ति सुतले यश्चेतनेऽचेतने।
अस्त्यन्तर्बहिरस्त्यनन्तविभवो भावेष्वऽभावेऽपि वा
सर्वत्रास्ति सर्वास्ति किं बहुगिरा त्वय्यस्ति मय्यस्ति च॥

वह असीम वैभव-सम्पन्न परमात्मा सर्वत्र सदा विराजमान रहता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, दिशा, आकाश एवं भूलोक के मध्य, सूर्य, चन्द्रमा, नागलोक, चेतन, अचेतन, बाहर, भीतर, भाव, अभाव इत्यादि सभी स्थानों में रमा हुआ है। अधिक क्या कहें, वह तुममें और मुझमें भी व्याप्त है।

—दैवज्ञ सूर्य पंडित (नृसिंह चम्पू, २।१७)

यथा तथापि यः पूज्यो यत्र तत्रापि योऽर्चितः।
योऽपि वा सोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्मै नमोऽस्तु ते॥

चाहे किसी भी प्रकार से क्यों न हो (अर्थात् सब प्रकार से) पूजा के योग्य और जहाँ-तहाँ भी (अर्थात् सर्वत्र) पूजित —जो कुछ भी रूप है वह अर्थात् सर्वस्वरूप हे देव! तुमको प्रणाम है।

—अज्ञात

कर्तुमकर्तुमशक्तः सकलं जगदेतदन्यथाकर्तुम्।
यस्तं विहाय रामं कामं मा धेहि मानसान्यस्मिन्॥

जो राम कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्[1] समर्थ है तथा समस्त जगत् को अपनी इच्छानुसार बनाता-बिगाड़ता रहता है, उसको छोड़कर अन्य किसी में अपना मन मत लगाओ।

—अज्ञात

भ्रान्ता वेदान्तिनः किं पठथ शठतयाद्यापि चाद्वैतविद्यां
पृथ्वीतत्त्वे लुठन्तो विमृशथ सततं कर्कशास्तार्किकाः किम्।
वेदैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदयं श्रोत्रियाः
श्रोत्रशूलैर्वेद्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं प्राणसंप्रीणनाय॥

भ्रान्त वेदान्तियो! शठता से तुम अभी भी अद्वैत विद्या को क्यों पढ़े जा रहे हो? तार्किको! पृथ्वी-तत्त्व पर प्रहार करते हुए तुम निरन्तर क्या विचार कर रहे हो? श्रोत्रियो! कानों को शूलवत् लगने वाले नाना वेद-शास्त्रों से हृदय को क्यों सुखा रहे हो? प्राणों को प्रसन्न करने के लिए जानने योग्य सर्वथा निर्दोष ईश्वर की शरण ग्रहण करो।

—अज्ञात

अकण्ठस्य कण्ठे कथं पुष्पमाला
विना नासिकायाः कथं धूपगन्धः।
अकर्णस्य कर्णे कथं गीतनृत्यम्
अपादस्य पादे कथं मे प्रणामः॥

जिसके कंठ ही नहीं है, उसे फूलों की माला कैसे पहनाई जाए? नासिका-रहित को धूप की गन्ध कैसे दी जाए? बिना कान वाले के लिए कैसे गायन और नृत्य किया जाए? और जिसके पैर ही नहीं हैं उसे मैं प्रणाम कैसे करूँ?

—अज्ञात

१. किसी काम को करने में, न करने में या अन्यथा करने में।

ब्रह्मा दक्षः कुबेरो यमवरुणमरुद्वह्निचन्द्रेन्द्ररुद्राः
शैला नद्यः समुद्रा ग्रहगणमनुजा दैत्यगन्धर्वनागाः।
द्वीपा नक्षत्रताराररविवसुमुनयो व्योम भूरश्विनौ च
संलीना यस्य सर्वे वपुषि स भगवान् पातु वो विश्वरूपः॥

ब्रह्मा, दक्ष, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्र, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, ग्रहमण्डल, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, नाग, द्वीप, नक्षत्र, तारे, सूर्य, लोकपाल, मुनि, आकाश, पृथ्वी और अश्विनी कुमार, ये सब जिसके शरीर में समाए हुए हैं वह विश्वरूप भगवान आप सबकी रक्षा करें।

—अज्ञात

त्वं पासि हंसि तनुषे मनुषे बिभर्षि
विभ्राजसे सृजसि संहरसे विरौषि।
आस्से तिरस्यसि सरस्यसि रासि लासि
संक्रीडसे ब्रुडसि मेधसि मोदसे च॥

हे देव! तू रक्षा करता है, नाश करता है, विस्तार करता है, मानता है, पालन करता है, शोभित होता है, सर्जन करता है, सहार करता है, शब्द करता है, मौन रहता है, फेंकता है, सरसाता है, देता है, लेता है, एक साथ खेलता है, डूबता है, उतराता है और प्रसन्न रहता है।

—अज्ञात

अग्नौ कृत्यवतो देवो, हृदि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनाम्, ज्ञानिनां सर्वतः शिवः॥

कर्मकांडी व्यक्ति का ईश्वर अग्नि में, मनीषियों का ईश्वर हृदय में, मन्दबुद्धि का मूर्ति में निवास करता है किन्तु ज्ञानियों का शिव सर्वत्र निवास करता है।

—अज्ञात

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुअ म सेवि।
अण्णु जि देउ मा चिंति तुहुं अप्पा विमलु मुएवि॥

विमल स्वभाव वाले उस परमात्मा को त्यागकर तीर्थ-यात्रा, गुरु-सेवा अथवा किसी अन्य देव की चिन्ता करना व्यर्थ है।

[अपभ्रंश] —योगीन्द्र (परमप्पयासु, १।९५)

देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु सिउ संठिउ सम चित्ति॥

वह परमात्मा न देवालय में है, न शिला में है, न लेप्य में है और न चित्र में है। वह अक्षय, निरंजन, ज्ञानमय शिव समचित्त में है।

[अपभ्रंश] —योगीन्द्र (परमप्पयासु)

जो पइं जोइउं जोइया तित्थइं तित्थ भमेइ।
सिउ पहं सिहुं हिंडियउ लहिवि ण सक्किउ तोइ॥

हे योगी! जिस-जिस शिव को देखने के लिए तू तीर्थ से तीर्थ घूमता-फिरता है, वह शिव तो तेरे साथ-साथ घूमता फिरा तो भी तू उसे न पा सका।

[अपभ्रंश] — मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा)

भारी कहो तो बहु डरौं, हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जाँणौं राम कूँ, नैनूं कबहुँ न दीठ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७)

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरषि हरषि गुण गाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७)

ज्यूं नैनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट माँहि।
मूरिख लोग न जाँणहीं, बाहरि ढूंढण जाँहि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८२)

कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७६)

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै वन माँहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाँहि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८१)

साई से सब होत है, बंदे तैं कछु नाँहि।
राई तैं परवत करै, परवत राई माँहि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६२)

सब घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हीं का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ॥

— कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५२)

सात समँद की मसि करौ, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, हरि गुण लिख्या न जाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६२)

अविगत अपरंपार ब्रह्म ज्ञान रूप सब ठाम।
बहु बिचार करि देखिया कोई न सारिख राम ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २४१)

ऐसो कछु अनभौ कहत न आवै।
साहिब मिलै तो को बिलगावै ॥
सब में हरि है, हरि में सब हैं, हरि अपनो जिन जाना।
साखी नहीं और कोई दूसरा, जाननहार सयाना ॥
—रैदास

जस हरि कहिये तस हरि नाही, है अस जस कुछ तैसा।
जानत जानत जान रह्यो सब, मरम कहो निज कैसा ॥
—रैदास

ना वह टूटै ना वह फूटै, ना कबहीं कुम्हिलाय।
सर्ब कला गुन आगरो, मोपै बरनि न जाय ॥
—बुल्ला साहेब (बुल्ला साहेब का शब्दसार, पृ० ३२)

वा के रूप रेख काया नहिं, बिना सीस बिस्तारा है।
अगम अपार अमर अबिनासी, सो संतन का प्यारा है ॥
—बुल्ला साहेब (बुल्ला साहेब का शब्दसार, पृ० ३१)

राम जपै रुचि साधु की, साधु जपै रुचि राम।
दादू दोनों एक ढंग, सम अरंभ सम काम ॥
—दादूदयाल

सब कोउ साहब बन्दते, हिंदू मूसलमान।
साहेब तिस को बन्दता, जिसके ठौर इमान ॥
—मलूकदास (मलूकदास की बानी, पृ० ३३)

कह मलूक हम जबहिं ते लीन्हीं हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरम की पोट ॥
—मलूकदास

दरिया साँचा राम है, और सकल ही झूठ।
—दरिया साहेब

हिन्दू की हदि छाँड़िकै तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियाँ एकै राम अलाह ॥
—सुन्दरदास (सहजानन्द, ६)

सुन्दर जो गाफिल हुआ तो वह साईं दूर।
जो बन्दा हाजिर हुवा तो हाजराँ हुजूर ॥
—सुन्दरदास (अजब ख्याल अष्टक, दोहा ७)

सखुन हमारा मानिये मत खोजै कहुं दूर।
साईं सीने बीच है 'सुन्दर' सदा हुजूर ॥
—सुन्दरदास

'सुन्दर' अन्दर पैठ के दिल में गोता मार।
तो दिल में ही पाइए साईं सिरजनहार ॥
—सुन्दरदास

निरपच्छी के पच्छ तुम निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार ॥
—दयाबाई

सीस नवै तो तुमहिं कूं, तुमहिं सूं भाखूं दीन।
जो झगरूँ तो तुमहिं सूं, तुम चरनन आधीन ॥
—दयाबाई

है अखंड व्यापक सकल सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावै निकट ही, मूरख जानै दूर ॥
—सहजोबाई

जगमग अंदर में हिया, दिया न बाती तेल,
परम प्रकाशक पुरुष का कहा बताऊँ खेल।
—तुलसी साहिब

एते करता कहाँ है, वह तो साहिब एक,
जैसे फूटी आरसी, टूक-टूक में देख।
—गरीबदास

सर्वसिद्धि की सिद्धि हरि, सब साधन को मूल।
—परशुराम देव

तन मन धन का है वह मालिक।
वाने दिया मेरे गोद में बालक ॥
वा से निकसत जी को काम।
ऐ सखि साजन ना सखि राम ॥
—अमीर खुशरो (मुकरियाँ, १९०)

अविगत गति जानी न परै।
मन बच कर्म अगाध अगोचर किहि विधि विधि सँचरै।
—सूरदास (सूरसागर, प्रथम खंड, १०५)

अविगत गति जानी न परै।
राई तैं परवत करि डारै, राई मेरु करै॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४८१७)

गुन अपार एक मुख कहां लौं कहिये।

—छीतस्वामी

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती।
सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११३।४)

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रसभोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११८।३)

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई।
भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू।
बिसमय हरष न हिय कछु धरहू॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१३७।१)

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१४०।३)

सबइ लाभु जग जीव कहँ भए ईसु अनुकूल।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३४१)

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१७१)

उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।११।४)

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध शाखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल युगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

वेद शास्त्रों में कहा है कि जिसका मूल अव्यक्त है, जो अनादि हैं, जिसकी चार त्वचाएँ, छः तने, पचीस शाखाएँ, अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं, जिनमें कड़वे और मीठे दो प्रकार के फल लगे है, जिस पर एक ही बेल है, जो उसी के आश्रित रहती है, जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं, ऐसे संसार-वृक्ष स्वरूप आपको हम नमस्कार करते हैं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१३।५)

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेऊँ, बरनि कवनि बिधि जाइ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।८०क)

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१११ख)

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ।

—तुलसीदास (दोहावली)

अंतरजामिहु तें बड़े बाहेर जामि हैं रामु, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात बिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें॥

अन्तर्यामी ईश्वर से भी बड़े बहिर्गत साकार राम है, क्योंकि जिस प्रकार कुछ ही समय पूर्व ब्यायी गौ अपने बच्चे का शब्द सुनते ही स्तनों में दूध उतार दौड़ी आती है, उसी प्रकार वे भी नाम लेते ही दौड़े आते हैं। तुलसीदास तो अपनी समझ की बात कहता है, ऐसी बावली बातें दूसरे लोगों से कहे जाने योग्य नहीं हुआ करतीं, प्रहलाद के प्रतिज्ञा करने पर उसके लिए प्रभु पत्थर से ही प्रकट हो गए, हृदय से नहीं।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १२९)

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ७२)

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६७९)

यहि विरिया[1] नहिं और की, तू करिया[2] वह सोधि[3]।
पाहन नाव चढ़ाय जिन, कीने पार पयोधि॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, पृ० ६८७)

अलख निरंजन करता[4] एक रूप बहु भेस।
कतहूँ[5] बान[6] भिखारी कतहूँ आदि नरेस॥

—मंझन (मधुमालती, ३)

प्यारे तूँ ही ब्रह्म तूँ ही विष्णु तूँही रुद्र तूँ ही गुरु तूँ ही चेला।
प्यारे तूँ ही जल तूँही थल तूँ ही प्रबल तूँ ही अबल तूँ ही छैल तूँ ही अलवेला॥
तूँ ही ऊँच तूँ ही नीच पाप पुन्य तूँ ही बीच तूँ ही सों मेला।
तानसेन कहे प्रभु कहाँ लौ बखानूँ तूँ ही बहुत तूँ ही अकेला॥

—तानसेन (ध्रुपद के पद)

कर घूंघट जग मोहिये, बहुत भुलाये लाल।
दरसन जिनै दिखाइयाँ, दरसन जोग जमाल॥

हे लाल (प्रिय)! तुमने घूंघट करके जगत को अपनी ओर आकर्षित किया। बहुत लोग तुम्हें खोजते-खोजते भटक गये, पर तुमने उनको ही दर्शन दिया, जो दर्शन के योग्य थे।

—जमाल (जमाल दोहावली)

हे अनन्त रमणीय कौन तुम?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो
भार विचार न सह सकता॥

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते हैं संधान।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

भगवान दुखियों से अत्यन्त स्नेह करते हैं।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० १३७)

१. वेला। २. कर्णधार। ३. खोज कर। ४. कर्त्ता। ५. कही पर। ६. वेष। ७. सर्वोच्च।

ईश्वर को न जानना अपने आंशिक ज्ञान में जीवित रहना है।

—सुमित्रानंदन पंत (छायावाद, पुनर्मूल्यांकन, पृ० १४०)

तर्क वितर्कों की
न व्यर्थ गुत्थी सुलझाओ,
सीधा ईश्वर का
साक्षात् करो जीवन में।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ७१)

बार बार हैं किस लिए, आँखें करते बंद।
सदा नहीं क्यों देखते, भव में परमानन्द॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सतसई, पृ० १६)

हम जो अनाथनि लौं इत उत टेकैं माथ,
तौ पै तुम नाथ नाथ बिस्व के कहावौ क्यों?

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (श्री विष्णु लहरी, ३६)

सौन्दर्य और शील भगवान के लोक-पालन और लोक-रंजन के लक्षण हैं और शक्ति उद्भव और लय का लक्षण है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, ५४)

सबसे बड़ गौरव यही तो है हमारे ज्ञान का,
जानें चराचर विश्व को हम रूप उस भगवान का।
ईशस्थ सारी सृष्टि हममें और हम सब सृष्टि में,
है दर्शनों में दृष्टि जैसे और दर्शन दृष्टि में॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १७३)

तुम[1] अलोचन ही सही, पर
अखिल-लोचन हो तुम्हीं।

—गोपालशरण सिंह (कविता 'आराधना', पृ० ६३)

धन और ईश्वर में बनती नहीं। ग़रीब के घर में ही प्रभु निवास करते हैं।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपीनियन, ४-७-१९०८)

आदमी जितना असमर्थ है, भगवान उतना ही समर्थ है। उसकी कृपा अपरम्पार है और वह हजार हाथों से मदद करता है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १५-६-१९२१)

१. ईश्वर।

भूख से मरते बेकार लोगों का परमेश्वर तो योग्य काम और उससे मिलने वाली रोटी ही है, उनके लिए परमेश्वर का यही एकमात्र स्वीकार्य रूप हो सकता है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १३-१०-१९२१)

आपको अपने सिवा किसी पर भी विश्वास नहीं करना है। आपको भीतर की आवाज सुनने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन यदि आप उसके लिए भीतर की आवाज शब्द प्रयुक्त न करना चाहें तो आप 'विवेक का आदेश' शब्द प्रयुक्त कर सकते हैं। और यदि आप ईश्वर को प्रदर्शित नही करते हैं तो मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि आप किसी और चीज को प्रदर्शित करेंगे जो अन्त में ईश्वर सिद्ध होगी, क्योंकि सौभाग्य से इस संसार में ईश्वर के सिवा कुछ और है ही नहीं।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, २६-११-१९३२)

ईश्वर को नहीं मानने से सबसे बड़ी हानि वही है, जो हानि अपने को न मानने से हो सकती है। अर्थात् ईश्वर को न मानना आत्महत्या के समान है।

—महात्मा गांधी

सच पूछो तो हम सब द्रौपदी की ही स्थिति में हैं। हमारी लाज कोई मनुष्य नहीं ढँक सकता, उसे तो ईश्वर ही ढँक सकता है। ऐसा जरूर होता है कि वह अपनी सहायता मनुष्य के द्वारा भेजता है, किन्तु मनुष्य तो निमित्त मात्र है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४९, पृ० ३४)

ईश्वर को नाम की जरूरत नहीं। वह और उसके, नियम दोनों एक ही हैं। इसलिए ईश्वरीय नियमों का पालन ही ईश्वर का जप है।

—महात्मा गांधी (हरिजन सेवक, २४-३-१९४६)

ईश्वरीय प्रकाश किसी एक ही राष्ट्र या जाति की सम्पत्ति नहीं है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, २८-९-१९२४)

मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भयता ईश्वर है। ईश्वर जीवन और प्रकाश का मूल है। फिर भी वह इन सबसे परे है। ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह तो नास्तिकों की नास्तिकता भी है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, ५-३-१९२५)

ईश्वर न तो ऊपर स्वर्ग में है, न नीचे किसी पाताल में; वह तो हर-एक के हृदय में विराजमान है।

— महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ५)

ईश्वर एक अनिर्वचनीय रहस्यमयी शक्ति है, जो सर्वत्र व्याप्त है; मैं उसे अनुभव करता हूँ, यद्यपि देखता नहीं हूँ।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ७)

ईश्वर जीवन है, सत्य है, और प्रकाश है। वही प्रेम है; वही परम मंगल है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ८)

ईश्वर की असंख्य व्याख्याएँ हैं, क्योंकि उसकी विभूतियां भी अगणित है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ३१)

ईश्वर के सामने हम सभी गोपियाँ हैं। ईश्वर स्वयं न नर है, न नारी है, उसके लिए न पंक्तिभेद है, न योनिभेद है। वह 'नेति-नेति' है। वह हृदयरूपी वन में रहता है और उसकी वंसी है अंतरनाद।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना-प्रवचन, दिल्ली की प्रार्थना सभा, ६ जून १९४७)

जो ईश्वर को अपने पास समझता है वह कभी नहीं हारता।

—महात्मा गांधी (दिल्ली की प्रार्थना सभा, १४ जून १९४७

आश्चर्य है, वैद्य मरते हैं, डॉक्टर मरते हैं, उनके पीछे हम भटकते है। लेकिन राम जो मरता नहीं है, हमेशा जिन्दा रहता है और अचूक वैद्य है, उसे हम भूल जाते हैं।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ४१)

कोश के सभी शब्दों का 'ईश्वर' ही एकमात्र अर्थ है।

—विनोबा (विचार पोथी, पृ० १०७)

तो, आप मेरे गुण ढूंढ़ें, मैं आपके ढूँढूँगा। इसमें आपका और मेरा, दोनों का मेल है। यही अर्थ है निरन्तर भगवद्-गुणगान का।

—विनोबा भावे (भागवत धर्म मीमांसा, पृ० १०३)

भगवान् सबसे दुःखी मनुष्यों में रहता है। वह महलों में नहीं जाता।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४२०)

अनन्त विश्व की विशालतम और सूक्ष्मतम सचेत महा-शक्ति का नाम परमात्मा है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (कचनार, पृ० २१६)

ईश्वर अनादि है, पर उस ईश्वर को, मैं दावे के साथ कहता हूँ, कोई नहीं जानता—वह कल्पना से परे है। वह सत्य है, पर इतना प्रकाशवान कि मनुष्य के नेत्र उसके आगे नहीं खुले रह सकते। उस सत्य को जानने का प्रयत्न करो, उस ईश्वर को पाने के लिए घोर तपस्या करो, पर सब व्यर्थ है—निष्फल है। यदि तुम ईश्वर को ही जान सको, यदि तुम्हारी कल्पना में ही वह अखण्ड और निःसीम अनन्त का रचयिता आ सके, तो फिर वह ईश्वर कैसा?

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० ३६)

सुख तो वही चाहने योग्य है जो मिलकर फिर कभी खो न जाय। जो नित्य, सनातन और एकरस हो। ऐसे सुख के निकेतन हैं—एकमात्र मंगलमय भगवान्।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

भूला मैं पहचान न पाया मृत्यु वेष में तुमको नाथ।
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्यु का, आये करने मुझे सनाथ॥

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

कर आवरण भंग, तुमने ही माया का कर पर्दा छिन्न।
देकर मुझे गाढ़ आलिंगन, किया सदा के लिए अभिन्न॥

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

याद रखो—दुनिया में दो ही चीजें हैं—भगवान् और भगवान् की लीला। जड़ चेतन सब कुछ भगवान् हैं और जगत् में जो कुछ हो रहा है सब उनकी लीला हो रही है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

वास्तव में उस अपने प्रियतम की अनुकूलता तथा जगत् की यह प्रतिकूलता ही साधक को सर्वांग सुन्दर बना अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाने का साधन है।

—अशोकानंद (तत्त्व-चिंतन के कुछ क्षण, पृ० १४१)

यह विश्व तुझसे व्याप्त है तू विश्व में भरपूर है।
तू वार है, तू पार है, तू पास है, तू दूर है॥

—भोले बाबा (वेदांत छंदावली, भाग १)

भगवान की देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदि से दूरी है ही नहीं, भक्त की उत्कण्ठा की कमी के कारण विलम्ब हो रहा है।

—रामसुखदास स्वामी (गीता का भक्तियोग, पृ० ६६)

जाको राम रक्षक, ताको कौन भक्षक!

—हिंदी लोकोक्ति

जान को देत सुजान को देत
अजान को देत सो तोहू को देहै।

—अज्ञात

जाको राखै साइयाँ, मार सके न कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होय॥

—अज्ञात

जब दाँत न थे तब दूध दियो
जब दाँत भए का अन्न न देहैं।

—अज्ञात

अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि।

—अज्ञात

यहाँ अक़्ल[1] है गुम कि बस तुझी को
पाया हर शै[2] मे पर न पाया।

—मोमिन

सदियों फ़िलासफ़ी[3] की चुनाचुनी रही।
लेकिन खुदा की बात जहाँ थी वहाँ रही।

—अकबर इलाहाबादी

दीनो ईमाँ कहते हैं किसको खुदा का नाम लो
सब को भूले यह असर है उस सनम के याद का।

—बर्क़

कमाले कमालात क़ायम करीम
रजाबख्शो राज़िक रिहाक़ो रहीम।

वह पूर्ण से भी पूर्ण है, सदा स्थिर रहने वाला है और कृपालु है। इच्छानुसार देने वाला है, जीविका देने वाला है, कृपालु और दयालु है।

[फारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, २५)

अमाँ बख्श बख़्शिन्दओ दस्तगीर
खता बख्श रोज़ीदिहो दिल पिज़ीर।

वह सबको शरण देने वाला है, दाता और सहायक है। अपराधों को क्षमा करने वाला है, जीविका देने वाला है और चित्त को प्रसन्न करने वाला है।

[फारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, २६)

१. बुद्धि। २. वस्तु। ३. दर्शनशास्त्र।

हर आँ कस बक़ौले ख़ुदा आयदश
कि यज़दाँ बरू रहनुमा आयदश।

जो ईश्वर के वाक्यों पर विश्वास करता है उसके लिए भगवान स्वयं पथ-प्रदर्शक बन कर आता है।

[फ़ारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, ६६)

अज़ हर तरफ़ जमाले मुतलक़ ताबाँ
ऐ बेख़बर अज़ हुस्ने मुक़ैयद चे कुनाँ।

उस ईश्वर का जो प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है उससे बेख़बर मनुष्य ! इस नाशवान सौन्दर्य से तू क्या करेगा ?

[फ़ारसी] —जामी

रफ़्त आँ के बक़िल्लिए बुताँ आरम
हर्फ़े ग़मे शाँ बलौहे दिल बेनिगारम।
आहंगे जमाले जावदानी दारम
हुस्ने कि न जावेदाँ, अज़ो बेज़ारम।

वह ज़माना बीत गया जब मैं नाशवान वस्तुओं के चक्कर में था। अब मैं अपने हृदय की तख्ती पर उनके शोक के चिह्न नहीं देखता हूँ। अब मैं अविनाशी सौंदर्य को देखने का संकल्प रखता हूँ और जो सौंदर्य शाश्वत नहीं है, उससे मैं ऊब गया हूँ।

[फ़ारसी] —जामी

दीद के आलम ज़े समक ता समा
नेस्त वजुज़ वाजिबो मुमकिन वमा।

पृथ्वी से लेकर आकाश तक सम्पूर्ण विस्तार में सही और संभव (ईश्वर) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

[फ़ारसी] —जामी

ज़हूरे जुम्लए अशाया बजिद्दस्त
वले हक़ रा न मानिंदो न निद्दस्त॥

सारी वस्तुओं का प्रकट होना केवल ईश्वर पर निर्भर है। सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है, परन्तु उसमें किसी का भी प्रकाश नहीं है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

हमू कर्दो हमू गुफ़्तो हमू बूद
निको कर्दो निको गुफ़्तो निको बूद।

वही करने वाला था और वही कहने वाला था और वही था। उसने जो कहा, वह अच्छा कहा, जो किया वह अच्छा किया, और वह अच्छा था।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

निगह करदम् अन्दर दिले ख़ेश्तन
दराँ जाश दीदम् दिगर जा न बूद।

अन्त में मैंने अपने हृदय के कोने में दृष्टि डाली। देखता क्या हूँ कि वह वहीं पर उपस्थित है। दूसरे स्थानों में व्यर्थ भटकता फिरा।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

हमेशा बूद पेश अज़ या हमेशा बाशद ऊ बेशक
बक़ाला रव न मीगो व मीदाँ वस्फ़े ऊ बेचूं।

वह सदा था, पहले था और निस्सन्देह आगे भी रहेगा। उसकी उपमा यदि किसी से की जाती है तो वह केवल उसी से क्योंकि यह गुण केवल उसी में है।

[फ़ारसी] —सनाई

शिव वा केशव वा जिन वा,
कमलजनाथ नामधारिन युह।
म्यँ अबलि काँसितन भव-रुज,
सु वा सु वा सु वा सुह॥

उसका जो भी कुछ नाम हो, शिव हो, केशव हो, जिन हो अथवा कमलजनाथ[1] हो—मुझ अबला को भव-रोग से मुक्त कर दे।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

निशि छुय तँय दूर मो गारुन,
शून्यस् शून्या मीलिय् गौ।

वह तेरे निकट है, दूर खोजने की आवश्यकता नहीं। वह शून्य के साथ शून्य मिल जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

दिशान त दीशन हैरान गयस
निशान स्ये औनमस शून्यालयस।

1. बुद्ध।

जीव उसे दिशा-दिशान्तरों में खोजता है परन्तु अन्त में शून्य में उसका निवास पाता है।
[कश्मीरी] —रूपभवानी (श्रीरूपभवानी रहस्योपदेश, पृ० ३३)

इलाही छुस वो वन्द छुख च मबूद
गछि सोरूप फना त छुख च मोजूद,
कदीम ओसुख त आसख चय हमेशा
कदीमस इबतिदा कँह छुख न महशूद,
न कँह अथ कुदरतस चे इन्तहा छुय
युथुय ओसक त्बुथुय आसख च मोमोजूद।

हे मेरे प्रभु! मैं तुम्हारा दास हूँ और तुम मेरे स्वामी। सारा विश्व भले ही नष्ट हो जाए किन्तु तुम्हारी सत्ता बनी रहेगी। तुम्हारी शान की कोई सीमा नहीं है—जैसे तुम पहले थे, वैसे ही आज भी हो।
[कश्मीरी] —अब्दुल वाहब परे 'वाहब'

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकालमूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि।

वह एक है और ओंकारस्वरूप है, सत्य नाम वाला है, कर्ता है, पुरुष है, निर्भय है, निर्वैर है, नित्य अविनाशी है, अयोनि है, स्वयंभू है तथा गुरु-कृपा से प्राप्य है।
[पंजाबी] —गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब, मंगलाचरण)

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

परमातमा आदि में सत्यरूप से स्थित था, युगों के आदि में भी वह सत्य रूप ही था, अब वर्तमान में भी सत्य रूप ही है और भविष्य में भी सत्य ही रहेगा।
[पंजाबी] —गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब, मंगलाचरण)

आपे नेड़ै दूर आपे ही आपे मंझि मिआनो।
आपे वेखै सुणै आपे ही कुदरति करे जहानो।
जो तिसु भावै नानका हुकमु सोई परवानो॥

हे परमात्मा! तुम स्वयं ही हमारे समीप हो, स्वयं ही हमसे दूर हो और स्वयं ही इस हम सब के बीच में हो। तुम स्वयं ही देखते हो, स्वयं ही सुनते हो, स्वयं ही माया से सृष्टि रचना करते हो। जो उस परमात्मा को अच्छी लगे, वही आज्ञा प्रामाणिक है।
[पंजाबी] —गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब)

मोहनि मोहि लीआ मनु मोरा वड़ै भाग लिव लागी।
साचु बीचारि किलविख दुख काटे मनु निरमलु अनरागी॥
[पंजाबी] —गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब)

मुल्कु मिड़िओई मन्दरु आहे
आगो सभजे अन्दरि आहे,
देहुनि मंझि दुआरा
क़ुदिरत वारा॥

यह सारा विश्व ही भगवान् का मंदिर है जिसमें प्रभु प्रत्येक के हृदय में विराजमान है। ओ स्रष्टा! प्रत्येक शरीर रूपी मन्दिर बना हुआ है।
[सिंधी] —किशिनचंद 'बेबस' (कविता 'क़ुदिरत वारा')

आके मशूहर आलिम में, जफ़ा तुँहिजी, वफ़ा मुँहिंजी,
हकीक़त में मगरि आहे, वफ़ा तुहिंजी, जफ़ा मुँहिंजी॥

सारे विश्व में तुम्हारी कठोरता और मेरी विश्वास-पात्रता प्रसिद्ध है। परन्तु वास्तव में सुशीलता तुम्हारी है और कठोरता मेरी।
[सिंधी] —किशिनचंद बेवस (कविता 'होतु')

तोमारे जानिले नाहि केह पर,
नाहि कोनो माना, नाहि कोनो डर।

तुम्हें जान लेने पर कोई पराया नहीं रहेगा। न तो कोई टोकेगा और न किसी का भय ही रहेगा।
[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, ६३)

सर्व कर्मे तव शक्ति एइ जेने सार।
करिब सकल कर्मे तोमारे प्रचार।

सम्पूर्ण कर्मों में तुम्हारी ही शक्ति है, इसी को सार समझकर, सम्पूर्ण कर्मों में मैं तुम्हारा ही प्रचार करूँगा।
[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, ४)

मइतो नेगाओं गान
कौने जानो गाय मोर
पराणर गोपन आँरत,
मइतो नेजानो निजे
कौने मोर प्राण-वीण
बाइ जाइ नजना सुरत।

मैं तो नहीं गाती। न जाने मेरे प्राण के गोपनीय अन्तराल में कौन गाता है! मैं तो स्वयं नहीं जानती कि वह कौन है जो मेरी जीवन-वीणा अनजाने स्वरों से बजाता है।
[असमिया] —नलिनी बाला देवी (कविता 'मइतो नेगाओ गान')

निश्चेना महेलमां, वसे मारो वहालमो
वसे व्रजलाडिलो, जेरे जाय ते झांखी पामे हे
भून्या भमे ते बीजा सदनमां शोधे रे
हरि नां मले एको ठामे रे।

मेरा पति दृढ़ निश्चय के महल में निवास करता है। वहीं रहता है व्रज-लाड़ला! जो वहां उसके पास जाता है उसे उसके दर्शन होते है। जो भूले हुए हैं, वे उसकी खोज में दूसरे सदनों में भटकते रहते हैं। किन्तु भगवान उन्हें एक भी जगह नही मिलता।
[गुजराती] —दयाराम (कविता 'निश्चेनो महेल')

परमेश्वरनी छे प्रजा, सघलो आ संसार।
एक कुटुम्बी आपणे एक पिता परिवार॥

यह सकल संसार परमेश्वर की प्रजा है। सभी मनुष्य कुटुम्बी हैं और इस परिवार के पिता परमेश्वर हैं।
[गुजराती] —दलपतराम

फळकट तो संसार। येथें सार भगवंत।

यह संसार निस्सार है, केवल भगवान ही सार है।
[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २७३३)

जें म्हणतां नये कांहीं। जाणों नये कैसें हि।
असत चि असे पाही। असणें जाया।

जिसका किसी भी तरह वर्णन किया जाना संभव नहीं है, जो कैसा है, यह जाना नहीं जा सकता, जिसका अस्तित्व नित्य ही रहता है, ऐसे उस परमात्मा को देखो।
[मराठी] —ज्ञानेश्वर (चांगदेव पासष्टी, ३०)

नीवु लेक ये तनुवुलु निरतमुगा नडुचुनु?
नीक लेक ये तरुवुलु निक्कमुगा मोलचुनु?
नीवु लेक ये वानलु नित्यमुगा फुरियुनु?
नीवु लेक त्यागराजु नीगुणमुलेट्लु पाडुनु?

आपके सहारे के बिना कोई शरीर कैसे चल सकता है? आपके बिना कोई भी पौधा कैसे उग सकता है? आपके बिना कहीं भी पानी कैसे पड़ सकता है? आपके बिना यह त्यागराज आपका गुणगान कैसे कर सकता है?
[तेलुगु] —त्यागराज

अनाथुडनु गानु, राम नेननाथुडनु गानु।
अनाथुडवु नीवनि नियमज्ञुलु सनातनुल माट विन्नानु

अनाथ मैं तो नहीं हूं क्योंकि आप मेरे हैं। पर वास्तव में सनातन वैदिक विद्वानों के मुंह से सुना है कि आप अनाथ है, आपका कोई नहीं है।
[तेलुगु] —त्यागराज

परमात्मुडु वेलिगे मुच्चट बाग तेलुसु कोरे
हरियट हरुडट सुरलट नरुलट
अखिलोड कोटुलट अंदरिलो
गगनानिल तेजो जल भूमयमगु
मृग खग नग तरु कोटुललो
सगुणमुललो विगुणमुललो
सततमु साधु त्यागराजार्चितु डिललो।

परख-निरख कर परमात्मा का रूप बार-बार देखो। वह 'हरि' भी कहलाता है और 'हर' भी। नर और सुर भी वह रहता है। अखिलांड भुवन में, जन-मन में, जलथल में, नभ में पवन, प्रकाश, चराचर जगत्, खग, नग, मृग, तरु, लताएं, सब में वही सगुण-निर्गुण त्यागराज का आराध्य ईश्वर व्याप्त है।
[तेलुगु] —त्यागराज

उप्पु नीरु नट्टुर्लूहिचि चूचिन
गप्पुरंबु ज्योति गलसिनट्टु
लुप्पतिल्लु मदिनि नोप्पुगा शिवुडुंडु॥

खारे पानी में जल की तरह, ज्योति में कर्पूर की तरह इस मन से एकाकार होकर अदृश्य रूप से ईश्वर रहता है।
[तेलुगु] —वेमना

टेक्केमेत्ति चेप्पुमोक्कडे देवुंडु
निक्कमुगन लोन निलंचियुंडु
जक्क जूचुननि सतोषमुनु मुंचु॥

वेमना का आदेश इस प्रकार है—झण्डा फहराकर घोषित करो कि भगवान एक हैं, वे हर प्राणी के हृदय में निवास करते है; जो साधना के मार्ग पर चलकर उनका दर्शन करता है, उसे वे आनंद के समुद्र में डुबो देते है। वे आनन्दस्वरूप हैं।

[तेलुगु] —वेमना

प्राणमगुनुमालि ब्रह्मंडिमगुमेनु
मित्र चंद्र शिखुलु नेत्रचयमु
मरियु देवुडिकनु महिमीद नेवरया॥

परमात्मा का इस विश्व से पृथक् अस्तित्व नहीं है। यह सारा ब्रह्मांड ही उनका शरीर है, वायु प्राण है, सूर्य, चन्द्र और अग्नि नेत्र समूह हैं। इस प्रकार यह विश्व उन त्र्यंबक महादेव का ही विराट् रूप है।

[तेलुगु] —वेमना

रूपू जूचि मेच्चि रूपिपनेरक
वेदशास्त्रमुलनु वेदकुटेल
दापुगाने युन्न दर्पणमट्टुल
शिवुडु भावमन्दु जेलगुवेम॥

अपने हृदय-दर्पण में प्रतिबिंबित ईश्वर को पहचानने में असमर्थ रहकर मूर्ख जन उन्हें वेदशास्त्र में ढूंढने लगते हैं। ईश्वर तो हमारी भावना में ही है किन्तु उनका स्वरूप-निर्णय कर लेने की आवश्यकता रहती है।

[तेलुगु] —वेमना

तनलो सर्वबुडग
दनलोपल वेदुकलेक धरवेदिकेडियी
तनुवुल मोसेडि येद्दुल
मनमुल देल्पंग वशमे महिलो वेमा।

अपने भीतर रहने वाले तत्त्व को बाह्य जगत् में खोजने वाले अज्ञानी तो शरीर ढोनेवाले बैल हैं। उन्हें समझाना असंभव कार्य है। परमात्मा को हृदय में देखने वाले ज्ञानियों को छोड़ अन्य साधकों को शाश्वत सुख मिलना असंभव है।

[तेलुगु] —वेमना

कसवु वसकि जेसे, गालि फणिकि जेसे
मन्नेरलकु जेसे मरवकेट्लो
कुंभिनो जनुलकु गूडट्लु चेसेरा॥

भगवन् सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की जीविका के लिए प्रबन्ध पहले ही से कर देते हैं। अतः मनुष्यों को पेट की चिंता में पड़कर जीवन का लक्ष्य भूले बैठना ठीक नहीं है। दैव ने पशुओं के लिए घास बनाई, सर्पो के लिए पवन बनाया और भूनाग के लिए मिट्टी। तुच्छ से तुच्छ प्राणी की जीविका की भी वह चिन्ता रखते हैं।

[तेलुगु] —वेमना

'कुंड' 'कुंभ' मन्न 'कोंड' 'पर्वतमन्न' नुप्पु लवण
मन्न नोकटे कादे भाष लिट्लेवेरु परतत्व मोक्कटे।

लोग 'पर-तत्त्व' को भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत करते है, किन्तु वास्तव में तत्त्व तो एक ही है। घड़े को तेलुगु में 'कुंडा' और सस्कृत में कुंभ कहते हैं और पहाड़ में भी दोनों भाषाओं में क्रमशः 'कोंडा' और 'पर्वत' नाम हैं। इन नामों की भिन्नता से वस्तु-स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। सच्चा विद्वान ही इस रहस्य को समझता है।

[तेलुगु] —वेमना

रंटु नालु दिनं कोंटोरुत्तने
तंटिलेट्टी नटत्तुन्नतुं भवान्।
माळिका मुकळेरिय मन्नंटे
तोळिल माराप्पु केट्टुन्नतुं भवान्॥

हे भगवान! दो-चार दिनों में ही किसी को पालकी पर चलाने वाले भी आप हैं और महल के ऊपर विराजमान महाराजा के कंधे पर चीथड़े डाल देने वाले भी आप ही हैं।

[मलयालम] —अज्ञात

आश्रयमिल्लात्तोवर्कु ईश्वरं आश्रयं।

निराधारों का आधार ईश्वर।

—**मलयालम लोकोक्ति**

वह परमतत्त्व ऐसा है कि यदि कहा जाये कि वह एक है, तो वह एक है। यदि कहा जाय कि वह अनेक है, तो वह अनेक है। यदि कहा जाए कि वह किसी वस्तु के जैसा नही है, तो वह वैसा नही है। यदि कहा जाये कि वह अमुक जैसा है, तो वह वैसा ही है। यदि 'नहीं हैं' कहा जाए तो नहीं है। 'है' कहा जाये, तो वह है। अहो, उस भगवान् की अवस्थिति

भी विचित्र है। हम जैसे लोगों के लिए उसे जानना और उत्तम जीवन पाना कैसे संभव हो सकता है?

—कंब (रामायण, युद्धकाण्ड)

ईश्वर का पथ संसार के पथ से ठीक विपरीत है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ० ३५२)

परमात्मा जब माया का शासक रहता है, तब उसे ईश्वर कहा जाता है, और जब वह माया के अधीन होता है, तब वह जीवात्मा कहलाता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ७, पृ० ७९)

महापुरुषों की ईश्वरविषयक धारणा साक्षात् उपलब्धि, प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित है, तर्कजन्य नहीं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ७, पृ० १८०)

ईश्वर की परिभाषा करना चर्वितचर्वण है, क्योंकि एकमात्र परम अस्तित्व, जिसे हम जानते है, वही है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १०, पृ० २१३)

हमें परमात्मा के स्वागत के लिए सदा ही तैयार रहना चाहिए, क्योंकि इस बात की अधिक सम्भावना है कि जब वह आये। तो हम तैयार न हों और जब हम तैयार हों तो वह न आए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दि गार्डनर)

आखिर ईश्वर है क्या? एक शाश्वत बालक जो शाश्वत उपवन में शाश्वत क्रीड़ा में लगा हुआ है।

—अरविन्द (विचार और झलकियाँ)

भगवान् को सर्वभावेन जानना यह जानना है कि वे ही एक भगवान् आत्मा में हैं, व्यक्त चराचर जगत् में हैं और समस्त व्यक्त के परे हैं, और यह सब एकीभाव से और एक साथ हैं।

—अरविन्द (गीता प्रबंध)

उस शिक्षा को धिक्कार है जिसमें ईश्वर का नाम नहीं और उस व्यक्ति का जन्म निरर्थक है जो प्रभु का नाम स्मरण नहीं करता।

—सुभाषचन्द्र वसु [मां को कटक से लिखा एक पत्र, (१९१२)]

जहाँ जिसकी पूज्य बुद्धि हो वही ईश्वर का स्थान है।

—गुलाबराव महाराज (साधुबोध, पृ० ५)

ईश्वर का स्वभाव है प्रेम। उनकी भाषा है मौन।

—शिवानंद सरस्वती (दिव्योपदेश, ८।२८)

यदि ईश्वर का अस्तित्व न होता तो उसका आविष्कार करना पड़ता।

—वाल्टेयर (एपित्रेस, ९६)

तुम्हारा शरीर ईश्वर का मन्दिर है और ईश्वर तुम्हारे भीतर है।

—सेंट पाल (कोरिंथियन्स, ६।१९)

बात चाहे कोई मूर्तिपूजक कहे या अन्य, उसका मूल स्रोत ईश्वरीय प्रज्ञा है और उसमें ईश्वर की ही बात कही गई होती है। ईश्वर से ही हर अच्छी चीज निकली है।

—असीसी के संत फ्रांसिस

मनुष्य ईश्वर का स्वरूप है तो फिर उसे ईश्वर की तरह आचरण भी करना चाहिए। परन्तु हम लोग ईश्वर की तरह तो नहीं लगते, जानवर बन गए हैं। गिरजों में भी हम लोगों को डराने के लिए ही स्वाँग रचा जाता है। शायद हम लोगों को अपना ईश्वर भी बदलना पड़ेगा, या हमको अपना ईश्वर भी स्वच्छ करना पड़ेगा। उन्होंने ईश्वर को असत्य, पाखण्ड और कलंक के आवरण में छिपा रखा है। उन्होंने हमारी आत्माएँ नष्ट करने के लिए ईश्वर के मुँह पर भी कालिख पोत दी है।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

प्रेम और जो कुछ उससे उत्पन्न होता है, क्रांति और जो कुछ वह रचती है और स्वतंत्रता और जो कुछ उससे पैदा होता है, ये परमात्मा के तीन रूप है और परमात्मा सीमित और चेतन संसार का अनंत मन है।

—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ४९)

हमारे हृदय में 'आत्मा' के रूप में ईश्वर निवास करता है। कोई भी शुभ कार्य करते हुए तुम्हें यह सोचकर प्रसन्न होना चाहिए कि ईश्वर का आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। प्रेमपूर्ण हृदय ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

— मीनेंडर

हृदय से भगवान् का अनुभव होता है, बुद्धि से नहीं।

—पैस्कल (पेन्‌शीज़)

ईश्वर मनुष्य की तरह नही देखता है क्योंकि मनुष्य तो बाह्य दिखावे को देखता है परन्तु ईश्वर हृदय को।

—पूर्वविधान (सैमुअल, १६।७)

मनुष्य की अपेक्षा ईश्वर की आज्ञा पालन करना चाहिए।

—नवविधान (प्रेरितों के काम, ५।२६)

ईश्वर का राज्य तुम्हारे अन्दर है।

—नवविधान (लूका, १७।२१)

उसके सिवा कोई पूज्य नही।

—क़ुरान (६।१२६)

वह परोक्ष का भी ज्ञाता है और प्रत्यक्ष का भी। वह महान् और उच्च है।

—क़ुरान (१३।६)

वास्तविकता यह है कि ईश्वर किसी समाज की स्थिति नहीं वदलता, जव तक कि उस समाज के लोग, जो उनके मन में है, उसे नहीं वदलते। ईश्वर जव किसी समाज पर आपत्ति डालना चाहता है, तो वह टलती नहीं और ईश्वर के अतिरिक्त उनका कोई सहायक नहीं।

—क़ुरान (१३।११)

ईश्वर पापों को क्षमा करने वाला, 'तोवा' स्वीकार करने वाला, कठोर दंड देनेवाला तथा सामर्थ्यवान है। उसके अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं है।

—क़ुरान (४०।३)

इस समस्त विश्व के रचयिता और पिता को प्राप्त करना वहुत कठिन है तथा उसे पाकर सवको वताना असम्भव ही है।

—प्लेटो (टिमियस, २६)

Many are God's forms by which He grows in man.

ईश्वर के अनेक रूप हैं जिससे वह मानव में विकसित होता है।

—अरविन्द (सावित्री, ७।६)

God's great power is in the gentle breeze, not in the storm.

ईश्वर की महाशक्ति मंद झोंके में है, तूफ़ान में नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्‌स, १५१)

Your speech is simple, my Master, but not theirs who talk of You.

हे प्रभु! तुम्हारी वाणी सरल है परन्तु उनकी नही जो तुम्हारे विपय में वताते है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (फ़्रूट गेदरिंग, १५)

Man cannot dispense mith God any more than he can do away with food and drink or fresh air.

मनुष्य भोजन, जल और शुद्ध हवा से जितना छुटकारा पा सकता है, उससे अधिक छुटकारा ईश्वर से नहीं पा सकता।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
(स्वराज्य, २१ दिसम्बर, १६५७)

He who preaches God out of men's minds in India preaches social disintegration.

भारत में जो ईश्वर को मानव-मन से निकालने का उपदेश देता है, वह सामाजिक विघटन का उपदेश देता है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
(स्वराज्य, २१ दिसम्बर,१६५७)

God above is God in man and nature and spirituality and service are the two aspects of the same religious experience.

जो ईश्वर ऊपर है वही मनुष्य और प्रकृति में है। तथा आध्यात्मिकता व सेवा उसी धार्मिक अनुभूति के दो पक्ष है।

—पी० एन० श्रीनिवासन (दि एथिकल फ़िलासफ़ी आफ़ गीता, पृ० १४८)

Heaven is above all yet, there sits a judge,
That no King can corrupt.

अभी भी स्वर्ग सर्वोपरि है, वहां एक न्यायाधीश विराजमान है जिसे कोई भी राजा भ्रष्ट नहीं कर सकता।

—शेक्सपियर
(किंग हेनरी एर्थ, ३।१)

There's a divinity that shapes our ends.

एक दैवी शक्ति है जो हमारे अन्तों को रूपायित करती है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, ५।२)

God is the perfect poet who in His person acts His own creations.

ईश्वर पूर्ण कवि है जो स्वयं अपनी रचनाओं का अभिनय करता है।

—राबर्ट ब्राउनिंग (पैरासेल्सस, २)

Closer is He than breathing, and nearer than hands and feet.

ईश्वर साँस लेने से भी अधिक घनिष्ट है तथा हाथों व पैरों से भी समीपतर है।

—टेनिसन (दि हायर पैनथीज्म, ६)

That God which ever lives and loves
One God, one law, one element
And one far off divine event,
To which the whole creation moves.

वह ईश्वर जो अमर है एवं सदैव प्रेम से पूर्ण है—वह एक ईश्वर, एक नियम, एक शक्ति एवं सुदूर स्थित दैवीय क्रम है जिस पर कि यह समस्त सृष्टि घूम रही है।

—टेनिसन ('इन मेमोरियम')

Our little systems have their day
They have their day and cease to be;
They are but broken lights of thee.
And thou O Lord, art more than they.

हमारी छोटी-छोटी व्यवस्थाओं का अपना समय होता है और तदुपरान्त वे समाप्त हो जाती हैं। वे तो तुम्हारा ही खंडित प्रकाश हैं और हे प्रभु ! तुम उन सबसे अधिक महान् हो।

—टेनिसन ('इन मेमोरियम')

All things bright and beautiful,
All creatures great and small,
All things wise and wonderful,
The Lord God made them all.

सभी चमकदार व सुन्दर वस्तुओं को, सभी छोटे-बड़े प्राणियों को, सभी बुद्धिमत्तापूर्ण और आश्चर्यजनक वस्तुओं को, उन सभी को हमारे प्रभु भगवान् ने ही बनाया है।

—सेसिल फ्रांसेस अलेक्जेंडर
('आल थिंग्स ब्राइट एंड ब्यूटीफ़ुल')

Theist and Atheist : The fight between them is as to whether God shall be called God or shall have some other name.

आस्तिक और नास्तिक : उनमें इसी बात पर लड़ाई है कि ईश्वर को ईश्वर कहा जाए या कोई दूसरा नाम दिया जाए।

—सैमुअल बटलर (नोटबुक्स, रेबेलियसनेस)

ईश्वर और मनुष्य

मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है।

—सरदार पूर्णसिंह ('मजदूरी और प्रेम' निबंध)

इंसान घमण्डी बनकर ईश्वर की सहायता नहीं माँग सकता, अपनी दीनता स्वीकार करके ही माँग सकता है।

—महात्मा गांधी (पत्र हरिलाल गांधी को, २६-११-१९१९)

सजावारे ख़ुदाई लुत्फ़ो क़हरस्त
व लेकिन बन्दगी दर शुक्रो सब्रस्त।

दया अथवा क्रोध परमात्मा को ही शोभा देता है। मनुष्य की भलाई केवल धैर्य धारण करने और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने में ही है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

ईश्वर मनुष्य बना, मनुष्य भी फिर से ईश्वर बनेगा।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

नीवु पलुकुचुन्न नित्यपूजितुडौनु
नीवु पलुककुन्न निदुर पोवु
नीवु पलुकु बलुक निर्मलुंडगुनया॥

हे ईश्वर ! जीव के रूप में तुम मानव-शरीर का आश्रय लेकर जब तक बोलते रहते हो तभी तक मनुष्य की नित्य पूजा होती है। तुम्हारा मौन ही प्राणियों के लिए निद्रा (मरण) है। तुम्हारी वाणी के संसर्ग से ही मनुष्य निर्मल मन वाला बनता है।

[तेलुगु] —वेमना

ईश्वर की सर्वव्यापकता

अस्त्यव वस्तुजाते नास्त्यस्मिन् संशयोऽणुमात्रोऽपि।
यो यत्र स्मरति हरिं स तत्र पश्यत्यवश्यममुम्॥

मेरा वह प्रभु सब वस्तुओं में है ही, इसमें अणु-मात्र भी संशय नहीं है। जो जहाँ भी उसका स्मरण करता है, वह वहीं उसका दर्शन कर लेता है।

—दैवज्ञ पंडित सूर्य (नृसिंह चम्पू, २।१६)

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोइ,
वा घटकी बलिहारियाँ, जा घट परगट होइ।

—कबीर

घट-घट गोपी, घट-घट कान्ह,
घट-घट राम, अमर अस्थान।

—दादूदयाल

सब घट माहीं रमि रह्या, बिरला बूझै कोई,
सोई बूझै राम को, जो रामसनेही होई।

—दादूदयाल

'दादू' देखौ दयाल को बाहरि भीतरि सोइ,
सब दिसि देखौं पीव को, दूसर नाहीं कोइ।

—दादूदयाल

सात सरग असमान पर, भटकत है मन मूढ़,
खालिक तो खोया नहीं, इसी महल में ढूंढ़।

—गरीबदास

सब घट व्यापक राम है, देही नाना भेप,
राव-रंक चंडाल घर 'सहजो' दीपक एक।

—सहजोबाई

ईश्वर न काबा मे है, न काशी में। वह तो घर-घर में व्याप्त है—हर दिल में मौजूद है।

—महात्मा गान्धी (हिन्दी नवजीवन, १-१-१९२५)

ईश्वर-कृपा

जाति भी ओछी, करम भी ओछा
ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊँच कियो है
कह रैदास चमारा॥

—रैदास (रैदास जी की बानी, पृ० ४८)

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए सबके दाता राम॥

—मलूकदास

जा पर कृपा करे करुनामय, ता दिसि कौन निहारे ?
जो जो जन निस्चै करि सेवैं, हरि निज विरद सँवारे।
सूरदास प्रभु अपने जन कौं, उर तैं नैकु न टारे॥

—सूरदास (सूरसागर, २५७)

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।
गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेर रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।५।१-२)

ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहिं जारि सकइ खलु तूल॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३३)

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु॥

—तुलसीदास (दोहावली, १३३)

हरि ! तुम सौं पहिचानि को मोहिं लगाय न लेस।
इहिं उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस॥

—घनानंद

बलु छुटिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ-होहु सहाइ॥

— गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रंथ साहब)

जिस नो साजन राखसी दुसमन कवन विचार।
छ्वै न सकै तिह छाँहि कौ निहफल जाइ गँवार॥

जिसे भगवान् बचाता है, उसका शत्रु क्या कर सकता है ? उसकी तो छाया को भी शत्रु नही छू सकता। उसके प्रति असमर्थ शत्रु के प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं।

—गुरु गोविन्दसिंह (विचित्र नाटक, १३।२४)

ईश्वरीय कृपा किसी एक ही राष्ट्र या जाति की संपत्ति नहीं है।

—महात्मा गांधी (गांधी वाणी, ६४)

ईश्वर की तो हमेशा कृपा ही होती है। हम उस कृपा को न पहचान सकें, यह हमारी मूर्खता है।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र जमनालाल बजाज परिवार के नाम, २०५)

हरॉ कस रा कि ऐज़द राह न नमूद
जे इस्तेमाले मंतिक़ हेच न कुशूद।

जिस मनुष्य को परमात्मा ने ही मार्ग नहीं दिखलाया, बुद्धि (तर्क-वितर्क) के प्रयोग मात्र से उस पर कोई रहस्य नहीं खुलेगा।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

दयादक्ष तो साक्षिने पक्ष घेतो।

ईश्वर दयादक्ष है और साक्षी (तटस्थ) रहकर पक्ष लेता है।

[मराठी] —समर्थ रामदास

माँगोगे तो तुम्हे दिया जाएगा। ढूंढ़ोगे तो तुम पाओगे। खटखटाओगे तो तुम्हारे लिए द्वार खोला जाएगा।

—नवविधान (मत्ती, ७।७)

ईश्वर को उपालंभ

भगत हेत का का नहि कीन्हा।
हमरी बेर भये बलहीना॥

—रैदास (रैदासजी की बानी, पृ० २२)

दीन दयाल सुनी जब तें,
तब तें हियाँ में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहायके जाऊँ कहाँ मैं,
तेरे हित की पट खैंच कसी है।
तेरो ई एक भरोस मलूक को,
तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं,
अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥

—मलूकदास (मलूकदासजी की बानी, पृ० २६)

दीनदयाल कहाइकै धाइकै,
दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो।
त्यों 'हरिचंद' जू बेदन में,
करुनानिध नाम कहो क्यों गनायो॥
एती रुखाई न चाहिए तापै,
कृपा करि के जेहि को अपनायो।
ऐसे ही जो पै सुभाव रह्यो,
तो गरीबनेवाज क्यों नाम धरायो॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (प्रेम माधुरी, पृ० ३६)

मन बन्दए आसीअम रजाए तू कुजा अस्त
तारीक दिलम् नूरे सफ़ाए तू कुजा अस्त।
मारा तू बहिश्त अगर बताअत बख्शी
ईं मुज़्द बुवद लुत्फ़ो अताए तू कुजा अस्त।

मैं पापी हूँ। तेरी वह पापियों को क्षमा करने वाली दया कहाँ है जिससे मुझे भी क्षमा मिले? मेरे हृदय में अंधकार हो रहा है, तेरा प्रकाश कहाँ है जो उसे प्रकाशित कर दे! यदि तू मेरी उपासना के बदले में स्वर्ग देता है, तब तो यह बदला हुआ, तेरी कृपा कहाँ गयी?

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रूबाइयात, २१७)

ईश्वर-नाम

अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज।
हरिनाम्निस्थिते लोकः संसारे परिवर्तते॥

यह बड़े आश्चर्य की बात है, बड़ी अद्भुत बात है, बड़ी विचित्र बात है कि संसार में हरि का नाम रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्यु रूप संसार में चक्कर काटते हैं।

—नारद पुराण, (पूर्व भाग, प्रथम पाद)

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति।

हे प्रभु! कब ऐसा होगा कि आपका नाम लेने में मेरे मुख पर अश्रुधारा बहने लगे, वाणी गद्गद होकर रुँध जाए और सारा शरीर पुलकित होकर रोमांचित हो जाए?

—चैतन्य महाप्रभु (शिक्षाष्टक, ६)

श्री रामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणे-
त्यानन्देति दयाधरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च।
श्री मन्नाममहामृताब्धिलहरीकल्लोलमग्नं मुहु-
र्मुह्यन्तं गलदश्रुधारमवशं मां नाथ नित्यं कुरु॥

हे नाथ ! आप मुझे सदा के लिए ऐसी स्थिति में पहुँचा दें कि मैं श्रीमान के श्रीराम ! जनार्दन ! जगन्नाथ ! नारायण ! आनन्दमय ! दयाधर ! कमलकांत ! कृष्ण आदि नाम रूपी अमृत महासागर की लहरों की हिलोरों में डूबकर आँसू बहाता हुआ अवश और बेसुध हो जाऊँ।

—लक्ष्मीधर

जिन दुनिया में रची मसीद,
झूठे रोजा, झूठी ईद,
साँच एक अल्ला का नाम,
तिसको नय-नय[1] करो सलाम।

—कबीर

कृष्ण करीम, रहीम राम हरि,
जब लगि एक न पेखा,
बेद कतेब कुरान पुराननि,
तब लगि भ्रम ही देखा।

—रैदास

नाम मूल है ग्यान को, नाम मुक्ति कौ द्वार।

—रैदास

भाय कुभाय अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८।१)

कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१०२ ख)

घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ६६)

राम नाम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु॥

—तुलसीदास (दोहावली, ११)

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।

—तुलसीदास (दोहावली, १६)

१. झुक-झुककर।

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सत गुरु किरपा कर अपनायो॥

—मीरा (पदावली)

राम कहो, रहमान कहो,
कान्ह कहो, महादेव रे!
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव रे!

—संत आनंदघन

इत की आशा छोड़िये, भज लीजे निजु नाम।
उबरे कोई संत जन, जिन्ह सुमिर्‌यो है नाम॥

—बुल्ला साहब (बुल्ला साहब का शब्दसार, पृ० ३०)

कै घर में कै बाहरे, जो चित आवै नाम।
दोनों होय बराबरी, का जंगल का ग्राम॥

—चरणदास (चरनदासजी की बानी, भाग २, पृ० ६९)

नाम रतन की गाँठरी, गाहक बिन मत खोल॥

—दरिया साहब

पान फूल रस भोग अन्त सब रोग है।
प्रीतम प्रभु के नाम बिना सब सोग है॥

—वाजिन्द

इसका[1] फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता है और अपना चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

—दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास)

'व्यास' स्वपच बहु तरि गए एक नाम लवलीन।
चढ़े नाव अभिमान की, बूड़े कोटि कुलीन॥

—व्यास (व्यास वाणी, पृ० १५७)

१. ईश्वर के नामों के स्मरण का।

मन नहीं लगता, कोई बात नहीं। बिना मन के नाम रटो, रटते जाओ। अभ्यास से तीक्ष्ण मिर्च भी प्रिय लगने लगती है। भगवन्नाम तो बहुत मधुर है।

—पवहारी बाबा

पहले अनिच्छा से नाम लिया जाता है, लेते-लेते उसमें रुचि होती है, फिर आसक्ति, तब श्रद्धा, तदनन्तर तन्मयता।

—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

आपुन नामक बहुतर करि निज सर्व शक्ति दिया
कालर नियम निबिहिला स्मरणत।
एतादृशी तव कृपा हरि मोहोर दुर्दैव देखा किनो
अनुराग प्रभु नभैल तजु दामत।

हे हरि! आपने अपने नाम को स्वयं से भी बढ़ा दिया, अपनी सब शक्ति उसमे भर दी। उसके स्मरण के लिए काल के नियम भी नही बनाए। ऐसी तुम्हारी कृपा हुई परन्तु मेरा दुर्भाग्य तो देखो कि तुम्हारे नाम के प्रति मुझमें अनुराग ही नहीं उत्पन्न हुआ।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, ६।३३।१०२)

सोही वाण सुवाण भजे हरिनाम निरंतर॥

[राजस्थानी] —अल्लूजी

नाम साराचें ही सार।

नाम स्मरण ही सारभूत है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ५६७)

जो नाम है, वही ईश्वर है। नाम, नामी को अभिन्न जानकर निरन्तर अनुराग के साथ नाम लेना चाहिए।

—रामकृष्ण परमहंस (श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग में पृ० १६४ पर उद्धृत)

इस जीवन में हरि का नाम-स्मरण करना ही जीवन की सार्थकता है।

—सुभाषचन्द्र वसु (एक पत्र)

वही ईश्वर है कर्ता, भर्ता, स्वरूपदाता सारे सुन्दर नाम उसी के लिए हैं। आकाशों में और भूमि में जो हैं, वे उसका जप करते हैं, जयजयकार करते है और वही सर्वजित् सर्वविद् है।

—क़ुरान (५९।२४)

ईश्वर-प्राप्ति

सर्वज्ञं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षते भास्वन्तं भानुमन्धवत्॥

सर्वज्ञ सच्चिदानन्द को ज्ञान चक्षु से देखा जाता है। जिसे ज्ञान चक्षु नहीं वह परब्रह्म को उसी प्रकार नही देख सकता जैसे अन्धा व्यक्ति प्रकाशवान सूर्य को।

—महोपनिषद् (४।८०)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

परमात्मा में मन लगा, परमात्मा का भक्त बन, परमात्मा के लिए यजन कर, परमात्मा को नमस्कार कर। इस तरह परमात्मा में परायण होकर परमात्मा के साथ आत्मा का योग करने से तू परमात्मा को प्राप्त कर लेगा।

—वेदव्यास, (महाभारत, भीष्मपर्व, ३३।३४, अथवा गीता, ९।३४)

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूं॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ५)

[किंचित् अन्तर से यह दोहा निम्नलिखित रूप में भी मिलता है—

तूं तूं करता तूं हुआ मुझ मैं रही न हूँ।
जब आपा पर का मिटि गया जित देखौं तित तूं॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २५५)]

पंच सँगी पिव-पिव करै, छठा जु सुमिरे मंन।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५)

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहुमार।
कहौ संतो क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि दीदार॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७)

यहु तन जालौ मसि करूँ, धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८)

सुरति समाणी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तव खूले स्यंभ दुवार ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १४)

आया था संसार में, देखन कौं वहु रूप।
कहै कवीरा सन्त हो पड़ि गया नजरि अनूप।
— कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १४)

जव मैं था तव हरि नहीं, अव हरि हैं मैं नाँहि।
सव अँधियारा मिट गया, दीपक देख्या माँहि ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १५)

कवीर कँवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अँधियारी मिटि गयी, वागे अनहद नूर ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १६)

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कवीर हिराइ।
वूंद समानी समद मैं, सो कत हेरी जाइ ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १७)

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै माइ ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ६८)

कवीर हरि सवकूं भजै, हरि कूं भजै न कोइ।
जव लग आस सरीर की, तव लग दास न होइ ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ७१)

कहै कवीर विचारि करि, जिनि को खोजैं दूरि।
ध्यान धरौ मन सुध करि, राम रह्या भरपूरि ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० २४४)

कवीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।
पाछै लागो हरि फिरहि कहत कवीर कवीर ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० २५७)

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गई लाल ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली)

पावक रूपी साइयाँ, सव घट रह्या समाइ।
चित-चकमक लागै नहीं, ताते वुझ-वुझ जाइ ।।
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली)

प्रीतम को पतिया लिखूं, जो कहुँ होय विदेस,
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा सँदेश ?
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली)

घूंघट के पट खोल रे,
तोको पीव मिलेंगे !
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली)

जिह नित देपन चाहि हौं, तें नैनन ते दूरि।
रविदास कहि अनभावते, रहहिं निकट भर पूरि ।।
—रैदास

ऐसो कछु अनुभौ कहत न आवै।
साहिव मिलै तो को विलगावै ।।
सव में हरि है, हरि में सव है, हरि अपनो निज जाना।
साखी नहीं और कोइ दूसर, जानन हार सयाना ।।
—रैदास

सव कौ सुखिया देखिये, दुखिया नाँही कोइ।
दुखिया दादू दास है, ऐंन[1] परस नहिं होइ ।।
—दादूदयाल (श्री दादूदयालजी की वाणी, पृ० ५६)

दूजा कुछ माँगै नहीं, हम कौं वे दीदार।
तूं है तव लग एक टग, दादू के दिलदार ।।
—दादूदयाल (श्री दादूदयालजी की वाणी, पृ० ६१)

राति दिवस का रोवणाँ, पहर पलक का नाँहि।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिव माँहि ।।
—दादूदयाल (श्री दादूदयालजी की वाणी, पृ० ७८)

तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत।
तेजपुंज की सेज पर, 'दादू' वन्या वसंत ।।
—दादूदयाल

जोगी पावै जोग सूं, ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्ति स्यूं, जोग-प्रेम आधार ।।
—सहजोवाई

---
१. प्रत्यक्ष।

सुमिरत सुमिरत ह्वै गयो, वह वाही के रूप।

—बनादास

दिल के अंदर देहरा, जा देवल में देव।
हरदम साखीभूत है, करो तासु की सेव।।

—गरीबदास

साहिब तेरी साहिबी, कहा कहूँ करतार।
पलक-पलक की दीठि में, पूरन ब्रह्म हमार।।

—गरीबदास

परधन परदारा[1] परिहरी[2]
ताके निकट बसै नरहरी[3]।

—नामदेव

आठ पहर निरखत रहो, सनमुख सदा हजूर।
कह यारी घरही मिलै, काहे जाते दूर।।

—यारी साहब

दया करै धरम मन राखै, घर में रहे उदासी।
अपना-सा दुःख सबका जानै, ताहि मिले अविनासी।।

—मलूकदास

रघुपति-भगति-वारि छालित चित,
बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास,
जग बूझत बूझत बूझै।।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १२४)

खुसरू रैन सोहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए एक रंग।।

—अमीर खुसरो

मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही में।

—हरिऔध (प्रियप्रवास, १६।१०४)

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में।।

—रामनरेश त्रिपाठी (मानसी, पृ० १)

जीवन की खिड़की में से ही परमात्मा की झाँकी मिलनी सम्भव है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (कचनार)

१. परस्त्री। २. त्यागी। ३. भगवान।

ज्ञान, उपासना और कर्म—ईश्वर प्राप्ति के तीन अलग मार्ग नहीं हैं, बल्कि ये तीनों मिलकर एक मार्ग हैं। उसके तीन भाग सुविधा के लिए कर दिये गए है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, पृ० ३३४, खंड ४६)

गिरो तो उठो, फिर बढ़ो। कैसे भी रोते-गाते, गिरते-उठते, प्रभु की प्राप्ति के मार्ग में बढ़ते चलो।

—अखंडानंद सरस्वती (विभूतियोग, पृ० ६०)

जित देखौं तित तोय।
काँकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोय।

—अज्ञात

जित देखो तित स्याममयी है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा
स्याम गगन घन घटा छयी है।
सब रंगन में स्याम भरो है,
लोग कहत यह बात नयी है।।
हौं बौरी कै लोगन ही की
स्याम पुतरिया बदल गयी है।
श्रुति को अच्छर स्याम देखियत
अलख ब्रह्म छवि स्याममयी है।।

—अज्ञात

तन को कर ले तुनतुनी[1] और मन को कर ले तार।
फिर जस गा करतार के तुरत मिले करतार[2]।।

—अज्ञात

देखा है जिन्होंने जो 'दिखाई नहीं देता'
फिर जाहिरी दुनिया को वो देखा नहीं करते।

—अर्जुनदास केडिया

'ज़फ़र' क्या पूछता है राह उससे मिलने की
इरादा हो अगर तेरा तो हर जानिब[3] से रस्ता है।

—बहादुरशाह 'ज़फ़र'

फ़लसफ़ी के बहस के अन्दर ख़ुदा मिलता नहीं।
डोर को सुलझा रहे हैं और सिरा मिलता नहीं।

—अकबर इलाहाबादी

१. इकतारा। २. सृष्टिकर्ता भगवान। ३. दिशा।

छोड़ा नहीं ख़ुदी को दौड़े ख़ुदा के पीछे
आसाँ को छोड़ बन्दे मुश्किल को ढूंढ़ते हैं।

—नाशाद

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है
कि हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।

—अज्ञात

अपनी ख़ुदी ही पर्दा है दीदार के लिए
वरना कोई नक़ाब नही यार के लिए।

—अज्ञात

मियाने आशिक़ो माशूक़ हेच हायल नेस्त।
तु ख़ुद हिजाबे ख़ुदी 'हाफ़िज़' अज़ म्याँ बर खेज़॥

भगवान् और भक्त के बीच में कोई बाधक नहीं है। बस, है 'हाफ़िज़' तू स्वयं ही पर्दा है, अपनी ख़ुदी के पर्दे को हटा दे।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

ऐ ख़्वाजा तो रा दर दिल रैबहमो सफ़ाए
बर हस्तिए ऊ चूंकि हमीनेस्त चे जाए।
गर बतानित अज़ नूरे यक़ीनस्त मुनव्वर
बर जाहिरे तो चूं के हमीं नेस्त सफ़ाए।

हे ख़्वाजा! यदि तेरे हृदय में विश्वास के साथ ही सन्देह भी है तो ईश्वर से मिलना असम्भव है। परन्तु यदि तेरे हृदय में विश्वास का उजाला है तो बाह्य संदेह की कोई चिन्ता नहीं है।

[फ़ारसी] —सनाई

ख़िरद रा नेस्त ताबे नूरे आँ रूए
बरौ अज़ बह्‌रे ऊ चश्मे दिगर जूए।

बुद्धि उस मुख के प्रकाश को देखने की शक्ति नहीं रखती, इस कारण उस प्रकाश को देखने के लिए एक दूसरी ही आँख की खोज कर।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

चो तू बेरूँ शुदी ऊ अन्दर आयद
बतो बेतो जमाले ख़ुद नुमायद।

जब तेरे हृदय से अहंकार निकल गया, उस समय वह अंदर आ जाएगा। तुझ पर उसका प्रकाश स्वयं प्रकट हो जाएगा।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

दिले कज़ मारफ़त नेरे सफ़ा दीद
जे हर चीज़े कि दीद अव्वल ख़ुदा दीद।

जिस साधु पुरुष ने परमेश्वर से साक्षात् कर उसकी आभा को देखा है, उसे प्रत्येक वस्तु में उसी का दर्शन होता है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

तू जुज़ व हक़ कुलस्त गर रोज़े चन्द
अन्देशए कुल पेश कुनी कुल बाशी।

तू अंश है और ईश्वर पूर्ण है। यदि कुछ दिनों तू पूर्ण की धुन में लगा रहा तो फिर तू पूर्ण हो जाएगा।

[फ़ारसी] —जामी

ए क़ौम ब हज़ रफ़्ता कुजा एद् कुजा एद्
माशूक़ हमी जास्त बिआयेद्, बिआयेद्।

अरे जो तुम हज को चले हो, तो कहाँ जा रहे हो? कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा प्रिय तो यहीं है। लौट आओ, लौट आओ!

[फ़ारसी] —शम्स तबरेज़

जबे ईश्वरक पाइबा यत्नकरि
बुद्धिक सत्त्वस्थ करा।

यदि तुम ईश्वर को पाना चाहते हो तो बुद्धि को सात्त्विक करो।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, १५।८६।२५४)

सर्वस्वा मुकावें तेणें हरि जिकावें।

सर्वस्व न्यौछावर करने पर ही प्रभु प्राप्ति हो सकती है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकारास अभंग गाथा, २७७०)

सुतर आवे तेम तुं रहे,
जेम तेम करीने लहे।

सुगम पड़े उस ढंग से रहो। जैसे-तैसे प्रभु को प्राप्त करो।

[गुजराती] —अखा भगत

वेदुक वेदुक दोरकु वेदांतवेद्युंडु
वेदकुवानि दानु वेदकु चुंडु
वेदकर्नेचिनट्टि वेरवर्लुकलरोको॥

लगातार खोजते रहने पर वेदांत-वेद्य (परमात्मा) मिल जाते हैं। वे भी अपने खोजने वालों की खोज में लगे रहते हैं।

किन्तु ऐसे दयामय को खोजने में समर्थ महात्मा विरले ही देखने में आते है।

[तेलुगु] —वेमना

कृष्णेर मूर्ति करे सर्वत्र झलमल,
सेइ देखे जाँर आँखि हय निर्मल।

प्रकृति के कण-कण में श्रीकृष्ण की ही मूर्ति तो झलमला रही है। पर उसका दर्शन केवल उसी को होता है, जिसकी दृष्टि निर्मल होती है।

[बंगला] —अज्ञात

ईश्वर-प्रेम

जाके हृदय भगति जस प्रीती।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१८५।२)

उमा जोग जप दान तप नाना मख व्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥

—तुलसीदस (रामचरितमानस, ६।११७ ख)

मै क़ुव्वते जिस्मो क़ुव्वते जानस्त मरा,
मैं काशिफ़े असरारे निहाँनस्त मरा।
दीगर तलवे दुनिया व उक़्वा न कुनम,
यक जुरआ पुर अज़ हरदो जहाँनस्त मरा।

ईश्वर प्रेम की मदिरा से मेरे शरीर तथा प्राणों को शक्ति प्राप्त होती है। उसके पीने से मेरे छिपे हुए रहस्य प्रकट हो जाते है। उनके पी लेने पर मुझे न इस लोक की आवश्यकता रहती है, न पर लोक की। इस मदिरा का एक प्याला दोनों लोकों के लिए पर्याप्त है।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, १०)

आशिक़ हमा रोज़ा मस्त व शैदा बादा,
दीवाना व शोरीदा व रुसवा बादा।
दर हुशयारी गुस्सए हर चीज़ ख़ुरेम
चूँ मस्त शुदेम हर चे बादा बादा।

ईश्वर-प्रेमी सदैव ईश्वर की धुन में मस्त व पागल रहता है। दीवाना व पागल सदैव निश्चिंत रहता है। होश में रहने पर हर वस्तु का खेद उसे होगा और जब ईश्वर-प्रेम में मस्त हो गया तो जो हो गया वह हो गया, उसे क्या चिन्ता?

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, १९)

साक़ी मै मारफ़त मरा मक्रमत अस्त
दर मशरबे बेमारफ़ताँ मासियत अस्त।
बेमारफ़त आदमी चे कार आयद हेच
मक़सूद ज़े आदमी हमीं मारफ़त अस्त।

हे साक़ी! ईश्वर-प्रेम की मदिरा मुझको पुरस्कार में प्राप्त हुई है। बिना ईश्वर-प्रेम की मदिरा पीने वाला पापी है। ईश्वर-प्रेम से रहित मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य ईश्वर-प्रेम को प्राप्त करना है।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, ११७)

हर दिल कि दरू मेहर व मोहब्बत बसरिश्त
गर साकिने मस्जिद अस्त व गर ज़े अहले कनिश्त।
दर दफ़्तरे इश्क़ नाम हर कस के नविश्त
आज़ाद ज़े दोज़खस्त व फ़ारिग़ ज़े बहिश्त।

जिस हृदय के अंदर ईश्वर के प्रेम की लगन लग गयी, वह चाहे मस्जिद में रहने वाला हो और चाहे मूर्ति-उपासना-गृह का, जिसका नाम ईश्वर के प्रेमियों में लिख गया, वह नरक से भी मुक्त हो गया और स्वर्ग से भी निश्चिंत हो गया।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, २१९)

ईश्वर-भक्ति

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिसकी परमेश्वर में परम भक्ति है तथा जैसी परमेश्वर में है, वैसी ही भक्ति गुरु में भी है, उस महात्मा पुरुष के हृदय में ही ये बताए हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (३३)

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से परमात्मा का भक्त हुआ, तो वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि अब वह निश्चय वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वत शांति को प्राप्त करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३३।३०-३१ अथवा गीता ९।३०-३१)

मुक्तिश्चसेवारहिता भक्ति सेवाविवर्धिनी।

मुक्ति सेवारहित होती है और भक्ति सेवाभाव का उत्कर्ष करने वाली होती है।

—देवीभागवतपुराण (६।३८।७४)

हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनुसमा स्मृता।
तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो॥

भगवान् की परम भक्ति मनुष्यों के लिए कामधेनु के समान मानी गई है, उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विष का पान करते हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है!

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथमपाद, ४।१२)

दुर्लभाः पुरुषा लोके भगवद्भक्तिमानसाः।
तेषां संगो भवेद्यस्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती॥

संसार में भगद्भक्ति से युक्त मन वाले लोग दुर्लभ हैं। उनका संग जिसे प्राप्त होता है, उसे शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ४।३८)

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
भुक्त्यश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः॥

मुक्ति आदि सारी सिद्धियाँ और विविध प्रकार की अद्भुत सांसारिक मुक्तियाँ उस भगवद् भक्ति रूप महारानी के पीछे-पीछे चलती हैं।

—नारदपंचरात्र

स किं गुरुः स किं तातः किं पुत्रः स किं सखा।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम्॥

वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा पुत्र, कैसा मित्र, कैसा राजा और कैसा बन्धु है, जो श्री भगवान् में मन नहीं लगाता!

—गर्ग संहिता (६८।११)

स्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।

अपने स्वरूप के अनुसन्धान को ही 'भक्ति' कहते हैं।

—शंकराचार्य

भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि।

देवता भक्ति से संतुष्ट होते हैं।

—भास (चारुदत्त, १।२१ के पश्चात्)

यथाल्पमप्यौषधमुन्मर्द गदं
यथामृतं स्तोकमपि क्षयाद्भयम्।
ध्रुवं तथैवाणुरपि स्तवः प्रभोः
क्षणादघं दीर्घमपि व्यपोहति॥

जैसे रत्ती भर भी महौषध भयंकर रोगों को शान्त कर देती है और जैसे थोड़ा-सा भी अमृत मरण के भय को दूर कर देता है, वैसे ही थोड़ा-सा भी किया गया ईश्वर-स्तवन क्षण भर में दीर्घ पाप को नष्ट कर देता है।

—जगद्धर भट्ट (स्तुति कुसुमांजलि, ७।१०)

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽथवा वैष्णवो।
ज्ञानं वा शुभकर्म वा कियदहो सज्जातिरप्यस्ति वा॥
हीनार्थाधिकसाधिके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती।
हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हा मदाशयः माम्॥

मुझमें न भगवान् का प्रेम है, न श्रवणादि भक्ति है, न वैष्णवों का योग है, न ज्ञान है, न शुभ कर्म है, और कितने आश्चर्य की बात है कि उत्तम गति भी नहीं है, फिर भी हे भगवान्! हीन अर्थ को भी उत्तम बना देने वाले आपके विषय में आबद्धमूला मेरी आशा ही मुझको प्रयत्नशील बनाए रहती है।

—चैतन्य महाप्रभु

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद्भक्तिसुखास्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥

जब तक भोग और मोक्ष की वासना रूपिणी पिशाची हृदय में बसती है, तब तक उसमें भक्ति-रस का आविर्भाव कैसे हो सकता है।

—रूपगोस्वामी (हरिभक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व, २।११)

किं भयमूलमदृष्टं किं शरणं श्री हरेर्भक्तः।
किं प्रार्थ्यं तद्भक्तिः किं सौख्यं तत्परप्रेम॥

भय का हेतु क्या है? पूर्व जन्मों में किए हुए शुभाशुभ कर्म। परम आश्रय कौन है? भगवान् श्री हरि का भक्त।

माँगने योग्य वस्तु क्या है ? श्री हरि की भक्ति। सुख क्या है ? उन्हीं श्री हरि की भक्ति का परम प्रेम।

—जीव गोस्वामी (गोपालचम्पू, २०1३)

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं गतिम् ॥

जिन्होंने प्रभु को आत्मनिवेदन कर दिया है, उन्हें कभी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। पुष्टि (कृपा) करने वाले प्रभु अंगीकृत जीव की लौकिक[1] गति नहीं करेंगे।

—वल्लभाचार्य

वेदस्याध्ययनं कृतं परिचितं शास्त्रं पुराणं श्रुतं
सर्वं व्यर्थमिदं पदं न कमलाकान्तस्य चेत्कीर्तितम्।
उत्खातं सदृशीकृतं विरचितः सेकोऽम्भसा भूयसा
सर्वं निष्फलमालवालव क्षिप्तं न बीजं यदि ॥

यदि भगवान् विष्णु के चरणों का कीर्तन नही किया तो वेदों का अध्ययन, शास्त्र-ज्ञान और पुराणों का श्रवण उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार मिट्टी को खोदने, समतल करने और जल से सींचने के बाद भी उस क्यारी में बीज न डाला जाए।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ७।३०)

तत् संरक्ष्य सतामागः कुंजरात् तत्प्रसादजा।
दीनतामानदत्वादि शिलाक्लृप्तमहावृत्तिः।
भक्तिवल्ली नृभिः पाल्या श्रवणाद्यम्बुसेचनैः ॥

भक्ति-लता संतों की कृपा से ही उत्पन्न होती है। दीनता एवं दूसरों को मान देने की वृत्ति आदि शिलाओं की बाढ़ द्वारा उस लता को संतापराध रूपी हाथी से बचाकर, श्रवण-कीर्तन आदि जल से सींचते और बढ़ाते रहना चाहिए।

—विश्वनाथ चक्रवर्ती

यद्यात्रया व्यापकता हता
ते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या।
ध्यानेन बुद्धेः परता परशं जात्या
जताक्षन्तुमिहार्हसि त्वम् ॥

मैंने तीर्थ-यात्रा से आप की व्यापकता मिटाई, भेद से एकता, स्तुति द्वारा वाक्परता, ध्यान करके आपकी बुद्धि से अगम्यता और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है, अतः हे परमेश्वर ! आप इन अपराधों को क्षमा कीजिए।

—रहीम

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

हे जगत्पति ! मुझे न धन की कामना है, न जन की, न सुन्दरी की और न कविता की। हे प्रभु ! मेरी कामना तो यह है कि जन्म-जन्म में आपकी अहैतुकी भक्ति करता रहूँ।

—चैतन्यमहाप्रभु (शिक्षाष्टक, ६)

अच्छिन्ना, तैलधारावत् प्रीतिर्भक्तिरुदाहृता।

तेल की धार के समान अविच्छिन्न प्रीति ही भक्ति कही गयी है।

—श्री रमणगीता (१६।२)

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्तस्-
तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः।
भवता स्रवन् नेत्रजलाः समग्रमा-
युर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥

जिनके नेत्रों से प्रेमाश्रु वह रहे हैं, ऐसे भक्तगण वाणी के द्वारा भगवान् की स्तुति करते हुए, मन से रात-दिन भगवान् को स्मरण करते हुए तथा शरीर से भगवान को नमस्कार करते हुए भी तृप्त नही होते हैं और सारी आयु भगवान् को ही अर्पित कर देते हैं।

—अज्ञात

कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौ काल ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५)

कबीर निरभै राम जपि, जब लगि दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, सोवैगा दिन राति ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५)

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौ काहि ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५)

[1] सामान्य मनुष्य की-सी।

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८)

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६)

नैनाँ अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ।
नाँ हौ देखौं और कूँ, नाँ तुझ देखन देउँ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १९)

मैं जान्यूँ पढ़िबौ भलौ, पढ़िवा थैं लौभ जोग।
राम नाम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३८)

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३९)

जदि विषै पियारी प्रीति सूँ, तब अंतरि हरि नाँहि।
जब अंतर हरि जी बसै, तब विपिया सूं चित नाँहि॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५२)

कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास।
जहँ जहँ भगति कबीर की, तहँतहँ राम निवास॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५३)

कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोइ।
जे दिन गए भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७९)

मैं परदेशी काहि पुकारौं, इहाँ नहीं को मेरा।
यहु संसार ढूँढि सब देख्या, एक भरोसा तेरा॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२०)

राम नाम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन जग जागि।
कहै कबीर ते ऊवरे, जे रहे राम ल्यौ लागि॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २४२)

सिर साटै हरि सेविये, छाड़ि जीव की वाणि।
जे सिर दिया हरि मिलै, तब लग हाणि न जाणि॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७०)

क्या जप क्या तप संजमा, क्या तीरथ व्रत स्नान।
जो पैं जुगति न जानिये, भाव भगति भगवान।
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२६)

कबीर राम न छोड़ियै, तन धन जाइ त जाउ।
चरन कमल चित वेधिया, रामहि नाम समाउ॥
—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० २५८)

नैनों की करि कोठरी, पुतली-पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिव को लिया रिझाय॥
—कबीर

रूखा सूखा राम के टुकड़ा
चिकना अवर सलोना का।
कहत कमाल प्रेम के मारग
सीस देइ फिर रोना का॥
—कमालदास

स्याम-प्रेम का पंथ दुहेला,
चलन अकेला, कोई संग न हेला।
—रैदास

दरसन तोरा जीवन मोरा,
बिन दरसन क्यूँ जियै चकोरा॥
—रैदास

मैं अपनो मन हरि से जोरयो।
हरि से जोरि सबन ते तोर्‍यो॥
—रैदास

नाम रसायन पीजिए यहि औसर यहि दाव।
फिर पीछे पछितायगा चला चली हो जाव॥
—गरीबदास

इस माटी के महल में मगन भया क्यों मूढ़।
कर साहब की बन्दगी उस साँई कूँ ढूँढ़॥
—गरीबदास

आठ पहर चौंसठ घरी, जन बुल्ला धर ध्यान।
नहिं जानौं कौनी घरी, आइ मिलैं भगवान॥
—बुल्ला साहब

जग्य दान तप का किये जौ हिये न हरि अनुराग।

—भीखा साहब

धन्य सो भाग जो हरि भजै ता सम तुलै न कोइ।

—भीखा साहब

यह मसीत, यह देहरा, सतगुर दिया दिखाइ।
भीतर सेवा-बदगी, बाहर काहे जाइ॥

—दादूदयाल

जो कुछ तुम हमको दिया, सो सब तुमहीं लेहु।
विन तुम मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु॥

—दादूदयाल

दादू देखत ही भया, स्याम वर्ण थैं सेत।
तन मन जोवन सब गया, अजहुँ न हरि सों हेत॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० ३९७)

भगति भगति सवको कहै, भगति न जाणै कोइ।
दादू भक्ति भगवंत की, देह निरन्तर होइ॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० १३९)

दरिया विरही साध का तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नीदड़ी, दिवस न लागै भूख॥

—दरिया साहब

विरहिन पिउके कारने, ढूंढ़न वनखंड जाय।
निसि वीती पिउ ना मिला दरद रहा लपटाय॥

—दरिया साहब

'दूलन' विरवाप्रेम को, जामेउ जेहि घट माँहि।
पाँच पचीसो थकित भे तेहि तरुवर की छाँहि।

—दूलनदास

पिय सो लागी आँखियाँ
मन परिगा जिकिर-जँजीर[1]।
नैना वरजे ना रहैं,
अव ठिले जात वोहि तीर।

—दूलनदास

स्वास-स्वास माँ नामभजु, वृथा स्वास जिनि खोउ।
दूलन ऐसी स्वास से, आवन होउ न होउ॥

—दूलनदास

1. ईश्वर-स्मरणरूपा शृंखला।

जोई मेरे मन में है, नैनन में सोई है

—मलूकदास

राम राय असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु।
संतन सँग सेवा करौ, भक्ति मजूरी देहु॥

—मलूकदास (मलूकदासजी की वानी, पृ० ३१)

करै पखावज प्रेम का हृदय वजावै तार।
मनै नचावै मगन होय, तिनका मता अपार॥

—मलूकदास (मलूकदासजी की वानी, पृ० ३८)

सोई पूत सपूत जो भक्ति केर चित्त लाय।
जरा मरन तें छुटि परै, अजर अमर होइ जाय॥

—मलूकदास

जो जागै हरिभक्ति में, सोई उतरै पार।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख़्वार॥

—चरणदास (चरणदासजी की वानी, भाग २, पृ० ७३)

नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रतदान।
मात भरोसो रहत है ज्यों वालक नादान॥

—दयाबाई

प्रेम मगन जे साधु जन, तिन गति कही न जात।
रोय-रोय गावत हँसत, 'दया' अटपटी बात॥

—दयाबाई

पलटू वाजी लाइहौं, दोऊ विधि से राम।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तो राम॥

—पलटू साहब (पलटू साहब की वानी, भाग ३, पृ० ७०)

पलटू पारस के छुए लोहा कंचन होय।
हरि को भजै सो वड़ा है जाति न पूछै कोय॥

—पलटू साहब

पलटू सब में राम हैं क्या राजा क्या रंक।
मोर राम, मैं राम का, ता से रहौं निसंक॥

—पलटू साहब

जोग-जग्य तें कहा सरै तीरथ-व्रत-दाना।
ओसै प्यास न भागिहै, भजिए भगवाना॥

—नामदेव

नानक हरि की भगति न छोड़उ, सहजे होइ सु होई।

ईश्वर भक्ति न छोड़ो, स्वाभाविक ही जो होना है, वह ह।जाए।

—गुरुनानक (गुरु ग्रन्थ साहब)

जगत भिखारी फिरतु है सभ को दाता राम।
कहु नानक मन सिमरु तिहि पूरन हो वहि काम ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

जो उपजिओ सो बिनति है परो आजु के काल।
नानक हरि गुन गाइ ले छाँड़ि सगल जंजाल ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

जनम जनम भरमत फिटिओ मिटिओ न जम को त्रासु।
कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि वासु ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरुग्रन्थ साहब)

गुन गोविंद गाइओ नहीं जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना जिहि विधि जल को मीन ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

जैसे पाहन जल महि राखिओ, भेदै नहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पिछानी, भगति हीन जो प्राणी ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

मैं काहु कउ देत नहि, नहि भै मानत आन।
कहु नानक सुनि रे मना, ज्ञानी ताहि बखान ।।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रन्थ साहब)

सर्वं मन्त्रहीनं सर्वं अंत कालं।
भजो एक चित्तं सुकालं कृपालं ।।

जब अन्त निकट आता है, तब सभी मन्त्र निष्फल हो जाते हैं, इसीलिए मन लगाकर उन कृपामय प्रभु का भजन करो।

—गुरु गोविंदसिंह

जौ हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हें हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे।

—सूरदास (सूरसागर, १७०)

हरि, हरि, हरि सुमिरौ सब कोई।
ऊँच नीच हरि गनत न दोई ।।

—सूरदास (सूरसागर, १।२३६)

सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत।

—सूरदास (सूरसागर, १।२९६)

अँखियाँ जानि अजान भई।
एक अंग अवलोकत हरि कौ, और न कहूँ गई ।।
यौं भूली ज्यौं चोर भरै घर, निधि नहिं जाइ लेई।
फेरत पलटत भोर भयो, कछु लई न छाँड़ि दई ।।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२४०१)

हरिमुख किधौं मोहिनी माई।
बोलत बचन मंत्र सौ लागत, गति-मति जाति भुलाई ।।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२४३५)

मैं मन बहुत भाँति समुझायौ।
कहा करौं दरसन-रस अटक्यौ, बहुरि नहीं घट आयौ ।।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२५०७)

जिन्ह हरिभगति हृदय नहिं आनी।
जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११३।३)

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरात बुध वेदा ।।
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११६।१)

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहिं ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१४०)

पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई ।।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।
राम-विमुख-सुत-तें हित हानी ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।७४।१)

होइ विवेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९३।३)

भगति तात अनुपम सुखमूला।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३।१६।२)

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन वल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
विनु जल वारिद देखिअ जैसा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३।३५।३)

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना।
ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३४।२)

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुवीरहि भजहु भजहिं जेहिं संत॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३८)

तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।४६)

तब लगि हृदय बसत खल नाना।
लोभ, मोह, मच्छर, मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा।
धरें चाप सायक कटि भाथा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।४७।१)

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु विना जलजान॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।६०)

विनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ विराग विनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति विनु॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।८९ क)

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११४।७)

खल कामादि निकट नहिं जाहीं।
बसइ भगति जाके उर माहीं॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११६।३)

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान सत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२० क)

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहि आरतिहर तोसो॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ७९)

संजम, जप, तप, नेम, धरम, व्रत, वहु भेषज-समुदाई।
तुलसिदास भव रोग राम पद-प्रेम-हीन नहिं जाई॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ८१)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १०१)

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस-षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १६९)

दुरलभ देह पाइ हरि पद भजु, करम वचन अरु ही ते।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १९८)

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्मु,
समाजु सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा वरषा,
हिम, मारुत, घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवानु सयान सोई,
'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै।
नतु और सबै विषवीज बए,
हर हाटक कामदुहा नहि कै॥

भारतवर्ष की पवित्र भूमि है, उत्तम कुल में जन्म मिला है, समाज और शरीर भी उत्तम मिला है। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति क्रोध व कठोर वचन त्याग कर वर्षा, जाड़ा, वायु और धूप को सहन करता हुआ चातक-हठ से भगवान् को भजता है, वही चतुर है। शेष सब तो सुवर्ण के हल में कामधेनु को जोतकर विषवीज ही बोते है।
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ३३)

नाक[1] रसातल भूतल में रघुनायक एकु सहायकु मेरे।
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ५०)

लोभ-मोह काम कोह[2] दोस को सु मोसो कौन?
कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै[3] मलीनता॥
एकु ही भरोसो राम रावरो[4] कहावत हौं
रावरे[5] दयालु दीनबंधु मेरी दीनता॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ६२)

प्रीति रामनाम सों प्रतीति[6] रामनाम की
प्रसाद[7] रामनाम के पसारि पाय सूतिहौं।[8]
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ६९)

प्रभु हू ते प्रवल प्रतापु प्रभुनाम को।
—तुलसीदास (कवितावली उत्तरकाण्ड, ७०)

सोइवो जो राम के सनेह की समाधि सुखु
जागिवो जो जीह जपै नीके रामनाम को।
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ८३)

आगम, वेद, पुरान बखानत,
मारग कोटिन, जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको,
ईसु कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे,
जप, जोग, विरागु लै जीव पराने[9]।
को करि सोचु मरै 'तुलसी',
हम जानकी नाथ के हाथ विकाने॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १०५)

धूत कहौ अवधूत कहौ,
रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की वेटी सों वेटा न व्याहव,
काहू की जाति विगार न सोऊ॥

१. स्वर्ग। २. क्रोध। ३ मेरी ही। ४. आपका। ५. आप।
६. विश्वास। ७. कृपा। ८. पसारि पाय सूति हौं···पैर फैलाकर अर्थात् निश्चिन्त होकर सोता हूँ। ९. भागना।

तुलसी सरनाम गुलामु है राम को,
जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैवो, मसीत को सोइबो,
लैवो को एकु न दैबे को दोऊ॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड। १०६)

साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोचु कहा
का काहू के द्वार परौ, जो हौं सो हौ राम को।
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १०७)

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, काम के।
जागैं राजा राजकाज सेवक-समाज, साज
सोचैं सुनि समाचार बड़े वैरी बाम के॥
जागैं बुध विद्या हित पंडित चकित चित
जागैं लोभी लालच धरनि, धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, वियोगी, रोगी सोग बस
सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक राम के॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १०९)

परमारथु, स्वारथ, सुजसु, सुलभ रामतें सकल फल।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक रामतें मोर भल॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ११०)

तुलसीदास जे रसिक न येहि रस,
ते नर जड़ जीवत जग जाए।
जो इस रस के रसिक नहीं हैं, वे मूर्ख मनुष्य व्यर्थ ही संसार में जीते हैं।
—तुलसीदास (गीतावली, बालकाण्ड, ३२)

जोग न विराग-जाग तप न तीरथ त्याग
एही अनुराग भाग[1] खुले तुलसी के हैं।
—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकांड, ३०)

प्रभु पद प्रेम प्रनाम कामतरु।[2]
—तुलसीदास (गीतावली, सुन्दरकांड, ४२)

१. भाग्य।
२. कल्पवृक्ष।

बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य[1] तुलसी प्रभु पद प्रयाग अनुरागे[2]॥
—तुलसीदास (गीतावली, उत्तरकाण्ड, १५)

गए करतें, घरतें, आंगन तें ब्रजहू तें ब्रजनाथ।
तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें सो तो हमारे हाथ।
—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली)

हम चाकर रघुवीर के पटौ लिख्यौ दरवार।
तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसवदार॥
—तुलसीदास

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥
हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान, नेत्रों के सामने सगुण रूप की सुन्दर झाँकी और जीभ से सुन्दर राम नाम का जप करना। यह ऐसा है मानो सोने की सुन्दर डिबिया में मनोहर रत्न सुशोभित हो।
—तुलसीदास (दोहावली, पद ७)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर वाहिरहु, जौ चाहसि उजियार॥
—तुलसीदास (दोहावली, ६)

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥
—तुलसीदास (दोहावली, २३)

राम भरोसो राम वल राम नाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मगल कुसल माँगत तुलसीदास॥
—तुलसीदास (दोहावली, ३८)

राम नाम रति राम गति राम नाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास।
—तुलसीदास (दोहावली, ३९)

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥
—तुलसीदास (दोहावली, ४१)

हरि माया कृत दोप गुन विनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम सव काम तजि अस विचारि मन माहिं॥
—तुलसीदास (दोहावली, १२७)

१. तत्काल। २. प्रभु के इस चरणरूपी प्रयाग में अनुराग करने पर।

लव निमेप परमानु जुग वरप कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ कालु जासु कोदंड॥
—तुलसीदास (दोहावली, १३०)

विनु विस्वास भगति नहिं, तेहि विनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा विनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु॥
—तुलसीदास (दोहावली, १३३)

घर कीन्हे घर जात है घर छोड़े घर जाइ।
तुलसी घर वन वीच ही राम प्रेम पुर छाइ॥
—तुलसीदास (दोहावली, २५६)

दीप सिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसंग॥
—तुलसीदास (दोहावली, २९६)

एक भरोसो एक वल, एक आस विस्वास।
राम-रूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास॥
—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, १५)

तुलसी भगत सुपच[1] भलो, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम॥
—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, ३८)

साँसति[2] सहत दास, कीजै पेखि[3] परिहास
चिरी[4] को मरन, खेल वालकनि को-सो है।
—तुलसीदास (हनुमान वाहुक, २९)

सो जननी, सो पिता, सोइ भ्रात,
सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोई सेवक,
सो गुरु, सो सुर साहिव चेरो।
सो तुलसी प्रिय प्रान समान,
कहाँ लौ वताइ कहौं वहुतेरो।
जो तजि गेह को, देह को,
नेह सनेह सों राम को होय वसेरो।
—तुलसीदास (मीरावाई को उत्तर)

ऐसे वर को क्या करूँ, जो जन्मे औ मरि जाय।
वर वरिये इक साँवरो, मेरो चुड़लो अमर हो जाय॥
—मीरां

१. चांडाल। २. दुर्दशा। ३. देखकर। ४. चिड़िया, पक्षी।

केस आए सेत ह्वै न केसौ आए मन में।
—गंग (गंग कवित्त, ३७९)

एक को छोड़ि विजा को भजै,
रसना सु करौ उस लव्वर की।
अव तो गुनिया दुनिया को भजै,
सिर वाँधत पोट अटव्वर की।
कवि गंग तो एक गोविंद भजै
कहुँ संक न माँगन जव्वर की।
जिनको हरि की परतीति नहीं
सो करौ मिलि आस अकव्वर की।
—गंग (गंग कवित्त, ४३५)

जम-करि[1] मुख तरहरि[2] परो, यह धरि हरि चित लाय।
विषयतृषा परिहरि अजौं, नरहरि[3] के गुन गाय।।
—बिहारी (बिहारी-सतसई ६७९)

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचै वृथा, साँचे राँचे राम।।
—बिहारी (बिहारी-सतसई ६८०)

कोऊ कोटिक संग्रहे, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-बिदारनहार।।
—बिहारी (बिहारी-सतसई, ७०१)

ज्यों ह्वै हों त्यों होहुँगो, हौ हरि अपनी चाल।
हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिवो गोपाल।।
—बिहारी (बिहारी-सतसई)

वैन वही उनको गुन गाइ औ काम वही उन वैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।।
जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।।
—रसखान (सुजान-रसखान, ३)

जगत रीत कुछ और है, भक्ति रीत कछु और।
—नागरीदास

सतरंज चौपर पोथी खोई, भगवत चर्चा गप्पों ने।
खोया रास भक्ति यों भक्तनि, हरि जस खोये टप्पों ने।।
—नागरीदास

१. यमराज रूपी हाथी। २. नीचे। ३. नृसिंह भगवान।

जप जप तीरथ सुलभ हैं, सुलभ जोग वैराग।
दुर्लभ भक्ति अनन्यता, राम नाम अनुराग।।
—रसरंगमणि

सकल सार कौ सार, भजन तूँ करि रस रीती।
रे मन, सोच विचार, रही थोरी, वहु वीती।।
—ध्रुवदास

विद्यावंत स्वरूप गुन, सुत दारा सुख भोग।
'नारायण' हरि भक्ति विन, यह सवही है रोग।।
—नारायण स्वामी

देह गेह में नेह निवारे दीजिए।
राजी जासें राम, काम सोइ कीजिए।।
—वाजिन्द

रसना कटौ जु अन रटौ, निरखि अन फुटौ नैन।
स्रवन फुटौ जौ अनसुनौ, विनु राधा जसु वैन।।
—हितहरिवंश महाप्रभु

और कोऊ समझै सो समझो हम कूँ इतनी समझ भली।
ठाकुर नंद किशोर हमारे, ठकुराइन वृषभानु लली।।
—भगवान हित रामदास

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार।
भक्ति विना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन भार।।
—हरिराम व्यास (व्यास वाणी, पृ० १५२)

तन काम में, मन राम में।
—बाबा रघुपतिदास

साँस-साँस सुमिरन करै, जपै जगद्गुरु-जाप।
'जगन्नाथ' संसार की, कछू न व्यापै ताप।।
—जगन्नाथ महात्मा

धरनी पलक परै नही, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परम रस, तव हूँ प्यास न जाय।।
—धरनीदास (धरनीदासजी की वानी, पृ० २२)

विरह वान लाग्यौ नहीं, भयौ न पिय को संग।
वनादास कैसे चढ़ै, निज सरूप को रंग।।
—वनादास

या तन की भट्ठी करूँ, मन कूँ करूँ कलाल[1]।
नैणाँ का प्याला करूँ, भर भर पियो जमाल ।।

—जमाल (जमाल दोहावली)

रहै क्यों म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय ।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सर झुकाएँ, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण है जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगो के सिर भी झुक जाते हैं ।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन भाग १, घमंड का पुतला, पृ० २१३)

अपना नही,
हमें ईश्वर का पूजन करना !
जिसकी महिमा
प्रतिविम्बित जग के जीवन में !

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, पृ० १५७)

जग-जीवन
ईश्वर के पूजन का
पुण्य क्षेत्र है पावन !

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, पृ० १५७)

जागु पथिक अव रैन बिहानी ।
मारग अगम, संग नहिं कोई, दूर प्रेम रजधानी ।।

—वियोगी हरि (अनुराग मंजरी, पृ० १८)

नर देह ईश्वर ने दिया है, मोक्ष का यह द्वार है।
नर जन्म कर लीजै सफल, ईश्वर भजन ही सार है ।।

—भोले बावा (वेदान्त छन्दावली, भाग ३)

जिसका साथी ईश्वर है उसको दुःख क्या, फिक्र क्या, दूसरा साथी क्या ?

—महात्मा गांधी (वापू के आशीर्वाद, ४८५)

आप ईश्वर और धन दोनों की एक साथ पूजा नहीं कर सकते ।

—महात्मा गांधी (हमारे गाँव का पुनर्निर्माण, १)

मै ईश्वर की पूजा सत्य के रूप में ही करता हूँ ।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ३१)

शुद्ध भक्ति का प्रायः लोप हो गया है क्योंकि भक्तों भक्ति को सस्ता बना दिया है। भगवान् तो कहता है कि भक्त वही वन सकता है जो सुधन्वा की तरह उवलते हुए तेल में कूद पड़े और हँसे अथवा जो प्रह्लाद की तरह प्रसन्न वदन जलते हुए स्तम्भ को भेंट करे जैसे परम मित्र की ।

—महात्मा गांधी (कल्याण भक्तांक, संवत् १९८५ को संदेश)

जो लोग कृष्ण-कृष्ण कहते हैं वह उसके पुजारी नहीं हैं। जो उसका काम करते हैं, वे ही पुजारी हैं। रोटी-रोटी कहने से पेट नही भरता, रोटी खाने से भरता है ।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र, प्रेमा बहन के नाम, २२४)

भक्ति का अर्थ है भावपूर्वक अनुकरण ।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, १-८-१९२१)

निमित्त कुछ भी हो, तुम भक्ति-मन्दिर में जाओ तो। पहले यदि कामना लेकर भी आओगे, तो भी आगे चलकर निष्काम हो जाओगे ।

—विनोवा (गीता प्रवचन, पृ० १०४)

सकामता गौण स्तर की चीज़ होने पर भी यदि उसके साथ अनन्य भक्ति का योग हो तो वह चल सकती है। अनन्य निष्ठा से वह सकामता भी पावन हो जाएगी। वस्तुतः निष्कामता और अनन्यता का योग ही इष्ट है।

—विनोवा (स्थितप्रज्ञदर्शन, पृ० ४०)

$$\frac{\text{सेवा}}{\text{अहंकार}} = \text{भक्ति}$$

—विनोबा (विचार पोथी)

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है ।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० ३२)

धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है ।'

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृ० २०७)

भक्ति धर्म और ज्ञान दोनों की रसात्मक अनुभूति है ।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग २, पृ० १९५)

---

१. मदिरा-विक्रेता ।

जो भक्ति-मार्ग श्रद्धा के अवयव को छोड़कर केवल प्रेम को ही लेकर चलेगा, धर्म से उसका लगाव न रह जायगा। वह एक प्रकार से अधूरा रहेगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४८)

भक्ति-मार्ग का सिद्धान्त है भगवान् को बाहर जगत् में देखना।' 'मन के भीतर देखना' यह योग-मार्ग का सिद्धान्त है, भक्ति-मार्ग का नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७)

भक्ति में बड़ी भारी शर्त है निष्काम की। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी, इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्ति के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है।

— रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६)

हमें अपनी प्रत्येक क्रिया में भगवद्भावना रखनी चाहिए। इसी से हमारी भावना उच्च-स्तरीय हो सकेगी।

—स्वामी गंगेश्वरानन्द (सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्द के लेख तथा उपदेश, पृ० ५६)

जहाँ 'विभक्ति' है वहाँ 'भक्ति' नहीं है। आत्मसमर्पण और किसी भी परिस्थिति में अडिग निष्ठा 'भक्ति' है।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्रदर्शन, खंड ३, पृ० ४४)

भगवत्संमिलन की उत्कट उत्कंठा ही भक्ति है।

—श्री हरिहरानंद सरस्वती (स्वामी करपात्री जी) (भक्ति सुधा, द्वितीय खण्ड, पृ० ३४६)

भक्ति एक प्रकार का आवेश है, उन्माद है, पागलपन है।

—भोलानाथ शर्मा ('वैष्णव कविता' लेख)

जाति-पाँति पूछै ना कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

—अज्ञात

भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट किया कबीर ने, सप्त दीप नव खंड॥

—अज्ञात

'ग़ालिब' न कर हुज़ूर में तू बार-बार अर्ज़
ज़ाहिर है तेरा हाल सब उन पर कहे बग़ैर।

तू बार-बार प्रभु के सामने अपनी अभिलाषा निवेदित न कर। उन अन्तर्यामी को तेरा हाल कहे बिना ही ज्ञात है।

—ग़ालिब (दीवान)

यह जहद यह इबादत मुझे मंजूर नहीं
हूरों की भी जन्नत मुझे मंजूर नहीं।
बख़्शिश हो तेरी मुझको इबादत के बाद
या रब! यह तिजारत मुझे मंजूर नहीं।

—जज़्ब

दारम हमा जाबा हमा कस दर हमा हाल
दर दिल जे तू आरज़ू व दरदीदा ख़याल।

हर जगह चाहे किसी भी अवस्था में मैं होऊँ, तू मेरे हृदय के अन्दर वर्तमान रहता है। मेरे साथ कोई भी हो, पर दृष्टि के सम्मुख सदैव तेरा ही स्वरूप उपस्थित रहता है।

[फ़ारसी] —जामी

चूं इल्लते तफ़्रक़स्त असबाबे जहाँ
जमईअते दिल जे जमये असबाब मजोए।

जब सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुएँ दुःखदायिनी हैं तब तू केवल एक ही वस्तु से लगन क्यों नही लगाता?

[फ़ारसी] —जामी

हर कस कि नदारद व जहाँ मेहरे तु दरदिल
हक्क़ा कि बुवद तायते ऊ जायओ बातिल।

इस संसार में जो मनुष्य तुझसे हार्दिक प्रेम नहीं रखता, वह वास्तव में कुछ भी नहीं है। उसकी प्रार्थना सर्वांश में व्यर्थ और बेकार है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

न मने दिल शुदा अज़ दस्ते तु ख़ूनीं जिगरम्
कज़ ग़मे इश्क़े तु पर ख़ूं जिगरे नेस्त कि नेस्त।

अकेला मैं ही एक ऐसा दुःखी नहीं हूँ जिस पर विपत्ति आ पड़ी है अपितु तेरे प्रणय में सभी हृदय के आँसू बहा रहे हैं।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

दिलम मलाल गिरफ़ अज़ जहाँ व हर चे दरूँस्त
दरून खातिर मन कस न गुजद इल्ला दूस्त दोस्त।

मैंने संसार की सभी वस्तुओं से अपना मुख मोड़ लिया। यदि मेरे ध्यान में कोई वस्तु समाई हुई है तो वह है मेरे प्रिय का मुखड़ा।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

वारे-वारे जतो दुःख दियो छो, दिते छो तारा,
से केवल दया तव जेनेछि माँ दुःख हारा।

हे तारा, तुमने बार-बार मुझे जो दुख दिया है और दे रही हो, वह ही तुम्हारी कृपा है।

[बँगला] —रामप्रसाद सेन

भजन साधन जानि ने माँ, निजो तो फिरंगी,
यदि दया करे कृपा कर हे शिवे मातंगी।

मैं भजन-पूजन नहीं जानता, मैं फ़िरंगी हूँ, फिर भी हे शिवे मातगी, मुझ पर दया करो।

[बँगला] —एँटनी

तव आह्वान आसिबे जखन
से कथा केमने करिव गोपन?
सकल वाक्ये सकल कर्मे
प्रकाशिबे तव आराधन॥

तुम्हारी पुकार जब मेरे पास आएगी, तब उसे मैं कैसे गुप्त रख सकूँगा? मेरे सब वाक्यों और सम्पूर्ण कार्यो से तुम्हारी पूजा प्रकट होगी।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सकल गर्व दूर करि दिबो
तोमार गर्व छाड़िबो ना।

मैं अपना और सब गर्व दूर कर दूंगा, परन्तु तुम्हारे लिए मुझे जो गर्व है, उसे मैं कदापि न छोड़ूंगा।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तोमारि आसन हृदय-पद्मे
राज जैनो सदा राजे गो।

मेरे हृदय के पद्म पर मानो सदा तुम्हारा ही आसन अवस्थित है।

[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

तोमारि रागिणी जीवन कुंजे
वाजे जने सदा वाजे गो।

मेरे प्राणों के कुंज में मानो सदा तुम्हारी ही रागिनी बज रही है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कर्ण-पथे भक्तर हियात प्रवेशि हरि।

कर्ण-मार्ग से भक्त के हृदय में हरि प्रवेश करते हैं।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा)

जत उग्र तप ज्ञान गुण याग योग यज्ञ दान पुण्य
किवा प्रयोजन साधिवेक तासम्वार।
कृष्ण जगतर आत्मा निज मोक्ष-सुख-प्रद देव इष्ट
ताहान चरणे भकति नाहिके जार।

उग्र तप, ज्ञान, गुण त्रिकास, यज्ञ, योग, दान, पुण्य आदि सबका प्रयोजन ही क्या है जब तक सब जगत् के निज आत्मा, मोक्ष-सुख देने वाले इष्ट देव कृष्ण के चरणों में भक्ति नही?

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा)

सेहिसे दिनक भाइ दुर्दिन, वलिया मानि
मेघाच्छन्न नोहय दुर्दिन।
हरि-कथा अमृतर सम्यक्-आलाप-रसे
जिटोदिन होवय विहीन।

मेघों से ढके हुए सूर्य वाला दिन 'दुर्दिन' नहीं है, उसी दिन को दुर्दिन कहो जिस दिन भगवान् की कथा का अमृतमय सुन्दर आलाप-रस सुनायी नहीं पड़ता।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा)

सतसंग देशमां भक्ति नगर छे रे,
प्रेमनी पोल पूछी जाजो रे,
व्रेहे ताप पोलीआने मली मोहोले पेसजो रे,
सेवा सीडी चढी ज भेंलाँ थाजो रे।
दीनता-पात्रमाँ मनमणि मूकी ने,
भेट भगवन्तजी ने करजो रे,
हुं भाव पुं भाव नोछावर करीने,
श्री गिरिधरवर तभो वरजो रे।

'सत्संग' नामक देश में 'भक्ति' नाम का नगर है। उसमें जाकर 'प्रेम' की गली पूछना। विरह-ताप-रूपी पहरेदार से

मिलकर महल में घुसना और सेवारूपी सीढ़ी पर चढ़कर समीप पहुँच जाना। फिर दीनता के पात्र में अपने मन की मणि को रखकर उसे भगवान् को भेंट चढ़ा देना। अहं तथा घमण्ड के भावों को न्योछावर कर तुम श्रीकृष्ण का वरण करना।

[गुजराती] —दयाराम (कविता 'निश्चेनो महल')

सुत-वित-दारा शीश समरपै ते पामे रस पीवा जोने।
सिंधु मध्ये मोती लेवा, माँही पड्या मरजीवा जोने।
मरण आंगमे ते भरे मूठी दिलनी दुग्धा पाये जोने।

जो सन्तति, सम्पत्ति, गृहिणी और अहंकार को भगवान् के चरणों में सर्मापत कर देते है, वे ही ईश्वर भक्ति का रस पी पाते हैं। वे मोती निकालने के लिए गोताखोरों के समान बीच समुद्र में पड़े हुए है। जो मृत्यु का सामना करने को तत्पर हैं, वे ही मुक्ति रूपी मोतियों से मुट्ठी भर सकते है।

[गुजराती] —अज्ञात

माँही पड्या ते महासुख माणे
देखनारा दाझे जोने।
हरिनो मारग छे शूरानो,
नहि कायरनुं काम जोने।

[गुजराती] —प्रीतम

हरिनो मारग छे शूरानो,
नहि कायरनूं काम जोने
परथम पहेलुं मस्तक मुकी,
वलती लेवुं नाम जोने।

भगवान् का मार्ग शूरवीरों का है। यहाँ कायरों का काम नहीं है। सबसे पहले तू हथेली पर अपना सिर ले ले, फिर हरि का नाम ले।

[गुजराती] —अज्ञात (इंडियन ओपिनियन, दिनांक १९-१-१९०७ में उद्धृत)

हें चि भक्ति हें चि ज्ञान।
एक विठ्ठल चि जाण॥

वही भक्ति है, वही ज्ञान है। एक विठ्ठल को ही जान।

[मराठी] —ज्ञानदेव

प्रेमेंवीण श्रुति स्मृति ज्ञान। प्रेमेंवीण ध्यान पूजन।
प्रेमेंवीण श्रवण कीर्तन। वृथा जाण नृपनाथा॥

प्रेम के विना श्रुति, स्मृति, ज्ञान, ध्यान, पूजन, श्रवण, कीर्तन सब व्यर्थ है।

[मराठी] —एकनाथ (नाथभागवत, २।३२३)

हो कां वर्णामाजी अग्रगणी। जो विमुख हरि चरणीं।
त्याहुनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्‌भजनीं प्रेमल॥

यदि कोई मनुष्य सब वर्गो में अग्रगण्य हो परन्तु भगवान् के चरणों से विमुख हो तो उससे वह चांडाल श्रेष्ठ है जो भगवान् के भजन का प्रेमी है।

[मराठी] —एकनाथ (नाथभागवत, ५।६०)

भक्ति ते मूल, ज्ञान तें फल
वैराग्य केवल तेथींचें फूल।

भक्ति मूल है, ज्ञान उसका फल है, वैराग्य तो उसका फूल मात्र है।

[मराठी] —एकनाथ

गाँठी बाँधोनि धन, मिरवितो भक्ति।
मनीं ते आसक्ति, अधिक व्हावें॥
चित्त वित्तावरी भक्ति लोकाचारी।
देवो अभ्यंतरीं केंवि भेटे॥

धन जोड़कर भक्ति का दिखावा करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि ऐसा करने से मन में वासना और भी बढ़ती जायेगी। जिनका चित्त वासनाओं में फँसा हुआ है, उन्हें अंतरात्मा के दर्शन कैसे हो सकते हैं?

[मराठी] —एकनाथ

काय टिले करितो माला। भाव खला नाहीं त्या॥
तुका म्हणे प्रेमें विण। बोले भुंके अवघा शीण॥

तिलक और माला धारण कर लेने मात्र से हृदय में भक्तिभाव नहीं जाग जाता है। यदि कोई प्रेम के विना कोरा उपदेश देता है तो वह व्यर्थ ही भौंकता है—अनुभव के विना बोलना निरुपयोगी है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १३७)

भक्तीची ते जाती ऐसी। सर्वस्वासी मुकावें।

सर्वस्व न्योछावर करने पर ही भक्ति की प्राप्ति होती है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ६०२)

याजसाटीं केला होता अटाहास।
शेवटाचा दिस गोड व्हावा॥
आतां निश्चितीनें पावलों विसांवा।
खुंटलिया धांवा तृष्णेचिया॥

आयु का अंतिम दिन सुखद व्यतीत हो, इसलिए यह कठिन परिश्रम मैंने किया। अब मैं चिन्तारहित होकर विश्राम कर रहा हूँ तृष्णा की दौड़ समाप्त हो चुकी है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४३१३)

कथा त्रिवेणीसंगम देव भक्त आणि नाम।

हरि कथा तो भगवान्, भक्त और नाम का त्रिवेणी-संगम है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २३५७)

मो तनु दग्ध हेले हेबत खार,
ताहाकु कराइब पादपे सार,
से तरु काष्ठ देइ बढ़र्धकी हस्ते,
कराइ देव प्रभु पादुका मोते है।

मेरा शरीर जल कर अवश्य राख होगा और वृक्षों में खाद के रूप में उपयोगी होगा। जब उस वृक्ष की लकड़ी लेकर बढ़ई अपने कौशल से प्रभु के लिए पादुका बनाएगा, उस समय भी (उसमें स्थित) मुझे प्रभु की पद-सेवा का सौभाग्य मिलेगा ही।

[मराठी] —गंगाधर मेहेर (तपस्विनी, सप्तम सर्ग)

भक्ति दगुल मुक्ति वडयुट सुलभंबु।

भक्ति के होने से मुक्ति पाना आसान है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

परमात्मुनि चिंतनलो
दरुचुग नुंडुटये तगुनु धरनाकटिकि
दिरिपमु नेत्ति भुजिंचुचु
दोखले गृहवेदिकंदु तोंगुमु वेमा।

हे साधु ! दिन-रात परमात्मा के चिंतन में ही मग्न रहो। भूख लगने पर भिक्षा माँगकर खाओ। नींद आने पर किसी घर के बाहर सो रहो। अपने साथ कुछ न रखो। यही तुम्हारे लिए उचित राजसी जीवन है।

[तेलुगु] —वेमना

पदवि नो सद्भक्तियु गल्गुरे
पदिवि वेद शास्त्रोपनिषत्तुल
सत्त तेलिय लेनिदि पदविया ?
धन दार सुतागार सपदलु,
धरणीशुल चेलिदि ओक पदविया ?
जप तपादि अणिमादि सिद्धुल,
चे जगमुल ने चुट आदि पदविया ?
राज लोभ युत यज्ञादुलचे,
भोगमुलब्बुट आदि पदविया ?
त्यागराजनुत्तुडौ श्रीरामुनि,
तत्त्वनु तेलियनि दोक पदविया ?

प्रभु के प्रति सच्ची भक्ति की प्रतिपत्ति ही जीवन में सच्चे पद की प्राप्ति है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि का अध्ययन ही अपने में कोई विशेष पद-प्रद नहीं हो सकता जब तक उनके सारभूत तत्त्व को आत्मसात् न कर लिया जाए।

[तेलुगु] —त्यागराज

रामभक्ति साम्राज्य मे मानवुल कब्बेने मनसा।
आ मानवुल सदर्शनमत्यंत ब्रह्मानंद मे।
ईलागनि विवरिंप लेनु चाला स्वानुभव वेद्यमे।
लीलासृष्ट जगत्रयमने कोलाहल त्यागराजनुतुडगु।

राम-भक्ति अपने में एक साम्राज्य के समान है। जो इस साम्राज्य के अधिकारी होते हैं, उनके दर्शन मात्र से ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो जाती है। परोक्ष रूप से प्राप्त आनंद ही इतना लोकोत्तर है, तो फिर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कैसी होती है, इसका वर्णन करना मेरे लिए संभव नही है। उसे केवल अनुभव से जाना जा सकता है। कोलाहल से भरा हुआ यह संसार, ये तीनों लोक, ईश्वर की लीला के परिणाम मात्र है। इस मायामय संसार का सनातन सत्य केवल राम-भक्ति में पाया जा सकता है।

[तेलुगु] —त्यागराज

वे ही संसार सागर से तरेंगे जो ईश्वर के श्री चरणों में स्थिर रहेंगे, अन्यथा तरना असम्भव ही है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०)

भाव का जैसा प्रतिबिम्ब पड़ता है, परमात्मा भी वैसा हो जाता है। जो जिस प्रकार उसे भजता है, उसे वह उसी प्रकार प्राप्त होता है। भक्ति-भाव की सहायता से ही लोग परमार्थ के मार्ग से होते हुए भक्ति के बाजार में पहुँचते हैं, जहाँ सज्जनों के साथ मोक्ष का चौहट्टा (चारों ओर फैला हुआ बाजार) लगता है। जो लोग भक्तिपूर्वक ईश्वर का भजन करते हैं वे ईश्वर के समक्ष पावन हो जाते हैं और अपने भाव के बल से अपने पूर्वजों तक का उद्धार कर डालते हैं। वे स्वयं भी तर जाते है और दूसरों को भी तारते हैं और उनकी कीर्ति सुनकर अभक्त लोग भी भावुक और भक्त बन जाते हैं। जो लोग इस प्रकार ईश्वर का भजन करते हैं, उनकी माताएँ धन्य हैं और उन्होंने अपना जन्म सार्थक किया है।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

आध्यात्मिक अनुभूति के निर्मित किए जाने वाले मानसिक प्रयत्नों की परम्परा या क्रम ही भक्ति है, जिसका प्रारम्भ साधारण पूजा-पाठ से होता है और अन्त प्रगाढ़ एवं अनन्य प्रेम में।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खंड ४, पृ०८)

यही ईश्वर-प्रेम क्रमश: बढ़ते हुए एक ऐसा रूप धारण कर लेता है, जिसे पराभक्ति कहते है, तब तो इस प्रेमिक पुरुष के लिए, अनुष्ठान की और आवश्यकता नहीं रह जाती, शास्त्रों का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता, प्रतिमा, मन्दिर, गिरजे, विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय, देश-राष्ट्र—ये सब छोटे-छोटे सीमित भाव और बंधन अपने आप ही चले जाते हैं। तब संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं बच रहती, जो उसको बाँध सके, जो उसकी स्वाधीनता को नष्ट कर सके।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य,
चतुर्थ खंड, पृ० ४७)

बिना त्याग के भक्ति का विचार कैसा? यह बहुत घातक है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खंड ८, पृ०१४२)

जब ज्ञान से आलोकित तथा कर्म के द्वारा नियंत्रित और भीमशक्ति प्राप्त प्रबल स्वभाव परमात्मा के प्रति प्रेम एवं आराधना-भाव में उन्नत होता है, तब वही भक्ति टिक पाती है तथा आत्मा को परमात्मा से सतत सम्बन्ध बनाए रखती है।

—अरविन्द (भवानी-मन्दिर)

भक्ति तब तक पूर्णत: चरितार्थ नहीं होती, जब तक वह कर्म और ज्ञान नहीं बन जाती।

—अरविन्द (विचारमाला और सूत्रावली)

भगवान् का सेवक होना कुछ चीज़ है, भगवान् का दास होना उससे भी बड़ी चीज़ है।

—अरविन्द (विचारमाला और सूत्रावली)

जहाँ भक्ति गाढ़ी हो, युक्ति तुच्छ हो जाती है। भक्ति के स्रोत में युक्ति और तर्क बिलकुल बह जाते हैं।

—विमल मित्र (गवाह नं०३)

यदि कोई मनुष्य कहता है कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ परन्तु भाई से घृणा करता है तो वह झूठा है क्योंकि जब वह उस भाई से तो प्रेम नही करता है जिसे उसने देखा है तो जिस परमात्मा को उसने नहीं देखा है, उससे प्रेम कैसे कर सकता है?

—नवविधान (यूहन्ना, प्रथम पत्र, ४।२०)

कोई भी मनुष्य दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। तुम परमेश्वर और धनलोलुपता दोनों की सेवा नहीं कर सकते।

—नवविधान (मत्ती, ५।२४)

ईश्वर-भजन

प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख।

—तुलसीदास (गीतावली, बालकाण्ड, ६२)

पलटू नर तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।।

—पलटू साहब

भजन सोई जासे भय भाजे, यम की त्रास न होई।
और भजन सब भ्रम की खानी, भरम न भूलौ कोई।

—पानपदास (पानपबोध, पृ० १२७)

भजन विना दुख ना टरे, विकल बने न भजन्न।
का करियैं ज्यों-त्यों वन्यों, तातें तुम न प्रसन्न ॥
— दयाराम (दयाराम सतसई, दोहा ५४)

अमृत जस जुग लाल कौ या विनु अँचो न आन।
मो रसना करिवो करो याही रस को पान ॥
—हरिव्यास देवाचार्य

भजन मन, वचन और तन—तीनों से ही करना चाहिए। भगवान् का चिन्तन मन का भजन है, नाम-गुणगान वचन का भजन है और भगवद्भाव से की हुई जीव-सेवा तन का भजन है।
—हनुमानप्रसाद पोद्दार

निष्काम बुद्धि से किए जाने वाले भजन की तुलना तीनों लोकों के किसी और पदार्थ से नहीं की जा सकती, और विना सामर्थ्य के निष्काम भजन नही होता। मन में कामना रख कर भजन करने से केवल उसका फल मिलता है, पर निष्काम भजन से ईश्वर की प्राप्ति होती है।
—समर्थ रामदास (दासवोध, पृ० २०१)

ईश्वर-महिमा

भीषास्माद् वातः पवते भीषादेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥
इस (ईश्वर) के भय से वायु वहता है। इसके भय से सूर्य उदित होता है। इसके भय से अग्नि, इन्द्र और (इनको मिलाकर) पाँचवाँ मृत्यु दौड़ते है।
—तैत्तिरीय उपनिषद् (२।८।१)

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥
जो परम महातेज है, जो परम महातप है, जो परम महाब्रह्म हैं और जो परम आश्रय है (वह ईश्वर)।
—वेदव्यास [महाभारत, अनुशासन पर्व, १४९।९ अथवा विष्णुसहस्रनाम (९)]

पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां यो अव्ययः॥
जो पवित्रों का पवित्र है, मंगलों का मंगल है, देवों का देव है और प्राणियों का अविनाशीपिता है (वह ईश्वर)।
—वेदव्यास [महाभारत, अनुशासन पर्व, १४९।९ अथवा विष्णुसहस्रनाम (९)]

प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१६)

नूर-सरीखा नूर है, तेज-सरीखा तेज।
जोति-सरीखी जोति है, 'दादू' खेलै सेज ॥
—दादूदयाल (संत-वाणी, पृ० ५८)

मौला, जल से थल करै, थल से जल करि देत।
साहिव, तेरी साहिवी, स्याम कहूँ की सेत ॥
—गरीवदास

ईश्वर-वियोग

वासुरि सुख नाँ रैणि सुख, नाँ सुख सुपिनै माँहि।
कवीर विछुट्या राम सूं, नां सुख धूप न छाँहि ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ८)

वहुत दिनन की जोवती, वाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहीं विश्राम ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ८)

विरह भुवंगम तन वसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जियै जियै तो वौरा होइ ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ९)

अँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ६)

परवति परवति मैं फिर्‌या, नैन गँवाये रोइ।
सो वूटी पाऊँ नहीं, जातै जीवनि होई ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १०)

नैन हमारे जलि गए, छिन छिन लोडैं तुज्झ।
नाँ तूं मिलै न मैं सुखी, ऐसी वेदन मुज्झ ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ११)

सुखिया सव संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कवीर है, जागै अरु रोवै ॥
—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० ११)

हिरदा भीतरि लौं बलै, धुआँ न प्रगट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ०११)

ईश्वर-शरणागति

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

तू सब धर्मों को छोड़कर एक परमात्मा की शरण में जा, परमात्मा तुझे सब पापों से मुक्त करेगा। तू मत शोक कर।

—वेदव्यास (महाभारत भीष्म पर्व, ४२।६६ अथवा गीता १८।६६)

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १६०)

राम भरोसे जो रहहिं पर्वत पर हरियाहिं।

—हिन्दी लोकोक्ति

ईश्वर-स्मरण

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

कोई अपवित्र हो या पवित्र, किसी भी अवस्था में क्यों न हो, जो कमलनयन् भगवान का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर से सर्वथा पवित्र हो जाता है।

—ब्रह्मवैवर्तपुराण (ब्रह्म खंड, १७।१७)

सकल ग्रन्थ का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन रात॥

—दरिया महाराज

'पलटू' शुभ दिन शुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।
लगन मुहूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम॥

—पलटू

सुनत चिकार[1] पिपील[2] की, ताहि रटहु मन माहिं।
'दूलनदास' बिस्वास भजि, साहिब बहिरा नाहिं॥

—दूलनदास

१. आर्तनाद। २. चींटी।

लड़कनपन जिन्दगानी की सहर है,
जवानी जिन्दगी की दोपहर है,
बुढ़ापा शाम है, मालिक को कर याद,
यह दम किस वक़्त निकले क्या ख़बर है।

—'कैफ़' बरेलवी

ईश्वरेच्छा

यथा क्रीडोपस्काराणां संयोगविगमाविह।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम्॥

जैसे खिलाड़ी की इच्छा से खिलौनों का संयोग और वियोग होता है, वैसे ही ईश्वरेच्छा से मनुष्यों का।

—भागवत (१।१३।४२)

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवे-
दमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥

ईश्वर की इच्छा से कहीं विष अमृत और कहीं अमृत विष हो जाता है।

—कालिदास (रघुवंश, ८।४६)

गतिः शक्या परिच्छेतुं न ह्यद्भुतविधेर्विधेः।

अद्भुत विधान वाली विधि की गति को रोका नही जा सकता।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ३।४)

भ्रमन्वनान्ते नवमंजरीषु
न षट्पदो गंधफलीमजिघ्रत्।
सा किं न रम्या स च किं न रन्ता
बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा॥

वनप्रदेश में नव मंजरियों के बीच भ्रमण करता हुआ भौरा गंधफली को नहीं सूंघता तो क्या वह गंधफली रमणीक नहीं है अथवा वह भौरा रमण करने वाला नही है? ईश्वर की इच्छा ही बलवान् होती है।

—अज्ञात

वह्नौ विशुद्धामपि जानकीं तां
जहौ वनान्ते किल रामचन्द्रः।
सा किं न शुद्धा स च किं न वेत्ता
बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा॥

भगवान् राम ने आग के द्वारा विशुद्ध भी जानकी को वन-प्रदेश में छोड़ दिया। क्या सीता पवित्र नही थी अथवा राम जानते नहीं थे? केवल ईश्वर की इच्छा ही बलवान् होती है।

—अज्ञात

अपना किया दूर कर हरि का किया देख।
मिटै न काहू के किये, परसराम हरि लेख ॥

—परशुराम (परशुराम सागर)

ईसा, ईसाई-धर्म

मैंने 'बाइबिल' को समझने का प्रयत्न किया है। मैं उसे अपने धर्मशास्त्र में गिनता हूँ। मेरे हृदय पर जितना अधिकार 'भगवद्गीता' का है, उतना ही अधिकार 'सरमन आन द माउन्ट' का भी है। 'लीड काइंडली लाइट' तथा अन्य अनेक प्रेरणा-स्फूर्त्त प्रार्थना-गीत मैं किसी ईसाईधर्मावलम्बी से कम भक्ति के साथ नही गाता हूँ।

—महात्मा गांधी (मद्रास में स्वदेशी पर भाषण, १४ फरवरी, १९१६)

यूरोप की जनता ईसाई कहलाती है लेकिन वह ईसा के आदेश को भूल गयी है। भले ही वह 'बाइबिल' पढ़े, भले ही वह हिब्रू का अभ्यास करे, लेकिन ईसा के आदेशानुसार वह आचरण नहीं करती। पश्चिम की हवा ईसा के आदेशों के विरुद्ध है। पश्चिम की जनता ईसा को भूल गई है।

—महात्मा गांधी (भाषण नवसारी में, २१-४-१९२१)

ईसा की वाणी में भारतीय चिंतन ही बोला था, यूरोप में उस वाणी की कोई परम्परा ही नहीं थी। इराक़ तक फैले हुए बौद्ध, शैव और वैष्णव चिंतनों का दर्शन ही उसकी पृष्ठभूमि में था।

—रांगेय राघव (महायात्रा : गाथा रैन और चंदा, भाग २, पृ० २९१)

ईसाई संघ ईसा को अपने मत के अनुसार गढ़ने की चेष्टा कर रहा है किन्तु स्वयं को ईसा के जीवनदर्शन के अनुसार गढ़ने की चेष्टा नहीं करता।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७)

यह न समझो कि मैं क़ानून या पैगम्बर को नष्ट करने के लिए आया हूँ। मैं नष्ट करने के लिए नहीं, अपितु पूरा करने के लिए आया हूँ।

—नवविधान (मत्ती, ५।१७)

If Jesus Christ were to come today, people would not even crucify him. They would ask him to dinner, and hear what he has to say, and make fun of it.

यदि आज ईसामसीह आ जाएँ तो लोग उन्हें सलीब पर भी नही चढ़ाएँगे। वे उन्हें भोज देंगे और उन्हें जो कुछ कहना है उसे सुनेंगे और उसका मजाक उड़ाएँगे।

—कार्लाइल

उ

उँगली

दे० 'अंगुलि'।

उचित

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम्।
अन्यत् त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना॥

न्याय-सेवी व्यक्ति को चाहिए कि उचित कारण युक्त होने पर मानवकृत शास्त्र भी ग्रहण कर ले तथा अन्यथा होने पर आर्ष कथन भी छोड़ दे।

—**योगवासिष्ठ**

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

महावीर के प्रति मेरा पक्षपात नहीं है और कपिल आदि के प्रति मेरा द्वेष नहीं है। जिसका वचन युक्तियुक्त है, उसे मैं स्वीकार करता हूँ।

—**हरिभद्र (लोकतत्त्वनिर्णय, ३८)**

उच्चता

दया धर्म हिरदै वसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके ऊँचे नैन॥

—**मलूकदास**

Men in great place are thrice servants: servants of the sovereign or state, servants of fame, and servants of peace.

उच्च पदस्थ मनुष्य तिगुने सेवक होते हैं—शासक या राज्य के सेवक, यश के सेवक और शांति के सेवक।

—**बेकन (एसेज़, आफ़ ग्रेट प्लेस)**

उच्चपद

उच्चैः पदमधितिष्ठँल्
लोकस् तत्त्वेषु मुह्यति प्रायः।
विषयमपि पश्यति समं
पर्वतशिखराग्रमारूढः॥

उच्चपद पर आसीन होकर लोग दृष्टिदोष (व्यामोह) से ग्रस्त हो जाते हैं, जैसे ऊँचे पर्वत के शिखर पर चढ़ा हुआ व्यक्ति भ्रान्तदर्शन का शिकार हो जाता है।

—**अज्ञात**

उच्चारण

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्याः···
सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः···
···सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्याः।

सब स्वर घोषयुक्त और बलयुक्त उच्चारण किए जाने चाहिए···सारे ऊष्म वर्ण अग्रस्त, अनिरस्त एवं विवृत रूप से उच्चारण किए जाने चाहिए···सारे स्पर्श वर्णों को एक-दूसरे से तनिक भी मिलाए बिना ही बोलना चाहिए।

—**छान्दोग्योपनिषद् (२।२२।५)**

उच्छृंखलता

कस्य नोच्छृंखलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम्।

गुरुजनों के शासन से शून्य किसके बाल्यकाल में उच्छृंखलता नहीं आती?

—**सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ६।१)**

सैयाँ भए कोतवाल अब डर काहे का?

—**हिंदी लोकोक्ति**

उज्जैन

अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिंगलाविह व्याडिः।
वररुचिपतंजली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः॥

यहाँ उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, वररुचि और पतंजलि की परीक्षा हुई और वे यहाँ से उत्तीर्ण होकर देश में सर्वत्र प्रसिद्ध हुए।

—**अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, १।१० में उद्धृत)**

इह कालिदास-मेण्ठावत्रामर-रूपसूरभारवयः ।
हरिचन्द्र-चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ।।

इस उज्जयिनी नगरी में कालिदास, भर्तृमेंठ, अमर, रूप, आर्यसूर, भारवि, हरिचन्द्र और चन्द्रगुप्त नामक कवियों की परीक्षा हुई थी ।

—अज्ञात (राजशेखरकृत 'काव्यमीमांसा', १।१० में उद्धृत)

उत्कृष्टता

Men of genius do not excel in any profession because they labour in it, but they labour in it because they excel.

प्रतिभाशाली व्यक्ति किसी कार्य में इसलिए उत्कृष्ट नहीं होते कि वे उसमें परिश्रम करते है। अपितु वे उसमें परिश्रम करते हैं क्योंकि वे उसमें उत्कृष्ट होते हैं ।

—विलियम हैज़लिट (कैरेक्टरिस्टिक्स)

Excellence in any department can be attained only by labour of a lifetime; it is not to be purchased at a lesser price.

किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्टता केवल एक पूरे जीवनकाल के परिश्रम द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है, इससे कम मूल्य पर इसे नहीं खरीदा जा सकता ।

—डॉ० जानसन

The superiority of some men is merely local. They are great because their associates are little.

कुछ लोगों की उत्कृष्टता केवल स्थानगत होती है । वे इसलिए वड़े होते है क्योंकि उनके सहयोगी छोटे होते हैं ।

—डॉ० जानसन

उत्तर

अर्थपतौ भूमिपतौ
बाले वृद्धे तपोऽधिके विदुषी ।
योषिति मूर्खे गुरुषु च
विदुषा नैवोत्तरं देयम् ।।

विद्वान् व्यक्ति को चाहिए कि धनपति, राजा, बालक, वृद्ध, अधिक तपस्वी, विदुषी, स्त्री, मूर्ख और गुरु को उत्तर न दे ।

—अज्ञात

उत्तरदायित्व

नार्हति तातः पुंगवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम् ।

रथ के जिस जुए को वड़ा वैल खींचता है, उसे पिताजी द्वारा छोटे से बछड़े के कन्धे पर डालना ठीक नही है ।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ५।१७ के पश्चात्)

तत्स्थानापन्ने तद्धर्मलाभः ।

जिसका स्थान लिया जाता है, उसका धर्म (उत्तरदायित्व) भी लिया जाता है ।

—अज्ञात

आजादी और ताक़त अपने साथ जिम्मेदारी लाती हैं ।

—पं० जवाहरलाल नेहरू (१४ अगस्त, १९४७ की रात्रि को १२ वजे संविधान सभा में भाषण)

चुनाव के वाद जव तुम्हारा भव्य अभिनंदन किया जा रहा था तो तुम्हारे चेहरे को देखते-देखते मुझे लगा, मानो मैं एक साथ ही राजतिलक और सूली का दृश्य देख रही हूँ। वास्तव में कुछ परिस्थितियों और कुछ अवस्थाओं में ये दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं और लगभग पर्यायवाची हैं ।

—सरोजिनी नायडू (पं० जवाहरलाल नेहरू को पत्र, २९ सितवम्र, १९२९)

हमें अपने आप को नही, अपने उत्तरदायित्वों को गंभीरता से लेना चाहिए ।

—पीतर उस्तीनोव

The business of everybody's is the business of nobody.

जो सब का कार्य है, वह किसी का कार्य नही है ।

—वैरन मैकाले (एडिनवरा रिव्यू में प्रकाशित ऐतिहासिक निवन्ध)

उत्थान-पतन

द्वेषः कस्य न दोषाय प्रीतिः कस्य न भूतये ।
दर्पः कस्य न पाताय नोन्नत्यै कस्य नम्रता ।।

द्वेष से किसमें दोष नहीं आ जाता ? प्रेम से किसकी उन्नति नहीं होती ? अभिमान से किसका पतन नहीं हो सकता ? नम्रता से किसकी उन्नति नहीं हो सकती ?

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।३२)

उन्नत रहा होगा कभी जो हो रहा अवनत अभी,
जो हो रहा अवनत अभी, उन्नत रहा होगा कभी।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० २)

उत्थान के भीतर से पतन का विष बराबर निकला है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वितस्ता की लहरें, पृ० २६)

मनुष्य के जीवन में भी सूर्योदय और सूर्यास्त होता है।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (प्रतिशोध, पृ० १२)

उत्पत्ति

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च॥

ऋषियों का, नदियों का, कुलों का और महात्माओं का तथा स्त्रियों के दुश्चरित्र का उत्पत्तिस्थान नहीं जाना जा सकता।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३५।७२)

सीप न निपजै सिंधु बिन, मुक्ताहल बिन सीप।
साधु न निपजै साधु बिन, परसुराम कहुँ दीप॥

—परशुराम (परशुराम-सागर)

उत्सव

उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः।

मनुष्य उत्सव-प्रेमी होते हैं।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुंतल, ६।४ के पश्चात्)

उत्साह

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।

जिनके हृदय में उत्साह होता है, वे पुरुष कठिन से कठिन कार्य आ पड़ने पर हिम्मत नहीं हारते।

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, १।१२२)

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम्।

उत्साह ही श्री का मूल कारण है। उत्साह ही परम सुख है।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकांड, १२।१०)

अनिर्वेदः श्रियो मूलम्।

उत्साह का होना लक्ष्मी का मूल कारण है।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, १।३५९)

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥

जो अधीर और असमर्थ होते हैं, उनमें उत्साह उत्पन्न नहीं होता। प्रायः उत्साही पुरुष ही राजसंपत्ति का उपभोग करते हैं।

— भास (स्वप्नवासवदत्ता, ६।७)

आपत्काले च कष्टेऽपि नोत्साहस्त्यज्यते बुधैः।

आपत्ति और कष्ट में भी बुद्धिमान उत्साह नहीं छोड़ते।

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।
उत्साहारम्भमात्रेण जायन्ते सर्वसम्पदः॥

हे आर्य! उत्साह बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं। उत्साह के आरम्भमात्र से ही सब सम्पदाएँ उत्पन्न होती हैं।

—अज्ञात

दुःख के वर्ग में जो स्थान भय का है, वही स्थान आनन्द वर्ग में उत्साह का है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि भाग १, उत्साह)

कर्म-सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि भाग १, उत्साह)

कर्म-भावना-प्रधान उत्साह ही सच्चा उत्साह है। फल-भावना-प्रधान उत्साह तो लोभ ही का एक प्रच्छन्न रूप है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि भाग १, उत्साह)

कोई बुलन्दी हो कोई पस्ती,
व हर क़दम एक रक्से मस्ती।
रुकूं तो रुक जाए नब्ज़ेहस्ती
चलूं तो चलने लगे ज़माना।

—शारब

सियाह रात है यह, मशालें दिलों की जलाओ।
कहीं चिराग़ जलाने से काम चलता है।

—शारब

इस पृथ्वी पर एक ख़ास तरह के आदमी हैं जो मानों फूस की आग हैं। वे झट से जल भी उठते हैं और फिर चटपट बुझ भी जाते हैं। उन लोगों के पीछे सदा-सर्वदा एक आदमी रहना चाहिए जो अवश्यकता के अनुसार उनके लिए फूस जुटा सके।

—शरत्चन्द्र (बड़ी बहन, पृ० ११३)

जब किसी मामले में दिल ही हाथ को न उठावे तब बाहु ही हाथ को क्योंकर उठायेगा।

—मुतनब्वी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ४)

मैं बुद्धिमत्ता की उदासीनता की अपेक्षा उत्साह की गलतियों को बेहतर मानता हूँ।

—अनातोले फ्रांस

If wrinkles must be writen upon owr brows, let them not be written upon the heart The spirit should not grow old.

यदि झुर्रियाँ हमारे माथे पर पड़नी ही है तो भी उन्हें हृदय पर मत पड़ने दो। उत्साह को कभी भी वृद्ध नही होना चाहिए।

—जेम्स ए० गार्फ़ील्ड

In War : Resolution
In Defeat : Defiance
In Victory : Magnanimity
In Peace : Good will

युद्ध में : दृढ़ संकल्प
पराजय में : विद्रोह
विजय में : औदार्य
शांति में : सद्भावना

—विंस्टन चर्चिल

Nothing great was ever achieved without enthusiasm.

विना उत्साह के कोई महान् उपलब्धि कभी नही हुई।

— एमर्सन (एसेज, सर्किल्स)

उत्सुकता

न ह्यौत्कण्ठ्यं भवति समयापेक्षमुत्कण्ठितानाम्।

उत्कंठित व्यक्तियों की उत्कण्ठा समय की अपेक्षा करके नहीं होती।

—कर्णपूर (आनंदवृन्दावनचम्पू, २२।१३)

Curiosity in children is but an appetite for knowledge.

वालकों में उत्सुकता तो ज्ञान की भूख मात्र है।

—जॉन लॉक

There is a triple sight in blindness keen.

उत्सुक अंधेपन में देखने की शक्ति तिगुनी होती है।

—कीट्स ('टू होमर' कविता)

उदारता

सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम्।

सर्वत्र उदारता से काम नहीं करना चहिए।

— भास (अविमारक, १।९ के पश्चात्)

सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति।

उदार जन का सेवक भी उदार ही होता है।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ४।६ के पश्चात्)

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

उदारचरित वाले व्यक्तियो के लिए सारी पृथ्वी कुटुम्ब है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ५।३८)

रिपुष्वपि हि भीतेषु सानुकम्पा महाशयाः।

उदार हृदय वाले व्यक्ति भयभीत शत्रु के प्रति भी कृपालु ही होते है।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ५।३)

उदारचरितात् त्यागी याचितः कृपणोऽधिकः।
एको धनं ततः प्राणान् अन्यः प्राणांस् ततो धनम्॥

उदार चरित्र के कारण एक (त्यागी व्यक्ति) से कृपण की तुलना में अधिक याचना की जाती है क्योंकि त्यागी तो पहले धन और तब प्राण देता है, जवकि दूसरा (कृपण) पहले प्राण देता है तव धन।

—अज्ञात

औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, कर्म सर्ग)

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ?
इसमें क्या है धरा, सुनो,
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित
मेरे क्षितिज! उदार बनो।

—जयशंकर प्रसाद (लहर, पृ० ३३६)

चांद जैसा खिल अगर सकता नहीं,
क्यों न तो वह फूल जैसा ही खिले।
क्या छोटाई में भलाई है नहीं,
दिल करे छोटा न छोटा दिल मिले॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(चोखे चौपदे, पृ० १९९)

आँ कस रा कि सखावतस्त व शुजाअत हाजत नेस्त।

जिसमे उदारता है उसे वीरता की अवश्यकता नहीं है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, दूसरा अध्याय)

तंगि मजहब में न मायूं, क़ौमियत में जाइ दे,
भाहपीअ, इन्सानियत, रूहानियत में जाइ दे,
छदि दुईअ जी दीद मेरी—तूं वि रहु माँ भी रहां॥

तंग मज़हबों में सीमित न हो जाओ। राष्ट्रीयता को स्थान दो। भ्रातृत्व, मानवता तथा आध्यात्मिकता को स्थान दो। द्वैत-भावना की मलिन दृष्टि को त्याग दो— तुम भी रहो, मैं भी रहूँ।

[सिन्धी] —किशिनचंद वेवस ('वदी दिलि' कविता)

उदार हृदय वाला पुरुष जब तक जीता रहता है तब तक आनन्द से ही रहता है। और संकीर्ण हृदय वाला आयु पर्यन्त दुःखी ही रहता है।

—कैस-बिन इल खतीम (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० २)

उदारता का अभाव

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नही, फल लागै अति दूर॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० १३५)

उदासीनता

आपो विमुक्तः क्वचिद् आप एव,
क्वचिन्न किंचिद् गरलं क्वचिच्च।
यस्मिन् विमुक्ताः प्रभवन्ति मुक्ताः
पायोद तस्मिन् विमुखः कुतस्त्वम्॥

हे मेघ! तुम्हारे द्वारा छोड़ा हुआ पानी कहीं पानी रहता है, कहीं नही रहता है, और कही विष बन जाता है। जहाँ गिरकर तुम्हारा जल मोती बनता है, वहाँ से तुम विमुख क्यों हो?

—अज्ञात

शाम से ही बुझा-सा रहता है
दिल हुआ है चिराग़[1] मुफ़लिस[2] का।

—मीर

इन उजड़ी हुई बस्तियों में दिल नहीं लगता
है जी में वही जा बसें वीराना जहाँ हो।

—मीर

जहाँ[3] में हो ग़मो-शादी व हम[4], हमें क्या काम?
दिया है हमको खुदा ने वह दिल कि शाद[5] नहीं।

—ग़ालिब (दीवान)

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ यारब
क्या लुत्फ़ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो।

—इक़बाल

लुत्फ़े बाहर कुछ नहीं, गो है वही बहार।
दिल क्या उजड़ गया कि ज़माना उजड़ गया।

—आरज़ू

उदाहरण

Example is always more efficacious than precept.

उपदेश की अपेक्षा उदाहरण अधिक सदैव प्रभावोत्पादक होता है।

—डॉ० जानसन (रेसिलास, अध्याय २९)

Example is the School of mankind, and they will learn at no other.

मानवों का विद्यालय 'उदाहरण' है और वे अन्यत्र कुछ नहीं सीखेंगे।

—एडमंड बर्क (एक पत्र में)

उद्देश्य

आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्।

उन्नति और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवात्मा का उद्देश्य है।

—अथर्ववेद (५।३०।७)

Better to have a bad purpose than no purpose at all.

उद्देश्यविहीनता से तो बुरा उद्देश्य होना अधिक अच्छा है।

—कार्लाइल (एक वार्तालाप में)

---

१. दीपक। २. निर्धन। ३. संसार। ४. साथ साथ। ५. प्रसन्न।

उद्धरण

Quotation is the highest compliment, you can pay to an author.

किसी लेखक का उच्चतम सम्मान उसे उद्धृत करना है।

—डॉ० जानसन

Classical quotation is the parole of literary men all over the world.

उत्कृष्ट उद्धरण विश्व भर में साहित्यिकों का पैरोल है।

—डॉ० जानसन (विल्क्स से कथन, १७८१)

Every quotation contributes something to stability or enlargement of the language.

हर उद्धरण भाषा के स्थायित्व अथवा विस्तार में कुछ न कुछ योगदान करता है।

—डॉ० जानसन, (डिक्शनरी आफ दि इंग्लिश लैंग्वेज)

The art of quotation requires more delicacy in the practice than those conceive who can see nothing more in a quotation than an extract.

जो लोग उद्धरण में किसी बात के सार मात्र से अधिक नहीं देख सकते, वे उद्धरण-कला में जितनी सूक्ष्मता की कल्पना करते हैं, उससे अधिक की आवश्यकता होती है।

—आइजक डिजरायली (एसेज आन लिटरेरी कैरेक्टर, आन बेले)

The wisdom of the wise and the experience of ages, may be preserved by quotation.

उद्धरणों के द्वारा बुद्धिमानों की बुद्धिमत्ता तथा युग-युग के अनुभवों को सँजोया जा सकता है।

—आइजक डिजरायली (आन बेले)

He who never quotes is never quoted.

जो कभी उद्धृत नहीं करता, उसे भी कभी उद्धृत नहीं किया जाता।

—'रिलीजस क्वटेशन्स' की भूमिका

उद्बोधन

अश्मन्वती रीयते सं रमध्वं
वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा
अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्॥

पाषाणों से भरी नदी बहती जा रही है। साथ-साथ चलो। वीरों के समान बढ़ो और हे सखाओ! विपत्तियों को पार करो। जो दुष्ट हैं, उन्हें यहीं त्याग दो और जो कल्याणकारी शक्तियाँ है, पार करके उन तक पहुँचो।

—अथर्ववेद (१२।२।२६)

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद् वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः।

कायर! तू इस प्रकार बिजली के मारे हुए मुर्दे की भाँति यहाँ क्यों निच्चेष्ट होकर पड़ा है? तू खड़ा हो, शत्रुओं से पराजित होकर यहाँ पड़ा मत रह।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३।१२)

मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ गर्जितः॥

तू दीन होकर अस्त न हो जा। अपने शौर्यपूर्ण कर्म से प्रसिद्धि प्राप्त कर। तू मध्यम, अधम अथवा निकृष्ट भाव का आश्रय न ले, वरन् युद्धभूमि में सिंहनाद करके डट जा।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३।१३)

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वागच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किं निमित्तं हि जीवसि॥

हे पुत्र! धर्म को आगे रखकर या तो पराक्रम प्रकट कर अथवा उस गति को प्राप्त हो जा, जो समस्त प्राणियों के लिए निश्चित है, अन्यथा किसलिए जी रहा है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३।१८)

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि॥

तू धैर्य और स्वाभिमान का अवलम्बन कर। अपने पुरुषार्थ को जान और अपने कारण डूबे हुए इस वंश का तू स्वयं ही उद्धार कर।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३।२१)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

हे अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह तेरे योग्य नहीं है। हे परंतप! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए खड़ा हो।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।३ अथवा गीता, २।३)

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति
मुधामलिनं यशः कुरुध्वे ॥

यदि युद्ध को छोड़ने पर मृत्यु का भय न हो तव तो अन्यत्र भाग जाना उचित है। किन्तु प्राणी की मृत्यु अवश्य ही होती है। तो फिर यश को व्यर्थ क्यों कलंकित कर रहे हो?

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ३।६)

तिण्णोहु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ?
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम मा पमायए ॥

तू महासमुद्र को तैर चुका है, अब किनारे आकर क्यों बैठ गया? उस पार पहुँचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षण भर के लिए भी प्रमाद उचित नही है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१०।३४)

अधुवं जीवियं नच्चा, सिद्धमग्गं वियाणिया।
विणि अट्टेज्ज भोगेसु, आउ परिमिअमप्पणो ॥

जीवन अनित्य है। सिद्धमार्ग को पहचानो। काम भोगों से वचो। आयु सीमित है।

[पालि] —कामसुत्तं

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्यपंथ है बढ़े चलो, बढ़े चलो।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त)

संसार को तुम जैसे साधकों की ज़रूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्ध-विश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त-पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहाँ से आयेंगे?

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ०३४५)

चार डग हमने भरे तो क्या किया,
है यहाँ मैदान कोसों का अभी।
काम जो है आज के दिन तक हुए,
है न होने के वरावर वे सभी॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (नागरीप्रचारिणी सभा के भवन-प्रवेश के समारोह में पठित)

तुम हो महान्,
तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं,
पूरा यह विश्व भार—
जागो फिर एक वार।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० २०)

मैं निशा वनकर तुम्हें सोने न दूँगा,
मैं उषा वनकर जगाने आ रहा हूँ,
आज अस्ताचल तुम्हें जाने न दूँगा,
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ।

—सोहनलाल द्विवेदी

आओ, पूर्ण मानव वनो। पूर्ण मानव वनने के लिए चतुर्विध पुरुषार्थ ग्रहण करो। उसके आधार पर समाज की सुव्यवस्था, सुख-सम्पन्नता का पोषण करो। इस प्रकार एक नियंत्रित व्यक्तिगत जीवन का निमार्ण करो। व्यक्तिगत जीवन के अर्थ-काम को सव प्रकार से क़ावू में रखो। कर्म-पुरुषार्थ की उपासना करके अपने जीवन को धन्य वनाओ।

—माधव स० गोलवलकर ('परिपूर्ण मानव' विषय पर भाषण, कानपुर, २२ फ़रवरी १९७२)

हाँ जवानाने वतन ख़्वाव से वेदार हो अव
सो चुके, रात भी आखिर हुई हुशियार हो अव।

—व्रजनारायण चकवस्त (सुवह वतन, पृ०३६)

हम वक़्त के सीने में इक शम्अ जला जायें
सोयी हुई राहों के जर्रों को जगा जायें
कुछ रंग उड़ा जायें कुछ रंग जमा जायें
इस दश्त को नग़मों से गुलज़ार वना जायें
जिस सिम्त से गुजरें हम कुछ फूल खिला जायें।

—फ़िराक़ गोरखपुरी (वज़्मे ज़िंदगी, रंगे शायरी, पृ० २१०)

खेतों को दे लो पानी यह वह रही है गंगा
कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं।

—हाली

वाला चाल म वीसरै मो थण जहर समाण।
रीत मरंताँ ढील की ऊठ थयो घमसाण॥

हे पुत्र ! अपनी चाल को मत भूल। मेरा दूध ज़हर के समान है। फिर मरने की रीति-पालन में शिथिलता क्यों? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

पान पनुन परज़नाव छाव पनुन लोल बाग़
दाग़-गुलामी मिटाव हवाव पनुन दिलदिमाग़
चोन्य खयालन बनोव्य ख़्वाजअमीर बड्य नवाब
इन्क़लाब अन, इन्क़लाब अन इन्क़लाब
सजदि कमन छुख करान खोफ़ कह्न्दि छुग मरान
लाल छुख बागरान ब्रान्दकन्यन सोन जरान
असि त्युहुन्द ख़ून सोरख़ छुय चे रगन मंज आब
इन्क़लाब अन, इन्क़लाब अन इन्क़लाब।

हे देशवासी, तू अपने आप को पहचान। अपने हृदय व मस्तिष्क से काम लेकर तू परतंत्रता का दाग़ मिटा दे। तू क्रान्ति ला, क्रान्ति ला। तेरी मेहनत की कमाई से दूसरे धनवान बन रहे है। तू किन के सामने भटकता है और किन के भय से डरता है। अपने ख़ून-पसीने से तू जिनके लिए नींव बना रहा है, वही लोग तुझे हेय समझते हैं। हे पौरुषहीन ! उठ क्रांति ला, क्रांति ला।

[कश्मीरी] —अब्दुल अहद आजाद
(कविश्रीमाला, पृ० २८)

आपनि अवश होलि, तबे बल दिबि तुइ का रे !
उठे दाँड़ा, उठे दाँड़ा, भेड़े पड़िस ना रे !
करिस ने लाज, करिस ने भय,
अपना के तुइ करे ने जय,
सबाई तखन साँड़ा देवे डाक दिबि तुइ जारे।
बाहिर यदि हलि पथे, फिरित तनि तुइ कोनोमते।
थेके थेके पिछन पाने चास ने बारे-बारे।
नेई-ये रे भव त्रिभुवने, भय शुधु तोर निजेर मने,
अभय-चरण शरण करे, बाहिर हये जारे।

तू स्वयं अवश हो गया तो फिर दूसरों को क्या बल देगा? उठ खड़ा हो, उठ खड़ा हो, हिम्मत न हार। मत लजा, मत डर, तू अपने आपको जीत ले, फिर तू जिसे पुकारेगा, वही जवाब देगा। यदि तू मार्ग में निकल पड़ा है तो अब किसी बात से पैर पीछे न हटा। रह-रह कर पीछे की ओर बार-बार न देख। अरे, त्रिभुवन में कहीं भी भय नहीं है, भय है केवल तेरे अपने मन में।

अभय-चरण की शरण ग्रहण कर बाहर चला जा।

[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

धर्मासाठीं मरावे, मरोनि अवध्यांसी मारावें।
मारितां मारितां घ्यावें। राज्य आपुलें॥
मराठा तितुका मेळवावा। आपुला राष्ट्रधर्म बाढ़वावा।
येविशीं न करितां तकवा। पूर्वज हासती॥

धर्म हेतु प्राण विसर्जित करो। मृत्यु का आलिंगन करते-करते भी शत्रुओं का संहार करो, राज्य-प्राप्ति के लिए प्राण भी विसर्जित कर दो, मराठों को संगठित करो, राष्ट्र-धर्म को विकसित करो। यदि तुम अपने इस कर्त्तव्य से च्युत हुए तो पूर्वजों के परिहास के पात्र बनोगे।

[मराठी] —समर्थ रामदास स्वामी

बल वीर
चिर उन्नत मम शिर।

बोलो वीर—मेरा मस्तक सदैव ऊँचा है।

[बंगला] —काजी नजरुल इस्लाम

आहे तितुकें जतन करावें। पुढें आणिक मेलवावें॥
महाराष्ट्र राज्यचि करावें जिकड़े-तिकड़े॥

जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसे बचाने का यत्न करो और उसकी वृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहो। यत्र-तत्र सर्वत्र महाराष्ट्र राज्य की स्थापना व प्रसार करो।

[मराठी] —समर्थ रामदास स्वामी

ऐसे अवघेंची उठता। परदलाची कायती चिता।
हरिणे चलती उठताँ चित्ता। चहूँकडे॥

इसी भाँति यदि सम्पूर्ण विश्व भी हमारा विरोध करने पर उतर आए तब भी चिन्ता का कोई कारण उपस्थित नहीं। शत्रु-सेना से भयभीत न होकर, शत्रुओं की सेना को यत्र-तत्र भाग कर खड़े होने वाले हरिणों के तुल्य ही समझो।

[मराठी] — समर्थ रामदास स्वामी

पगला भरवा मांडो रै।
हवै नव बार लगाडो रै,
आज ऊठशुं काल ऊठशुं,
लम्बावो नहि दहाड़ा,

विचार करताँ विघनो मोर।
वचमाँ आवै आड़ा,
कुटुंब माया क्यम छोड़ाये,
कुटुवनु क्यम थाशे,
एम फस्यौ ते जनानी पूरो,
रणमाँ शुं पछी जाशे ?

क़दम आगे वढ़ाओ। अव देर मत करो। आज उठेंगे,कल उठेंगे, कहकर दिन मत वढ़ाओ। सोचते-सोचते मार्ग में वड़े विघ्न आ जाते हैं। कुटुम्व की माया कैसे छू सकती है, कुटुम्व का क्या होगा, इस तरह के विचारों में जो फँसा रहता है वह विल्कुल स्त्रैण है। वह रण में क्या जाएगा !

[गुजराती] —अज्ञात

सहु चलो जीतवा जंग, व्युगलो वागे
या होम करी ने पड़ो, फतेह छे आगे।
केटलाक करमो विषे, ढील नव चाले,
शंका भय तो वहु रोज, हामने खाले,
हजी समय नथी आवियो, कही दिन गाळे,
जन वहानुं करे नव सरे, अर्थ को काले।
झपलाव वाथी सिद्धि जोई वळ लागे।

सव लोग युद्ध जीतने चलो। 'या होम' कहकर सव लोग युद्ध में कूद पड़ो, आगे विजय है। कुछ कामों में ढील नहीं चलती। शंका और भय तो नित्य हमें सताते ही रहते हैं। 'अभी समय नहीं आया' कहकर जो दिन विताते हैं वे वहाना करते हैं, इससे काम नहीं चलेगा। कल पर छोड़ने से कोई लाभ न होगा। जूझ पढ़ने में सिद्धि है—यह देखकर वल आता है।

[गुजराती] —अज्ञात

सवसे पहले भारतीय वन जाओ। अपने पूर्व-पुरुषों की पैतृक सम्पत्ति को फिर से प्राप्त करो। आर्य-विचार, आर्य अनुशासन, आर्य चरित्र और आर्य जीवन को पुनः प्राप्त करो। वेदान्त, गीता और योग को फिर से प्राप्त करो। उन्हें केवल वुद्धि या भावना से ही नहीं, अपितु जीवन द्वारा पुनः जीवित कर दो।

—अरविन्द (कर्मयोगी का आदर्श)

शान्ति-स्वस्तिहीन सम्मान-र्वाजत प्राण क्या अकेले भारत के तरुणों के लिए ही इतने वड़े लोभ की वस्तु है? देश को क्या वूढ़े लोग वचावेंगे ?

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह, पृ० २६५)

सुरा-कुंभ पर मोहित हुए विना सुधा-कुंभ का पान करके सदा आनन्द प्राप्त करो।

—तपोवनम् महाराज (हिमगिरि-विहार, पृ० २८४)

उद्यम

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते॥

वार-वार कार्यनाश होने पर कार्यो का आरम्भ वार-वार करता रहे क्योंकि वरावर कार्यारम्भ करने वाले मनुष्य को विजय श्री निश्चित ही मिलती है।

—मनुस्मृति (९।३००)

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित्॥

वीर पुरुष को चाहिए कि वह सदा उद्योग ही करे, किसी के सामने नतमस्तक न हो, क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषत्व है। वीर पुरुष असमय में ही नष्ट भले ही हो जाय, परन्तु कभी शत्रु के सामने सिर न झुकावे।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १२७।१९)

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्।

आलस्य सुखरूप प्रतीत होता है परन्तु उसका अन्त दुःख है तथा कार्यदक्षता दुःखरूप प्रतीत होती है परन्तु उससे सुख का उदय होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २७।३०)

भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे।

ऐश्वर्य, लक्ष्मी, लज्जा, धृति और कीर्ति—ये कार्यदक्ष पुरुष में ही निवास करते हैं, आलसी में नहीं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २७।३१)

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो विलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥

जैसे साँप बिल में रहने वाले चूहों को निगल जाता है, उसी प्रकार दूसरों से लड़ाई न करने वाले राजा तथा विद्याध्ययन आदि के लिए घर छोड़कर अन्यत्र न जाने वाले ब्राह्मण को पृथ्वी निगल जाती है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, ५७।३)

उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति।
उत्थानवीरान् वाग्वीरा रमयन्त उपासते॥

जो उद्योग में वीर है वह पुरुष वाग्वीर पुरुषों पर अपने आधिपत्य जमा लेता है। वाग्वीर विद्वान् उद्योगवीर पुरुषों का मनोरंजन करते हुए उनकी उपासना करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, ५८।१५)

न ह्यनारुह्य नागेन्द्रं वैजयन्ती निपात्यते।

विना हाथी पर चढ़े हुए हाथी के ऊपर की पताका हस्तगत नही हो सकती।

—भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।१९)

वीर्यं परं कार्यकृतौ हि मूलं
वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः।
उदेति वीर्यादिह सर्वसंपन्-
निर्वीर्यता चेत् सकलश्च पाप्मा॥

कार्य की सफलता का मूल कारण है उत्तम उद्योग। उद्योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं होती है। उद्योग से ही सब समृद्धियों का उदय होता है और जहाँ उद्योग नहीं है, वहाँ पाप ही पाप है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १६।९४)

अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः।

उद्योग ही धन-सम्पत्ति का मूल कारण है और उद्योगी न होना अनर्थों का कारण है।

—चाणक्य (अर्थशास्त्र, १।१९।४०)

न हि दुष्करमस्तीह किंचिदध्यवसायिनाम्।

अध्यवायी व्यक्तियों को इस लोक में कुछ भी दुष्कर नही है।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर)

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

कार्य उद्यम से सिद्ध होते है, मनोरथों से नहीं। सोते हुए सिंह के मुख में मृग कभी प्रवेश नहीं करते।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, २।१४१)

अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति।

विना उद्योग किए कोई तिल से भी तेल प्राप्त नही कर सकता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका, ३०)

न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः करोति विज्ञानविधिर्गुणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः॥

उद्योग से भागने वाले मनुष्य को विज्ञान का विधान कुछ भी लाभ नही पहुँचा सकता जैसे अन्धे के हाथ में रखा हुआ भी दीपक उसकी अभिलषित वस्तु दिखाने में समर्थ नहीं होता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१६८)

नास्त्युद्यमसमो वन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति।

उद्योग के समान वन्धु नहीं है, जिसे करने से दुःख प्राप्त नहीं होता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८७)

स्यादुद्यमः कृतधियां हि फलोदयान्तः।

निश्चय ही दृढ़निश्चयी लोगों का परिश्रम फलप्राप्ति पर्यन्त चलता रहता है।

—अज्ञात

गच्छन् पिपीलिका याति योजनानां शतान्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

चींटी भी चलते हुए सैकड़ों योजन चली जाती है और न चलने पर गरुड़ भी एक पद भी नही चल सकता।

—अज्ञात

आपत्कालोपयुक्तासु कलासु स्यात् कृतश्रमः।

आपत्ति के समय उद्योग में आने वाली कलाओं में मनुष्य को कुशलता प्राप्त करने हेतु परिश्रम करना चाहिए।

—अज्ञात

कोसेज्जं भयतो दिस्वा, विरियारंभं च खेमतो।
आरद्धविरिया होथ, एसा बुद्धानुसासनी॥

आलस्य को भय के रूप में और उद्योग को क्षेम के रूप में देखकर मनुष्य को सदैव उद्योगशील पुरुषार्थी होना चाहिए—यह बुद्ध का अनुशासन है।

[पालि] **—चरियापिटक (७।३।१२)**

यो च वस्ससतं जीवं कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो वीरियमारभतो दळ्हं॥

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़ उद्योग करने वाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है।

[पालि] **—धम्मपद (८।१३)**

जो पहले कीजै जतन, सो पीछे फलदाय।
आग लगे खोदै कुआँ, कैसे आग बुझाय॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, १७६)

पीछे कारज कीजिये, पहिले पहुँच पसार।
कैसे पावत उच्च फल, बावन बाँह पसार॥

—वृन्द (वृन्दसतसई)

जो हम हो नहीं सकते, उसके लिए प्रयत्न करना बेकार है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० २५)

मैं बालू में से भी तेल निकालने का प्रयत्न करता हूँ बशर्ते कि वह बालू मुझे अच्छी लग जाए।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ३६)

दुर्लभ रत्न के लिए समुद्र की तलहटी में जाना पड़ता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वत्सराज, पृ० २८)

एक इतवार के व्रत से जनम का कोढ़ नहीं जाता।

—हिन्दी लोकोक्ति

उद्योगाचे घरी, रिद्धि सिद्धि पानी भरी।

उद्योग के घर में रिद्धि-सिद्धि पानी भरती हैं।

—मराठी लोकोक्ति

उचित उपाय से न किया हुआ प्रयास अन्य अनेक व्यक्तियों का आश्रय प्राप्त होने पर भी व्यर्थ हो जायेगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४६७)

सौभाग्य न होना किसी के लिए दोष नहीं है। समझकर सत्प्रयत्न न करना ही दोष है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६१८)

जिसके जीवन में प्रयत्नशीलता नहीं, वह या तो पशु है या मुक्त है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० २६८)

हमारा महान् गौरव कभी भी न गिरने में नहीं है, अपितु जब भी गिरें तो हर बार उठने में है।

—कन्फ्यूशस

देवता हमें कठोर परिश्रम के मूल्य पर सभी अच्छी वस्तुएँ देते हैं।

—एपिकारमस

उद्योग सब पर विजय प्राप्त करता है।

—वर्जिल

'T is a lesson you should heed :
Try, try, try again.
If at first you don't succeed,
Try, try, try again.

यह ऐसी शिक्षा है जिस पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए, प्रयत्न करो, प्रयत्न करो, पुनः प्रयत्न करो। यदि पहली बार में तुम सफल नहीं होते, तो प्रयत्न करो, प्रयत्न करो, पुनः प्रयत्न करो।

—विलियम एडवर्ड हिक्सन (ट्राई एंड ट्राई अगेन)

उद्योग

दे० 'उद्यम'।

उधार

दे० 'ऋण'।

उन्नति

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था।

हे मनुष्य! तू ऊपर चढ़, नीचे मत गिर।

—अथर्ववेद (८।१।४)

आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा।
विपरीतं द्विषतस्त्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः॥

अपनी उन्नति छह प्रकार की होती है। अपनी वृद्धि, मित्र की वृद्धि और मित्र के मित्र की वृद्धि तथा शत्रु पक्ष में इसके विपरीत स्थिति अर्थात् शत्रु की हानि, शत्रु के मित्र की हानि तथा शत्रु के मित्र के मित्र की हानि।

— वेदव्यास (महाभारत, शल्य पर्व, ६०।१३-१४)

परस्पर विरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भयादुद्भूतये सताम्॥

परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी और सरस्वती का, एक ही स्थान पर कठिनता से पाया जाने वाला मेल सत्पुरुषों की उन्नति करने वाला हो।

— कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ५।२४)

दिन दिन ऊँच होइ सो जेहि ऊँचे पर चाउ।
ऊँचे चढ़त परिअ जौ ऊँच न छाड़िअ काउ॥

—जायसी (पदमावत, १६३)

उन्नति का मूल आत्मसमर्पण है, उन्नति का अर्थ है आत्मज्ञान।

—महात्मा गांधी (महादेवभाई की डायरी, भाग ३, ८१)

उन्नति का बीज-मंत्र सेवा और प्रेम है, न कि आज्ञा और बल-प्रयोग।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ६)

किसी देश की उन्नति छोटे विचार के बड़े आदमियों पर नहीं, किन्तु बड़े विचार के छोटे आदमियों पर निर्भर है।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ६)

स्वरूप की रक्षा होते हुए भी उन्नति, उन्नति है। स्वरूप-विनाश से उन्नति, उन्नति कदापि नहीं कही जा सकती।

—हरिहरानंद सरस्वती (करपात्रीजी)
(भक्ति-सुधा, द्वितीय खण्ड, पृ० ६५)

उन्मनी अवस्था

नादो यावन्मनस्तावन्नादान्तेऽपि मनोन्मनी।

जब तक नाद है तब तक मन है। नाद का अन्त होने पर मन भी उन्मन (अ-मन) हो जाता है।

—नादबिन्दूपनिषद् (श्लोक ४८)

मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किंचित्सचराचरम्।
मनसो ह्युन्मनीभावाद् द्वैतं नैवोपलभ्यते॥

यह जो कुछ चराचर जगत् है, वह मनोदृश्य है। मन के उन्मनीभाव से द्वैत प्रतीत ही नहीं होता है।

—स्वात्मारामयोगींद्र (हठयोगप्रदीपिका, ४।६१)

मन लागा उनमन्न सौं, गगन पहूँचा जाइ।
देख्या चंद विहूँणा चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन जाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० १३)

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या गगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियारा॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ११०)

ना घर भला न वन भला, जहाँ नहीं निज नाँव।
दादू उनमनी मन रहे, भला तो सोई ठाँव॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयालजी की वाणी, पृ० ४५)

उपकार

दे० 'परोपकार' भी।

एतावान् पुरुषस्तात कृतं यस्मिन् न नश्यति।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः॥

तात! जिसके प्रति किया हुआ उपकार उसका बदला चुकाए बिना नष्ट नहीं होता, वही पुरुष है। दूसरा मनुष्य उसके प्रति जितना उपकार करे, वह उससे भी अधिक उस मनुष्य का प्रत्युपकार कर दे।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, १५६।१४)

यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद् बहुगुणं ततः।

दूसरा मनुष्य जितना उपकार करे, उससे कई गुना अधिक प्रत्युपकार स्वयं उसके प्रति करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व, १६२।१५)

प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत्॥

प्राणियों का उपकार करने के लिए जो कुछ इस लोक और परलोक में हो, उसे ही बुद्धिमान कर्म, मन और वाणी से करे।

—विष्णुपुराण (३।१२।४५)

योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः।
भ्रमन्ति पृथ्वीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः॥

लोगों का उपकार करने वाले योगी विविध रूपों से इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं। उनके स्वरूप ज्ञात नहीं रहते।

—विष्णुपुराण (३।१५।२३)

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम्।

प्रत्युपकारी मनुष्य विपत्ति में ही अपने कार्य का फल प्राप्त करता है।

—भास (चारुदत्त, ४।७)

सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।

महापुरुषों के प्रति सद्भावपूर्ण उपकार शीघ्र ही फल देता है।

—कालिदास (मेघदूत, पूर्व, १६)

नाल्पीयान् बहु सुकृतं हिनस्ति दोषः।
थोड़ा दोष अतिशय उपकार का नाश नहीं करता।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ७।१५)

उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन।

उपकार्य के अभाव में उपकारी सामग्री से क्या लाभ?

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ५।३ के पश्चात्)

अवमानितोऽपि न तथा दूयते सज्जनो विभवहीनः।
प्रतिकर्त्तुमसमर्थो मान्यमानो यथा परेण॥

विभवहीन सज्जन अपमानित होने पर उतना दुखी नहीं होता जितना दूसरों के द्वारा सम्मानित होने पर प्रत्युपकार करने में असमर्थ होने पर होता है।

—हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, ४।२०)

मोघा हि नाम जायेत महत्सूपकृतिः कुतः।

महान् पुरुषों के प्रति किया गया उपकार कार्य निष्फल कैसे हो सकता है!

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ३।४)

नीचेषूपकृतं राजन् बालुकास्विव मूत्रितम्।

हे राजन्! नीच के प्रति किया गया उपकार बालुका पर मूत्र-त्याग करने के समान है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।१२)

अपकारदशायामप्युपकुर्वन्ति साधवः।
छिन्दन्तमपि वृक्षः स्वच्छायया किं न रक्षति॥

अपकार किये जाने पर भी सज्जन उपकार करते हैं। क्या वृक्ष अपनी छाया से वृक्ष को काटने वाले की भी रक्षा नहीं करता है?

—नीलकंठ दीक्षित (सभारंजनशतक)

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार।
लहहिं न बदलो साधु जन बदलो लघु व्यौहार॥

—रत्नावली

वही नेकी अगर करने वालों के दिल में रहे तो नेकी है, बाहर निकल आए तो बदी है।

—प्रेमचन्द (गोदान, २६७)

नेकी कर कुएँ में डाल।
[इसी को इस रूप में भी पाया जाता है—
अहसान कर और दरिया में डाल।]

—हिन्दी लोकोक्ति

तलवार मारे एक बार, अहसान मारे बार-बार।

—हिन्दी लोकोक्ति

जिसने कुछ एहसाँ[1] किया,
इक बोझ हम पर रख दिया॥
सर से तिनका क्या उतारा,
सिर पै छप्पर रख दिया॥

—ब्रजनारायण 'चकबस्त'

त्रेशि व्वछि मो क्रेशिनावुन
यान्य् छ्ययि ताज संदारुन दिह।
फ्रठ चोन धारुन तेॅ पारुन,
कर व्वपकारुन स्वयं छै क्रय॥

भूख-प्यास से इस देह को तड़पाना नहीं। ज्यों ही बुझने लगे, त्योंही इसे सँभालना। तेरे व्रत-उपवास और साज-सिंगार पर धिक्कार। उपकार कर यही तेरा परम कर्तव्य-कर्म है।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

1. उपकार।

तुका म्हणे आतां । उरलो उपकारा पुरता ।।

तुकाराम कहते हैं कि अब मैं उपकार के लिए ही रह गया हूँ।

[मराठी] —तुकाराम

पुत्र को सभा में अग्रिम स्थान में बैठने योग्य बनाना पिता का सबसे बड़ा उपकार होगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६७)

तृणतुल्य भी उपकार क्यों न हो, उसके फल को समझने वाले उसे ताड़ के समान मानेंगे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०४)

किसी उपकार के प्रतिरूप किया गया उपकार कभी पूर्वकृत उपकार के समान नही हो सकता, यह तो उपकृत व्यक्ति की गुण-गरिमा के अनुसार ही होता है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०५)

जीवन प्रेम है, और जब मनुष्य दूसरों के प्रति भलाई करना बंद कर देता है, तो उसकी आध्यात्मिक मृत्यु हो जाती है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २६०)

संसार में कुछ थोड़े से लोग वास्तव में भलाई करना चाहते है। दूसरे देखते हैं और तालियाँ बजाते है और समझते हैं कि उन्होंने बहुत भला कर डाला है।

— विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २६०)

सब धर्म हमें अपने भाइयों के प्रति भलाई करने की शिक्षा देते हैं। भलाई करना कोई विचित्र बात नहीं है—यह जीने की रीति ही है।

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २६१)

सब नेकियों में से सर्वश्रेष्ठ नेकी वह है जिसके बाद उपकार न जताया जाय और न जिसके करने में किसी प्रकार से विलम्ब ही किया गया हो।

—इस्माईल इब्न अबीबकर (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११५)

उपदेश

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्नाप्यन्यायेन पृच्छतः।
ज्ञानवानपि मेधावी जडवत् समुपाविशेत् ।।

बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानवान होने पर भी बिना पूछे या अन्यायपूर्वक पूछने पर किसी को कोई उपदेश न करे, जड़ की भाँति चुपचाप बैठा रहे।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २८७।३५)

अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुपदेशगुणाः।

स्फटिक मणि के समान मन के निर्मल होने पर गुरु के उपदेश-गुण चन्द्रकिरणों की भाँति सरलता से प्रवेश करते हैं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्व भाग, शुकनासोपदेश-वर्णन, पृ० ३१६)

परोपदेशेषु सर्वो भवति पण्डितः।

दूसरों को उपदेश देने में सभी विद्वान् होते हैं।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ३।५६)

प्रायः सन्त्युपदेशार्हा धीमन्तो न जडाशयाः।

प्रायः बुद्धिमान ही उपदेश के योग्य होते हैं, मूर्ख नहीं।

—क्षेमेन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, २८६)

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् ।।

मूर्खो को दिया गया उपदेश उनके क्रोध का ही कारण बनता है, शांति का नही, जैसे साँप को दूध पिलाने से विष ही बढ़ता है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।४२०)

अन्तःसारविहीनानाम् उपदेशो न जायते।

अन्तःसार से रहित व्यक्तियों को उपदेश से कोई लाभ नहीं।

—अज्ञात

परोपदेशवेलायां शिष्टा सर्वे भवन्ति व।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ।।

दूसरों को उपदेश देते समय सभी शिष्ट बन जाते है परन्तु अपना कार्य आने पर शिष्टता भूल जाते है।

—अज्ञात

णो अन्नस्स हेउंध म्ममाइक्खेज्जा,
णो पाणस्स हेउं धम्ममाइक्खेजा।

खाने-पीने की लालसा से किसी को धर्म का उपदेश नहीं करना चाहिए।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (२।१।१५)

उद्देसो पासगस्स नत्थि।

तत्त्वद्रष्टा को उपदेश की आवश्यकता नही है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।३)

जं तेहिं दायव्वं तं दिन्नं जिणवरेहिं सव्वेहिं।
दंसण-नाण-चरित्रस्स, एस तिविहस्सं उवएसो॥

तीर्थंकरों ने जो कुछ देने योग्य था, वह दे दिया है, वह समग्र दान यही है—दर्शन, ज्ञान और चरित्र का उपदेश।

[प्राकृत] —आचार्य भद्रबाहु (आवश्यक निर्युक्ति, ११०३)

अत्तामं एव पठमं पठिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्यन किलिस्सेय्य पण्डितो॥

जो उचित है, उसे यदि पहले स्वयं करके, फिर दूसरे को उपदेश करे, तो पण्डित (जन) को क्लेश न हो।

[पालि] —जातक (समुद्दजातक)

बुरे लगत सिखके वचन, हिये विचारो आप।
करुई भेषज किन पिये, मिटै न तन को ताप॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक पुकार-पुकार कर उपदेश देते हैं।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १७)

उपदेश करो अपने लिये, तभी तुम्हारा उपदेश सार्थक होगा। जो कुछ दूसरों से करवाना चाहते हो, उसे पहले स्वयं करो; नही तो तुम्हारे नाटक के अभिनय के सिवा और कुछ भी नहीं है।

— हनुमान प्रसाद पोद्दार

पडित और मसालची, दोनों सूझे नाहिं।
औरन को परकास दे आप अंधेरे माहिं॥

—अज्ञात

हर कि नसीहत नशिनवद सरे मलामत शुनीदन् दारद।

जो उपदेश नहीं सुनता, उसका विचार भर्त्सना सुनने का है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

मोदलु नप्रियमुलै मुनुकोनि तोचि
तुदि ब्रियंबुलगु हितुल भाषणमुलु।

अपने हित को चाहने वालों की बातें पहले सुनने में कड़वी लगती हैं। परखने से अंत में ही वे बातें अत्यंत प्रिय होती हैं।

[तेलुगु] —एलकूचि वालसरस्वती (द्विपद भारतमु, सभापर्व)

It is easier to preach to twenty people than to be one of the twenty in following the preaching.

वीस लोगों को उपदेश देना अधिक आसान है अपेक्षाकृत उन वीस में से एक बनकर उपदेश ग्रहण करने के।

—स्वामी शिवानन्द (व्वाइस आफ दि हिमालयाज, ३३२)

There is nothing which we receive with so much reluctance as advice.

अन्य किसी वस्तु को हम इतनी अनिच्छा से नहीं स्वीकारते जितना उपदेश को।

—एडीसन (दि स्पेक्टेटर, क्र०५१२)

Unsolicited advice is the cheapest commodity you can find because the supply is so great and the demand so little.

अन-माँगा परामर्श ही सबसे सस्ती वस्तु है क्योंकि उसकी आपूर्ति इतनी अधिक है और माँग इतनी कम।

—रिचार्ड निक्सन (शिकागो के एक्जीक्यूटिव्स क्लब में भाषण, ५ मई, १९६१)

उपनिषद्

वैराग्य ही तो उपनिषद् का प्राण है। विचारजनित प्रज्ञा को प्राप्त करना ही उपनिषद्-ज्ञान का चरम लक्ष्य है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ६४)

कृति कायम रहे, लेकिन कर्ता कायम न रहे, यह भाग्य उपनिषद् के ऋषियों का है। अहंकार का सम्पूर्ण नाश हुए विना यह नहीं होगा।

—विनोबा (विचार पोथी, पृ० ५९६)

उपनिषद् छान-बीन की, मानसिक साहस की, और सत्य की खोज के उत्साह की भावना से भरपूर हैं। यह सही है कि यह सत्य की खोज मौजूदा जमाने के विज्ञान के प्रयोग के तरीकों से नही हुई है, फिर भी जो तरीका अख्तियार किया गया है, उसमें वैज्ञानिक तरीक़े का एक अश है हठवाद को दूर कर दिया गया है।

—जवाहरलाल नेहरू (हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० ११७)

उपन्यास

मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।

—प्रेमचन्द ('कुछ विचार' में 'उपन्यास', पृ० ४७)

जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।

— प्रेमचन्द (कुछ विचार, पृ० ६८)

भविष्य उन्हीं उपन्यासों का है जो अनुभूति पर खड़े हों।

—प्रेमचन्द (कुछ विचार, पृ० ६८-६९)

वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५१३)

The love of novels is the preference of sentiment to sens.s.

उपन्यासों का प्रेम इंद्रियों पर भावना की वरीयता है।

—एमर्सन (जर्नल्स १८३७)

उपयुक्त

पुत्र होवे चंगा तो नूह सास नाल लड़े क्यों ?
तवा होवे भारी तो रोटी सड़े क्यों ?
सवार होवे चंगा तो घोड़ा अड़े क्यों ?
नीयत होवे चंगी तो भूखा मरे क्यों ?

यदि पुत्र अच्छा हो तो सास-बहू क्यों लड़े ? यदि तवा भारी हो तो रोटी ख़राब क्यों हो ? यदि सवार ठीक हो तो घोड़ा क्यों अड़े ? यदि नीयत अच्छी हो तो भूखा क्यों मरे ?

—पंजाबी लोकोक्ति

उपयोग

नहि सुतीक्ष्णाप्यसिधारा स्वयमेव छेत्तुमाहितव्यापारा भवति।

अति तीक्ष्ण तलवार भी अपने आप नहीं काट सकती।

—संस्कृत लोकोक्ति

उपयोगिता

निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः॥

पेड़ की छाया उसी मनुष्य को अच्छी लगती है जो धूप में तपकर आया हो।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ३।२१)

आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीणिताः।

आम्रवृक्षों को पानी से सींचा भी और उसी जल से पितरों को अर्घ्य भी हो गया।

—संस्कृत लोकोक्ति

उत्तीर्णे च परे पारे नौकायाः किं प्रयोजनम्।

नदी पार कर लेने पर नौका का क्या प्रयोजन?

—अज्ञात

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकःतत्र दुर्लभः॥

कोई भी अक्षर अमंत्र नहीं है। कोई भी वृक्ष-मूल अनौषध नही है। कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं है। केवल उनके योजक मनुष्य दुर्लभ होते हैं।

—अज्ञात

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि॥

—रहीम (दोहावली, १६७)

नीकौ हू फीकौ लगै, जो जाके नहिं काज।

—नागरीदास

रहस्य से शून्य एक पत्र है।
न विश्व में व्यर्थ बना तृणेक है।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रिय-प्रवास, १३।३५)

बुरा बेटा और खोटा पैसा, वक्त पर काम आता है।

—हिंदी लोकोक्ति

A few honest men are better than numbers.

बहुत लोगों की अपेक्षा थोड़े से ईमानदार लोग अधिक अच्छे हैं।

—ओलिवर क्रामवेल (सर डब्ल्यू स्प्रिंग को पत्र सितम्बर, १६४३)

उपलब्धता

सीसे सप्पो देसन्तरे वेज्जो।

सिर पर साँप, वैद्य दूसरे देश में।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, ४।१८ के पश्चात्)

उपवास

अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः।
सदोपवासी भवति यो न भुंक्तेऽन्तरा पुनः॥

जो व्यक्ति प्रातःकाल एवं सायंकाल केवल दो समय भोजन करता है और बीच में कुछ नहीं खाता, वह सदा उपवासी होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ९३।१०)

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः।
न धर्मात् परमो लाभस्तपो नानशनात्परम्॥

वेद से बड़ा शास्त्र नहीं है, माता के समान गुरु नहीं है, धर्म से बड़ा लाभ नहीं है तथा उपासना से बड़ी तपस्या नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासनपर्व, १०६।६५)

प्रार्थना उपवास बिना नहीं होती, और उपवास यदि प्रार्थना का अभिन्न अंग न हो तो वह शरीर की मात्र यन्त्रणा है, जिससे किसी का कुछ लाभ नहीं होता। ऐसा उपवास तीव्र आध्यात्मिक प्रयास है, एक आध्यात्मिक संघर्ष है। वह प्रायश्चित और शुद्धिकरण की प्रक्रिया है।

—महात्मा गांधी (मेडेलीन रोलां को पत्र ६-१-१९३३)

सच्चा उपवास एक मूक और अदृश्य आदमी शक्ति पैदा करता है, जो यदि उसमें आवश्यक बल और पवित्रता हो, तो सारी मानव जाति में व्याप्त हो सकती है।

—महात्मा गांधी (मेडेलीन रोलां को पत्र, ६-१-१९३३)

उपवास करने से चित्त अन्तर्मुख होता है, दृष्टि निर्मल होती है और देह हलकी बनी रहती है।

—काका कालेलकर (जीवन-साहित्य, पृ० २५)

चारों तरफ़ उपवासों का शोर है, उपवास, उसके विरुद्ध उपवास के विरुद्ध उपवास। विरुद्ध उपवास और विरुद्ध के विरुद्ध के विरुद्ध उपवास।

—धर्मवीर भारती (कहनी अनकहनी, पृ० १०८)

स्यनॅ स्यनॅ करान कुन नो वातख,
न स्यनॅ गछख अहंकारी।
सोमुय स्य मालि सोमुय आसख,
समि स्यनॅ मुचरनॅ वरॅन्यन् तॉरी ॥

खान-पान के अतिरेक से किसी उद्देश्य को नहीं पाएगा और निराहार बनकर अहंकारी बन जाएगा। भोजन युक्त हो (न कम, न अधिक) उसी से समरसता रहेगी। समरसता-युक्त आहार-विहार से ही बन्द द्वार खुल जाएंगे।
[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

जब तुम उपवास करो, तो मिथ्याचारियों के समान तुम्हारे मुंह पर उदासी न छाई रहे।

—नवविधान (मत्ती ६।१६)

उपहार

इष्टां भार्यां प्रियं मित्रं पुत्रं चापि कनीयसम्।
रिक्तपाणिर्न पश्येत तथा नैमित्तिकं प्रभुम् ॥

प्रिय पत्नी, प्रिय मित्र, छोटे पुत्र, भविष्यवक्ता तथा राजा के पास खाली हाथ न जाए।

—अज्ञात

"Presents", I often say, "endear Absents."

मैं प्रायः कहता हूं कि 'प्रेजेंट्स' (उपहार) 'ऐबसेंट्स (अनुपस्थित लोगों) को अधिक प्रिय बना देते हैं।

—चार्ल्स लैम्ब (एसेज आफ़ एलिया)

उपहार का मूल्य नही, उसके पीछे की दृष्टि ही तौली जाती है।

—सेनिका (लसिलियस को पत्र)

तुम किसी से उपहार मत लो क्योंकि उपहार विद्वान को अंधा कर देता है और सदाचारी के शब्दों को दूषित कर देता है।

—पूर्वविधान (निष्क्रमण, २३।८)

उपहास

लोक की हँसी सहने वाले ही लोक का निर्माण करते हैं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कल्पतरु, पृ० ६)

सूप हँसे तो हँसे, चलनी भी हँसे जिसमें बहत्तर छेद।

—हिंदी लोकोक्ति

रोग का घर खाँसी, झगड़े का घर हाँसी।

अनेक रोगों का मूल कारण खाँसी है, झगड़ों का मूल कारण हँसी है।

—हिंदी लोकोक्ति

मेरे परमात्मा, जिसके पास तेरे सिवाय सब कुछ है, वे उनकी हँसी उड़ाते हैं, जिनके पास तुम ही हो और कुछ नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स)

मजाक़ चतुराई से किया गया अपमान है।

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, ७।४१)

उपहास मृत्यु से अधिक कटु है।

—खलील जिब्रान (आँसू और मुस्कान), पृ० १०३)

उपाधि

The three highest titles that can be given to a man are those of a martyr, hero, saint.

जो तीन समसे बड़ी उपाधियाँ किसी मनुष्य को दी जा सकती हैं वे हैं—शहीद, वीर और सन्त।

—ग्लैडस्टन

उपाय

एकार्थं हि क्रिया द्वयं द्वैगुण्याय सम्पद्यते।

एक कार्य के लिए दो उपाय किये जाने पर उनका फल भी दूना होता है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। चतुर्थ अध्याय)

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।

जो काम उपाय से हो सकता है, वह पराक्रम से नहीं ही हो पाता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१९८)

उपालंभ

नंद व्रज लीजै ठोंकि बजाइ।
देहु विदा मिलि जाहिं मधुपुरी, जहँ गोकुल के राइ ॥
—सूरदास (सूरसागर, १०।२७८६)

काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।
—सूरदास (सूरसागर, १०।४१७६)

मोहन माँग्यौ अपनौ रूप।
इहिं व्रज बसत अँचै तुम बैठी, ता बिनु उहाँ निरूप ॥
—सूरदास (सूरसागर, १०।४३८८)

जाकी कहनि रहनि अनमिल अलि सुनत समुझियत थोरें।
—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, पद ४४)

तुमसे तारन निकट मो, बूरत गहो न हाथ।
साखि वनत यह समय का, भले ठरोगे नाथ ॥
—दयाराम (दयाराम सतसई, ५०)

आज क्यों पर्वा[1] नहीं अपने असीरों[2] की मुझे ?
कल तलक तेरा भी दिल मेहरो वफ़ा[3] का बाव[4] था।
—ग़ालिब (दीवान)

मैंने दिल दिया, मैंने जान दी,
मगर आह तूने, क़द्र न की,
किसी बात को जो कभी कहा,
उसे चुटकियों से उड़ा दिया।
—बहादुर शाह 'ज़फ़र'

चश्मे मन् बर चश्मे तू चश्मान् तू जाए दिगर,
मन तमाशाए तू बीनम् तू तमाशाए दिगर।

मेरी आँख तेरी आँख पर है और तेरी आँखें अन्यत्र हैं। मैं तेरी लीला देखता हूँ और तू दूसरे की।
[फ़ारसी] —भारतेंदु हरिश्चन्द्र ('वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का समर्पण)

गर दानदत वदस्त शवो रोजो माहो साल
चूँ दाले मुनहनी अलिफ़े मुस्तक़ीमे मा।

काश तू जानता कि तूने रातों, दिनों, महीनों और वर्षों हमारे ऊपर वे विपत्तियाँ गिराई हैं कि हमारी कमर जो 'अलिफ़' अक्षर की तरह सीधी थी, 'दाल' अक्षर की तरह टेढ़ी हो गई है।
[फ़ारसी] —सनाई

उपासना

आत्मदा बलदा यस्य विश्व-
उपासते प्रशिषं यस्य देवा।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जो शरीर में जीवात्माओं को भेजने वाला है और बल देने वाला है, जिसकी सब उपासना करते है और जिसके उत्कृष्ट शासन को सब देव (सूर्यादि लोक) भी मानते हैं और जिसकी शरणवत् छाया मोक्ष दिलाने वाली है और जिसकी शरण न लेना मृत्यु के समान है, उस सुख-स्वरूप परमेश्वर की हम उपासना करें।
—ऋग्वेद (१०।१२१।२)

योऽन्यां देवतामुपासतेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद।

जो अन्य देवता की 'यह अन्य है और मैं अन्य हूँ' इस प्रकार उपासना करता है, वह नहीं जानता।
—बृहदारण्यक उपनिषद् (१।४।१०)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

जो मनुष्य जिस तरह मेरा आश्रय लेते हैं, उन्हें मैं वैसा ही फल देता हूँ। हे अर्जुन ! मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।
—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।११)
अथवा गीता (४।११)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

पत्र, पुष्प, फल जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए अर्पित करता है, शुद्ध चित्त वाले भक्त द्वारा लाया वह पदार्थ मैं ग्रहण कर लेता हूँ।
—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३३।२६)
अथवा गीता (९।२६)

१. चिंता। २. बंधुओं। ३. कृपा व प्रेम। ४. अध्याय।

श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा।
मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते ॥

कान से भगवान के नाम, गुण और लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्त्तन तथा मन के द्वारा उनका मनन इन तीनों को महान् साधन कहा गया है।

—शिवपुराण

स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य।

भगवान की पूजा ही स्वधर्म है।

—भागवत (५।१०।२३)

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥

अच्छे पुरुष दूसरों के सन्ताप से सन्तप्त रहते हैं। यही उनके लिए परमात्मा की सर्वोच्च आराधना है।

—भागवत (८।७।४४)

मनुष्य की पूजा करना हमारा काम नहीं है। पूजा आदर्श और सिद्धान्त की हो सकती है।

—महात्मा गांधी, (गांधी वाणी)

जपो जल्पः, शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना।
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनान्याहुतिविधिः ॥
प्रणामः संवेशः, सकलमिदमात्मार्पणविधौ।
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥

हे भवानी ! मेरा बोलना-चालना आपका जप हो, मेरा शिल्प (मेरी चेष्टाएँ) आपकी उपासना से सम्बद्ध मुद्राओं की रचना हो, चलना आपकी प्रदक्षिणा लगाना हो, भोजन करना आपको विधिवत् दी गई आहुतियाँ हों, भूमि में लेटना आपके लिए प्रणाम हो, इस प्रकार जितना भी मेरा विलास और चेष्टाएँ हैं, वे सब आत्मार्पण की विधि से की गई आप की पूजा के पर्यायवाची हो जाएँ।

—शंकराचार्य

वस्तुतन्त्रो भवेद्बोधः कर्तृतन्त्रमुपासनम् ॥

ज्ञान तो ज्ञेय वस्तु के अधीन होता है और उपासना कर्त्ता के अधीन होती है।

—विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ९।७४)

जगत ईशधीयुक्तसेवनम्।
अष्टमूर्तिभृद्देवपूजनम् ॥

ईश्वर-बुद्धि से जगत् की सेवा करना अष्टमूर्तिधारी[1] भगवान का पूजन करना है।

शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।

शिव होकर शिव की उपासना करनी चाहिए।

—अज्ञात

हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद जहँ देहुरा न मसीत ॥

—गोरखनाथ (गोरखवानी, सबदी, ६८)

कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौ ल्यौ लाइ ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४४)

कबीर माला काठ की, कहि समझावे तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४५)

हमरे घर में हरि को द्वारा, बारामासी मेला।
बाहर कहँ हरिद्वार है पानप, जगत फिरै है भूला ॥

—पानपदास (पानपबोध, पृ० १४१)

फिरी दुहाई सहर में, चोर गए सब भाज।
सत्रू फिर मित्रज भया, भया राम का राज ॥

—दरिया महाराज

नारायन हरि भजन में, तू जिन देर लगाय।
का जाने या देर में, स्वास रहे या जाय ॥

—नारायण स्वामी

अपनै अपनै मत लगे, बादि मचावत सोरु।
ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइबो एकै नंदकिसोरु ॥

—बिहारी (सतसई, दोहा ५८१)

देव-सेव फल देत है, जाकौ जैसो भाय।
जैसो मुख करि आरसी, देखौ सोइ दिखाय ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

---

१. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और जीव—ये अष्ट मूर्तियाँ।

उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है, विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं का शोक और आनन्द ये दोनों नही होते।

—स्वामी दयानन्द (उपदेश मंजरी)

जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्त जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

—दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश)

मोहि सतगुर उपदेस, राम भजि राम सो होवै।
राम भजन फल सोय, जीवन जीवत्वहिं खोवै॥

—वनादास (ब्रह्मायन परमात्म बोध, इ० सं०, २०)

जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि भाग १, कविता क्या है)

अव्यक्त निर्गुण, निर्विशेष ब्रह्म उपासना के व्यवहार में सगुण ईश्वर हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि उपासना जब होगी, तब व्यक्त और सगुण की ही होगी, अव्यक्त और निर्गुण की नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग २, काव्य में रहस्यवाद)

मानव के अन्तरतम में कल्याण के देवता का निवास है। उसकी संवर्धना ही उत्तम पूजा है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० २४७)

उपासना बाह्य आवरण है उस विचार-निष्ठा का, जिसमें हमें विश्वास है। जिसकी दुःख-ज्वाला में मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उस विश्व-चिता में मंगलमय नटराज के नृत्य का अनुकरण, आनन्द की भावना, महाकाल की उपासना का बाह्य स्वरूप है और साथ ही कला की, सौंदर्य की अभिवृद्धि है, जिससे हम बाह्य में, विश्व में, सौन्दर्य-भावना को सजीव रख सके है।

—जयशंकर प्रसाद (इरावती, पृ० २२)

गँवारों की धर्म-पिपासा ईंट-पत्थर पूजने से शांत हो जाती है, भद्रजनों की भक्ति सिद्ध पुरुषों की सेवा से।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, पृ० ४८७)

पूजा पैर से हो सकती है, हाथ से हो सकती है और जिह्वा से हो सकती है। पूजा का तरीका कुछ भी हो, पूजा सच्ची होनी चाहिए।

—महात्मा गांधी (दिल्ली की प्रार्थना सभा में प्रवचन, ४ अप्रैल १९४७)

पूजा या प्रार्थना वाणी से नही, हृदय से करने की चीज है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ४६)

पूजा करनेवाला पूजा करने में अपने उत्तम गुणों को बाहर लाता है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ८१)

मनुष्य मात्र में थोड़ी-बहुत भक्ति रहती है, इसलिए वह किसी-न-किसी रूप में भगवान की उपासना कर लेता है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी भाग २, २६२)

धूमधाम से क्या प्रयोजन? जिनकी हम पूजा करते है, उन्हें तो हृदय में स्मरण करना ही पर्याप्त है। जिस पूजा में भक्तिचंदन और प्रेमकुसुम का उपयोग किया जाए, वही पूजा जगत् में सर्वश्रेष्ठ है। आडम्बर और भक्ति का क्या साथ?

—सुभाषचन्द्र बसु (मां प्रभावती को कटक से लिखा एक पत्र-१९१२)

हमारे भीतर अनन्त शक्ति निहित है। उस शक्ति का बोध करना पड़ेगा। पूजा का उद्देश्य है मन में शक्ति का बोध करना।

—सुभाषचन्द्र बसु (१९२६ ई० में मांडले जेल से श्री हरिचरण बागची को पत्र)

सगुण-उपासना अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अनेक प्रकार से की जा सकती है। उस छोटे से देहात की, जहाँ हमारा जन्म हुआ, सेवा करना अथवा माँ-बाप की सेवा करना सगुण-पूजा है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० १७८)

ज्ञान मंत्र है। कर्म तंत्र है। उपासना दोनों को जोड़ देती है।

—विनोबा (विचारपोथी, पृ० ५९९)

नेम जगावे प्रेम को, प्रेम जगावे जीव।
जीवं जगावे सुरति को, सुरति मिलावे पीव ।।

—गोमतीदास

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनंदन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे !

—महादेवी वर्मा (यामा, पृ० १९२)

अनादि ब्रह्म, कण-कण में है और कहीं भी ध्यान जमाने से इष्ट की सिद्धि हो सकती है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (कचनार, पृ० २२२)

उपासना से मनुष्य के अहंकार का शमन होता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (नारद की वीणा, पृ० १५)

किसी मूर्ति पर पुष्प चढ़ा तू, पूजा मेरी हो जाती है।

—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० ७८)

भगवान् की पूजा के लिए सबसे अच्छे पुष्प हैं—श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, मैत्री, सरलता, साधुता, समता, सत्य, क्षमा आदि दैवी गुण। स्वच्छ और पवित्र मन मन्दिर में मनमोहन की स्थापना करके इन पुष्पों से उनकी पूजा करो।

जो इन पुष्पों को फेंक देता है और केवल बाहरी फूलों से भगवान् को पूजना चाहता है, उसके हृदय में भगवान आते ही नहीं, फिर वह पूजा जिसकी करेगा ?

—हनुमान प्रसाद पोद्दार

निरन्तर उपासना का तात्पर्य है—निरन्तर भजन। अर्थात् नामजप, चिन्तन, ध्यान, सेवा-पूजा, भगवदाज्ञा-पालन यहां तक कि सम्पूर्ण क्रिया मात्र ही भगवान की उपासना है।

—रामसुखदास (गीता का भक्तियोग, पृ० १९)

खुदा ही की इबादत जिनको हो मक़सूद अय अकबर
वो क्यों बाहम लड़ें गो फ़र्क़ हो तर्ज़-इबादत में।

—अकबर इलाहाबादी

हर फ़िक्र कि जुज़ ज़िक्रे ख़ुदा वसवसास्त।

ईश्वरोपासना के अतिरिक्त और सभी प्रकार की चिन्ताएँ व्यर्थ हैं।

[फ़ारसी] —जामी

बुतख़ाना व काबा ख़ानए बंदगी अस्त,
नाक़ूस ज़दन तरानए बंदगी अस्त।
मेहराब व कलीसा व तसबीह व सलीब,
हक़्क़ा के हमा निशानए बंदगी अस्त।

मन्दिर तथा मस्जिद दोनों ही ईश्वर-पूजा के स्थान हैं। शंख बजाना उसी की उपासना का गीत है। मस्जिद की महराब, गिरजाघर, माला व सलीब—यह सब उसी ईश्वर की पूजा के चिह्न हैं।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, १२४)

जांक जमके करले पूजा, अहंकार हय मने,
तुइ लुकिये तारे करबि पूजा, जानबे नारे जगत जने।
धातु पाषाण माटिर मूर्ति काकज कि रे तोर से ठगने,
तुमि मनमय प्रतिमा गड़ि बसाओ हृदि पद्मासने।

आडंबर से पूजा करने पर मन में अहंकार पैदा होता है। धातु, पत्थर, मिट्टी की मूरत से तुझे क्या काम ? तू छिपकर पूजा कर कि किसी को कानों-कान खबर न हो और मनोमय प्रतिमा बनाकर हृदय के पद्मासन में स्थापित कर। दिन-रात जलने दें।

[बंगला] —रामप्रसाद सेन

नाम वदतां हे वैखरी।
चित्त धांवे विषयावतरी ।।
कैसे होतां हे स्मरण।
स्मरणामांजीं विस्मरण ।।

वाणी से राम नाम लेते हुए यदि मन विषय की ओर दौड़े तो इसे भगवान का स्मरण नहीं वरन् विस्मरण समझना चाहिए।

[मराठी] —एकनाथ

स्वामिकाज गुरु भक्ति। पितृवचन सेवा पति।
हे विष्णुची महापूजा ।।

स्वामी का कार्य, गुरु भक्ति, पिता के आदेश का पालन, यही विष्णु की महापूजा है।

[मराठी] — तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २२६१)

देवाची पजा भूताचें पालण ।

दीन-दुखियों की सेवा ही प्रभु की पूजा है ।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३८५४)

तनुवोकचो मनसोकचो दागिन वैषमोकचो निडि जनुलनेचु वारिकि जयमगुने ।

तन कही हो और मन कही हो और परपीडन नित्य का नियम हो तो उनको सफलता कैसे मिलेगी ?

[तेलुगु] —त्यागराज

पडि पडि म्रोक्कग नेटिकि ।
गुडिलो गल कठिन शिलल गुणमुल चेडुना ।।
गुडिदेहमात्म देवुडु ।
चेडुराल्लकु वट्टि पूज सेयकु वेना ।।

क्या मन्दिर की कठोर शिलाओं के आगे माथा टेकने से उनकी परुषता दूर हो जाती है ? यह शरीर ही मंदिर है और जीवात्मा ही भगवान है । यह व्यर्थ ही शिलाओं की पूजा करना छोड़ दो ।

[तेलुगु] —वेमना

अपनी शक्ति और भाव के अनुसार ईश्वर की पूजा की जाती है । यह कहीं नहीं कहा गया है कि ईश्वर की पूजा ही न की जाये । मेरी वाक्शक्ति बहुत दुर्बल है और श्रोता स्वयं परमेश्वर है । अतः लड़खड़ाती हुई वाचा से ही इनका पूजन करना चाहता हूँ ।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

केवल उन्हीं की उपासना करनी चाहिए, जो हमारे समान, परन्तु हमसे महान् हों ।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ८, पृ० १३५)

विश्व को वंचित रखकर तुम्हारी[1] पूजा नहीं हो सकती ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य, कविता ४४)

ईश्वर की सच्ची पूजा उसकी सृष्टि की सेवा में ही है ।

—अरण्डेल (सेवा के मन्त्र)

स्थूल तथा सूक्ष्म उपासनाओं के विना हमारा चित्त अद्वैत बोध का अधिकारी नहीं बनता ।

—तपोवनम् महाराज (हिमगिरि विहार, पृ० ८८)

१. ईश्वर की

पूजा से तात्पर्य पूज्य जैसे बनने की क्रिया से है ।

—आनन्द शंकर माधवन
(अद्वैत समाज सूक्ति २८, पृ० ७)

Adore and what you adore attempt to be.

उपासना और उपास्य बनने का प्रयत्न करो ।

—अरविन्द (पर्सियस दि डेलीवरर, ५।३)

Worship is just a means of educating the emotions.

उपासना मनोवेगों को शिक्षित करने का एक साधन मात्र है ।

— सत्य साईं बाबा (सत्य साईं स्पीक्स, भाग २, पृ० १२१)

उपेक्षा

नोपेक्षेत स्त्रियं बालं रोगं दासं पशूं धनम् ।
विद्याभ्यासं क्षणमपि सत्सेवां बुद्धिमान्नरः ।।

स्त्री, वालक, रोग, दास, पशु, धन, विद्याभ्यास और सज्जनों की सेवा के विषय में भी क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

—शुक्रनीति (३।४३)

अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनमनादरो भवति ।

अत्यधिक परिचय से अवज्ञा उत्पन्न होती है और किसी के पास लगातार जाने से निरादर होता है ।

—शार्ङ्गधर पद्धति

स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं
गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा ।
निजांगना यद्यपि रूपराशिः
तथापि लोकः परदारसक्तः ।।

अपने देश में जन्मे अत्यन्त गुणवान मनुष्य की भी उपेक्षा होती है । अपनी पत्नी चाहे अत्यंत रूपवती हो, फिर भी लोग पर स्त्री पर आसक्त होते है ।

—अज्ञात

निकटस्थं गरीयांसमपि लोको न मन्यते ।
पवित्रामपि यन्मर्त्यान् नमस्यंति जाह्नवीम् ।।

अपने निकट के महान् व्यक्ति का लोग आदर नहीं करते, जैसे समीपस्थ लोग पवित्र गंगा की वंदना नहीं करते हैं।

—अज्ञात

नो अत्ताणं आसाएज्जा, नो परं आसाएज्जा।

न अपनी उपेक्षा करो, न दूसरों की।

[प्राकृत] —आचारांग (१।६।५)

सुन प्रभु वहुत अवज्ञा किए।
उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥

—तुलसी (रामचरितमानस, १११का।८)

वेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ।
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ॥

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० १३)

घर की मुर्ग़ी दाल वरावर।

—हिंदी लोकोक्ति

व्याह पीछे पत्तल भारीं।

—हिंदी लोकोक्ति

नित्य उपास[1] को को दे रोज।
नित्य रोगी की को करे खोज॥

—हिन्दी लोकोक्ति

घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध।

—हिंदी लोकोक्ति

जत देखे नित-नित चकु करे पित-पित।
माहे पखे जावि, वर पीरा खन पावि॥

नित्य-नित्य मिले तो नेत्रों को बुरा लगे। मास बाद या पक्ष बाद मिले तो वैठने को कुर्सी मिले।

—असमिया लोकोक्ति

मुदस्ते मुल्लय्प्कु मणमिल्ल।

घर के आँगन की चमेली में सुगन्ध नहीं।

—मलयालम लोकोक्ति

१. उपवासी।

Attainment is followed by neglect, and possesion by disgust.

प्राप्ति के बाद उपेक्षा होती है और अधिकार के वाद निराशा।

—डॉ० जानसन

उर्दू

कीजे न जमील उर्दू का सिंगार,
अव ईरानी तलमीहों से,
पहनेगी विदेशी गहने क्यों
यह वेटी भारत माता की?

—जमील मजहरी

अगर ग़ौर से देखा जाए तो···उर्दू शायर के सामने सिरे से किसी शरीफ औरत का नमूना था ही नही···उर्दू शायरी की 'माशूक़ा' कोई शरीफ़ औरत नहीं, वल्कि एक वाज़ारी रण्डी है जिसकी महफ़िल में अग़यार का जमघट लगा हुआ है···शरीफ़ औरत पहले ही घर की चहारदीवारी में वन्द थी।

डॉ० अख़्तर हुसेन (अदव और इन्क़लाव, पृ० १५७)

उल्लास

जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमंत्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिए।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, द्वितीय अंक)

मन के भीतर का मन गाता,
स्वर्ण धरा में नहीं समाता,
स्वप्नों का आवेश ज्वार उठ,
विश्व सत्य के पुलिन डुवाता।

—सुमित्रानंदन पन्त (उत्तरा, पृ० ६१)

आज क्या वात है दुनिया के नज़ारे खुश हैं
वाग़ में फूल-फूल ख़ुश आकाश पै तारे ख़ुश है।
एक वेनाम सी सरमस्ती के मारे ख़ुश में
एक मैं ख़ुश हूँ कि जितने भी हैं सारे ख़ुश हैं।

—'अख़्तर' शेरानी

उषा

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुंजती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः।।

उषा एक सुन्दरी युवती की तरह सबको आनंदित करती हुई आती है, सम्पूर्ण प्राणियों को जगाती हुई जंगम प्राणियों को अपने कार्य पर भेजती है और पक्षियों को उड़ाती है।

—ऋग्वेद (१।४।८।५)

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु।।

हे आकाश-पुत्री उषा! हमारे लिए प्रचुर सौभाग्य लाती हुई, प्रतिदिन प्रकाशित होती हुई अपनी चमकीली किरणों से सर्वत्र प्रकाश करो।

—ऋग्वेद (५।४८।६)

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः।

हे उषा देवी! सारे भुवनों के अभिमुख गाती हुई सूर्य की ध्वजा सदृश तुम ऊर्ध्व में स्थित रहती हो।

—ऋग्वेद (३।६१।४)

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।

तेजस्वी पदार्थों में सबसे अधिक तेज वाली यह उषा उदित हुई है। उसका प्रकाश विलक्षण तेजस्वी और चारों ओर फैला हुआ है।

—सामवेद (१७४६)

ऊ

ऊँच-नीच

से असइ उच्चागोए, असइं नीआगोए।

नो हीणे नो अइरित्ते।

यह जीवात्मा अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है और अनेक वार नीच गोत्र में। इस प्रकार विभिन्न गोत्रों में जन्म लेने से न कोई हीन होता है और न कोई महान्।

(प्राकृत) —आचारांग (१।२।३)

ऊधम

ऊधम मचाना एक तरह का नशा है। न मचा सकने से तकलीफ़ होती है, हुड़क-सी आने लगती है।

—शरत्चन्द्र (अनुराधा, पृ० ६६)

ऋ

ऋचा

यो जागार तमृचः कामयन्ते ।

ऋचाएँ उसकी कामना करती हैं जो जागता है ।

—सामवेद (१८२६)

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ।

देवगण जिस पवित्र साधन से सदा अपने को पवित्र करते हैं, उन सहस्रों प्रकार के साधनों से पवित्र करने वाली ऋचाएं हमें पवित्र करें ।

—सामवेद (१३०२)

ऋण

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानां व्रजत्यधः ॥

तीनों ऋणों में (देव ऋण, पितृ ऋण, ऋषि ऋण) को चुकाकर मन को मोक्ष में लगावे । बिना ऋणों को चुकाए मोक्ष के लिए प्रयत्न करनेवाला पापी होता है ।

—मनुस्मृति (६।३५)

यदा चतुर्गुणा वृद्धिर्गृहीता धनिकेन च ।
अधमर्णान्न दातव्यं धनिने तु धनं तदा ॥

राजा को चाहिए कि जब मूलधन से चौगुना व्याज धनी ने ऋणी से प्राप्त कर लिया हो तब उससे अधिक धन लेने के लिए धनी को रोक दे ।

—शुक्रनीति (६।६६-६७)

अन्तकोऽपि हि जन्तूनां अन्तकालमपेक्षते ।
न कालनियमः कश्चिद् उत्तमर्णस्य विद्यते ॥

प्राणियों को मारने वाला देव भी अन्तकाल की प्रतीक्षा करता है किन्तु ऋण देने वाले साहूकार के लिए काल का कोई नियम नहीं है ।

—नीलकण्ठ दीक्षित (कलिविडम्बन)

लेखनी पुस्तकं रामा परहस्ते गता गता ।
कदाचित् पुनरा याता नष्टा भ्रष्टा च चुंबिताः ॥

लेखनी, पुस्तक और स्त्री दूसरे के हाथ में गई तो गई ही समझो । कदाचित् वापस आई भी तो नष्ट, भ्रष्ट और चुम्बित हुई ही ।

—अज्ञात

हम देनदार हैं, इसी कारण जन्म लेते हैं; लेनदार तो हैं ही नहीं ।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र जमनादास बजाज परिवार के नाम, २४८)

उधार दीजे, दुश्मन कीजे ।

—हिंदी लोकोक्ति

क़र्ज़दार सिर पर सवार ।

—हिंदी लोकोक्ति

उधार का खाना और फूंस का तापना बराबर है ।

—हिंदी लोकोक्ति

आग खाए मुंह जरे, उधार खाए पेट जरे ।

—हिंदी लोकोक्ति

कुहन जामाए ख़ेश पैरास्तन् ।
बिह अज़ जामाए आरियत ख़्वास्तन् ।

अपना पुराना कपड़ा पहन लेना अच्छा है, उधार कपड़े माँगने से ।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, आठवाँ अध्याय)

ऋण मोसंगु नातडिनुडगु तोलुदोत्त्
नदियु मरल नड्डुग निनजुड़े यगु ।
अप्पु जेसि तीर्च नरयनि वानिकि ॥

ऋण बुरी बला है। ऋण देना और लेना दोनों काम अनुचित है। ऋण दाता ऋण लेने वाले की दृष्टि ऋण देते समय सूर्य देव की तरह उपकारी मालूम होती है। वही यदि अपना पैसा वापस माँगता है तो सूर्य-तनय (यमराज) सा भयंकर लगता है। ऋण वापस करने में असमर्थ व्यक्तियों की ऐसी ही दुर्दशा हो जाती है।

[तेलुगु] —**वेमना**

छोटी धन-राशि ऋणी बनाती है और बड़ी धनराशि शत्रु।

—**लवेरियु**

यदि तुम उन्हें उधार दो जिनसे फिर पाने की आशा रखते हो, तो तुम्हारी क्या बड़ाई?

—**नवविधान (लूका, ६।३४)**

Neither a borrower, nor a lender be;
For loan oft loses both itself and friend,
And borrowing dulls the edge of husdandry.

न तो ऋण माँगने वाले बनो, न देने वाले, क्योंकि प्रायः ऋण अपने को और मित्र दोनों को खो देता है और ऋण माँगना, मितव्ययिता के स्वभाव को शिथिल कर देता है।

—**शेक्सपियर (हैमलेट, १।३)**

Debt is the prolific mother of folly and of crime.

ऋण मूर्खता और अपराध की उर्वर जमीन है।

—**डिज़रायली**

The person whom you favoured with a loan if he be a good man, will think himself in your debt after he has paid you.

जिस पर आपने ऋण देकर कृपा की है, वह यदि सज्जन होगा तो ऋण चुका देने के बाद भी स्वयं को आपका ऋणी मानेगा।

—**रिचर्ड स्टील (दि स्पेक्टेटर, ३४६)**

ऋत

ऋतेन विश्वं भुवनं विराजथः।

ऋत से समस्त संसार को प्रदीप्त करो।

—**ऋग्वेद (५।६३।७)**

ऋषि

जीर्णे भोजनमात्रेयः, गौतमःप्राणिनां दया।
बृहस्पतिरविश्वासः, भार्गवः स्त्रीषु मार्दवम्॥

ऋषि आत्रेय का उपदेश है—पहले किया भोजन पच जाए तब भोजन करो। गौतम का उपदेश है—प्राणियों पर दया करो। बृहस्पति का उपदेश है—विश्वास किसी पर मत करो। शुक्राचार्य का उपदेश है—स्त्रियों से मृदुता का व्यवहार करो।

—**अज्ञात**

सत्य की जिज्ञासा ऋषित्व का प्रथम और अन्तिम लक्षण है। सत्य का साक्षात् दर्शन जिसे हो, वह ऋषि है।

—**वासुदेवशरण अग्रवाल**
(वेद-विद्या, पृ०२)

वैदिक ऋषि जब 'मुझे चावल चाहिए', 'मुझे गेहूँ चाहिए', 'मुझे मसूर चाहिए' आदि कहता है, तब उसके 'मैं' में त्रिभुवन का समावेश हुआ होता है।

—**विनोबा (विचार पोथी, पृ० १५५)**

That man w o has followed any kind of kno ledge to its highest points is a Rishi.

जिस मनुष्य ने किसी प्रकार के भी ज्ञान का उसके उच्चतम बिन्दु तक अनुगमन किया है, वह ऋषि है।

—**भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ४५०)**

ए

एकता

सहृदयं सांमनस्यमअविद्वेषं कृणोमि वः।

मैं तुम्हें एक हृदयवाला, एक मनवाला तथा विद्वेप-रहित बनाऊँगा।

—अथर्ववेद (३।३०।१)

समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं व्रतं सहचित्तमेषाम्।

तुम्हारे विचार, तुम्हारी समिति, तुम्हारे कर्म और तुम्हारे मन समान हों।

—अथर्ववेद (६।६४।२)

समानी वः आकूति समाना हृदयानि वः।

तुम्हारा सकल्प एक हो, तुम्हारे हृदय समान हों।

—अथर्ववेद (६।६४।३)

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति॥

जो परस्पर भेद-भाव रखते है, वे कभी धर्म का आचरण नही करते। वे सुख भी नही पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा उन्हें शान्ति की वार्ता भी नहीं सुहाती।

—वेदव्यास (महाभारत उद्योग पर्व, ३६।५६)

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥

हे धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होने पर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती है। इसी प्रकार जाति-बन्धु भी आपस में फूट होने पर दुख उठाते हैं और एकता होने पर सुखी रहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३६।६०)

भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः।
तस्मात् संघातमेवाहुर्गणानां शरणं महत्॥

शत्रु लोग गणराज्य के लोगों में भेदबुद्धि पैदा करके तथा उनमें से कुछ लोगों को धन देकर भी समूचे संघ में फूट डाल देते हैं अतः संबद्ध होना ही गणराज्य के नागरिकों का महान् आश्रय है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १०७।३०-३२)

अब जात-पाँत के, ऊँच-नीच के, संप्रदायों के भेद-भाव भूलकर सब एक हो जाइए। मेल रखिए और निडर बनिए। घर में बैठकर काम करने का समय नहीं है। बीती हुई घड़ियां ज्योतिषी भी नहीं देखता।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण पृ० ५०३)

समूचे जनसमूह में भाषा और भाव की एकता और सौहार्द का होना अच्छा है। इसके लिए तर्कशास्त्रियों की नहीं, ऐसे सेवाभावी व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो समस्त बाधाओं और विघ्नों को शिरसा स्वीकार करके काम करने में जुट जाते हैं। वे ही लोग साहित्य का भी निर्माण करते हैं और इतिहास का भी।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १७५)

भेद और विरोध ऊपरी हैं। भीतर मनुष्य एक है। इस एक को दृढ़ता के साथ पहचानने का यत्न कीजिए। जो लोग भेद-भाव को पकड़कर ही अपना रास्ता निकालना चाहते हैं, वे गलती करते हैं। विरोध रहे तो उन्हें आगे भी बने ही रहना चाहिए, यह कोई काम की बात नही हुई। हमें नये सिरे से सब कुछ गढ़ना है, तोड़ना नहीं है। टूटे को जोड़ना है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल पृ०, १८६)

वे सब, जिन्हें समाज घृणा की दृष्टि से देखता है, अपनी शक्तियों को एकत्र करें तो इन महाप्रभुओं और उच्च वंशाभिमानियों का अभिमान चूर कर सकते है।

—हरिकृष्ण प्रेमी (प्रतिशोध, पृ० ५०)

एकता जा देविता ! तुंहिंजी लहां मन्दरु किथे ?
जंहिंमें इतिहादी उजालो आहि सो अन्दर किथे ?

हे एकता के देवता ! मैं तुम्हारा मंदिर कहाँ पाऊँ ? वह हृदय कहाँ है जिसके अन्दर एकता का प्रकाश है ?

(सिंधी) —किशिनचंद बेबस (कविता किथे इतिहाद्व)

ऐंदु व्रेल्लवलिमि हस्तंबु पनिसेयु
नंदोकर्टियु वीड वोंदिक चेडु
स्वीयुडोकडु विडिन चेडुकदा पनिवलिम ॥

पाँचों उँगलियों के संयोग से हाथ काम करना है । उसमें से एक भी छूट जाये अथवा असहयोग कर वैठे तो उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। एक भी स्वीय जन (स्वजन) के अलग हो जाने से लोगों की व्यावहारिक शक्ति नष्ट हो जाती है। अत: लोगों को सब कुछ त्याग कर भी ऐकमत्य की रक्षा कर लेना आवश्यक है।

(तेलुगु) —वेमना

ऐकमत्यमोवक्टावश्यकंवेण्डु
दानिवलिमिनेंतयैनगूडु
गड्डिवेंटि बेट्टि कट्टरा येनुगु ॥

संसार में एकता की कितनी ही आवश्यकता है ! ऐक्य-भाव की शक्ति अवर्णनीय है । उसकी मदद से मनुष्य असंभव को भी संभव करके दिखाता है। क्या तुच्छ फूस के तिनकों से बनी रस्सी में प्रवल हाथी को भी बँधते हम नहीं देखते है ?

(तेलुगु) —वेमना

ऐकमत्यमु कादे यी अवनियंदु
नेट्टि पनुलनु साधिचु नेट्टि तरिनि ।

एकता के कारण ही इस धरती पर सभी काम सफल वन सकते हैं ।

(तेलुगु) —कोलाचलं श्रीनिवासराव (रामराजुचरित्रमु)

जव तक लोग अपने में एक ही प्रकार के ध्येय का अनुभव नहीं करेंगे तव तक कभी एकसूत्र से आवद्ध नहीं हो सकते । जव तक उनका ध्येय एक न हो तब तक सभा, समिति और वक्तृता से साधारण लोगों को एक नहीं किया जा सकता ।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ६८)

किसी देश में उस समय तक एकता और प्रेम नहीं हो सकता, जब तक उस देश के निवासी एक-दूसरे के दोपों पर जोर देते रहते हैं ।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली, भाग ७, पृ० ३)

एक सी सूझ वाले लोग प्रत्येक वस्तु को समान उपहास-जनक, सौन्दर्यपूर्ण अथवा घृणोत्पादक दृष्टिकोण से देखते हैं। सूझ की इस एकता को सुगम बनाने के लिए किसी विशेष मण्डल या परिवार के लोगों के बीच अपनी विशिष्ट भाषा, अपने विशिष्ट मुहावरे, यहाँ तक कि अपने विशिष्ट शब्द पैदा हो जाते हैं जिनके विशिष्ट अर्थ अन्य लोग अन्य नही समझ सकते ।

—लेव तोलसतोय (बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, पृ० ४२०)

एक के लिए सब और एक सब के लिए ।

—अलेक्ज़ेंडर ड्यूमस

एकांगी भाव

एकांगी भाव ही जगत् के लिए अनिष्टकर वस्तु है। तुम अपने अंदर जितने विविध पक्षों को विकसित कर सकोगे, उतनी ही आत्माएँ तुमको उपलब्ध होंगी और जगत को तुम समस्त आत्माओं के माध्यम से—कभी भक्त के, कभी ज्ञानी माध्यम से—देख सकोगे ।

—स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ११)

एकांत

इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः परमेकान्तिवेषभाक् ।
न संसारसुखं तस्य नैव मुक्तिसुखं भवेत् ॥

इधर से भी भ्रष्ट, उधर से भी भ्रष्ट । परम एकान्तता के वेप को धारण करने वाला व्यक्ति न तो संसार का ही सुख पाता है और न मुक्ति का ही ।

—अज्ञात

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे !
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी-
निश्छल प्रेम कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे,

—जयशंकर प्रसाद (लहर)

एकान्त में बैठो। अकेले घूमो। अकेले सोओ। अकेले रहो और यह भी प्रकृति के समीप—नदी, पर्वत या जंगल के पास। अकेले भगवन्नाम का ख़ूब जप करो। अकेले विचार करो, अकेले शास्त्र का चिन्तन करो।

—मगनलाल हरिभाई व्यास (सत्संग माला, १०)

Conversation enriches the understanding, but solitude is the school of genius.

वार्तालाप से वुद्धि विकसित होती है किंतु प्रतिभा की पाठशाला तो एकांत ही है।

—एडवर्ड गिवन

एकाग्रता

न ह्ययुक्तेन मनसा किंचन संप्रति शक्नोति कर्तुम्।

अयुक्त मन से कुछ भी करना संभव नहीं है।

—शतपथ ब्राह्मण (६।३।१।१४)

असमाहितचित्तस्तु न जानातीह किंचन।

जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, वह सुन कर भी कुछ नही समझता।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, १।७७)

समाहितं चित्तमर्थान् पश्यति।

एकाग्र चित्त ही अर्थों (विविध विजयों) को देखता है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा १।४ अध्याय)

गणना काथ व बालबालिशादौ विधीयते।
न चित्तवृत्तेरैकाग्र्यं महतामपि सर्वदा॥

बालकों व मूर्खों की तो गिनती क्या, महान लोगों की भी चित्तवृत्ति सदा एकाग्र नहीं रहती।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।२३०४)

एकाग्रताथ संकल्पः स्नायुवद् वर्द्धनक्षमौ।
नित्याभ्यासप्रयोगाभ्याम् अधिकाधिकमृध्यतः॥

चित्त की एकाग्रता और संकल्प को स्नायुओं के समान बढ़ाया या सुदृढ़ बनाया जा सकता है। नित्य के अभ्यास और प्रयोग से ये दोनों अधिकाधिक विकसित होते चले जाते हैं।

—अज्ञात

एकचित्तो लभेत् सिद्धिं द्विधाचित्तो विनश्यति।

एकचित्त होकर कर्म करने वाले को सफलता मिलती है और द्विविधायुक्त चित्त वाला नष्ट हो जाता है।

—अज्ञात

समाहितं वा चित्तं थिरतरं होति।

समाहित (एकाग्र) चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त करता है।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (४।३९)

यदि चित्त एकाग्र रहेगा, तो फिर सामर्थ्य की कभी कमी न पड़ेगी। साठ वर्ष के बूढ़े होने पर भी किसी नौजवान की तरह तुममें उत्साह और सामर्थ्य दीख पड़ेगी।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ८२)

किसी विषय पर मन को एकाग्र करने का ही नाम ध्यान है। किसी एक विषय पर भी मन की एकाग्रता हो जाने से वह एकाग्रता जिस विषय पर चाहो उस पर लगा सकते हो।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ४६)

ध्यान विषयों की एक माला पर और एकाग्रता केवल एक विषय पर की जाती है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ७, पृ० ७९)

एकात्मता

कुछ नहीं बाक़ी रही अपने पराये की तमीज
इस सराये बेख़ुदी में कोई बेगाना नहीं।

—नाशाद

नीवन नेनन वाडन
गावेरनि तलपकातमगति योवकडे
नीवुनु नेनुनु वाडुनु
देवुनि प्रतिबिंब मनुचु देलियग वलयुन्।

तुम, मैं और वह। 'तुम अलग हो, मैं अलग हूँ और वह अलग है' ऐसा भिन्नता का दृष्टिकोण छोड़कर सोचेंगे तो सब की आत्मा एक ही है। यह जानना चाहिए कि हममें, तुममें और उसमें भी भगवान हैं। ये सब भगवान के प्रतिबिंब हैं।

[तेलुगु]—श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री (भद्राचल रामचरित्रमु)

ऐ

ऐश्वर्य

स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः।

वह ऐश्वर्यशाली ही क्या जो दूसरों का आश्रय ले ?

—भागवत (८।८।२०)

कष्टमनंजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरांधत्वम्।

ऐश्वर्य के तिमिर से उत्पन्न अन्धता का कष्ट अंजन की शलाका से भी नहीं मिटता।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, शुकनासोपदेश वर्णन, पृ० ३१३)

विभवानुरूपास्तु प्रतिपत्तयः।

ऐश्वर्य के अनुरूप ही मनुष्य की चित्तवृत्तियां होती हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १०६)

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः॥

आरोग्य, विद्वत्ता, सज्जनों से मित्रता, महान वंश में जन्म और स्वाधीनता—ये सब मनुष्य के बिना धन के महान ऐश्वर्य हैं।

—दामोदर गुप्त (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २३४)

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।

महापुरुषों का मन ऐश्वर्य में कमल के समान कोमल रहता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ६६)

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता।

ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८३)

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि।

धन के मद ने किसको टेढ़ा नहीं कर दिया ?

—तुलसीदास (दोहावली, २६२)

We have produced a world of contented bodies and discontented minds.

हमने ऐसा संसार बनाया है जिसमें संतुष्ट शरीर हैं और असंतुष्ट मन हैं।

—एडम क्लेटन पावेल (कीप दि फ़ेथ बेबी)

Few of us can stand prosperity. Another man's, I mean.

हममें से बहुत कम लोग ऐश्वर्य सहन करेंगे। मेरा तात्पर्य है दूसरों का ऐश्वर्य।

—मार्क ट्वेन (फ़ालोइंग दि इक्वेटर)

Prosperity is like a tender mother, but blind, who spoils her children.

ऐश्वर्य एक स्नेहमयी माता के समान है जो अंधी है और अपने बच्चों को विगाड़ देती है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

ओ

ओम्

दे० 'प्रणव'।

ओंठ

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यात्—
मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्—
ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य॥

यदि नए पल्लवों में श्वेत फूल रख दिया जाए या लाल वर्ण के मूंगे पर उज्ज्वल मोती रख दिया जाए तो उन (पार्वती) के अरुण अधरों पर कान्ति-वर्षा करने वाली मन्द स्मिति की तुलना कर सकते हैं।

—कालिदास (कुमारसंभव, १।४४)

अधरं खलु बिम्बनामकं फलमस्मादिति भव्यमव्ययम्।
लभतेऽधरविम्बमित्यदः पदमस्या रदनच्छदं वदत्॥

'अधरविम्ब' यह पद इस (दमयन्ती) के ओंठ का प्रतिपादन करता हुआ विम्ब नामक फल, इस (दमयन्ती) के ओष्ठ से अधर (अर्थात् निकृष्ट) है, इस प्रकार अबाधित अन्वय को प्राप्त करता है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, २।२४)

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण
स्त्रीसंज्ञितं वडिशमत्र भवाम्बुराशी।
येनाचिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य—
मत्स्यान्विकृष्य पचतीत्यनुरागवह्नौ॥

इस संसार रूपी सागर में कामदेव रूपी केवट ने स्त्री रूपी जाल इसलिए फैलाया है कि वह अधर-मांस के लोभी मनुष्यरूपी मत्स्यों को अपने वश में करके उन्हें प्रणयरूपी अग्नि में भून डाले।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, ८४)

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि।
चार-भट-चौर-चेटक-नट-विट-निष्ठीवनशरावम्॥

वेश्या के सुन्दर अधर-पल्लवों का भी चुम्बन कौन कुलीन पुरुष करता है क्योंकि वह तो गुप्तचर, ढंग, भट, चोर, दास, नट, विट आदि के थूकने का पात्र है।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, ९१)

तवैष विद्रुमच्छायो मरुमार्ग इवाधरः।
करोति कस्य नो मुग्धे पिपासाकुलितं मनः॥

हे सुन्दरी, तुम्हारे विद्रुमछाया[1], मरुस्थल के मार्ग के समान, अधर किसके मन को प्यास से व्याकुल नहीं कर देते हैं?

—अज्ञात

अधर सुरंग अमिय रस भरे। बिंब सुरंग लाज बन फरे।

—जायसी (पद्मावत, १०६)

ओछा मनुष्य

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अंगार ज्यों।

—रहीम

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतिराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय॥

—रहीम

---

१ श्लेष से दो अर्थ हैं—(क) द्रुमों (अर्थात् वृक्षों) की छाया से रहित (मरुस्थल), (ख) विद्रुम (अर्थात् मूंगा) के समान कांति (लाल रंग) वाले (अधर)।

औ

औचित्य

नभस्तलमेनोचितं सुधाधूतेर्धाम न धरा।

चन्द्रमा का उचित स्थान आकाश ही है, पृथ्वी नहीं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ५८२)

औचित्यमेकमेकत्र गुणानां राशिरेकतः।
विषायते गुणग्राम औचित्यपरिवर्जितः॥

अकेला औचित्य गुणों की बड़ी राशि के समान ही महत्त्वपूर्ण है, औचित्य के बिना तो गुणों का समूह भी विषक्त हो जाता है।

—अज्ञात

औपचारिकता

उपचारः कर्तव्यो यावदनुत्पन्नसौहृदाः पुरुषाः।
उत्पन्नसौहृदानाम् उपचारं कैतवं भवति॥

औपचारिकता तब तक निभानी चाहिए जब तक परस्पर सौहार्द न उत्पन्न हो जाय। सुहृद् मित्रों के बीच में तो औपचारिकता छल बन जाती है।

—अज्ञात

औरंगजेब

किवले के ठौर बाप बादसाह साहजहां
वाको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकरिकै मारि डार्‌यो
मेहर हूं नाहिं मा को जायो सगो भाई है।
खाइकै कसम त्यों मुराद को मनाइ लियो
फेरि ताहू साथ अति कीन्हीं तैं ठगाई है।
भूषन सुकवि कहै सुनौ औरंगजेव
ऐसे ही अनीति करि पातसाही पाई है॥

—भूषण (भूषण ग्रंथावली, प्रकीर्ण छन्द, ५४१)

हाथ तसबीह लिये प्रात करै बंदगी सी
मन के कपट सबै संभारत जप के।
आगरे में जाय दारा चौक में चुनाय लीन्हो
छत्र हू छिनाय लीन्हो मारि बूढ़े बप के।
सूजा विचलाय कैद करिकै मुराद मारे
ऐसे ही अनेक हने गोत्र निज चपके।
भूषन भनत अब साह भए सांचे
सौ-सौ चूहे खाइकै विलाई बैठी तप के॥

—भूषण (भूषण ग्रन्थावली, प्रकीर्ण छन्द, ५४२)

औषधि

प्रतिकारविधानमायुषः सति
शेषे हि फलाय कल्पते।

औषधि तभी काम करती है, जब आयु शेष हो।

—कालिदास (रघुवंश, ८।४०)

विकारानुरूपः प्रतिकारः।

रोगानुसार ही औषधि होती है।

—दिङ्नाग (कुन्दमाला, ५।१३)

क

कंजूस

दे० 'कृपणता' भी।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः।

अनुदार मनुष्य को अन्न की प्राप्ति व्यर्थ है।

—ऋग्वेद (१०।११७।६)

होन्ती वि णिप्फलच्चिअ धणरिद्धी होइ किवि णपुरिसस्स।
गिह्मा अवसंतत्तस्स णिअ अछाहि व्व पहिअस्स॥

जिस प्रकार ग्रीष्मकाल के आतप से पीड़ित पथिक की अपनी ही छाया उसके स्वयं उपयोग में नहीं आती, उसी प्रकार कंजूस आदमी की धन-वृद्धि बहुत होने पर भी बेकार हो जाती है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, २।३६)

चमड़ी जाए, दमड़ी न जाए।

—हिन्दी लोकोक्ति

सरघुल् गूर्चिन तेने मानवुलकुन् संप्राप्त मैनट्लु लो।
भरतुल् गूर्चिन वित्तमुल् परुलकुं ब्रापिंचु॥

जिस प्रकार मक्खियों के द्वारा एकत्रित मधु मानवों को प्राप्त होता है, उसी प्रकार कंजूस द्वारा इकट्ठी की गई संपत्ति दूसरों को ही प्राप्त होती है।

[तेलुगु] —पोतना (भागवतमु, ७।४३६)

कंजूसी

दे० 'कृपणता'।

कटाक्ष

दर दौरे चश्मे मस्ते तू हुशियार कस न दीद
कि ओ दीदा कज लसव्वुरे चश्मत खराब नेस्त।

तेरी चितवन में ऐसी मस्ती है कि सभी को मोह लेती है। ऐसी कोई भी आँखें नहीं देखी गयी हैं जो उसके लिए व्याकुल न हो रही हों।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

याभिर्विलोलतर-तारक दृष्टिपातैः
शक्रादयोऽपि विजितास्त्ववलाः कथं ताः।

वे (नारियाँ) अबला कैसे कही जा सकती है जिनकी चंचल पुतलियों के कटाक्षों से इन्द्रादि भी हार मानते हैं।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, १०)

बाँकी चितवनि चित गड़ी, सूधी तो कछु धीम।
गरमी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम॥

—रहीम

दृगन लगत बेधत हियो, विकल करत अँग आन।
ये तेरे सब तें विषम, ईछन तीछन बान॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ५७)

ऐंचत सी चितवनि चितै, भई ओट अलसाय।
फिरि उझकनि को मृगनयनि, दृगन लगनिया लाय॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ७१)

कटुवाणी

अरुन्तुदं परुषं तीव्रवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विन्द्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे
निवद्घन्निर्ऋतिं वहन्तम्॥

व्यंग्यभाषी तथा कठोर व तीक्ष्ण वाणी वाले मनुष्यों को जो अपने वचनरूपी बाणों से सर्वदा किसी न किसी के मर्म पर आघात करते हैं, संसार में सभी से बढ़कर अलक्ष्मी का पात्र समझना चाहिए क्योंकि ऐसे मनुष्यों के मुख में सर्वदा विपत्तियाँ रहती है तथा एक न एक बंधन उनके लिए बना रहता है।

— मत्स्यपुराण (३६।६)

बाण से भी वचन का होता भयंकर घाव है।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, ४३)

अग्नि का जला घाव तो भीतर से पूर्णतया ठीक हो जाता है, और बाहर एक चिह्न मात्र रह जाता है परंतु जिह्वा का लगा घाव कभी अच्छा नहीं हो सकता।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १२९)

कठिनाई

जिस चीज की हमें दरकार है वह हमेशा कठिन नहीं रहती है क्या ? जब हम भरसक प्रयत्न करते है तब कठिन वस्तु आसान हो जाती है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २०२)

रंज[1] से ख़ूगर[2] हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसां[3] हो गयी।

—ग़ालिब (दीवान)

इब्तिदाए इश्क़[4] है रोता है क्या
आगे आगे देखिए होता है क्या।

—अज्ञात

संत पुरुष सरल को भी कठिन समझते हुए अन्त में ऐसी कोई चीज नहीं देखेगा जो कठिन हो।

—लाओ-त्स (पथ का प्रभाव)

हमें कठिनाइयों को मानना चाहिए, उनका विश्लेषण करना चाहिए और उनके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए। जगत् में सीधे मार्ग कहीं नहीं हैं, हमें टेढ़े-मेढ़े मार्ग तय करने के लिए तैयार रहना चाहिए तथा मुफ्त में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

—माओ-त्से-तुंग (अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण, पृ० १८९-१९०)

कठोरता

तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली।

उस दिन तो वज्र की कठोरता भी थर्रा कर चूर्ण हो गयी।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकांड, १०)

१. दु:ख २. अभ्यस्त ३ आसान।
४. प्रेम का प्रारंभ

कथन

जो बात कही जा सकती है वह स्पष्ट रूप से भी कही जा सकती है।

—लुडविग विटगेंस्टीन (ट्रैक्टस लाजिको फिलास्फिक्स, ४।११६)

When you speak to a man, look on his eyes; when he speaks to you, look on his mouth.

जब तुम किसी व्यक्ति से बोलो, तो उसके नेत्रों की ओर देखो; जब वह तुम से बोले, तो तुम उसके मुख की ओर देखो।

—बेंजमिन फ्रेंकलिन (पुअर रिचार्ड्स आल्मनेक्)

कथनी-करनी

परोपदेशे पांडित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वयमनुष्ठानं कस्यचित् तु महात्मनः॥

पर-उपदेश में पाण्डित्य सभी मनुष्यों को सरल होता है। स्वयं धर्म का पालन तो किसी महापुरुष में ही देखा जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१०३)

कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी।

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी ११९)

कथणी कथै सो सिख बोलिये, बेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी॥

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी २७०)

कथनी नाहिंन पाइये, पाइये करनी सोय।
बातन दीपग ना बरै, बारे दीपग होय॥

—नंददास (रूपमंजरी, दोहा ५३५)

अंतरगति औरैं कछू, मुख रसना कुछ और।
दादू करणी और कछु, तिनकों नांही ठौर॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० २६८)

करने वाले हम नहीं, कहने कूँ हम सूर।
कहिबा हम थैं निकट है, करिबा हम थैं दूर॥

—दादूदयाल

बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल।

—मलकूदास

करनी बिन कथनी इसी,
ज्यो ससि बिन रजनी;
बिन साहस ज्यूं सूरमा,
भूपन बिन सजनी।

—चरनदास

यह कितनी ग़लत बात है कि हम मैले रहें और दूसरों को साफ़ रहने की सलाह दें।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ८५)

यह जगत् का निजी अनुभव है कि आधी छटाँक-भर आचरण का जितना फल होता है उसका मन-भर भापणों अथवा लेखों का नहीं होता।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, ५-५-१९२१)

भाषण अनेक बार हमारे आचरण की ख़ामियो का दर्पण होता है। बहुत बोलने वाला कदाचित् ही अपने कहे का पालन करता है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, ५-५-१९२१)

कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है।

—प्रेमचंद (गुप्तधन भाग १, पृ० १४६)

बातें करे मैना की-सी,
आँखें बदले तोता की-सी।

—हिन्दी लोकोक्ति

सालहा बाशद चो बुलबुल गुफ्तओ ऊ ख़ुद नकर्द
बस बेवाग़ आख़िर दमे किरदारे बेगुफ़्तार कू।

वर्षों से तू बुलबुल के समान चहकता चला आ रहा है। कहता बहुत कुछ है परन्तु करता कुछ भी नहीं है। आखिर कभी तूने शान्ति के साथ किसी बात पर आचरण भी किया है।

[फ़ारसी] —सनाई

कहां कहिणीं, घणी सुहिणी,
रहां रहिणी, मगरि सखिणी।

मैं बातें बड़ी सुन्दर-सुन्दर करता हूं लेकिन मेरा आचार तथ्यरहित है।

[सिंधी] —किशिनचंद बेबस (कविता 'होतु')

कथनी पठणी करूनि काय। वांचुनी रहणी वाचां जाय।

यदि तदनुसार आचरण नही किया तो केवल कहने या पढ़ने से क्या लाभ?

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २३५३)

बोले तैसा चाले।

जैसा बोले वैसा ही आचरण करे।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४३१६)

पल्कोक्कटि सेत योकटि
यगुट चाल दोषमु।

कहना कुछ, करना कुछ। कहने और करने में अंतर दोषयुक्त है।

[तेलुगु] —तिक्कना (महाभारत, महाप्रस्थान पर्व, ११४१)

चेप्पवच्चु बनुलु सेयुट कष्टमौ।

काम कहना तो आसान है, करना बहुत कठिन है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

पहले कहना और बाद में मरना, इसकी अपेक्षा पहले करना और फिर कहना अधिक अच्छा है। लेकिन सबसे अच्छा तो काम करके चुप ही रहना है।

—अरण्डेल (सेवा के मन्त्र)

Suit the action to the word, the word to the action.

कर्म को वचन के अनुरूप और वचन को कर्म के अनुरूप बनाओ।

—शेक्सपियर (हैमलेट, ३।२)

The only infallible rule we know is, that the man who is always talking about being a gentle man never is one.

एकमात्र अमोघ नियम, जिसे हम जानते है, वह यह है कि जो मनुष्य सदैव सज्जन होने की बात करता रहता है, वह कभी भी सज्जन नहीं होता।

—राबर्ट स्मिथ सरटीज़ (आस्क मामा)

कनक

दे० 'स्वर्ण'।

कनक-कामिनी

एक कनक अरु कामनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखै ही थैं विष चढ़ै, खाये सूँ मरि जाइ।।
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४०)

एक कनक अरु कामनी, दोऊ अगनि की झाल।
देखै ही तन प्रजलै, परस्याँ ह्वै पैमाल।।
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४०)

चलौ चलौ सब कोई कहै, पहुँचे बिरला कोइ।
एक कनक अरु कामनी, दुरगम घाटी दोइ।।
—कबीर

तुलसी या संसार मैं, कौन भयो समरत्थ।
इक कंचन इक कुचन पर को न चलायो हत्थ।।
—तुलसीदास

कन्या

कन्या पितृत्वं बहुवन्दनीयम्।
कन्या का पिता होना बहुत वन्दनीय है।
—भास (अविमारक, १।६)

अर्थो हि कन्या परकीय एव
कन्या तो दूसरे की ही सपत्ति होती है।
—कालिदास (अभिज्ञान शाकुन्तल, ४।२२)

[अपभ्रंश]

सव्वउ कण्णउ पर-मायणउ।
सभी कन्याएँ पर-पात्र ही होती हैं।
— स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ६।३)

कहवाँ का हंस कहाँ उड़ि जाइ रे?
कहवाँ की धीरिया कहाँ चलि जाइ रे?
पुरुबू का हंसा पछिउँ उड़ि जाइ रे,
नैहर की धीरिया सजन घर जाइ रे।

कहाँ का हंस कहाँ उड़ जाता है? कहाँ की कन्या कहाँ चली जाती है? पूर्व का हंस पश्चिम को उड़ जाता है। पितृ-गृह की कन्या पतिगृह चली जाती है।
—एक लोकगीत

कपट

दे० 'छल' भी।

माया ह जज्ञे मायाया।
कपट से कपट बढ़ता है।
—अथर्ववेद (८।९।५)

व्याजेन विन्दन् वित्तं हि धर्मात् स परिहीयते।
जो छल से धन प्राप्त करता है, वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।
—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १३२।१८)

तुलसी देखि सुवेषु, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकहि पेखु, बचन सुधासम असन अहि।।
—तुलसीदास, रामचरितमानस, (१।१६१ ख)

मिलहिं न राम कपट लौ लाये।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १२६)

हृदय कपट बर बेष धरि, बचन कहहिं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि।।
—तुलसीदास (दोहावली, ३३२)

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यों रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नही।।
—रहीम (दोहावली, २७३)

बिन गुन कुल जाने बिना, मान न करि मनुहारि।
ठगत फिरत सब जगत को, भेष भगत को धारि।।
—वृन्द (वृन्द सतसई)

पलटू मैं रोवन लगा, हेरि जगत की रीति।
जहँ देखौ तहँ कपट है, कासों कीजै प्रीति।।
—पलटू साहब

मुँह मीठो भीतर कपट, तहाँ न मेरो बास।
काहू से दिल ना मिलै, पलटू फिरै उदास।।
—पलटू साहब

तुम्हारा हँसना तुम्हारे क्रोध से भी भयानक है
—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और।
—हिन्दी लोकोक्ति

मुख ऊपर मीठास, घर मांही खोटा घड़े।
इसड़ा सूं इखलास, राखीजै नहँ राजिया॥

मुख से मीठा बोलते है पर हृदय से बुराई करते रहते हैं। हे राजिया! ऐसे लोगों से कभी संपर्क नही रखना चाहिए।

[राजस्थानी] —कृपाराम (राजिया रा दूहा)

कबीर

जिस धर्मवीर ने पीर, पैगंबर आदि के भजन-पूजन का निषेध किया था, उसी की पूजा चल पड़ी; जिस महापुरुष ने संस्कृत को कूप-जल कहकर भाषा के बहते नीर को बहुमान दिया था, उसी की स्तुति में आगे चलकर संस्कृत भाषा में अनेक स्तोत्र लिखे गए और जिसने बाह्याचारों के जंजाल को भस्म कर डालने के लिए अग्नि-तुल्य वाणियाँ कहीं, उसकी उन्हीं वाणियों से नाना बाह्याचारों की क्रियाएँ सम्पन्न की जाने लगीं। इससे बढ़कर क्या आश्चर्य हो सकता है!

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० २८-२९)

भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया—बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नज़र आती है।

—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (कबीर, उपसंहार)

कमल

पंकज जलेषु वासः प्रीतिर्मधुपेषु कंटकैः संगः।
यद्यपि तदपि तवैतच्चित्रं मित्रोदये हर्षः॥

हे कमल! तुम्हारा जलों (पक्षान्तर से 'जड़ों') में वास है, मधुपों (पक्षान्तर से 'मद्यपों') में प्रेम है तथा कंटकों (पक्षान्तर से 'दुष्टों') का संग है, तो भी यह विचित्र बात है कि मित्र (पक्षान्तर से 'सूर्य') का उदय होने पर तुम्हें हर्ष (पक्षान्तर से 'विकसन') होता है।

—अज्ञात

कलुष-पंके मुहीं केड़े मलिन
केमंते सरि तोर हेवि नलिन
पंकज अटू तूही तेनु भरसा
तो परि शुभ्र हेवि लभि सुदशा।

हे कमल, मैं कलुष-पंक में कितना मलिन हुआ व्यक्ति हूं! मैं किस तरह तेरे समान बनूंगा? हे कमल! मैं तेरे समान सुदशा को प्राप्त कर शुभ्र हो जाऊँगा, इस बात का मुझे भरोसा इसलिए है क्योंकि तू भी (पंक से जन्मा) पंकज है।

[उड़िया] —मधुसूदन राव

कर

मधुदोहं दुहेद् राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपम्।
वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुट्टयेत्॥

जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूल एवं वृक्ष का रस लेता है, वृक्ष को काटता नहीं और जैसे मनुष्य बछड़े को कष्ट न देकर धीरे-धीरे गाय को दुहता है, उसके थनों को कुचल नहीं देता, उसी प्रकार राजा को कोमलता के साथ राष्ट्र रूपी गौ का दोहन करना चाहिए, उसे कुचलना नहीं चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्तिपर्व, ८८।४)

नित्योद्विग्नाः प्रजा यस्य करभार-प्रपीडिताः।
अनर्थैर्विप्रलुप्यन्ते स गच्छति पराभवम्॥

जिसकी प्रजा सदा कर के भार से पीड़ित हो नित्य उद्विग्न रहती है और नाना प्रकार के अनर्थ उसे सताते रहते हैं, वह राजा पराभव को प्राप्त होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्तिपर्व, १३९।१०९)

रत्तिन्हि चोरा खादन्ति, दिवा खादन्ति तुण्डिया।

रात में चोर लूटते हैं और दिन में कर वसूल करने वाले।

[पालि] —जातक (गण्डतिन्दु जातक)

Taxation without representation is tyranny.
बिना प्रतिनिधित्व के कर लगाना अत्याचार है।

—जेम्स ओटिस (बोस्टन के न्यायालय में उक्ति, फ़रवरी १७६१)

But in this world nothing can be said to be *certain, except death and taxes.*

परन्तु इस संसार में मृत्यु और करों के अतिरिक्त किसी वस्तु को भी अवश्यंभावी नहीं कहा जा सकता।

—बेंजमिन फ्रैंकलिन (१३ नवम्बर १७८९ के एक पत्र में)

करुणा

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

हे निषाद ! तुझे कभी शान्ति न मिले, क्योंकि तूने काम से मोहित क्रौंच के इस जोड़े में से एक की हत्या कर दी।

—वाल्मीकि (रामायण, बालकाण्ड, २।१५)

अपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

पत्थर भी रोने लगता है और वज्र का हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, १।२८)

करुणार्द्रा हि सर्वस्य सन्तोऽकारणबांधवाः।

करुणा से आर्द्र हृदय वाले व्यक्ति सभी के अकारण बंधु होते हैं।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १२।३४।२०)

जैसी तुम कीन्ही तैसी करै को कृपा के सिंधु।
ऐसी प्रीति दीनबंधु दीनन पै आनै को?

—नरोत्तमदास (सुदामाचरित, ३६)

कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० ५१)

करुणा अपना बीज अपने आलम्बन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है, वह बदले में करुणा करने वाले पर भी करुणा नहीं करता—जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है—बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृष्ठ ५२)

शोक अपनी निज की इष्ट-हानि पर होता है और करुणा दूसरों की दुर्गति या पीड़ा पर होती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० २५२)

दुखी पर करुणा क्षण भर हो,
प्रार्थना प्रहरों के बदले।
मुझे विश्वास है कि वह सत्य,
करेगा आकर तव सम्मान।

—जयशंकर प्रसाद (झरना, पृ० ७४)

जिनकी करुणा का प्रसार-क्षेत्र जितना अधिक होता है, श्री भगवान् के साथ उनका तादात्म्य भी उतना ही गंभीर रहता है।

—गोपीनाथ कविराज

मृत्यु का आघात जिस करुणा के स्रोत को उद्वेलित करता है, वह करुणा ही सबसे बड़ी मानवीय निधि है।

—विद्यानिवास मिश्र (परम्परा बंधन नहीं, पृ० २३)

जंतुवुलपै गरुण मनुजुलु पूनकुन्न
वारलपै गरुण देवतलकु रादु।

यदि मानव प्राणियों पर करुणा नहीं दिखाएगा तो देवतागण मानव पर करुणा नहीं दिखाएंगे।

[तेलुगु] —तिरुपति वेंकटकवुलु (बुद्धचरित्रमु)

परन्तु जब से मुझे मालूम हुआ है कि लोगों में सत्य है, और जीवन की गंदगी और बुराई के लिए बहुसंख्या दोषी नहीं है, तब से मेरा हृदय कोमल बन गया है। मेरे दिल में लोगों के लिए एक दर्द आ गया है।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

For pitee renneth sone in gentile heart.

क्योंकि करुणा शीघ्र ही कोमल हृदय में बरसती है।

—चाउसर (कैंटरबरी टेल्स, नाइट्स टेल)

क़र्ज़

दे० 'ऋण'।

कर्त्तव्य

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ।।

जो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए हितकर और अपने लिए भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पण बुद्धि से करे, सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूल मंत्र है ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।४०)

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ।।

मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट मीठे वचन बोलने वाला हो, परन्तु उनके वश में कभी न हो ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३८।१०)

न प्राणसंशये जन्तोरकृत्यं नाम किंचन ।

प्राण-संशय होने पर प्राणियों के लिए कुछ भी अकरणीय नहीं होता है ।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३३)

अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।।

जिसे करना उचित नहीं है उसे प्राणों के कंठ में आ जाने पर भी नहीं करना चाहिए और जो करणीय है उसे प्राण संकट उपस्थित होने पर भी करना चाहिए ।

—अज्ञात

अकृत्यं नैव कृत्यं स्यात् प्राणत्यागे अपि समुपस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यम् एष धर्मः सनातनः ।।

प्राण-संकट उपस्थित होने पर भी न करने योग्य काम को छोड़ना नहीं चाहिए, यह सनातन धर्म है ।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, ४।४२)

विपत्ति से रक्षण सर्व-भूत का,
सहाय होना असहाय जीव का,
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्वप्रधान धर्म है ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, ११।८५)

किसी किश्ती पर अगर फ़र्ज़ का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं ।

—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० २०३)

कर्त्तव्य-पालन में से ही हक़ पैदा होता है ।

—महात्मा गांधी (दिल्ली की प्रार्थना सभा, २८ जून १९४७)

महान् संघर्षों में पाखण्डपूर्ण कार्य भी साथ-साथ होते रहते हैं । हमारा कर्त्तव्य है कि हम इनके प्रति सतर्क रहें ।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २१-११-१९२०)

राज्य अपना धर्म पालन करे या न करे, मगर हमें तो अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए तैयार रहना चाहिए ।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४९७)

कर्त्तव्यहीनता से कर्तव्य श्रेष्ठ है । पर कर्त्तव्य से अकर्त्तव्य श्रेष्ठ ।

— विनोबा (विचारपोथी, २९)

कर्त्तव्य-पालन करते हुए मरना जीवन का ही दूसरा नाम है ।

—वृन्दावनलाल वर्मा (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ३९५-९६)

प्रायः सभी के पास बुद्धि है, सभी अपने को समझदार मानते हैं परन्तु ठीक कर्त्तव्य का ज्ञान किसी विरले ही विवेकी को होता है ।

—साधु वेष में एक पथिक (कर्त्तव्यदर्शन, द्वितीय भाग, पृ० ३)

काँपिबे ना क्लान्तकर, भाँगिबे न कण्ठस्वर
टुटिबे ना वीणा ।
नवीन प्रभात लागी, दीर्घ रात्रि रबो जागि
दीप निभिबे ना ।

थका हुआ भी मेरा हाथ न काँपेगा, मेरा गला न बैठ जायेगा, मेरी वीणा न टूटेगी, नवीन प्रभात के लिए तमाम रात मैं जागता रहूँगा, दीपक भी न बुझेगा ।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('अशेष' कविता)

पूर्वज, भगवान, अतिथि, बन्धु तथा स्वयं इन पाँचों के लिए धर्मानुकूल सतत कर्म करना ही गृहस्थ का प्रधान कर्तव्य है ।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३४)

प्रत्येक अपने क्षेत्र में महान् है, परन्तु एक का कर्त्तव्य दूसरे का कर्त्तव्य नहीं हो सकता।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, तृतीय खण्ड, पृ० २७)

हमारी उन्नति का एकमात्र उपाय यह है कि हम पहले वह कर्त्तव्य करें जो हमारे हाथ में है। और इस प्रकार धीरे-धीरे शक्ति-संचय करते हुए क्रमशः हम सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर सकते है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, तृतीय खण्ड, पृ० ४३)

It is not, what a lawyer tells me I may do; but what humanity, reason, and justice, tell me I ought to do.

यह वह बात नहीं है जो वकील बताए कि मुझे करनी चाहिए, अपितु यह वह बात है जो मानवता, विवेक और न्याय बताते है कि मुझे करनी चाहिए।

—एडमंड बर्क (२२ मार्च १७७५ का भाषण)

कर्म

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो
अपरीतास उद्भिदः।

अविचल, विघ्नरहित और आत्मोकर्ष को प्राप्त करने वाले हमारे कल्याणकारक कार्य चारों ओर से प्राप्त हों।

—ऋग्वेद (१।८९।१)

यदेव विद्यया करोमि श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।

जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से युक्त होकर किया जाता है, वही प्रबलतर होता है।

—छान्दोग्योपनिषद् (१।१।१०)

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।

पुरुष पुण्यकर्म से पुण्यवान होता है और पापकर्म से पापी होता है।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (३।२।१३)

योगस्थः कुरु कर्माणि नीरसो वाथ मा कुरु।

योगस्थ होकर कर्मों को करो। नीरस होकर कर्म मत करो।

—अक्ष्युपनिषद् (द्वितीय खण्ड, श्लोक ३)

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः॥

जो कर्म के फल का विचार न कर केवल कर्म की ओर दौड़ता है, वह उसका फल मिलने के समय उसी प्रकार शोक करता है जैसे ढाक का वृक्ष सीचने वाला करता है।

—वाल्मीक (रामायण, अयोध्याकाण्ड, ६३।९)

यत् कृत्वा न भवेद् धर्मो न कीर्तिर्न यशोध्रुवम्।
शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत्॥

जो कार्य करने से न तो धर्म होता हो और न कीर्ति बढ़ती हो और न अक्षय यश ही प्राप्त होता हो, उल्टे शरीर को कष्ट होता हो, उस कर्म का अनुष्ठान कौन करेगा?

—वाल्मीकि (रामायण, अरण्यकाण्ड, ५०।१९)

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात् तत् तत्सेवेत यत्नतः॥

जो-जो काम दूसरे के अधीन हों, उन्हें यत्नपूर्वक छोड़ दे। जो अपने वश में हों, उन्हें यत्नपूर्वक पूरा करे।

—मनुस्मृति (४।१५९)

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥

जिस काम को करते हुए अन्तरात्मा का परितोष हो उसे प्रयत्नपूर्वक करे और उसके विपरीत कर्म को छोड़ दे।

—मनुस्मृति (४।१६१)

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च॥

जो अर्थ और काम धर्म-विरुद्ध हैं, उनका त्याग करे। भविष्य में दुःख देने वाले धर्म-कार्य का त्याग करे और लोकनिन्दित धर्म-कार्य का भी त्याग करे।

—मनुस्मृति (४।१७६)

कर्मणाऽऽहुः सिद्धिमेके परत्र
हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके।
नाभुंजानो भक्ष्यभोजस्य तृप्येद्
विद्वानपीह विहितं ब्राह्मणानाम् ॥

गृहस्थाश्रम में कोई कर्मयोग द्वारा परलोक में सिद्धि बताते हैं। दूसरे लोग कर्म का त्याग कर ज्ञान द्वारा सिद्धि का प्रतिपादन करते हैं। विद्वान पुरुष भी इस जगत् में भक्ष्य पदार्थों का भोजन किए बिना तृप्त नहीं हो सकता, अतएव विद्वान ब्राह्मण के लिए भी क्षुधा-निवृत्ति के लिए भोजन करने का विधान है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, २९।६)

या वै विद्याः साधयन्तीह कर्म
तासां फलं विद्यते नेतरासाम्।
तत्रेह वै दृष्टफलं तु कर्म
पीत्वोदकं शाम्यति तृष्णयाऽऽर्तः ॥

जो विद्याएँ कर्म का सम्पादन करती हैं, उन्हीं का फल दृष्टिगोचर होता है, दूसरी विद्याओं का नहीं। विद्या तथा कर्म में भी कर्म का ही फल यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। प्यास से पीड़ित मनुष्य जल पीकर ही शान्त होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, २९।७)

सोऽयं विधिर्विहितः कर्मणैव
संवर्तते संजय तत्र कर्म।
तत्र योऽन्यत् कर्मणः साधुमन्ये-
न्मोघं तस्यालपितं दुर्बलस्य।

हे संजय ! ज्ञान का विधान भी कर्म को साथ लेकर ही है, अतः ज्ञान में भी कर्म विद्यमान है। जो कर्म के स्थान पर कर्मों के त्याग को श्रेष्ठ मानता है, वह दुर्बल है, उसका कथन व्यर्थ ही है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, २९।८)

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्यव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥

सफलता होगी ही, ऐसा मन में दृढ़ विश्वास कर, सतत विषाद-रहित होकर तुझे उठना चाहिए, सजग होना चाहिए और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले कार्यों में लग जाना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३५।२९-३०)

कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २७।८
अथवा गीता, ३।८)

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

यज्ञार्थ कर्मों के अतिरिक्त अन्य कर्मों से इस लोक में बंधन होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २७।९
अथवा गीता, ३।९)

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

'कर्म क्या है और अकर्म क्या है', इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २८।१६
अथवा गीता, ४।१६)

गहना कर्मणो गतिः।

कर्म की गति गहन है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २८।१७
अथवा गीता, ४।१७)

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥

हे अर्जुन ! जिसने समत्व बुद्धि रूप योग द्वारा सब कर्मों का संन्यास कर दिया है, जिसने ज्ञान से सब संशय दूर किए हैं, और जो आत्मबल से युक्त है, उसको कर्म नहीं बांधते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।४१
अथवा गीता, ४।४१)

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

हे अर्जुन ! सहज कर्म दोष-युक्त होने पर भी त्यागना नहीं चाहिए क्योंकि धुएं से अग्नि के सदृश सब ही कर्म किसी न किसी दोष से आवृत होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४२।४८
अथवा गीता १८।४८)

सर्वे कर्मवशा वयम्।

हम सभी कर्म के अधीन हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १।७२)

अभिमानकृतं कर्म नैतत् फलवदुच्यते।
त्यागयुक्तं महाराज सर्वमेव महाफलम्॥

महाराज! यह कर्म यदि अभिमानपूर्वक किया जाए तो सफल नहीं होता। त्यागपूर्वक किया हुआ कर्म महान् फलदायक होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १२।१६)

तत्कर्म यन्न वन्धाय, सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्॥

कर्म वही है जो बन्धनकारक न हो। विद्या वही है जो मुक्तिकारक हो। इसके अतिरिक्त अन्य कर्म प्रयास मात्र है और अन्य विद्या शिल्प-निपुणता मात्र है।

—विष्णुपुराण (१।१९।४१)

संप्राप्य भारते जन्म सुकर्मसु पराङ्मुखः।
पीयूषकलसं त्यक्त्वा विषभाण्डं स मार्गति॥

जो भारतवर्ष में जन्म लेकर पुण्य कर्मों से विमुख होता है, वह अमृत का कलश छोड़कर विष का पात्र अपनाता है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ३।६६)

यः स्वाचारपरिभ्रष्टः सांगवेदान्तगोऽपि वा।
स एव पतितो ज्ञेयो यतः कर्मवहिष्कृतः॥

जो छहों अंगों सहित वेदों और उपनिषदों का ज्ञाता होकर भी अपने आचार से गिरा हुआ है, उसे पतित ही समझना चाहिए क्योंकि वह कर्मभ्रष्ट है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ४।२३)

गुणबाहुल्यं तदात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यम्।

गुणशीलता, तात्कालिक परिस्थिति तथा भविष्य का विचार करके शीघ्रता तथा दीर्घसूत्रता दोनों को छोड़कर, देश-काल के अनुकूल अपना कार्य करना चाहिए।

—भास (अविमारक, १।६ के पश्चात्)

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते।

न रूप, गौरव का कारण होता है और न कुल। नीच हो या महान् उसका कर्म ही उसकी शोभा बढ़ाता है।

—भास (पंचरात्र, २।३३)

ज्ञानाय कृत्यं परमं क्रियाभ्यः।

ज्ञान के लिए किया जाने वाला कर्म, सभी कर्मों में श्रेष्ठतम है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२५)

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।

व्यर्थ कार्यों के लिए प्रयत्न करने वाले कौन व्यक्ति सचमुच तिरस्कार के पात्र नहीं होते?

—कालिदास (मेघदूत, पूर्व, ५८)

अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान्।

कार्य से पुरुष स्त्री हो जाता है और कार्य से ही स्त्री पुरुष हो जाती है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ३।२७)

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्।

साधु-पुरुष अपनी उपयोगिता फल द्वारा प्रकट करते हैं, वाणी द्वारा नहीं।

—श्रीहर्ष, (नैषधीयचरित, २।४८)

नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति।

हम कर्मों को नमस्कार करते हैं, जिन पर विधाता का भी वश नहीं चलता।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ९५)

गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन।

कोई काम चाहे अच्छा हो या बुरा, बुद्धिमान को पहले उसके परिणाम का विचार करके तब काम में हाथ लगाना चाहिए!

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १००)

कर्मणैव जन्तव उत्पद्यन्ते, विपद्यन्ते, विद्यन्ते च।
यो हि यदा यदाचारति कर्म, तदेव देवता॥

सभी जन्तु अपने-अपने कर्म के अनुसार जन्म लेते हैं, कर्मानुसार ही मरते हैं और कर्मानुसार ही विद्यमान रहते हैं। जो व्यक्ति जब जैसा कर्म करता है, वहीं देवता है।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १५।७)

अतिजीवति वित्तेन सुखं जीवति विद्यया।
किंचिज्जीवति शिल्पेन ऋते कर्म न जीवति॥

मनुष्य धन द्वारा अधिक जीता है। विद्या से सुखपूर्वक जीता है। शिल्प से थोड़ा जीता है। बिना कर्म के मनुष्य जीवित ही नहीं रहता है।

—अज्ञात

अज्ञं कर्माणि लिम्पन्ति तज्ज्ञं कर्म न लिम्पति।
लिप्यते रसनैवेका सर्पिषा करवद् यथा।

अज्ञानी को कर्म लिप्त करते हैं, ज्ञानी को कर्म लिप्त नहीं करता, जैसे घी हथेली को लिप्त करता है लेकिन जिह्वा को नही।

—अज्ञात

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

धन भूमि पर, पशु गोष्ठ में, पत्नी घर के द्वार पर, परिवारीजन श्मशान में तथा देह चिता में रह जाती है। परलोक मार्ग में जीव अकेला ही जाता है।

—अज्ञात

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि॥

किये हुए शुभाशुभ कर्म को अवश्य भोगना पड़ेगा। किये हुए कर्म का शतकोटि कल्पों में भी क्षय नहीं होता।

—अज्ञात

अयशः प्राप्यते येन येन चापगतिर्भवेत्।
पुण्यं च भ्रश्यते येन न तत्कर्मसमाचरेत्॥

जिससे अपयश और कुमति हो तथा जिससे पुण्य नष्ट हो जाएँ, ऐसा कर्म कभी न करे।

—अज्ञात

तंच कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति॥

उसी काम का करना ठीक है जिमे करके अनुताप करना न पड़े, और जिसके फल का प्रसन्न मन से भोग करे।

[पालि] —धम्मपद (५।९)

ईश्वरार्पितं नेच्छया कृतम्।
चित्तशोधकं मुक्तिसाधकम्॥

ईश्वर को अर्पित करके तथा इच्छा त्याग कर किया गया कर्म चित्तशोधक तथा मुक्तिसाधक होता है।

—रमण महर्षि (उपदेशसार, ३)

अफलानि दुरन्तानि समव्ययफलानि च।
अशक्यानि च वस्तूनि नारभेत विचक्षणः॥

बुद्धिमान व्यक्ति को फलशून्य, कठिन, समान लाभ-हानि वाले तथा अशक्य कर्मों को प्रारंभ नहीं करना चाहिए।

—बल्लालकवि (भोजप्रबंध, १६)

अमनस्कं गते चित्ते जायते कर्मणां क्षयः।
यथा चित्रपटे दग्धे दह्यते चित्रसंचयः॥

चित्त अमनस्क होने पर कर्मों का क्षय हो जाता है, जैसे चित्रपट जल जाने पर चित्रों का समूह भी जल जाता है।

—शार्ङ्गधर-पद्धति

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति।
एवमात्मकृतं कर्म मानवाः प्रतिपद्यते॥

जैसे कुम्हार मिट्टी के पिंडों से जो चाहता है, बनाता है, उसी तरह अपना किया हुआ कर्म मनुष्यों को बनाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका ३४)

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम्॥

लेने, देने और करने योग्य कार्य यदि तुरन्त नहीं कर लिया जाता तो समय उसका रस पी जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।९५)

आज्ञातिरिक्तं यत्किंचिन्न च सिद्ध्येत्कथंचन।
प्रत्यक्षेणानुमानेन तदुपेक्ष्यं तु दूरतः॥

आज्ञा के सिवा जो कुछ है, वह यदि प्रत्यक्ष और अनुमान से ठीक न जँचे, तो उसका दूर से ही अनादर कर देना चाहिए।

—रामावतार शर्मा (श्री रामावतार शर्मा निबन्धावली, पृ० १४४)

कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।

कर्म सदा कर्ता के पीछे-पीछे चलते हैं।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१३।२३)

कम्मुण वंभणो होइ, कम्मुण होइ खत्तिओ।
वईसो कम्मुण होइ, सुद्दो हवइ कम्मुण।

कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय। कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (२५।३३)

से न अरिअ जे उपहासए
धाए मरिअ वरु आगी॥

अग्नि-प्रवेश द्वारा मर जाना अच्छा है, परन्तु वह (काम) नहीं करना चाहिए, जिसका उपहास दूसरे करें।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली,
द्वितीय भाग, पृ० ३१)

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।
सावन कलस सुरै भर्‌या, साधू निन्द्या सोइ॥

—कबीरदास (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४८)

जीव करम वस सुख-दुख भागी।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१२।२)

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥
करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।७६।४)

कठिन करम गति जान विधाता।
सो सुभ-असुभ सकल फल दाता॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८२।२)

'ब्रह्म' भनै गिरि मेरु टरै, पर कर्म की रेख टरै नहिं टारी।

—बीरवल

जा सन कर्म छिपावत हो, सो तो देखत है घट में घर छाये।

—धरनीदास

कर्महीनता मरण कर्म कौशल है जीवन।
सौरभरहित सुमन समान है कर्महीन जन॥
तिमिर-भरित अपुनीत इन्द्रियों का वर रवि है।
कर्म परम पापाणभूत मानस का पवि है॥
है कर्म-त्याग की रंगों में परिपूरित निर्जीवता।
है कर्मयोग के सूत्र में बँधी समस्त सजीवता॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनंद।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो, तब तक स्वार्थ-प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है।

—जयशंकर प्रसाद (विशाख, पृ० ३७)

स्वीय कर्मों के ही अनुसार,
एक गुण फलता विविध प्रकार;
कहीं राखी बनता सुकुमार,
कहीं बेड़ी का भार।

—सुमित्रानंदन पंत

कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो, कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म ही मृत्यु तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, दूसरा सर्ग)

संसार के सारे कर्म इसके पार करने के सेतु हैं। देखने मे एक कर्म दूसरे से भिन्न है…पर उन सब के मिलने से ही वह सेतु बनता है जो संसार के पार लगाता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वत्सराज, पहला अंक)

इस सृष्टि का सत्य तर्क नही कर्म है…सत्य और धर्म दोनों ही का बहाव कर्म की उपत्यका के भीतर ही मिल सकता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ध्वज, दूसरा अंक)

वासनाओं से अलग रहकर जो कर्म किया जाता है, वही उचित कर्म है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (कचनार, पृ० २१९)

विना करनी के सोचते रहना ही कदाचित् पाप है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० १५८)

मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।

—हरिकृष्ण प्रेमी (शपथ, पृ० २२)

यह कहना कि जब सब करेंगे तब हम करेंगे, न करने का बहाना है। हमें ठीक लगता है, इसलिए हम करें, जब दूसरों को ठीक लगेगा, तब वे करेंगे—यही करने का मार्ग है।

—महात्मा गांधी (हिन्द स्वराज्य)

हमारा काम तभी अन्तरात्मा से प्रेरित हो सकता है, जब अपने-आप में वह स्वच्छ हो, उसका हेतु स्वच्छ हो और उसका परिणाम भी स्वच्छ हो।

—महात्मा गांधी (वाराणसी में विद्यार्थी-सभा में भाषण, २६-११-१९२०

जिस काम के लिए मन तैयार होता है या तैयार किया जा सकता है, वह सहज हो जाता है।

—महात्मा गांधी (मणि बहन को पत्र १४-१२-१९३२)

कर्म वही, परन्तु भावना-भेद से उसमें अंतर पड़ जाता है। परमार्थी मनुष्य का कर्म आत्म-विकासक होता है, तो संसारी मनुष्य का कर्म आत्म-बंधक सिद्ध होता है।

—विनोबा (गीता-प्रवचन, पृ० ४०)

कोई भी कर्म जब इस भावना से किया जाता है कि यह परमेश्वर का है तो मामूली होने पर भी पवित्र बन जाता है।

—विनोबा (गीता-प्रवचन, पृ० १३३)

बुरा कर्म बुरा है चाहे वह कृत हो, चाहे कारित और चाहे अनुमोदित।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० ५५)

मन में कर्म के लिए प्रेम होना चाहिए और वह कर्म जिसके लिए करना हो, उसके लिए भी मन में अपार प्रेम होना चाहिए।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० ७७)

तू भी रानी, मैं भी रानी,
कौन भरे पनघट पर पानी।

—हिंदी लोकोक्ति

बर अजमे कामरानी फ़ाले बज़न चे दानी
मुमकिन के गोये दौलत दरई जहाँ तवाँज़द।

सफलता की आशा रखकर तू अपना कार्य आरम्भ कर दे। मैं नहीं कह सकता हूँ कि परिणाम क्या होगा। संभव है कि सौभाग्य की गेंद इस संसार में तेरे हाथ लगे।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

कर्म गुणमुनेल्ल कडि चेट्टि नज्यमि
दत्व मेट्लु तन्नु दगुलु फोनुनु ?
नूने लेक दिव्वे नूवुल वेलुगुना ?

जब तक कर्मों का नाश नहीं कर पाता, मानव तत्त्वज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? क्या तेल के बदले तिलों का दिया जलाया जा सकता है?

[तेलुगु] —वेमना

अपना-अपना कर्म ही श्रेष्ठता व नीचता को परखने की कसौटी है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ५०५)

हमारी पीढ़ी ऐसे समय में और ऐसे देश में पैदा हुई है जब कि प्रत्येक उदार एवं सच्चे हृदय के लिए यह बात आवश्यक हो गई है कि वह अपने लिए उस मार्ग को चुने, जो आहों, सिसकियों और जुदाई के बीच में गुजरता है। यही मार्ग कर्म का मार्ग है।

—विनायक दामोदर सावरकर (क्रांतिकारी चिट्ठियाँ, पृ० ६३)

जन्म के बाद से मनुष्य लगातार मृत्यु की तरफ बढ़ता रहता है। बीच के ये दो दिन ही उसके कर्म के होते हैं। यह कर्म वह किस तरह करता है, इसी पर उसका मूल्यांकन किया जाता है।

—विमल मित्र (वे आँखें)

जीवन के अन्तिम श्वास तक सत्कर्म करते रहो।

—डोंगरेजी महाराज

तन और मन दोनों को सदैव सत्कर्म में प्रवृत्त रखो।

—डोंगरेजी महाराज

छोटे से छोटा कर्म भी परमात्मा को अर्पित पुष्प है।

—सत्य साईं बाबा

अपनी भलाई के लिए किया गया काम 'बंधन' है जब कि बहुजन-हिताय किया गया काम सब बंधनों से मुक्ति के लिए है।

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, २।२)

कर्तव्य, दया, तथा प्रेम से प्रेरित होकर किए कार्य उन कार्यों से हज़ार गुना श्रेष्ठ होते है, जो केवल धन के लिए किए जाते है। पहली प्रकार के कार्य आत्म त्याग और साहस की प्रेरणा देते हैं, जबकि दूसरी प्रकार के कार्य धन-प्राप्ति के साथ ही समाप्त हो जाते हैं।

—सैमुअल स्माइल्स (ड्यूटी)

कर्म ही सबसे बड़ा शिक्षक है।

—सैमुअल स्माइल्स (ड्यूटी)

किसी के मरने पर लोग पूछेंगे —"वह कौन-सी सम्पत्ति छोड़ गया है?" परन्तु देवता पूछेंगे—"तुम अपने पीछे कौन से अच्छे कर्म छोड़ आये हो?"

—सैमुअल स्माइल्स (ड्यूटी)

Work for work's sake. Work is its own reward.

कार्य के लिए कर्म करो। कर्म अपना पुरस्कार आप ही है।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड २, पृ० ६)

Little acts make great actions.

छोटी-छोटी क्रियाओं से महान कर्मों का निर्माण होता है।

— शिवानंद

Right action is the end of all knowledge and all meditation.

सारे ज्ञान-ध्यान का लक्ष्य सही कर्म है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, २३ नवम्बर १९५७)

We should not renounce work but divinise it. We must do every thing in all humility, in *full submission to the will of the divine.*

हमें कर्म का त्याग नहीं अपितु उसका दिव्यीकरण करना चाहिए। हमें हर कर्म पूर्ण विनम्रता तथा ईश्वर-इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पण से करना चाहिए।

—स्वामी रामदास ('रामदास स्पीक्स', खण्ड ३, पृ० १०६)

Action is eloquence.

कर्म स्वयं वाक्पटुता है।

—शेक्सपियर (कॉरियोलेनस, ३।२)

Our deeds determine us, as much as we determine our deeds.

जितना हम अपने कर्मों को निर्धारित करते हैं, उतना ही हमारे कर्म हमें निर्धारित करते हैं।

—जार्ज इलियट (ऐडम बीड, अध्याय २९)

Do the duty that lies nearest thee, which knowest to be a duty. The second duty will already become clearer.

अपने कर्तव्य को करो जिसे तुम जानते हो कि कर्तव्य है। दूसरा कर्तव्य स्वयं ही स्पष्टतर हो जाएगा।

—कार्लाइल (सार्टर रिसार्टस, २।९)

Great thoughts reduced to practice become great acts.

व्यवहार में लाए जाने पर महान् विचार ही महान् कर्म बन जाते हैं।

—हैज़लिट (वार्तालाप में)

Either do or die.

करो या मरो।

—फ्रांसिस ब्यूमां तथा जान फ़्लेचर (दि आइलैंड प्रिंसेस, २।२)

Deeds, not words, shall speak me.

मेरे विषय में शब्द नहीं, कृत्य बोलेंगे।

—फ्रांसिस ब्यूमां तथा जान फ़्लेचर (दि लवर्स प्रोग्रेस, ३।६)

That action is best, which procures the greatest happiness for the greatest numbers.

वह कर्म सबसे उत्तम है जो अधिकतम लोगों को सबसे बड़ी प्रसन्नता प्रदान करता है।

—फ्रांसिस हचेसन (एन्क्वायर इण्टू दि ओरिजन आफ़ आवर आइडियाज आफ़ ब्युटि एंड वर्च्यू)

कर्मकाण्ड

केसन कहा बिगाड़िया, जो मूंडै सौ बार।
मन को काहे न मूंडिए जामैं विषै विकार॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४६)

वार-व्रत, जप-तप इत्यादि के पचड़े की आग में उसके अन्दर जो मधुर था, वह उस के साथ ही सूख गया।

—शरत्चन्द्र (पत्रावली, पृ० ६८)

कर्मकौशल

सहसैव तु कार्याणामारम्भो न प्रशस्यते।

सहसा किया हुआ कार्यों का आरम्भ अच्छा नहीं माना जाता है।

—हरिवंश पुराण (विष्णु पर्व, ७२।१६)

शिष्ट है वही जो कर्म कौशल विशिष्ट है।

—मैथिलीशरण गुप्त (नहुष, पृ० ३४)

एकै साधे सब सधै, सब साधै सब जाय।

—अज्ञात

जिसका उद्देश्य कार्य को समुचित रीति से करना है, उसको सर्वोत्तम उपादानों का प्रयोग करना चाहिए।

—गेटे (फ़ाउस्ट, रंगमंच पर प्रस्तावना)

बिना जल्दबाजी, परन्तु बिना विश्राम भी।

—गेटे का ध्येयवाक्य

Work, but charge it with Love.
In every act, kindle the light of Love.

कर्म करो परन्तु उसे प्रेम से आवेशित कर दो। हर कर्म में प्रेम की ज्योति जलाओ।

—साधु वासवानी (दि लाइफ़ ब्यूटिफुल, पृ० ५२)

Skill to do comes of doing.

कर्म-कौशल कर्म करने से आता है।

—एमर्सन (सोसायटी एंड सॉलिट्यूड, ओल्ड एज)

There is no strong performance without a little fanaticism in the performer.

कार्य करने वाले में थोड़ा कट्टरपन हुए बिना तेजस्वी कार्य नहीं हो सकता।

—एमर्सन (जर्नल्स, १८५६)

कर्मठता

मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥

सत्कर्मशील व्यक्ति के लिए हवाएं मधु बहाती हैं, नदियों में मधु बहता है तथा औषधियाँ मधुमय हो जाती हैं।

— ऋग्वेद (१।९०।६)

न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।

कल के भरोसे मत बैठो। मनुष्य का कल कौन जानता है।

—शतपथ ब्राह्मण (२।१।३।९)

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥

सोते हुए कलियुग होता है, जँभाई लेते हुए द्वापर होता है, उठते हुए त्रेता और कार्य करते हुए सत्ययुग होता है।

—ऐतरेय ब्राह्मण (७।१५)

सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता।
अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च॥
अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।
ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम्॥
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलम् भवति वा न वा।

तात! सभी कर्मों के फल में सदा अनिश्चितता रहती है। इस अनिश्चितता को जानते हुए भी बुद्धिमान् पुरुष कर्म करते हैं और वे कभी सफल होते हैं और कभी असफल। परन्तु जो कर्मों का आरंभ नहीं करते, वे कभी भी अपने इष्ट की सिद्धि में सफल नही होते। कर्मों को छोड़कर निश्चेष्ट हो जाने का एक ही फल होता है—कभी भी अभीष्ट मनोरथ की प्राप्ति न होना। लेकिन कर्मों में लगे रहने से दोनों प्रकार का परिणाम संभव है—वांछनीय फल की प्राप्ति हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३५।२६-२८)

निजं विधेयं कृतिभिर्विधेयं
विधेर्विधेयं विधिरेव वेत्ति।

कुशल पुरुषों को अपना कर्तव्य करना चाहिए। विधाता का कर्तव्य तो विधाता ही जानता है।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ५।३४)

दक्षः उत्थानसम्पन्नः स्वयंकारी सदा भवेत्।
नावकाशः प्रदातव्यः कस्यचित् सर्वकर्मसु।

सदा दक्ष, उद्योगपरायण और स्वयं काम करने वाला बने। अपने सभी कर्तव्यों के पालन करने में दूसरे को अवकाश नहीं देना चाहिए।

—बोधिचर्यावतार (५।८२)

राम काजु कीन्हें विना मोहि कहाँ विश्राम ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।१)

डूबे न देखो नाव अपनी है पड़ी मँझधार में,
होगा सहायक कर्म का पतवार ही उद्धार में ।।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १७०)

कर्तव्य करना चाहिए होगी न क्यों प्रभु की दया,
सुख दु.ख कुछ हो एक-सा ही सब समय किसका गया?

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १८८)

सुनने वाले लाखो हैं, सुनानेवाले हजारों है, समझने वाले सैंकड़ों है, परन्तु करने वाले कोई विरले ही हैं। सच्चे पुरुष वे ही हैं और सच्चा लाभ भी उन्हीं को प्राप्त होता है, जो करते हैं।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

निकम्मे बैठे हुए चिंतन करते रहना, अथवा बिना काम किए शुद्ध विचार का दावा करना मानो सोते-सोते खर्राटें मारना है।

—सरदार पूर्णसिंह ('मजदूरी और प्रेम' निबंध)

जो काम कल करने का है, उसकी बातों में ही आज का काम बिगड़ जाएगा। और आज के बिना कल का काम नहीं होगा। हम अपने फ़र्ज़ से चूकेंगे। आज का काम कीजिए, तो कल का काम अपने आप हो जायेगा।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३१९)

कुछ किये जाओ, लेके नामे खुदा
कुछ न करना बड़ी खराबी है।
कामयाबी कुछ और चीज़ नहीं,
काम करना ही कामयाबी है।

—अमजद

रम्ज़े हयात जोई जुज़दर तपिश न याबी
दर कुलज़म आरमीदन नंगस्त आबे जू रा।
ब आटीयाँ न नशीनम ज़े लज़्ज़ते परवाज़
गहे बशाखे गुलम गहे बर लबे जोयम।

यदि मुझे जीवन के रहस्य की खोज है तो वह मुझे तप के अतिरिक्त और कही नही मिलेगा। सागर में जाकर करना नदी के लिए बड़ी लज्जा की बात है। उड़ान का आनंद लेने के लिए मैं घोंसले में कभी नही बैठता। कभी फूलों पर और कभी नदी के तट पर होता हूँ।

[फ़ारसी] —इक़बाल

ख्वाबो खुरद ज़े मर्तबए खेश दूर कर्द
अंगाह रसी बरवेश कि बे ख्वाबो खुरशबी ।।

खाना और सो रहना तुझे तेरे पद से गिराते हैं। तू अपने आप को उस समय पहिचानेगा जब खाने और सोने को त्याग देगा।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

कहिल तारा, "ज्वालिब आलोखानि
आँधार दूर हबे न हबे
शे आमि नाहि जानि"।

तारे ने कहा—"मैं प्रकाश दूंगा। अंधकार दूर होगा या नही, यह मैं नहीं जानता।"

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्फुलिंग)

पोटापुरतें काम। परि अगत्य तो राम।

कर में काम, मन में राम।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १३५४)

बेकार कभी न बैठो। या तो कोई उद्यम करो, जगत् के लिए उपयोगी काम करो, जगत् की सेवा करो, अथवा ईश्वर की भक्ति करो, परंतु कभी बेकार न बैठो। आत्मचिन्तन करना भी कर्म है।

—मगनलाल हरिभाई व्यास (सत्संगमाला, ५२)

जिसने कार्य प्रारंभ कर दिया, उसने आधा कार्य तो कर भी लिया।

—होरेस (एपिसिल्स, १।२।४०)

Woods are lovely, dark and deep
But I have promise to keep
Miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep.

मुझे घोर अँधेरे और घनेरे वन प्रिय हैं, किन्तु मुझे वायदे पूरे करने हैं। मुझे सोने से पहले मीलों दूर जाना है।

—रावर्ट फ़ास्ट

कर्मफल

ज्ञानोदयात्पुराऽऽरब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति।
अदत्त्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत् ॥

ज्ञान का उदय होने पर भी प्रारब्ध-कर्म अपना फल विना दिए नष्ट नहीं होता है, जैसे लक्ष्य को उद्दिष्ट कर छोड़ा गया वाण अपना फल विना दिए नही रहता है।

—अध्यात्मोपनिषद् (५३)

न चिरात् प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥

हे निशाचर ! जैसे विपमिश्रित अन्न का परिणाम तुरन्त ही भोगना पड़ता है, उसी प्रकार लोक में किए गए पापकर्मों का फल भी शीघ्र ही मिलता है।

—वाल्मीकि (रामायण, अरण्यकाण्ड, २९।६)

येन येन यथा यद् यत् पुरा कर्म समीहितम्।
तत्तदेकतरो भुंक्ते नित्यं विहितमात्मना ॥

जिस-जिस मनुष्य ने अपने-अपने पूर्वजन्मों में जैसे-जैसे कर्म किये हैं, वह अपने ही किए हुए उन कर्मों का फल सदा अकेले ही भोगता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १८१।१०)

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥

शुभ कर्म से सुख तथा पाप कर्म से दुःख प्राप्त होता है, सर्वत्र कर्म ही फल देता है, बिना किये हुए कर्म का फल कहीं नहीं भोगा जाता।

—वेदव्यास (महाभारत अनुशासन पर्व, ६।१०)

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

अपने किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ३१।७०)

जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि।

पूर्व जन्म में प्राणी जो कर्म करता है, वही उसके इस जन्म में फल देता रहता है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० १९३)

आत्मकृतानां हि दोषाणां नियतमनुभवितव्यं फलमात्मनैव।

आत्मकृत दोषों का फल निश्चित ही स्वय ही भोगना पड़ता है।

—वाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३६७)

पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातिर पृष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्।

जब पूर्वजन्म के बलवान शुभ या अशुभ कर्म आगे-पीछे फल देने वाले हैं ही तो बुद्धिमान को शोक करने का क्या अवसर है ?

—वाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १७)

पंको हि नभसि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि।

आकाश में फेंकी हुई कीचड़ फेंकने वाले के ऊपर गिरती है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

भद्रकृत् प्राप्नुयात् भद्रमभद्रं चाप्यभद्रकृत्।

भला करने वाले का भला होता है और बुरा करने वाले का बुरा।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।६)

पुराणमेकं नृषु कर्मकारणम्।

पूर्व कर्म ही मनुष्यों के सुखादि भोग का कारण है।

—अभिनंद (रामचरित, ४।६५)

कर्म कः स्वकृतमत्र न भुंक्ते।

इस जगत् में कौन अपने कर्म का फल नही भोगता है ?

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ५।१६)

बुद्धिरुत्पद्यते तादृग् यादृक् कर्म फलोदयः।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥

जैसा कर्मो का फल-उदय होता है, वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है। और, जैसी भवितव्यता होती है, वैसे ही सहायक भी हो जाते हैं।

—शुक्रनीति (१।४६)

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मफलं नरैः।
प्रतिकारैर्विना नैव प्रतिकारे कृते सति॥

किए हुए कर्मो का कल मनुष्यों को अवश्य भोगना होता है यदि उसका प्रतिकार न किया जाए। किन्तु यदि उसका प्रतिकार किया जाए, तो नहीं भोगना पड़ता है।

—शुक्रनीति (१।८८)

यथा बीजं तथा निष्पत्तिः।

जैसा बीज वैसा फल।

—चाणक्यसूत्र (४५८)

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसाम् अन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना संनियोजितम्॥

उद्यम न करने पर भी भाग्य द्वारा नियोजित पूर्व जन्मों में किया हुआ कर्म शुभाशुभ फल प्रदान करता है।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, २।८२)

अर्था गृहे निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः।
सुकृतं दुष्कृतं चापि गच्छन्तमनुगच्छति॥

धन घर रह जाता है तथा बान्धव श्मशान में छूट जाते हैं। आत्मा के प्रयाण-काल में पाप तथा पुण्य ही जीवात्मा के साथ जाते हैं।

—सूर्य (सूक्तिरत्नहार)

यः कुरुते स भुंक्ते।

जो कार्य करता है, वही उसका फल भोगता है।

—संस्कृत लोकोक्ति

ऋणं कृतं त्वदत्तं चेद् बाधतेऽत्र परत्र च।
न नश्येद् दुष्कृतं तद्वद् भुक्ति वा निष्कृतिं विना॥

जैसे लेकर न चुकाया हुआ ऋण यहाँ-वहाँ बन्धनकारी होता है, वैसे ही किया हुआ दुष्कर्म (पाप) भी इस लोक या परलोक में फल भोगे बिना या निवारण (प्रायश्चित आदि) किये बिना नष्ट नहीं होता।

—अज्ञात

छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः।

पूर्वकृत कर्मों के फल का बन्धन छाया के समान मनुष्य को नहीं छोड़ता।

—अज्ञात

यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं।

मनुष्य जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है।

[प्राकृत] —संयुत्तनिकाय (१।११।१०)

जहा कडं कम्म, तहासि भारे।

जैसा किया हुआ कर्म, वैसा ही उसका भोग।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।५।१।२६)

जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं
तमेव आगच्छति संपराए।

अतीत में जैसा कुछ कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।५।२।२३)

पुव्वविकउ कम्मु सव्वहो परिणवइ।

पूर्वकृत कर्म सभी को भोगने पड़ते हैं।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ३३।२)

जता जेण दत्तं तहा तेण पत्तं इमं सुच्चए सिट्ठ लोएण वुत्तं।
सु पायन्नवा कोद्दवा जत्त माली कहं सो नरो पादए तत्यसाली॥

जो जैसा देता है, वैसा ही पाता है, यह शिष्ट लोगों ने सच कहा है जो माली कोदों बोएगा, वह धान कहाँ से प्राप्त करेगा?

—धनपाल (भविसयत्त कहा)

चणय विक्केसि वंछेसि वर मुत्तिए।
जं जि वाविज्जए तं जि खलु लुज्जए॥

चने बेचते हो और बदले में सुन्दर मोती चाहते हो? व्यक्ति जो कुछ बोएगा, वही काटेगा।

[अपभ्रंश] —जयदेव मुनि (भावना संधि प्रकरण)

करता था तो क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछताय।
बोवै पेड़ बबूल का, अम्ब कहाँ ते खाय॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ३०)

पलटू करनी और की नहीं और के साथ।
अपनी अपनी करनी अपने अपने साथ॥

—पलटू साहिब

बोवत बबुर दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल संग लागे ॥

—सूरदास (सूरसागर)

जैसे कर्म, लहौ फल तैसे।

—सूरदास (सूरसागर, १।३३६)

काहू न कोउ सुख-दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।६२।२)

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तसु फल चाखा ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२१६।२)

लुनिहै पै सोई सोई जोई जेहि बई है।
जिसने जो बोया है, वह उसी को काटेगा।

—तुलसीदास (गीतावली, बालकांड, पद ८६)

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप पुन्य द्वै बीज हैं बवै सो लवै निदान ॥

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपिनी, ५)

करमगति टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद से राजा नीच घर नीर भरे ॥

—मीरा (पदावली)

ब्रह्म भनै गिर मेरु टरै, पर कर्म की रेख टरै नाहिं टारी ॥

—बीरबल

पहले कियौ सो अब लियौ, भोग रोग उपभोग ॥
अब करनी ऐसी करौ, जो परभव के जोग ॥

—बुधजन (बुधजन सतसई)

कियो भूत सो अब लह्यो,
अब कृति आगे जानि।
भै भवीस की तो दिखे,
कर ले जो मनमानि ॥

—दयाराम (दयाराम सतसई, ३८८)

अहो ज्ञानवंत संत तंत कै विचार देखो,
बोवे जो बबूर ते तो आम कैसे खावेंगे ?

—भैया भगवती दास (ईश्वर निर्णय पचीसी, ब्रह्मविलास)

अपने कुकर्मों का फल चखने में कड़ुवा परन्तु परिणाम में मधुर होता है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, पंचम अंक)

सबको अपने किए का फल भोगना पड़ता है—व्यक्ति को भी, जाति को भी, देश को भी।

— हजारी प्रसाद द्विवेदी (चारु चन्द्रलेख, १४)

जैसी करनी वैसी भरनी।

—हिंदी लोकोक्ति

देखि अजाणाँ जट्टियाँ, पासँगु मुहणु किराड़।
तत्ते तावण ताइयहि, मुँहि मिलनीयाँ अँगियार ॥

वे बनिये जो अनजान स्त्रियों को देखकर पासँग मारते हैं, गरम-गरम तंदूर में भूने जायेंगे और उनका मुँह अंगारों से भर दिया जाएगा।

—गुरु नानक

युगेर धर्म एइ—
पीड़न करिले से पीड़न एसे पीड़ा देबे तोमाकेइ।

युग का धर्म यही है—दूसरे को दी गयी पीड़ा उलटकर अपने आप पर पड़ती है।

[बँगला] —नजरुल इस्लाम (कवि-श्रीमाला, पृ० ५२)

चेट्टु वच्चेनेनि चेडनाडु दैवंबु
मेलु वच्चेनेनि मेच्चु दन्नु
चेट्टु मेलु दलय चेसिन कर्ममुल्।

मानव का स्वभाव है कि अपने कष्टों का कारण भगवान को मानता है। दैव की निंदा करता है। अपने सुखों का कारण अपनी प्रतिभा को मानता है। सोचा जाय तो सुख-दुःख दोनों अपने कर्मों का ही प्रतिफल है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

अपने जीवन-काल में अपनी आत्मा के लिए मार्ग-व्यय पहले भेज, क्योंकि तू थोड़े ही काल के बाद इस जीवन को छोड़ कर अपनी राह लेगा।

—हजरत अली (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११७)

कर्मत्याग

सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्तियों का स्वभावत: ही कर्म-त्याग हो जाता है। प्रयास करने पर भी उनके द्वारा कर्मों का अनुष्ठान और अधिक संभव नहीं हो सकता अथवा ईश्वर उन्हें कर्म नहीं करने देते।

—रामकृष्ण परमहंस

कर्मयोग

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

इस धर्म(कर्मयोग रूपी धर्म) का थोड़ा भी साधन महान् भय से बचा लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २६।४०
अथवा गीता, २।४०)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

मेरा अधिकार कर्म करने में है, फलों में कदापि नहीं। कर्मफल की वासना वाला भी मत बन और कर्म न करने में रुचि वाला भी मत बन।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २६।४७
अथवा गीता, २।४७)

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥

कर्मों का संन्यास और निष्काम कर्मयोग यह दोनों ही परम कल्याण करने वाले है परन्तु उन दोनों में भी कर्मों के संन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २९।२
अथवा गीता, ५।२)

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

जो योग का आचरण करता है, जिसका हृदय शुद्ध है, जिसने स्वयं को जीत लिया है, जो जितेन्द्रिय है और जिसकी आत्मा सब प्राणियों की आत्मा बनी है, वह कर्म करता हुआ भी अलिप्त रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २९।७
अथवा गीता, ५।७)

योगिनः कर्म कुर्वन्ति संङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।

योगी (कर्मयोगी) आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २९।११
अथवा गीता, ५।११)

अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोग साधकः।
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नैव दृश्यते॥

यह ज्ञानयोग-साधक क्रियायोग है। कर्मयोग के विना किसी में भी ज्ञान-प्राप्ति नहीं दिखाई देती।

—मलमासतत्त्व (शब्दकल्पद्रुम में 'कर्मयोग'
शब्द में उद्धृत)

सत समरथ तें राखि मन, करिय जगत् का काम।
'जगजीवन' यह मंत्र है, सदा सुक्ख बिसराम॥

—जगजीवन

न्याय और निष्काम कर्मयोग हृदय का है। बुद्धि से हम निष्कामता को नहीं पहुँच सकते।

—महात्मा गांधी (गांधी विचार रत्न, पृ० ३९)

कर्मयोगी का कर्म उसे इस विश्व के साथ समरस कर देता है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ४१)

निष्काम कर्मयोगी तभी सिद्ध होता है जब हमारे बाह्य कर्म के साथ अन्दर से चित्तशुद्धि रूपी कर्म का भी संयोग होता है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ४९)

कर्मफल म्हणुनी इच्छू नये काम।

फल की आशा को त्याग कर कर्म करो।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ६४)

सुखामृतं स्वैरमशिच्चु दिव्य—
सौधे रमिप्पू मुतलाळि वीरन्
अयाळक्कु विण्तीर्त्तवरो, विशप्पाल्
वल्लेखुं वीणु मरिच्चिटुन्न॥

सुख रूपी अमृत का पान करते हुए पूंजीपति वीर महलों में रमते हैं। किन्तु उनके लिए जो स्वर्ग रचते हैं, वे कहीं गिरे-पड़े भूखों मरते हैं।

[मलयालम] —वल्लतोल ('माप्पु' कविता)

आशंका यह है कि समाज या देश के जीवन-स्रोतों से अपने आपको दूर हटाकर रखने से मनुष्य पथभ्रष्ट हो सकता है और उसकी प्रतिभा का एकपक्षीय विकास होने के कारण वह समाज से भिन्न अतिमानव के समान और कुछ बन सकता है। दो-चार असाधारण प्रतिभासम्पन्न यथार्थ साधकों की बात तो अवश्य ही भिन्न है परन्तु अधिकांश लोगों के लिए तो कर्म या लोकहित ही साधना का एक प्रधान अंग है।

—सुभाषचन्द्र वसु (मांडले जेल से दिलीपकुमार राय को पत्र ६।१०।१९२५)

फल की कामना उड़ा देना मानो कर्मरूपी नाग के ज़हरीले दाँत उखाड़ डालना है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कर्मशीलता

दे० 'कर्मठता'।

कलंक

ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः।

लज्जाशील पुरुष को कलंक लगने पर उसके गुण भी सुख नहीं दे पाते।

—भागवत (६।१३।११)

कलह

दे० 'झगड़ा'।

कला

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

साहित्य, संगीत और कला से विहीन पुरुष पूंछ और सींग से रहित साक्षात् पशु है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १२)

जो आँख हर आँख में अपने ही प्यारे को देखती है, वह कला के पैमानों के कारागार में कैसे बंद हो सकती है?

—सरदार पूर्णसिंह ('अमेरिका का मस्तयोगी वाल्ट ह्विटमैन' निबंध)

चंचल चारु सलोनी तिया इक
राधिका कैं ढिग आइ अजानी।
दै कर कागद एक कह्यौ बस,
रीझिबो मोल है याको सयानी॥
चित्र तैं दीठि चितेरिनि ओर,
चितेरिनि तैं पुनि चित्र पै आनी।
चित्र समेत चितेरिनि मोल ले,
आपु चितेरिनि हाथ बिकानी॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (शृंगार लहरी, ६)

हो रहा है, जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सर्ग १)

अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला।

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सर्ग ५)

कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, पृ० १०)

कला, जीवन की विविधता समेटती हुई आगे बढ़ती है, अतः सम्पूर्ण जीवन को गला-पिघलाकर तर्क-सूत्र में परिणत कर लेना उसका लक्ष्य नहीं हो सकता।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० २१)

वीणा को बजाते-बजाते, काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पायी, कोमल सेज पर सोते-सोते संकट आने पर यदि तुरन्त ही उछलकर कमर न कसी, ध्रुवपद को गाते-गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरन्त गरजकर चुनौती न दे पायी, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार बह-बहकर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खों की धुन न समा पायी तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुव-पद की तानों का काम ही क्या?

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३२२)

वह कला ही क्या जो कर्तव्य को लंगड़ा कर दे।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३२)

कला में वही यथार्थ है जिससे सम्बद्ध, सम्पृक्त हुआ जा सके—सम्बद्ध यथार्थ ही कला का यथार्थ है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० २७)

कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न—अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है।

—अज्ञेय (त्रिशंकु, पृ० २६)

कला सम्पूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को सिद्ध प्रमाणित करने की चेष्टा है।

—अज्ञेय (त्रिशंकु, पृ० ३१)

कला केवल उपकरण मात्र है, कला जीवन के लिए और उसकी पूर्ति में ही है।

—यशपाल, (दिव्या, पृ० १६२)

शब्द शिल्प से कला न साधो,
मन के मूल्यों में मत बांधो,
जीवन श्रद्धा से आराधो।

—सुमित्रानंदन पंत (वाणी, पृ० ३६)

कला-प्राण है मनुज, सृष्टि यह ब्रह्म की कला।

—सुमित्रानंदन पंत (सत्यकाम, पृ० २३५)

ऊँची कला कोशिश करने पर भी अपने को नीति और उद्देश्य के संसर्ग से बचा नहीं सकती, क्योंकि नीति और लक्ष्य जीवन के प्रहरी है और कला जीवन का अनुकरण किये विना जी नही सकती।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (मिट्टी की ओर, पृ० २६)

यह स्थिति वांछनीय नही है कि कला और जनता का मिलन हमेशा साधारणता के ही स्तर पर हो।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० ४६)

समाज में गीतवाद्य, नाट्य-नृत्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, ये बड़ी मनोहर और उपयोगी कलाएँ हैं। पर हैं तभी, जव इनके साथ संस्कृति का निवास-स्थान पवित्र-संस्कृत अन्तःकरण हो। केवल 'कला' तो 'काल' बन जाती है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार ('भाई जी पावन स्मरण' में उद्धृत, पृ० ६५५)

कला और काव्य दोनों ही का उपजीव्य भावलोक है। भाव-सृष्टि से ही आरम्भ मे गुण-सृष्टि का जन्म होता है और फिर भाव और गुण दोनों की समुदित समृद्धि भूतसृष्टि में अवतीर्ण होती है। भाव-सृष्टि का संवध मन से, गुण-सृष्टि का प्राण से और भूत-सृष्टि का स्थूल भौतिक रूप से है। इन तीनों की एकसूत्रता से ही लौकिक सृष्टि संभव होती है। इन तीनों के ही नामान्तर ज्ञान, क्रिया और अर्थ है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, पृ० १२१)

कला का स्वाभाविक विकास स्वतंत्र वायुमण्डल में हो सकता है—वह सीमा में बाँधी नहीं जा सकती, देश-काल के बंधन भी उसे संकुचित करते है, कोयल की भाँति वह अपने स्वरों से धरा-आकाश को भर देना देना चाहती है, लेकिन किसी के आदेश पर तान छेड़ने में उसे संकोच होता है।

—हरिकृष्ण प्रेमी (शीशदान, पृ० ६३)

हिन्दुस्तान की कल्पना भरी हुई है; यूरोप की कला में प्रकृति का अनुकरण है। इस कारण शायद पश्चिम की कला समझने में आसान हो सकती है लेकिन समझ में आने पर वह हमें पृथ्वी से ही जकड़ने वाली होगी, और हिन्दुस्तान की कला जैसे-जैसे हमारी समझ में आयेगी, वैसे-वैसे हमें ऊपर उठाती जायेगी।

—महात्मा गांधी, (यरवदा मन्दिर, २५-१-१९३२)

कला जीवन का रस है।

—अमृतलाल नागर (चन्दनवन, पृ० १०)

समस्त काव्य, चित्रकला और संगीत, शब्द, रंग और ध्वनि के द्वारा भावना की ही अभिव्यक्ति है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ४१)

मनुष्य अपने प्रिय और अप्रिय भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए विवश हो उठता है और उसकी वही कामना कला के रूप में साकार हो उठती है। कला के रूप में मानव स्वयं की अभिव्यक्ति करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कला-सृष्टि में रस-सत्य के प्रकाश की जो समस्या है, वह है रूप के द्वारा ही अरूप को आच्छन्न करके देखना।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('सृष्टि' निबन्ध)

दर्शन तर्क-वितर्क कर सकता है और शिक्षा दे सकता है, धर्म उपदेश दे सकता है और आदेश दे सकता है; किन्तु कला केवल आनन्द देती है और प्रसन्न करती है।

—राधाकृष्णन् (रवीन्द्र-दर्शन, पृ० १०६)

भीड़ की सतही कार्यवाहियों की अपेक्षा, कला और साहित्य राष्ट्र की आत्मा को महान् अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वे हमें शांति और निरभ्र विचार के राज्य में ले जाते हैं, जो क्षणिक भावनाओं और पूर्वाग्रह से प्रभावित नहीं होते।

—जवाहरलाल नेहरू (विश्व इतिहास की झलक)

इतिहास का कलात्मक प्रस्तुतीकरण इतिहास के यथा-तथ्य लेखन की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और गंभीर प्रयास है क्योंकि साहित्य की कला वस्तुओं के हृदय तक पहुँचती है जब कि तथ्यपरक वृत्तान्त केवल विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

—अरस्तू

सच्ची कला सौन्दर्य को जीना है। जीवन में कला सुन्दर सत्य है। कला का जीवन सच्चा सौन्दर्य है। सच्चा जीवन ही सुन्दर कला है।

—शिलर

प्रेम के समान ही कला में भी मूल प्रवृत्ति ही पर्याय होती है।

—अनातोले फ्रांस (ले यार्दिन द एपिक्युर)

कला कला के लिए।

— विक्टर कज़िन (सोरबोन में भाषण, १८१८ ई०)

कला का कार्य किसी विचार को अतिरंजित करना है।

—आन्द्रे जीद (जर्नल्स)

कला तो ईश्वर और कलाकार की संयुक्त कृति है और कलाकार जितना कम काम करे, उतना ही अधिक अच्छा।

—आंद्रे जीद

Creative expressions attaln their perfect form through emotions modulated.

रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ नियंत्रित मनोवेगों के द्वारा अपना परिपूर्ण स्वरूप प्राप्त करती हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, वूमैन एंड होम, पृ० १५७)

Art helps nature and experience, art.

कला प्रकृति की सहायता करती है और अनुभव कला को।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

Art is the perfection of Nature.

कला प्रकृति की परिपूर्णता है।

—सर टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, १।१६)

All great art is the expression of man's delight in God's work, not his own.

सभी महान् कला परमात्मा की कृति में होने वाली मानव-प्रसन्नता की अभिव्यक्ति है, न कि अपनी कृति में।

—जान रस्किन

Art is a jealous mistress.

जीवन का रहस्य कला में है।

—एमर्सन (कंडक्ट आफ लाइफ़, वेल्थ)

The secret of life is in art.

जीवन का रहस्य कला में है।

—आस्कर वाइल्ड (लेक्चर्स आफ दि इंग्लिश रेनेसाँ)

Art should never try to be popular.

कला को कभी भी लोकप्रिय बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

—आस्कर वाइल्ड (दि सोल आफ़ मैन अण्डर सोशलिज़्म)

Art is the child of nature.

कला प्रकृति की पुत्री है।

—लाँगफ़ेलो (केरमोस)

Venerate art as art.

कला का कला की तरह सम्मान करो।

—हैज़लिट (वार्तालाप में)

Rules and models destroy genuis and art.

नियम और नमूने प्रतिभा व कला का नाश करते हैं।

—हैज़लिट (स्केचिज़ एंड एसेज़)

To make feel small in the right way is a function of art; men can only make us feel small in the wrong way.

कला का कार्य है हमें ठीक विधि से अपने लघुत्व का अनुभव कराना। लोग तो हमें गलत विधि से ही लघुत्व का अनुभव कराते है।

—ई० एम० फ़ार्स्टर (ए बुक दैट इन्फ्लुएन्स्ड मी)

Art produces ugly things which frequently become beautiful with time. Fashion on the other hand produce, beautiful things which always become ugly with time.

कला असुन्दर वस्तुओं को उत्पन्न करती है जो प्राय: समय व्यतीत होने पर सुन्दर हो जाती है। दूसरी ओर फ़ैशन सुन्दर वस्तुओं को जन्म देता है जो सदैव समय व्यतीत होने के साथ असुन्दर हो जाती हैं।

—जीन काक्टयू (न्यूयार्क वर्ल्ड टेलिग्राम एंड सन, २१ अगस्त १९६०)

Art is the economy of feeling; it is emotion cultivating good form.

कला अनुभूति की मितव्ययिता है। कला उत्तम रूप-युक्त भावावेग है।

—सर हर्बर्ट रीड

The mission of art is to represent nature; not to imitate her.

कला का उद्देश्य प्रकृति को प्रस्तुत करना है, न कि उसका अनुकरण करना।

—विलियम मारिस हंट

The history of art is the history of revivals.

कला का इतिहास पुनः प्रवर्तनों का इतिहास है।

—सेमुअल बटलर (हैंडिल एंड म्युजिक)

There is an art of reading, as well as an art of thinking and an art of writing.

अध्ययन की कला होती है, चिंतन की भी कला होती है और लेखन की भी कला होती है।

—आइजक डिजरायली (लिटरेरी कैरेक्टर, अध्याय ११)

The object of art is to crystallize emotion into thought, and then fix it in form.

कला का लक्ष्य भाव को विचार रूप में रूपायित करना है और तब उसे रूप में स्थिर करना है।

— फ्रैंकोइ अलेक्जेंडर निकोलस (चेरी देलसार्ते)

कलाकार

जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता।

—प्रेमचन्द (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण)

जो अन्तर को देखता है वाह्य को नहीं, वही सच्चा कलाकार है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन २-११-१९२४)

योगी न होते हुए भी सच्चा कलाकार वितर्क का अतिक्रमण करके विचार और आनन्द की भूमिकाओं के बीच पेंगें मारता रहता है। साधना के अभाव के कारण वह किसी एक जगह टिक नहीं सकता, परन्तु थोड़ी देर के लिए उसको सत्य की जो आभा देख पड़ती है, जड़ चेतन के आवरण के पीछे अर्द्ध-नारीश्वर की जो झलक मिलती है, वह उसको इस जगत के ऊपर उठा देती है, उसके जीवन को पवित्र और प्रकाशमय बना देती है।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० ३३)

कलाकार का जीवन द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत की अनुभूति होती है।

—माखनलाल चतुर्वेदी (साहित्य देवता, पृ० २५)

कलाकार क्या है? वह अपने युग की स्फूर्ति के प्रकाश के रंग में डूबी भगवान की प्राणवान प्रेरक और कल्पक कूंची है।

—माखनलाल चतुर्वेदी (साहित्य देवता, पृ० २६)

पश्चिम का कलाकार रूप (फ़ार्म) की खिड़की से देखकर वस्तु को संवेद्य बनाता है, उसका सम्प्रेषण करता है। भारत का कलाकार प्रतीक की खिड़की से वस्तु को नहीं, वस्तु के पार वस्तुसत् को संवेद्य बनाता है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ९३)

कलाकार भटकता न रहे, उद्भ्रांत न रहे, किसी प्रयोजन में नियोजित कर दिया जाये तो वह बड़ी शक्ति बन जाता है। नहीं तो वह अपने को ही खाता है।

—हिमांशु जोशी (तुम्हारे लिये, पृ० १६८)

The more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creates.

कलाकार जितना ही पूर्ण होगा, उसमें भोक्ता मनुष्य और सृजनशील मन उतने ही अलग-अलग रहेंगे।

—टी० एस० इलियट (पालिन्युरस द्वारा उद्धृत)

The aim of every artist is to arrest motion, which is life, by artificial means and hold it fixed so that a hundred years later, when a stranger looks at it, it moves again since it is life.

प्रत्येक कलाकार का उद्देश्य गति को, जो जीवन है, कृत्रिम साधनों से वन्दी बनाना और उसे स्थिर बनाए रखना है ताकि सौ वर्ष पश्चात् जब कोई अपरिचित मनुष्य उसे देखता है, तो यह फिर गतिशील हो उठता है क्योंकि यह जीवन है।

—विलियम फ़ाकनर (इंटरव्यू, राइटर्स ऐट वर्क, प्रथम भाग)

The artist is the only man who knows what to do with beauty.

कलाकार ही एकमात्र व्यक्ति है जो यह जानता है कि सौन्दर्य से क्या करना है।

—जीन रोस्टेंड

कलियुग

अधर्माभिनिवृत्तत्वं कलौ वृत्तं कलौ स्मृतम्।

कलियुग में मनुष्यों की स्वाभाविक रुचि अधर्म तथा तामसिक विचारों की ओर हो जाती है, यह बात प्रसिद्ध है।

—मत्स्य पुराण (१४३।४५)

तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वेशते अपि।
सन्ध्या सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्॥

तदुपरान्त कलियुग की अवधि १००० वर्ष तथा उसकी संधि की अवधि २०० वर्षों की मिलाकर क्रूर कलियुग की १२०० वर्षों की अवधि कही गई है।

—मत्स्य पुराण (१६४)

न देवे देवत्वं कपटपटवस्तापसजनाः
जनो मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिः जलधरः।
प्रसंगो नीचानामवनिपतयो दुष्टमनसो
जनाः भ्रष्टाः नष्टा अहह कलिकालः प्रभवति॥

देवता में देवत्व नहीं रह गया, तपस्वी जन कपट-पटु हो गए। लोग मिथ्यावादी हो गए। मेघ कम जल देने लगे। लोग नीचों का संग पसन्द करने लगे। राजा दुष्ट हृदय के हो गए। लोग नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। अरे, कलियुग अपना कैसा प्रभाव दिखा रहा है!

—अज्ञात

कठिन काल मल कोस, धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहिं ते चतुर नर॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३१६ ख)

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई।
ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी।
जो कर दंभ तो बड़ आधारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९८।२-३)

मन क्रम वचन लबार, तेइ बंक्ता कलिकाल महुँ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९८ ख)

ससुरारि पिआरि लगी जब तें।
रिपुरूप कुटुम्ब भए तब तें॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१०१।३)

नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१०३।४)

कलि कर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१०३।४)

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१३०।३)

कल्पना

दे० 'कवि-कल्पना' भी।

आह! कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता!
सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता-सोता।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

मानसिक रूप-विधान का नाम ही संभावना या कल्पना है।
—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, रसात्मक बोध के विविध रूप)

सत्य सदा शिव होने पर भी,
विरूपाक्ष भी होता है,
और कल्पना का मन केवल
सुन्दरार्थ ही रोता है।
—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सर्ग ११, पृ० ३६४)

खुली आँखें रास्ते के काँटों को देखती है, बन्द आँखों से दूर का भी सत्य देखा जा सकता है।
—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० १०)

शायद मुझे निकाल के पछता रहे हो आप
महफ़िल में इस खयाल से फिर आ गया हूँ मैं।
—अदम

कल्पना मानस गीति अतीन्द्रिय जगत रूपर कुँवरी,
बिजुली गतिरे पातेरूपर पोहार रचे मायापुरी।

कल्पना अतीन्द्रिम जगत का मानस-संगीत है, रूपकुमारी है। वह विद्युत गति से रूप की दुकान सजा कर मायापुरी की रचना करती है।
[असमिया] **—नलिनीवाला देवी (कविता-वास्तव आरु कल्पना)**

कल्पनाइ गाय गीत, नृत्य छन्द उठे बाजि पुराण बीणत।

कल्पना गीत गाती है और उस गीत से प्राण-वीणा में नृत्य छन्द वज उठता है।
[असमिया] **—नलिनीवाला देवी (कविता—वास्तव आरु कल्पना)**

यत कथा, यत गीत, मधुर संगीत सुधा
सजा कल्पनार
विरही प्राणत दिए निरल मिलन
नो पोवा प्रियार।

जितनी कथाएँ, गीत तथा सुधामय मधुर संगीत है—सभी कल्पना के वनाए हुए हैं—वह विरही प्राणों में अप्राप्य प्रिय से निर्जन स्थान में मिला देती है।
[असमिया] **—नलिनी बाला देवी (कविश्रीमाला, पृ० ९०)**

कल्पना मानसी वीणा मानहु प्राणार
चिर चिरन्तनी गीत।

कल्पना, मनुष्य-प्राण की मानसी वीणा का चिरन्तन संगीत है।
[असमिया] **—नलिनीवाला देवी (कवि श्रीमाला, पृ० ९२)**

The world of reality has its limits; the world of imagination is boundless. Not being able to enlarge the one, let us contract the other; for it is from their difference that all the evils arise which render us unhappy.

यथार्थता के जगत् की अपनी सीमाएं हैं; कल्पना का जगत् असीम है। हम एक को बढ़ा नहीं सकते अतः हमें दूसरे को छोटा करना चाहिए, क्योंकि अन्तर से ही वे बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं जो हमें दुःखी कर देती हैं।
—रूसो

He who has imagination without learning has wings and no feet.

जिस व्यक्ति में कल्पना है परन्तु विद्वत्ता नहीं, उसके पंख हैं परन्तु पैर नहीं।
—जोसफ़ जोवर्ट

Imagination, which, in truth,
Is but another name for absolute power,
And clearest insight, amplitude of mind,
And Reason in her most exalted mood.

कल्पना, वास्तव में असीम शक्ति, स्पष्टतम अन्तः दृष्टि, मन के विस्तार और बुद्धि की सर्वोत्तम अवस्था का ही दूसरा नाम है।
—वर्ड्सवर्थ (दि प्रिल्यूड, सर्ग १४)

The Imagination then I consider either as primary, or secondary. The primary imagination I hold to be the living power and prime agent of all human perception, and as a repetition in the finite mind of the eternal act of creation in the infinite I AM. The secondary imagination I consider as an echo of the former, co-existing with the conscious will, yet still as identical with the primary in the kind of its agency, and differing only in degree, and in the mode of its operation. It dissolves, diffuses, dissipates, in order to re-create; or where this process is rendered impossible, yet still at all events it struggles to idealise and to unify. It is essentially vital, even as all objects (as objects) are essentially fixed and dead.

कल्पना का विचार मैं प्राथमिक तथा परवर्ती के रूप में करता हूं। प्राथमिक कल्पना को मैं समस्त मानवीय ज्ञान की जीवन्त शक्ति और प्रमुख कारक, तथा अनन्त 'अहम् अस्मि' में होने वाली शाश्वत सृजन-प्रक्रिया की सान्त मन में आवृत्ति मानता हूं। द्वितीयक कल्पना को मैं प्राथमिक कल्पना की प्रतिध्वनि मानता हूं, जो चेतन संकल्प-शक्ति के साथ अस्तित्वशील है, और फिर भी प्राथमिक कल्पना से कारकता के प्रकार में तादात्म्यशील होती है, और केवल मात्रा में तथा क्रियाविधि में उससे भिन्न होती है। पुनः सृजन के निमित्त यह विघटित करती है, प्रसारित करती है तथा क्षय करती है; या जहाँ यह प्रक्रिया असम्भव हो जाती है वहाँ भी यह प्रत्ययीकरण तथा एक करने के लिए संघर्ष को सदैव करती है। यह अनिवार्यतः सजीव होती है, वैसे ही जैसे सभी वस्तुएं वस्तुओं के रूप में स्थिर और निर्जीव होती हैं।

—कालरिज (बायोग्राफ़िया लिटरेरिया, अध्याय १३)

Reason is to imagination as the instrument to the agent, as the body to the spirit, as the shadow to the substance.

कल्पना की तुलना में बुद्धि इसी प्रकार है जैसे कर्ता की तुलना में उपकरण, आत्मा की तुलना में शरीर और वस्तु की तुलना में उसकी छाया।

—शैले (शैलेज लिटरेटी एण्ड फ़िलासफ़िकल क्रिटिसिज़्म, सं. जे. शाक्रास, पृ० १२०)

I am certain of nothing but the holiness of the heart's affections and the truth of imagination—what the imagination seizes as beauty must be truth—whether it existed before or not.

मुझे हृदय की भावनाओं की पवित्रता तथा कल्पना की सत्यता पर ही पक्का विश्वास है, अन्य पर नहीं—कल्पना जिसे सौन्दर्य के रूप में ग्रहण करती है वह सत्य ही होना चाहिए—चाहे पहले वह अस्तित्व मे था या नहीं।

—कीट्स (बेंजमिन बेले को पत्र, २२ नवम्बर १८१७)

Imagination rules the world.

कल्पना विश्व पर शासन करती है।

—नैपोलियन बोनापार्ट

If you have built castles in the air, your work need not be lost; that is where they should be. Now put the foundations under them.

यदि तुमने हवा में क़िले बनाए है तो भी तुम्हारी कृतियां नष्ट नहीं होनी चाहिए। क़िले हवा में ही रहें, अब उन क़िलों के नीचे नीवें बना दो।

—थोरो

Artists treat facts as stimuli for imagination, whereas scientists use imagination to coordinate facts.

कलाकार तथ्यों का उपयोग कल्पना के लिए उद्दीपकों के रूप में करते हैं और वैज्ञानिक, कल्पना का उपयोग तथ्यों को समन्वित करने के लिए करते हैं।

—आर्थर कोयस्लर

कल्याण

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः।

हे दानादि सत्कर्म करने वाले देवगण! हम कानों से सदा कल्याणकारी बातें सुनें, हम नेत्रों से सदा कल्याणकारी दृश्य देखें।

—ऋग्वेद (१।८९।८)

विश्वानि देवसवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।

हे जगत के जन्मदाता भगवान् ! हमारे सभी पापाचारों को दूर करो। जो कल्याणकारी है वह हमारे लिए लाओ।

—**यजुर्वेद (३०।३)**

सानुषंगानि कल्याणानि।

एक कल्याण के साथ दूसरे कल्याण भी आते है।

—**भवभूति (उत्तररामचरित, सप्तम अंक)**

मंगलमय विभु अनेक अमंगलों में कौन-कौन कल्याण छिपाये रहता है, हम सब उसे नही समझ सकते।

—**जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)**

कवि

दे० 'कवित्व', 'कवि और आलोचक', कवि और काव्य', 'कवि और श्रोता', 'कवि-कल्पना' भी।

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

अपार काव्य-संसार में कवि ही ब्रह्मा है। उसको जैसा रुचिकर लगता है, उसी प्रकार इस विश्व को वह परिवर्तित कर देता है।

—**अग्निपुराण (३३९।१०)**

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥

वह शब्द नहीं, वह अर्थ नही, वह न्याय नहीं, वह कला नही, जो काव्य का अग न बनती हो। कवि का दायित्व कितना बड़ा है !

—**भामह (काव्यालंकार, ५।४)**

कविवचनायत्ता लोकयात्रा।

सांसारिक व्यवहार कवियों के वचनों पर आधृत है।

—**राजशेखर (काव्यमीमांसा।१। षष्ठ अध्याय)**

किंच नार्द्धकृतं पठेदसमाप्तिस्तस्य फलम्। न नवीनमेकाकिनः पुरतः। स हि स्वीयं ब्रुवाणः कतरेण साक्षिणा जीयेत्। न च स्वोकृति बहुमन्येत्। पक्षपातो हि गुणदोषौ विपर्यासयति। न च दृप्येत् दर्पलवोऽपि सर्वसंस्कारानुच्छिनत्ति। परैश्च परीक्षयेत् यदुदासीनः पश्यति न तदनुष्ठातेति प्रायो वादः।

अपनी अधूरी कविता किसी को न सुनानी चाहिए, क्योंकि इससे उसके पूर्ण होने में कठिनाई हो सकती है। दूसरे, किसी अकेले कवि के सामने भी अपनी नवीन काव्य-रचना नहीं सुनानी चाहिए। यदि कभी उसे अपनी रचना बताने लगे, तो साक्षी मिलना कठिन है। तीसरे, अपनी रचना की अधिक प्रशंसा भी न करनी चाहिए। क्योंकि पक्षपात, गुण को दोष और दोष को गुण बना देता है। चौथे, कवि को अभिमानी न होना चाहिए, क्योंकि अभिमान का लेश भी मानव के समस्त संस्कारों का उच्छेद कर देता है। पाँचवें, अपनी काव्य-रचना की दूसरों से परीक्षा करानी चाहिए। कारण, यह कहावत प्रसिद्ध है कि तटस्थ व्यक्ति किसी वस्तु को जिस दृष्टि से देखता है, निर्माता स्वयं उसे उस दृष्टि से नहीं देख पाता।

—**राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१०)**

शब्दार्थशासनविदः कतिनो कवन्ते
यद्वाङ्मयं श्रुतिधनस्य चकास्ति चक्षुः।
किन्त्वस्ति यद् वचसि वस्तु नवं सदुक्ति-
सन्दर्भिणां स धुरि तस्य गिरः पवित्राः॥

शब्द और अर्थ को जानने वाले (वैयाकरण, मीमांसक और नैयायिक आदि) कविता नहीं करते हैं, किन्तु जिस अध्ययनशील शास्त्रधन का वाङ्मय लोचन बनता है और जिसके वचन में नवीन वस्तु और नवीन उक्ति की अलौकिक छटा होती है, वही कवि, कवियों में अग्रणी कहा जाता है और उसी के वचन पवित्र होते है।

—**राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१३)**

एकस्य तिष्ठति कवेर्गृह एव काव्यम-
न्यस्य गच्छति सुहृद्भवनानि यावत्।
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानि शश्वत्
कस्यापि संचरति विश्वकुतूहलीव ॥

किसी कवि की कविता अपने घर तक ही सीमित रह जाती है, कोई कवि ऐसा होता है जिसकी रचना मित्र-मंडली तक पहुँच जाती है, परन्तु ऐसे कृती कवि थोड़े ही होते हैं जिनकी कविता सभी के मुखों पर पदन्यास करती हुई विश्व-कुतूहली की भाँति दुनिया भर में फैल जाती है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।४)

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्
यः साक्षात् कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥

जिसे कान्यकुब्जेश्वर से दो ताम्बूल और आसन मिलते हैं, जो समाधियों में परमान्दस्वरूप परब्रह्म को साक्षात् करता है, जिसका काव्य अमृत-वर्षी है तथा तर्क-शास्त्र में भी जिसकी उक्तियों से पराभव प्राप्त करके प्रतिवादी भाग जाते हैं, उस विद्वच्चक्र-चूड़ामणि श्रीहर्ष कवि की यह कृति पंडितों को आनन्ददायक हो।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, २२।१५५)

गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं
नास्ति क्षतिः कापि कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यै
रद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः ॥

यदि सारे काव्य-चोरों को मनचाहे काव्य-रत्नों को ले जाने की छूट मिल जाये तो भी कवीश्वरों की कोई हानि नहीं हो सकती। क्योंकि देवताओं द्वारा अनेक रत्नों को समुद्र से निकाल लेने पर भी समुद्र आज भी रत्नाकर ही है।

—बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।१२)

वंद्यः कोऽपि सुधास्यन्दाऽऽस्कंदी स सुकवेर्गुणः।
येन याति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥

सुधाधारा को भी परास्त करने वाले सुकवियों का गुण वंदनीय है, जिसके कारण उनकी तथा अन्यों की यशःकाया अमर हो जाती है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।३)

कोऽन्यः कालमतिक्रांतुं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥

प्रजापति के समान तथा रम्यनिर्माणशील कवियों के अतिरिक्त अन्य किसमें इतनी क्षमता है जो काल का अति-क्रमण करके भूतकालीन बातें प्रत्यक्ष उपस्थित कर सके।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।४)

परकाव्येन काव्यः परद्रव्येण चेश्वराः।
निर्लोठितेन स्वकृतिं पुष्णन्त्यद्यतने क्षणे ॥

आजकल अपहृत परकाव्य से कवि लोग तथा अपहृत परद्रव्य से राजा लोग अपनी कृति सुन्दर बनाते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ५।१६०)

स कविस्तस्य काव्येन मर्त्या अपि सुधान्धसः।
रसोर्मिघूर्णिता नाट्यं यस्य नृत्यति भारती ॥

वही कवि है और उसके काव्य से मर्त्यलोक के वासी भी अमृत का पान करने वाले बन जाते हैं जिसकी वाणी नाटकों में रस की लहरियों से चकराती हुई-सी नाचती है।

—रामचन्द्र-गुणचन्द्र (नाट्यदर्पण, १।५)

मदयन्ति न यद्वचः किं तेऽपि कवयो भुवि ?

क्या पृथ्वी पर वे भी 'कवि' कहे जाएंगे जिसके कथन मनुष्य को मस्त न कर दें ?

—धनपाल (तिलकमंजरी, २)

सहृदयाः कविगुम्फनिकासु ये कतिपयास्त इमे न विशृंखला।

काव्य-रचना में सहृदय व्यक्ति कुछ ही होते हैं और वे सहृदय स्वेच्छाचारी नहीं (अपितु काव्य-रचना के नियमों से अभिज्ञ एवं उनके पालन में प्रवीण) होते है।

—भट्ट गोविन्दस्वामी (वल्लभदेवकृत
सुभाषितावलि, १५९)

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥

रस-परिपाक में सिद्धहस्त वे सुकृती कवीश्वर ही सर्वोच्च हैं, जिनके यशः शरीर को बुढ़ापे या मृत्यु का भय नहीं है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, २४)

परश्लोकान् स्तोकाननुदि वसमभ्यस्य ननु ये
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः ।
अविच्छिन्नद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः
सुहृदया वैशद्यं दधाति किल केषांचन गिरः ॥

अन्य कवियों के थोड़े से श्लोकों का अभ्यास करके चार पंक्तियों की रचना करने वाले कवि तो यहाँ बहुत हैं, किन्तु अनवरत रूप से उठने वाली समुद्र की लहरों के समान अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होने वाली काव्य-गुणों से सम्पन्न निर्मल वाणी कुछ विरलों की ही होती है ।

—मंखक (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १७९)

जाते जगति वाल्मीकौ शब्दः कविरिति स्थितः ।
व्यासे जाते कवी चेति कवयश्चेति दण्डिनि ॥

संसार में वाल्मीकि के आने पर 'कवि' शब्द स्थित हुआ, व्यास के उत्पन्न होने पर 'कवी' (द्विवचन) हुआ तथा दण्डी के उत्पन्न होने पर 'कवयः'(बहुवचन) रूप स्थित हुआ।

—अज्ञात

पितुर्गुरोर्नरेन्द्रस्य सुतशिष्यपदातयः ।
अविविच्यैव काव्यानि स्तुवन्ति च पठन्ति च ॥

पिता की रचनाओं को पुत्र, गुरु की रचनाओं को शिष्य तथा राजा की रचनाओं को सेवक बिना विवेचन किए ही पढ़ते है तथा उनकी प्रशंसा करते रहते है ।

—अज्ञात

जानीते यन्न चन्द्रार्को जानन्ते यन्न योगिनः ।
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कविः स्वयम् ॥

इस दृश्य जगत के साक्षी-रूप सूर्य और चन्द्रमा जिस बात को नहीं जानते, परोक्ष ज्ञानवान योगीजन जिसे नहीं जानते और किसकी कहें, सर्वज्ञ सदाशिव भी जो बात नहीं जानते, उसे कवि अपनी लोकोत्तर प्रतिभा के बल से जान लेता है ।

—अज्ञात

नामरूपात्मकं विश्वं यदिदं दृश्यते द्विधा ।
तत्राद्यस्य कविर्वेधा द्वितीयस्य चतुर्मुखः ॥

नाम का रूपात्मक जो दो प्रकार का यह संसार देख पड़ता है, उसमें से प्रथम का निर्माता कवि है, और दूसरे का ब्रह्मा ।

—अज्ञात

ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः ।

राजाओं की ख्याति कवियों द्वारा होती है, उच्च ध्वनि करने वाले भेरी-नाद से नहीं ।

—अज्ञात (वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि, १८६।४)

काव्यमय्यो गिरो यावच्चरन्ति विशदा भुवि ।
तावत् सारस्वतं स्थानं कविरासाद्य मोदते ॥

जब तक पृथ्वी पर विशुद्ध काव्यमयी वाणी का प्रचार रहता है, तब तक कवि, सारस्वत लोक में स्थान पाकर आनन्द करता है !

—अज्ञात

इतिहासपुराणाभ्यां चक्षुर्भ्यामिव सत्कविः ।
विवेकांजन-शुद्धाभ्यां सूक्ष्ममप्यर्थमीक्षते ॥

सत्कवि, विवेक-रूपी अंजन से विशुद्ध इतिहास-पुराण रूपी आँखों से सूक्ष्म तत्त्वों का अवलोकन करते हैं ।

—अज्ञात

जानीयाल्लोक-साम्मत्यं कविः कुत्र ममेति च ।
असम्मतं परिहरेन्मतेऽभिनिविशेत च ॥

कवि के लिए यह जानना परमावश्यक है कि कौन-सा कार्य ऐसा है जो लोकसम्मत भी है और मुझे भी अभिमत है । इसका विवेचन करने पर जो जनता के और अपनी आत्मा के विरुद्ध हो उसे छोड़ दे । तथा जो उभय-सम्मत हो, उसको ग्रहण करे ।

—अज्ञात

जनापवादमात्रेण न जुगुप्सेत चात्मनि ।
जानीयात् स्वयमात्मानां यतो लोको निरंकुशः ॥

लोक-निन्दा मात्र से अपनी आत्मा का तिरस्कार नहीं करना चाहिए । अपने को और अपनी वस्तु को यथार्थ रूप से समझना चाहिए । जनता तो निरंकुश है ।

—अज्ञात

इदं हि वैदग्ध्यरहस्यमुत्तमं
पठेन्न सूक्तिं कविमानिनः पुरः।
न केवलं तां न विभावयत्यसौ
स्वकाव्यबन्धेन विनाशयत्यपि ॥

कवि की चतुराई का यही महान रहस्य है कि कवि होने के अभिमानी के सामने अपनी सूक्ति का पाठ कभी न करे। कारण यह कि वह अभिमानी, उस सूक्ति का महत्त्व सर्वथा नही समझता…इतना ही नहीं, प्रत्युत अपनी काव्य-रचना द्वारा उसे नष्ट भी कर देता है।

—अज्ञात

जे परभनिति सुनत हरषाहीं। ते वर पुरुष वहुत जग नाहीं ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।८।६)

कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥
—तुलसीदास (मीराबाई को उत्तर)

अव के सुलतान भये फुहियान से वांधत पाग अटव्वर की।
नर की नरकी कविता जो करै तेहि काटहु जीभ सुलव्वर की।
इक श्रीधर आस हैं श्रीधर की नहिं त्रास अहै कोउ वव्वर की।
जिन्हें कोउ न आस अहै जग में सो करौ मिलि आस अकव्वर की ॥
—श्रीधर

वही सच्चा कवि है जो दिव्य सौंदर्य के अनुभव में लीन हो जाय।

—सरदार पूर्णसिंह ('कन्यादान' निवंध)

कविता करने ही से कवि-पदवी नही मिलती। कवि के हृदय को कवि के काव्य-कर्म को जो जान सकते हैं वे भी एक प्रकार के कवि हैं।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी ('मेघदूत' निवंध)

जिसे संसार दुःख कहता है, वहाँ कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और वल, विद्या और वुद्धि, ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण की वस्तु तो वुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १९८-१९९)

जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्ति तव तक वरावर वनी रहेगी जव तक स्वीकृति वनी रहेगी।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २४६)

कवि की दृष्टि तो सौन्दर्य की ओर जाती है, चाहे वह जहाँ हो वस्तुओं के रूप-रंग में अथवा मनुष्यों के मन, वचन और कर्म में।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, कविता क्या है ?)

श्रीमानों के शुभागमन पर पद्य वनाना, वात-वात में उनको वधाई देना, कवि का काम नहीं। जिनके रूप या कर्म-कलाप जगत् और जीवन के वीच में उसे सुन्दर लगते हैं, उन्हीं के वर्णन में वह स्वान्तः सुखाय प्रवृत्त होता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि भाग १, कविता क्या है ?)

कवि का लक्ष्य 'विंव-ग्रहण' कराने का रहता है, केवल 'अर्थ-ग्रहण' कराने का नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग २ काव्य में प्राकृतिक दृश्य)

जिस कवि में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३९)

तार्किक जिस प्रकार श्रोता को अपनी विचार-पद्धति पर लाना चाहता है उसी प्रकार कवि अपनी भाव-पद्धति पर।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० १३२)

कवि को अपने कार्य में अन्तःकरण की तीन वृत्तियों से काम लेना पड़ता है—कल्पना, वासना और वुद्धि। इनमें से वुद्धि का स्थान वहुत गौण है। कल्पना और वासनात्मक अनुभूति ही प्रधान है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ७२)

अपनी व्यक्तिगत सत्ता की अलग भावना से हटाकर निज के योगक्षेम के सम्बन्ध से मुक्त करके, जगत की वास्तविक दशाओं में जो हृदय समय-समय पर रमता है, वही सच्चा कवि-हृदय है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५९)

कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव-स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७४)

मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति सजीव कविता का शब्दचित्र मात्र है, जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार, संसार बसा रखा है।

—महादेवी वर्मा (यामा, अपनी बात, पृ० ३)

कवि का वेदान्त-ज्ञान, जब अनुभूतियों से रूप, कल्पना से रंग और भावजगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है, तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क-शृंखला नहीं। ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण परिचय न अद्वैत दे सकेगा और न विशिष्टाद्वैत।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० २०-२१)

मन्दिर की परिक्रमा करते हुए भक्त जैसे देवता को ही सब ओर से देखता है, मन्दिर की दीवारों को नहीं, वैसे ही सच्चा कवि जीवन को ही केन्द्र में देखता है।

—महादेवी वर्मा (परिक्रमा, भूमिका, पृ० ८)

अब भी कवि की हृत्तंत्री की सार्थकता है!
चेत सके मानव इसकी स्वर-संगति में बँध!

—सुमित्रानन्द पंत (पतझर, पृ० ६४)

गाए तुमने स्वप्न रँगे मधु के मोहक स्वर,
यौवन के कवि···
अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में—
आए तुम, वीणा धर कर में जनमन मादन!

—सुमित्रानन्दन पंत (मधुज्वाल, समर्पण, कवि बच्चन को)

कवि भी प्रकृति वाटिका का विकासक वसन्त है। वह प्रकृति के उन्हीं नीरस रूखे-सूखे ठूंठ रूखों में अपनी प्रतिभा-शक्ति से अलौकिक रस का संचार करके कुछ से कुछ कर दिखाता है। कवि-वसन्त किसी पुराने कविता-द्रुम में रस-ध्वनि के मधुर फल, किसी में अलंकार-ध्वनि के मनोहर पुष्प और किसी में वस्तु ध्वनि के सुन्दर रूपरंग का सन्निवेश करके सूखे से हरा और निर्जीव से सजीव बना देता है। किसी को शब्द-शक्ति और अर्थशक्ति के सहारे ऊपर उठा देता है। किसी को अर्थालंकार के चमत्कार से और किसी को शब्दालंकार के वैचित्र्य से आँखों में खुबने और चित्त में चुभने वाला कर दिखाता है।

—पद्मसिंह शर्मा (बिहारी की सतसई, पृ० २७)

कवि व्यक्ति नहीं, विधाता है और उसका धर्म जीवधर्म का साक्षात्कार तथा सृष्टि-दर्शन है। और यही धर्म भारतीय साहित्य, संगीत, चित्र और मूर्ति-निर्माण में सब कहीं बिना किसी प्रकार के श्रम के देखा जा सकता है। कवि ने अपने कवि-कर्म का नाम 'रामायण' रखा पर 'राम' नहीं। व्यक्ति के नाम पर साहित्यिक कृतियों का नामकरण नहीं हुआ।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, पृ० ८)

चार पुरुषार्थ के चित्रण में जीवन की नानाविध परिस्थितियों का अनुभव नवरस के रूप में कवि का लक्ष्य रहा है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, पृ० ८)

कवि के घर निर्धनता से अकाल नहीं पड़ता। वह तो पड़ता है, नीरसता का मौसम आ जाने पर।

—माखनलाल चतुर्वेदी (साहित्य-देवता, पृ० १३३)

जिसका लगना सबको लगे वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल है। लगने-लगने में भेद है। जो सबको लगे वह अर्थ है। जो एक को ही लगे वह अनर्थ है। अर्थ सामाजिक होता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० ८७)

जल कर चीख़ उठा, वह कवि था,
साधक जो नीरव तपने में।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (रसवन्ती)

जागत-सोवत, स्वप्न हूँ, चलत-फिरत दिन रैन।
कटि-कुच पै लागे रहें इन कवीनु के नैन ।।
—वियोगी हरि (वीर सतसई, पंचम शतक, ८५)

कवि का काव्य ही उसकी आत्मा का सत्य है।
—अज्ञेय (त्रिशंकु, पृ० ११९)

कवि द्रष्टा है
जीवन के पीछे छिपे हुए अज्ञात तत्त्व का
मानवता के अमर चिरन्तन नियमों का
कवि स्रष्टा है।
—नेमिचन्द्र (तार सप्तक में
'कवि गाता है' कविता)

कवि ने गीत लिखे नये-नये बार-बार,
पर उसी एक विषय को देता रहा विस्तार
जिसे कभी पूरा पकड़ पाया नहीं।
—अज्ञेय (सागर-मुद्रा, पृ० ३८)

सरस कबिन के चित्त को बेधत द्वै वे कौन ?
असमझवार सराहिबो समझवार को मौन।
—अज्ञात

हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया पर याद आता है
वह हर इक बात पर कहना कि यों होता तो क्या होता ?
—ग़ालिब (दीवान)

लिखता हूँ 'असद' सोज़िशे-दिल से सख़ुने गर्म
ता रख न सके कोई मेरे हर्फ़ पर अंगुश्त।

मैं हृदय की ज्वाला से ज्वलंत काव्य इसलिए रचता हूँ कि कोई मेरे अक्षर पर अँगुली न रख सके।[1]
—ग़ालिब (दीवान)

मैं चमन[1] में क्या गया गोया[2] दबिस्ताँ[3] खुल गया
बुलबुले सुनकर मेरे नाले[4] ग़ज़ल ख़्वाँ[5] हो गयी।
—ग़ालिब (दीवान)

ज़िक्र क्यों आयेगा बज़्मे-शुअरा में अपना
मैं तख़ल्लुस का भी दुनिया में गुनहगार नहीं।
—ब्रजनारायण 'चकवस्त'

थीं चंद ही निगाहें जो उस तक पहुँच सकीं।
पर उसका गीत सबके दिलों में उतर गया।
—फ़ैज (शीशों का मसीहा, पृ० ६२)

बराय पाकिये लफ़्ज़े शबे बरोज आरन्द
कि मुर्ग़ व माही बाशन्द ख़ुफ़्ता ऊ बेदार।

कवि एक शब्द को परिष्कृत करने के लिए उस रात्रि को जागकर दिन में बदल देता है कि जिसको चिड़ियाँ और मछलियाँ तक निद्रा देवी के शान्तिमय-अंक में शिर रखकर व्यतीत करती हैं।
[फ़ारसी] —बहारदानिश

बोल बोलण थी लगे तो माँ जिबानुनि जी ज़बाँ,
ने बयानीअ खे मिले तु हिजे वसीले थो बयाँ,
गुप्त इसिरार करीं ग़ैबजे पर्दे माँ अयाँ,
आणी सागर रवे थो सागर में, करीं मूइमियां।

जिह्वारहितों की वाणी तुम्हारे द्वारा ही प्रकट होती है। अवर्णनीय को तुम्हारे द्वारा ही वर्णन का सहारा मिलता है। गुप्त चमत्कारों को जो पर्दे के पीछे छिपे हुए हैं, तुम्हीं प्रकट करते हो। तुम्हीं सागर को प्याले में भर कर संजीवनी बना देते हो।
[सिन्धी] —किशिनचंद 'बेवस' (कविता 'शाइरु')

एत कथा आछे, एत गान आछे, एत प्राण आछे मोर,
एत सुख आछे, एत साध आछे, प्राण हये आछे मोर।

मेरे पास इतनी कथाएँ, इतने गान, इतने प्राण, इतने सुख और इतनी साधें है कि प्राण विभोर हो उठे हैं।
[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, १)

चित्त जबे नृत्य करे आपन संगीते
ए विश्व प्रवाहे,
से छन्दे बन्धन मोर, मुक्ति मोर ताहे।

जब इस विश्व-प्रवाह में चित्त अपने ही संगीत से नाच उठता है, तब उसी छन्द में मेरा बंधन होता है, उसी में मेरी मुक्ति होती है।
[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, ८२)

---

१. त्रुटि न निकाल सके।

१. उपवन। २. अर्थात्। ३. विद्यालय। ४. गीत। ५. गजल की गायिका।

आमि पृथिवीर कवि, येथा तार यत उठे ध्वनि।
आमार वांशिर सुरे साड़ा तार जागिबे तखनि॥

मैं पृथ्वी का कवि हूँ। पृथ्वी से जहाँ भी ध्वनि उठती है, मेरी वाँसुरी के स्वर में उसका स्पन्दन उसी समय जाग उठता है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, ६३)

कत जन मोरे डाकिया कयेछे,
जा गाहिछ तार आर्थ रयेछे किछू कि ?
तखन को कइ, नाहिं आसे वाणी,
आमि शुधुवलि 'अर्थ की जानि'
तारा हँसे जाय, तुम हास बसे मुचुकि।

बहुत-से लोग मेरे पास आकर पूछते है—'तुम जो गाते हो क्या उसका अर्थ भी है ?' इस समय मैं क्या कहूँ ? कुछ बोल नहीं पाता। फिर जब मैं यह उत्तर देता हूँ—'अर्थ क्या जानूं।' तब वे लोग हँसकर चले जाते हैं और तुम भी बैठे-बैठे मुस्कराते रहते हो।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, १०१)

संसार माझे कएकटि सूर
रेखे दिये जाव करिया मधूर
दु-एकटि काँटा करि दिव दूर
तार परे छूटि निव।
सुख हाँसि आरो होवे उज्ज्वल,
सुन्दर होवे नयनेर जल,
स्नेहसुधा माखा वासगृहतल,
आरो आपनार होवे।
प्रेयसी नारीर नयने अधरे
आरेकटु मधु दिये जावो मरे,
आरेकटु स्नेंह शिशुमुख परे,
शिशिरेर मतो रवे।

इस संसार से जाने के पूर्व मैं कुछ गीत दे जाऊँगा, जो संसार के जीवन के लिए मधुर होंगे; जो संसार के जीवन में शूल की भाँति चुभने वाले दुःख-दर्दों को भी दूर कर सकेंगे। जिनसे सुख का हास अधिक उज्ज्वल हो सकेगा, नयनों का जल अधिक सुन्दर होगा, घर के दुःख-सुख स्नेह-सुधा-सिक्त होंगे और घर में अधिक अपनत्व की भावना जागेगी। प्रेयसी नारी के नयन और अधर और भी मधु-सिक्त हो उठेंगे। घर के शिशुओं के मुखों पर और भी अधिक स्नेह-चुम्बनों की आई मधुमयता, ओस बिन्दुओं की भाँति छलक उठेगी।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('पुरस्कार' कविता)

ए दैन्य-माझारे कवि,
एकवार निये एसो स्वर्गी हते विश्वासेर छवि।

हे कवि ! इस दैन्य के बीच एक वार स्वर्ग से विश्वास की छवि ले आओ।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, १६)

बड़ो दुःख बड़ो व्यथा-सम्मुखे कष्टेर संसार
बड़ई दरिद्र, शून्य, बड़ो क्षुद्र बद्ध अन्धकार
अन्न चाई, प्राण चाई, आलो चाई, चाई मुक्त वायु,
चाई वल, चाई स्वास्थ्य, आनन्द उज्ज्वल परमायु,
साहस विस्तृत वक्षपट। ए दैन्य माझारे, कवि
एक वार नियेक एसो स्वर्ग होते विश्वासेर छवि।

यहाँ बड़ा दुःख है—बड़ी व्यथाएँ हैं। देखो अपने सामने जरा उस दुःख के संसार को, बड़ा ही दरिद्र है—शून्य है, क्षुद्र है—बड़ा ही क्षुद्र—अन्धकार में बद्ध हो रहा है।—सुनो उसे अन्न चाहिए—प्राण चाहिए—आलोक चाहिए—खुली हवा चाहिए। और ?—और चाहिए बल, स्वास्थ्य, आयु, आनन्द से भरी, चमकीली और हृदय दृढ़—साहस सुविस्तृत। इस दीनता के भीतर कवि ! एक बार—बस एक बार स्वर्ग से विश्वास की छवि उतार लाओ।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

चिरदिन चिरदिन रूपेर पुजारी आमि रूपेर पुजारी
सारा सन्ध्या सारा निशि रूप वृन्दावने वासि
हिन्दोलाय दोले नारी आनंदे नेहारि
अधरे रंगेर हास विद्युतेर परकाश
केशेर तरंगे नाचे नागेर कुमारी
वासन्ती ओढ़ना साजे प्रकृति राधिका नाचे
चरणे घुंगुर वाजे आनंदे झंकारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उघारि
आमि से अमृत विषपान करि अहर्निश
संसारेर व्रजवने विपिन विहारी।

हमेशा से, हमेशा से मैं रूप का पुजारी रहा हूँ, रूप का पुजारी। सारी संध्या और सारी रात रूप-वृन्दावन के हिंडोले में झूलने का मजा लेती रहती है। मैं उसको आनन्द के साथ देखता रहता हूँ। अधरों पर रँगीली हँसी है, मानो विद्युत का प्रकाश हुआ है, वालों की लहरों में मानो नागकुमारी नाच रही है। ओढ़ना वासंती रंग का है, प्रकृति रूपी राधा नाच रही है, कवि चित्त में कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृत-विष को मैं दिन-रात पीता रहता हूँ, इस प्रकार मैं संसार के व्रजवन में विपिनविहारी हूँ।

[बंगला] —देवेन्द्रनाथ सेन

अशी असावी कविता फिरून
तथा नसावी कविता म्हणून
सांगावया कोण तुम्ही कवीला
अहांत मीठे ? पुसतो तुम्हांला ॥

कविता ऐसी होनी चाहिए और वैसी नहीं होनी चाहिए, इस तरह कवि को उपदेश देने वाले, भला तुम कौन हो ? बड़े आए ! मैं तुमसे पूछता हूँ।

[मराठी] —केशवसुत (कविता, 'कविता आणि कवि')

आद्य जे कोणी कवी तत्स्फूर्तच्या ज्या सिंधुगंगा
आणिल्या वाहून खांदीं कावडी त्यांतील कांहीं।

जो-जो आद्य कवि हुए हैं उनसे स्फूर्ति रसों की सिन्धु-गंगा, मैं अपने कंधों पर ढो कर लाया हूँ।

[मराठी] —यशवन्त दिनकर पेंढरकर ('पाणवोई' कविता)

वालरसालसाल नवपल्लव कोमल काव्य कन्यकन्
कूललकम्मि यप्पडुपु गूडु भूजिचुट कंटे
सत्कवुल हालिकुलैन नेमि ? गहनांतर सीमल कंद-
मूल कौद्दालिकुलैन नेमि निजदारसुतोदर पोषणार्थम्।

यदि वाल रसाल के नवपल्लव-सी कोमल काव्य-कन्या को नीचों के हाथ वेचकर, उससे प्राप्त भोजन की अपेक्षा, अपने वच्चों का पेट भरने के लिए सत्कवि हल चलाए तो क्या हुआ ? वनों में कंद-मूल खोद खाये तो क्या हुआ ?

[तेलुगु] —पोतन्न

कवि केवल सृष्टि ही नहीं करता सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभाव से ही सुन्दर है उसे और भी सुन्दर करके प्रकट करना जैसे उसका एक काम है, वैसे ही जो सुन्दर नहीं है, उसे असुन्दर के हाथ से वचा लेना भी उसका दूसरा काम है।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन)

मैं हूँ कवि, तर्क नहीं जानता मैं,
दृष्टि मेरी देखती है विश्व को समग्र स्वरूप में।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('रोग शय्या' गद्य काव्य)

जो कवि भाव-स्वातन्त्र्य और भाषा-स्वातन्त्र्य के अनिवार्य द्वन्द्व को दबाकर सौन्दर्य की रक्षा कर सकते हैं, वे ही धन्य हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निवन्ध—स्वतंत्रता का परिणाम)

कवि लोग सचमुच मोक्ष चाहने वालों के लिए अंजन, साधकों के साधन और सिद्धों के समाधान है। वे स्वधर्म के आश्रय, मन का मनोजय और धार्मिकों की विनय तथा उन्हें विनय की शिक्षा देने वाले है। वे वैराग्य के संरक्षक, भक्ति के भूषण और नाना स्वधर्मो के रक्षक हैं। वे प्राणियों की प्रेम-स्थिति, ध्यानस्थों की ध्यानमूर्ति और उपासकों की वढ़ती हुई कीर्ति हैं। वे अनेक साधनों के मूल और अनेक प्रयत्नों के फल हैं और केवल उन्हीं की कृपा से अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

गद्य-लेखक भी कवि हो सकता है, यदि उसमें कवित्व हो।

—अरविन्द (श्री अरविन्द साहित्य दर्शन में उद्धृत, पृ० ८५)

पैग़म्बर सत्य को परमात्मा की वाणी या आदेश के रूप में घोषित करता है और वह स्वयं संदेशवाहक होता है। कवि हमें सत्य को उसकी सौन्दर्य-शक्ति में, उसके प्रतीक या विंव में दिखाता है या प्रकृति के कार्यों या जीवन के कार्यों में उसे प्रकट करता है—उसका स्पष्ट वक्ता वनने की उसे आवश्यकता नहीं होती।

—अरविन्द (भावी कविता)

कवि, अपने काँटों के ताज की प्रतीक्षा करो। तुम उसमें यश के खिलते हुए फूलों का एक हार छिपा हुआ पाओगे।

—खलील जिब्रान (आँसू और मुस्कान, पृ० ५०)

मैं एक कवि हूँ, जो छंदों में उन बातों को सँजोता हूँ, जिन्हें जीवन गद्य के रूप में बिखेरता है।

—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ८७)

तू स्वयं अपना उच्च न्यायालय है। अपनी रचना का मूल्यांकन केवल तू ही कर सकता है।

—पुश्किन (कविता 'पोयेत्')

कोई बुरा आदमी अच्छा कवि नही हो सकता।

—बोरिस पेस्तरनाक

Never durst poet touch a pen to write
Until his ink were temper'd with
Love's sighs.

कवि लिखने के लिए तब तक लेखनी का प्रयोग नहीं करता जब तक उसकी स्याही प्रेम की आहों से कोमल न बना दी गयी हो।

—शेक्सपियर (लव्स लेबर्स लास्ट, ४।३)

We poets in our youth reign in gladness.
But thereof comes in the end despondency and madness.

हम कवि जन अपनी युवावस्था में आह्लादमय रहते हैं, किन्तु उससे अन्त में निराशा और विक्षिप्तता ही हाथ लगती हैं।

—वर्ड्सवर्थ (रेजोल्यूशन एण्ड इंडिपेण्डेन्स)

No man was ever yet a great poet, without being at the same time a profound philosopher.

पारंगत दार्शनिक हुए बिना कोई भी व्यक्ति कभी महान् कवि नहीं हुआ।

—कालरिज (बायोग्राफ़िया लिटरेरिया, अध्याय १५)

Poets are the unacknowledged legislators of the world.

कविगण विश्व के अनभिस्वीकृत विधायक हैं।

—शैले (ए डिफ़ेंस आफ़ पोइट्री)

Poet's food is love and fame.
कवि का भोजन है प्रेम और यश।

—शैले

Most wretched men
Are called into poetry by wrong;
They learn in suffering what they teach in song.

अत्यधिक दुःखी लोग गलती से काव्य-क्षेत्र में आ जाते हैं। जो वे गीतों में सिखाते हैं, उसे वे दुःखों में सीखते हैं।

—शैले (जूलियन एंड मैडालो)

Of course poets have morals and manners of their own, and custom is no argument with them.

निस्सन्देह कवियों की अपनी ही रीतियाँ और नीतियाँ होती हैं और लोकरीति उनके लिए कोई प्रमाण नही है।

—टामस हार्डी (दि लैंड आफ़ एथेलवर्टा, अध्याय २)

कवि और आलोचक

कस्तत्वं भोः कविरस्मि काप्यभिनवा सूक्तिः सखे पठ्यतां
त्यक्ता काव्यकथैव सम्प्रति मया कस्मादिदं श्रूयताम्।
यः सम्यग्विविनक्ति दोषगुणयोः सारं स्वयं सत्कविः
सोऽस्मिन्भावक एव नास्त्यथ भवेद्दैवान्न निर्मत्सरः॥

तुम कौन हो? मैं कवि हूँ। सखे! कोई नयी सूक्ति पढ़ें। मैंने तो कविता की बात ही छोड़ दी। क्यों? सुनो, जो सत्कवि कविता के गुण और दोष के तत्त्वों को स्वयं समझ सकता है, वह उसका आलोचक नही है। और यदि है भी, तो वह मात्सर्य-रहित नहीं है।

—अज्ञात (राजशेखर द्वारा 'काव्यमीमांसा' में उद्धृत)

परिश्रमज्ञं जनमन्तरेण मौनव्रतं बिभ्रति वाग्मिनोऽपि।
वाचंयमाः सन्ति विना वसन्तं पुंस्कोकिलाः पंचमचञ्चवोऽपि॥

सुकवि काव्य-रचना के परिश्रम के जानने वालों को ही अपनी कविता सुनाता है, अन्यथा वाग्मी होते हुए भी तद्भिन्न पुरुषों के समक्ष मौन धारण कर लेता है। पंचम स्वर में बोलने वाली कोयल भी वसंत न होने पर मौन ही रहती है।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १९५)

विना न साहित्यविदाऽपरत्र गुणः कथञ्चित् प्रथते कवीनाम् ।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः ॥

कवियों के गुण किसी प्रकार भी साहित्यविद् के अतिरिक्त अन्यत्र विस्तार नहीं पाते, जिस प्रकार तेल की बूंद पानी पर गिरते ही विस्तृत होकर फैल जाती है, अन्यत्र नहीं।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १७३)

कवि और काव्य

शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स चेत् कवि वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ॥

यदि कवि शृंगार रस का प्रेमी है, तो उसके काव्य में रसमय जगत् प्रगट होता है। यदि कवि वीतराग हो तो काव्य निश्चय ही नीरस होगा।

—अग्निपुराण (३३९।११)

स यत्स्वभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम् ।

कवि का जैसा स्वभाव होता है, वैसी ही उसकी कविता भी होती है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।दशम अध्याय)

दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम् ।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः ।

उन कवियों की वन्दना क्यों न की जाए जिनकी अत्यन्त गुणमयी कविता उनके दिवंगत हो जाने पर भी कल्प-पर्यन्त संसार को आनंदमग्न किया करती है।

—अज्ञात

एक नैन कवि मुहमद गुनी। सोइ विमोहा जेइँ कवि सुनी ॥

—जायसी (पदमावत, २१)

मुहमद कवि जो प्रेम का ना तन रकत न मांसु ।
जेइँ मुख देखा तेइँ हँसा सुना तो आए आँसु ॥

—जायसी (पदमावत, २३)

लिखा तो वरसन्ह रहे, जे लिख जाने कोय ।
लेखनहारा वापुरा, गलि गलि माटी होय ॥

—जायसी (चित्ररेखा)

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान !

—सुमित्रानन्दन पंत (पल्लव, आँसू, पृ० ६५)

दर सख़ुन पिन्हा शुदम्
मानिन्दे बू दर वर्गे गुल
हर कि दीदन मेल दारद
दर सख़ुन मीनद वरा।

जैसे सुगंध फूल की पंखुड़ियों में बसी है, वैसे ही मैं अपनी काव्यपंक्तियों में व्याप्त हूँ। जो मुझसे मिलने का इच्छुक है, मेरे काव्य में मुझे पा ले।

[फ़ारसी] —ज़ेबुन्निसा (दीवान)

कवि और श्रोता

कश्चिद् वाचं रचयितुमलं श्रोतुमेवाऽपरस्तां
कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति ।
नह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपातो गुणाना-
मेकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः ॥

कोई तो काव्य-रचना करने में निपुण है और कोई उसके सुनने में ही प्रवीण है। तुम्हारी दोनों प्रकार की बुद्धि आश्चर्यजनक है। एक में अनेक गुणों का समन्वय कठिन है। एक पत्थर सुवर्ण उत्पन्न करता है और दूसरा पत्थर (कसौटी) उसकी परीक्षा करता है।

—अज्ञात (राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' में उद्धृत)

इतरकर्मफलानि यदृच्छया विलिखितानि सहे चतुरानन।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥

हे विधाता ! तू मेरे भाग्य में अन्य कर्मफलों को स्वेच्छा से लिख दे, मैं उनको सहन कर लूंगा, किन्तु अरसिकों के कवित्व का निवेदन मेरे भाग्य में मत लिख, मत लिख, मत लिख।

—अज्ञात

ये तावत् स्वगुणोपबृंहितधियस्तेषामरण्यं जगद—
प्येते कृतमत्सराः परगुणं स्वप्नेऽपि नेच्छन्ति ते।
अन्येषामनुरागिणां क्वचिदपि स्निग्धं मनोनिर्वृता-
वित्थं यान्तु तपोवनानि महतां सूक्तानि मन्येऽधुना॥

जो अपने गुणों के कारण विस्तृत बुद्धि वाले हैं, उनके लिए यह जगत् अरण्यवत् है। जो मत्सर ग्रस्त हैं, वे स्वप्न में भी दूसरों के गुणों को नहीं चाहते। अन्य अनुरागियों का सरस चित्त अन्यत्र रम गया है। ऐसी स्थिति में मैं समझता हूँ कि महाकवियों की सूक्तियाँ अब तपोवनों का सेवन करें।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत, सुभाषितावलि, १६४)

साकूतं निजसंविदेकविषयं तत्त्वं सचेता ब्रुवन्-
नग्रे नूनमबोधमोहितधियां हास्यत्वमायास्यति।
तद् युक्तं विदुषो जनस्य जडवज्जोषं नु नामासितुं
जात्यन्धं प्रतिरूपवर्णनविधौ कोऽयं वृथावोद्यमः॥

यदि सहृदय गूढ़ अभिप्राय से युक्त ज्ञानमय विचार को अज्ञानियों के समक्ष कहेगा तो हास्य का पात्र बनेगा। इसी कारण विद्वानों का मूर्ख समाज में जड़ के समान मूक बैठे रहना उचित है। जन्म से अन्धे व्यक्ति के सामने सौन्दर्य वर्णन में परिश्रम करने से क्या लाभ?

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १६७)

कवि-कल्पना

दे० 'कल्पना' भी।

किसी भावोद्रेक द्वारा परिचालित अन्तर्वृत्ति जब उस भाव के पोषक स्वरूप गढ़कर या काट-छाँटकर सामने रखने लगती है तब हम उसे सच्ची कवि-कल्पना कह सकते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० २८३)

अलंकार-विधान में उपयुक्त उपमान लाने में कल्पना ही काम करती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० ३४९)

कविता

दे० 'काव्य'।

कवित्व

रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता।
सत्कवित्व के बिना वाग्विदग्धता कैसी?

—भामह (काव्यालंकार, १।४)

कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः।
कुकवित्व को तो विद्वान लोग साक्षात् मृत्यु ही कहते हैं।

—भामह (काव्यालंकार, १।१२)

अकीर्तिवर्तिनीं त्वेवं कुकवित्वविडम्बनाम्।
इसी प्रकार कुकवित्व की विडंबना को अकीर्ति का मार्ग कहा जाता है।

—वामन (काव्यालंकार सूत्र १।१।५ की वृत्ति के अन्तर्गत श्लोक १)

कवित्वबीजं प्रतिभानम्।
कवित्व की बीज प्रतिभा है।

—वामन (काव्यालंकार सूत्र, १।३।१६)

प्राणाः कवित्वं विधानां लावण्यमिव योषिताम्।
त्रैविद्यवेदिनोऽप्यस्मै ततो नित्यं कृतस्पृहाः॥

स्त्रियों के लावण्य के समान कवित्व, विद्याओं का प्राण-रूप है। इसलिए त्रयी विद्या के विद्वान भी इसके लिए सदा उत्सुक रहते हैं।

—रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्यदर्पण, १।६)

अर्थोऽस्ति चेन्न पदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेतद्
व्यर्थं विना रसमहो गहनं कवित्वम्॥

यदि कवित्व में सद्विचार है तो पदशुद्धि का अभाव होगा, पदशुद्धि होने पर रीति नहीं होगी, रीति होने पर घटना का अभाव सम्भव है, यदि वह भी है तो नव वक्रगति नहीं होगी, उसके भी होने पर रस के अभाव में कवित्व व्यर्थ है, अहो कवित्व बड़ा दुष्कर है!

—मंखक (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १७७)

श्रुतीनां सांगशाखानामितिहासपुराणयोः।
अर्थग्रन्थः कथाभ्यासः कवित्वस्यैकमौषधम् ॥
वेदों, उनके अंगों व उनकी शाखाओं, इतिहास और पुराण के अर्थों का गुम्फन करना और उनमें वर्णित कथाओं का अनुशीलन करना कवित्व की एकमात्र औषधि है।

—अज्ञात

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा वहुश्रुतता।
स्मृतिदार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य ॥
स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढ़ता और उत्साह—कवित्व की ये आठ माताएं है।

—अज्ञात

ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए नए आवरण चढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, कविता क्या है ?)

बड़ी क़ीमती है यह फ़ुरसत यह काविश
मेरी शायरी क्या, मेरी जिन्दगी है।

—'राज' (राज़ोनियाज़, पृ० ६४)

तुका म्हणे होय मनासी संवाद।
आपुला चि वाद आपणांसी ॥
स्वयं से किया गया स्वयं का कथन ही मेरे काव्य में है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २८४१)

लीलयिल् जीवितगीतिकळ्‌ पाटुम् दिक्-
कालातिवर्त्ति माहात्म्यशालिन्।
आरालुमज्ञातमांमेतो मण्णिल्-
वीणाराल् नशिक्कुवान् तीर्न्नोरेन्ने
निज् दयावैभवम् जंगमाजंगम-
नन्दनमामोरु वेणुवाक्कि।
लीलापूर्वक जीवित गीतों के गायक, दिक्-काल के अतिवर्ती तथा माहात्म्यशाली हे भगवान! मैं तो अज्ञात रहकर, कहीं मिट्टी में पड़े-पड़े नष्ट हो जाने के लिए जन्मा था, किन्तु तेरे दया-वैभव ने मुझे जड़-चेतन को आनंदित बनाने वाली बांसुरी बना दिया है।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (कविता 'ओटक्कुरल')

कवि-समय

अशास्त्रीयमलौकिकं च परम्परायातं च यमर्थमुपनिबन्धन्ति कवयः स कविसमयः।
शास्त्र से बाहर तथा लोक-व्यवहार से बाहर, केवल परम्परा-प्रचलित, जिस अर्थ का कवि उल्लेख करते हैं, वह कवि-समय है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१४)

वस्तुवृत्तिरतंत्रं कविसमयः प्रमाणम्।
काव्य-वर्णन में वास्तविक स्थिति नहीं, कविसमय[1] ही प्रमाण है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१८)

पूर्वे हि विद्वांसः सहस्रशाखं सांगं च वेदमवगाह्य, शास्त्राणि चाववुध्य, देशान्तराणि द्वीपान्तराणि च परिभ्रम्य यानर्थानुपलभ्य प्रणीतवन्तस्तेषां देशकालान्तरवशेन अन्यथात्वेऽपि तथात्वेनोपनिबन्धो यः स कविसमयः।
प्राचीन विद्वानों ने, सहस्रों शाखा वाले वेदों का अंगों सहित अध्ययन करके, शास्त्रों का तत्वज्ञान प्राप्त करके, देशान्तरों और द्वीपान्तरों का परिभ्रमण करके, जिन वस्तुओं को देख-सुन और समझकर उल्लिखित किया है, उन पदार्थों का, देश और काल के कारण-भेद होने पर या विपरीत हो जाने पर भी, उसी प्राक्तन रूप में वर्णन करना कवि-समय है।

—अज्ञात

कश्मीर

सहोदराः कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः ॥
निश्चित रूप से कविता कुंकुम-केसरों की सगी बहन है। क्योंकि कश्मीर को छोड़कर इन दोनों को अन्यत्र उत्पन्न होते हुए मैंने नहीं देखा।

—विल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।२१)

प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ॥

—श्रीधर पाठक

---
१. कवियों में मान्य रूढ़ियां।

अगर फ़िरदौस बर-रूए ज़मीं अस्त,
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।
यदि पृथ्वी पर स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है।
[फ़ारसी] —फ़िरदौसी

हज़ार काफ़िलिये शौक़ मी कशद शबगीर
कि बारें ऐश कुशायद ब बास्तए कश्मीर।
शौक़ के हज़ारों काफ़िले डेरा डालते है ताकि कश्मीर की भूमि पर अपनी ज़िंदगी का बोझ हल्का कर लें।
[फ़ारसी] —फ़ैज़ी

कष्ट

महतां चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम्।
जैसे छोटा अंकुश भी हाथियों पर गिरकर उन्हें कष्ट देता है, वैसे ही बड़ों के ऊपर थोड़ा क्लेश पड़ना भी बहुत कष्टकर होता है।
—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १६)

दुःखितानां बत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः।
दुःखी व्यक्तियों के समक्ष कष्ट अधिक मात्रा में आता है।
—त्रिविक्रमभट्ट (नवचम्पू)

ग्रामे वासो नायको निर्विवेकः कौटिल्यानामेकपात्रं कलत्रम्।
नित्यं रोगः पारवश्यश्च पुसामेतत् सर्वं जीवतमेव मृत्युः।
ग्राम में रहना, मूर्ख मालिक का होना, अपनी भार्या का कपटी होना, सदा व्याधि का रहना—यह सब जीवित पुरुषों का मरण ही है।
—अज्ञात

कान्तावियोगः स्वजनापमानो
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा।
दारिद्रयकाले प्रियदर्शनं च,
विनाऽग्निना पंच दहन्ति कायम्॥
पत्नी का वियोग, स्वजनों का अपमान, ऋण का शेष रहना, बुरे स्वामी की सेवा करना, हीनावस्था में किसी स्नेही का मिलन—ये पाँचों बिना आग के ही शरीर को जलाते हैं।
—अज्ञात

कुग्रामवासः कुलहीन-सेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
मूर्खश्च पुत्रो विधवा च कन्या,
विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायम्॥
बुरे ग्राम का रहना, बुरे आदमी की सेवा, बुरा भोजन, क्रोधमुखी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या—ये छह आग के बिना ही शरीर को जलाते है।
—चाणक्यनीति (वृद्ध चाणक्य)

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी।
कपटी मित्र सूल सम चारी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।७।५)

कष्ट हृदय की कसौटी है।
—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, पंचम अंक)

ओखली में सर दिया तो मूसलों का क्या डर।
—हिन्दी लोकोक्ति

मेरा तजुर्बा है कि इस ज़िंदगी में
परेशानियाँ ही परेशानियाँ है।
—मोहम्मद हफ़ीज़ जालंधरी (आज की उर्दू शायरी)

सिवेइरे नां लेखेइ लढेइकि डरिवा।
सिपाहियों मे नाम लिखवाकर लड़ाई से डरना।
—उड़िया लोकोक्ति

कष्ट ही तो वह चालक शक्ति है जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और आगे बढ़ाती है।
—विनायक दामोदर सावरकर (क्रांतिकारी चिट्ठियाँ, पृ० ५६)

धन्यता आँसुओं की पुत्री है और सत्य पीड़ा का पुत्र।
—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ७०)

कसौटी

पवित्रता की माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुःख, पुण्य की कसौटी है पाप।
—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, द्वितीय अंक)

काम परे तें सबन को, जान्यो जाय सरूप।
मोल बोल कृति तें मिलें, रंक, पोच, बड़ भूप॥

काम पड़ने पर ही सबके वास्तविक स्वरूप का पता चलता है। बातचीत और कृति से ही रंक, क्षुद्र और राजा का पता चलता है।

—दयाराम (दयाराम सतसई, पृ० ५८४)

समय पड़ने पर जानिए जो मन जैसो होय।

—अज्ञात

कसौटी पर कसे गए बिना जीवन की परख नहीं होती।

—शरत्‌चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २३५)

कहानी

पढ़कर आनन्द के अतिरेक से आँखें यदि गीली न हो जायें तो वह कहानी कैसी ?

—शरत्‌चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १०)

There are several kinds of stories, but only one difficult kind—the humorous.

अनेक प्रकार की कहानियाँ होती हैं परन्तु उनमें एक ही कठिन प्रकार की होती है—हास्यकर कहानी।

—मार्क ट्वेन (हाऊ टू टेल ए स्टोरी)

Fiction is truth's elder sister. Obviously. No one in the world knew what truth was till some one had told a story. So it is the oldest of arts, the mother of history.

कल्पना सत्य की बड़ी बहन है। स्पष्टत:, जब तक किसी ने कहानी नहीं कही थी तब तक संसार में कोई नहीं जानता था कि सत्य क्या है। अत: यह सबसे प्राचीन कला है, यह इतिहास की जननी है।

—रुडयार्ड किपलिंग (रॉयल लिटरेरी सोसाइटी में भाषण, जून १९२७)

क़ानून

विधान की स्याही का एक बिन्दु गिरकर भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा देता है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, तृतीय अंक)

क़ानून मनोविकार से मुक्त तर्क है।

—अरस्तू (पालिटिक्स, अध्याय ३)

जनहित सबसे बड़ा क़ानून है।

—सिसरो

Laws grind the poor, and rich men rule the law.

क़ानून निर्धन को पीसते हैं और धनवान क़ानून पर शासन करते हैं।

—ओलिवर गोल्डस्मिथ (द ट्रैवलर)

Bad laws are the worst sort of tyranny.

बुरे क़ानून निकृष्टतम प्रकार का अत्याचार हैं।

—एडमंड बर्क (१७८० के निर्वाचन से पूर्व ब्रिस्टल में भाषण)

There is but one law for all, namely that law which governs all law, the law of our Creator, the law of humanity, justice, equity—the law of nature—and of nations.

सभी के लिए एक क़ानून है अर्थात् वह क़ानून जो सभी क़ानूनों का शासक है, हमारे विधाता का क़ानून, मानवता, न्याय, समता का क़ानून, प्रकृति का क़ानून, राष्ट्रों का कानून।

—एडमंड बर्क (वारेन हेस्टिंगज पर महाभियोग, २८ मई १७९४)

The greatest happiness of the greatest member is the foundation of morals and legislation.

अधिकतम लोगों की अधिकतम प्रसन्नता ही नैतिकता तथा क़ानून-निर्माण की नींव है।

—जेरेमी बेनथम (दि कामनप्लेस बुक, खण्ड ५, पृ० १४२)

For a law to be respected, in ought to be worthy of respect. It must be fair and it must be fairly enforced.

सम्मानित होने के लिए क़ानून को सम्मान के योग्य होना चाहिए। उसे न्यायसंगत होना चाहिए और न्यायपूर्वक ही लागू भी होना चाहिए।

— रिचार्ड निक्सन (यू० एस० न्यूज़ एंड वर्ल्ड रिपोर्ट, १५ अगस्त १९६९)

काफ़िर

सो काफ़िर जो बोले काफ़[1]
दिल अपना नहिं राखै साफ़।
साईं का फ़रमान[2] न माने
'कहां पीव' ऐसा करि जाने ॥

—दादू

कामदी

Comedy, we may say, is society protecting itself with a smile.

हम कह सकते हैं कि कामदी मुस्कराहट के साथ आत्म-रक्षा करता समाज ही है।

—प्रीस्टले (जार्ज मेरेडिथ)

कामना

दे० 'इच्छा'।

कामभाव

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस (कामभाव) के वास-स्थान कहे जाते हैं। इनके द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके यह जीवात्मा को मोहित करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २७।४० अथवा गीता, ३।४०)

हृदि कामद्रुमश्चित्रो मोहसंचयसम्भवः।
क्रोधमानमहास्कन्धो विधित्सापरिषेचनः ॥
तस्य चाज्ञानमाधारः प्रमादः परिषेचनम्।
सोऽभ्यसूयापलाशो हि पुरा दुष्कृतसारवान् ॥
सम्मोहचिन्ताविटपः शोकशाखो भयांकुरः।
मोहनीभिः पिपासाभिर्लताभिरनुवेष्टितः ॥

मनुष्य की हृदयभूमि में मोह रूपी बीज से उत्पन्न हुआ एक विचित्र वृक्ष है जिसका नाम है काम। क्रोध और अभिमान उसके महान् स्कन्ध है। कुछ करने की इच्छा उसमें जल सींचने का पात्र है। अज्ञान उसकी जड़ है, प्रमाद ही उसे सींचने वाला जल है, दूसरे के दोष देखना उस वृक्ष का पत्ता है तथा पूर्वजन्म में किए गए पाप उसके सार भाग हैं। शोक उसकी शाखा, मोह और चिन्ता डालियाँ एवं भय उसका अंकुर है। मोह में डालने वाली तृष्णा रूपी लताएँ उसमें लिपटी हुई हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्तिपर्व, २५४।१-३)

काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्।
यशः क्षयकरः कामस्तस्मात् तं परिवर्जयेत् ॥

काम इस जन्म का मूल कारण है। काम पाप कराने में हेतु है और यश का नाशक है। अतः काम को त्याग देना चाहिए।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद, ३४।५६)

संकल्प्यमानो हि विजृम्भते: मदनः।
संकल्प करने से ही काम-भावना की वृद्धि होती है।

—भास (अविमारक, २।२ के पश्चात्)

साधारणात्स्वप्ननिभादसाराल्लोलं मनः कामसुखान्नियच्छ।
हव्यैरिवाग्नेः पवनेरितस्य लोकस्य कामैर्न हि तृप्तिरस्ति।

स्वप्न के समान सारहीन तथा सबके द्वारा उपभोग्य कामसुख से अपने चंचल मन को रोको, क्योंकि जैसे वायु प्रेरित अग्नि की हव्य पदार्थों से तृप्ति नहीं होती, वैसे ही लोगों को कामोपभोग से कभी तृप्ति नहीं होती।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२३)

न कामभोगा हि भवन्ति तृप्तये
हवींषि दीप्तस्य विभावसोरिव।
यथा यथा कामसुखेषु वर्तते
तथा तथेच्छा विषयेषु वर्धते ॥

कामभोगों से कभी तृप्ति नहीं होती, जैसे जलती अग्नि की आहुतियों से तृप्ति नहीं होती। जैसे-जैसे कामसुखों में प्रवृत्ति होती जाती है, वैसे-वैसे विषय-भोगों की इच्छा बढ़ती जाती है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ६।४३)

---
१. सब झूठ है, २. आदेश

अत्यारूढो हि नारीणाम् अकालज्ञो मनोभवः ।

नारियों की काम-भावना अत्यधिक तीव्र होने पर उन्हें समय के औचित्य का ध्यान नहीं रहता ।

—कालिदास (रघुवंश, १२।३३)

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणश्चेतनाचेतनेषु ।

काम से पीड़ित लोग जड़-चेतन पदार्थों के सम्बन्ध में स्वभावतः विवेकशून्य हो जाया करते हैं ।

—कालिदास (मेघदूत, पू० ५)

कामी स्वतां पश्यति ।

कामी व्यक्ति सर्वत्र अपनी ही बात देखता है ।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, २।२)

न हि कमलिनी दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः ।

हाथी जब कमलिनी को देख लेता है तब उसे ग्राह नहीं दिखाई देता ।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, ३।९ के पश्चात्)

अहो दुर्लभाभिलाषी मदनः ।

अरे, कामदेव भी दुर्लभ वस्तु का ही अभिलाषी होता है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, १।१९ के पश्चात्)

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।

काम-वृत्ति किसी के कहने पर ध्यान नहीं देती ।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।८२)

धन्याः खलु ताः स्त्रियो यास्त्वां न प्रेक्षन्ते । प्रेक्ष्यात्मनो हृदयस्य वा प्रभवन्ति ।

वे स्त्रियां धन्य हैं जो आपको नहीं देखती हैं अथवा देखकर भी स्वयं को व अपने हृदय को सँभालने में समर्थ होती है।

—भवभूति (मालतीमाधव, अंक २)

श्रद्धेया विप्रलब्धारः प्रिया विप्रियकारिणः ।
सदुस्त्यजास्त्यजन्तोऽपि कामाः कष्टा हि शत्रवः ।।

काम अर्थात् विषय-भोगों से श्रद्धा करो तो वे ठगते हैं। प्रेम करो तो वे हानि पहुँचाते हैं। छोड़ना चाहो तो छूटते नहीं । वे कष्टप्रद शत्रु हैं ।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ११।३५)

चारुता वपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः ।
तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तां मदो दयितसंगमभूषः ।।

इन (नारियों) के शरीर को सौन्दर्य ने, उसको पूर्ण नवयौवन के योग ने और उसको काम-श्री ने तथा उसको प्रियतम-संगम रूप भूषण से युक्त मद ने भूषित किया ।

—माघ (शिशुपालवध, १०।३३)

कालो गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा ।

काल और गुण दोनों ही कामदेव को सर्वथा दुर्निवारणीय कर देते हैं ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ४२८)

कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम् ।

कामदेव के बाण-प्रहार से जर्जरित हृदय में उपदेश जल के समान निकल जाता है ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ४३८)

मूढो हि मदनेनायास्यते ।

मूर्ख ही कामदेव के द्वारा कष्ट पाता है ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ४६१)

अप्रतीकारदारुणो दुर्विषहवेगः कष्टः कुसुमायुधः ।

कष्टदायक कामदेव का आयुध असह्य वेग वाला तथा प्रतिकाररहित होने से दारुण होता है ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ५१५)

प्रायेण प्रथमं मदनानलो लज्जां दहति, ततो हृदयम् ।

कामग्नि प्रायः सर्वप्रथम लज्जा को जलाती है, उसके बाद हृदय को ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ६६०)

आदौ विनयादिकं कुसुमेषुशराः खंडयंति पश्चान्मर्माणि ।

कामदेव के बाण पहले तो विनय आदि को तोड़ते हैं, फिर मर्मस्थानों को ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ६६०)

न च तद्भूतमेतावति त्रिभुवनेऽस्य शरशरव्यतां यन्न यातं याति यास्यति वा ।

इस विशाल त्रिभुवन में ऐसा कोई प्राणी नहीं हुआ जो कामदेव के बाण का लक्ष्य हुआ नहीं है, होता नहीं है या होगा ही नहीं ।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ६६५)

प्रीतिः स्याद्दर्शनाद्यैः प्रथममथ मन संग-संकल्पभावो,
निद्राछेदस्तनुत्वं वपुषि कलुषता चेन्द्रियाणां निवृत्तिः।
ह्रीनाशोन्मादमूर्च्छामरणमिति जगद्यात्यवस्था दशैताः,
लग्नैर्यत्पुष्पबाणैः स जयति मदनः सन्निरस्तान्यधन्वी ॥

अन्य धनुर्धारियों को अपने सामने न ठहरने देने वाला वीर कामदेव सर्वोत्कृष्ट है, जिसके पुष्पशरों के लगने से पहले तो प्रिय के दर्शन आदि से अनुराग उत्पन्न होता है, तदनन्तर क्रमशः प्रिय से मिलने की अभिलाषा, निद्राभंग, शारीरिक दौर्बल्य, अपने-अपने व्यापार में इन्द्रियों का आलस्य, प्रिय के अतिरिक्त अन्य विषयों में मन की विरक्ति, लज्जा का छूट जाना, उन्माद, मूर्च्छा और मरण इन दस दशाओं को सारा जगत प्राप्त होता है।

—शुकसप्तति (कहानी ४, श्लोक २६)

काम काम सब कोई कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावत सोय॥

—रामकबीर

सन्तु विलोकन-भाषण-विलास-परिहास-केलि-परिरम्भाः।
स्मरणमपि कानिनामलमिह मनसो विकाराय॥

अवलोकन, संभाषण, विलास, परिहास, क्रीड़ा, आलिंगन तो दूर रहे, स्त्रियों का स्मरण भी मन को विकृत करने में पर्याप्त है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय, १।१६)

लावण्यममृतरसः नयने नीलोत्पले मुखं चन्द्रः।
रंभातरु उरुयुगलं तदा देवि दह्यसि किं हृदयम्॥

हे देवि! तुम्हारे नीलोत्पल रूपी नेत्रों में लावण्य रूपी अमृत रस है, मुख चंद्र है, उरु युगल कदली तरु हैं। तो मेरे हृदय को क्यों जलाती हो?

—नयचन्द्र (रंभामंजरी नाटक, २।८)

सा मे पुरतः पश्चात् पार्श्वे चान्तश्च सकलचन्द्रमुखी।
विलसति निमेषसमये क्षणमुन्मेषे तिरोधत्ते॥

वह चन्द्रमुखी मेरे सामने है, पीछे है, समीप है तथा अन्दर है, क्षण में विलसित होती है तथा क्षण में तिरोहित हो जाती है।

—भास्कर यज्वा (वल्लीपरिणय नाटक, तृतीय अंक)

वयसि गते कः कामविकारः।
अवस्था बीत जाने पर कैसा काम-विकार?

—शंकराचार्य

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम;
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

सम्भवतः विवेकवादियों की आदर्श-भावना के कारण, इस शब्द में केवल स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के अर्थ का ही भाव होने लगा। किन्तु काम में जिस व्यापक भावना का समावेश है, वह इन सब भावों को आवृत्त कर लेती है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ४७)

परब्रह्म की उस मानसिक इच्छा का, जो संसार की सृष्टि में प्रवृत्त होती है, मूर्त रूप ही काम है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (आलोकपर्व, पृ० १८)

काम-भोग

पंको च कामा पलियो च कामा
मनोहरा दुत्तरा मच्चुधेय्या।
एतस्मिं पंके पलिबे व्यसन्ना
हीनत्तरूपा न तरन्ति पारं॥

काम-भोग कीचड़ है, काम-भोग दल-दल है, मनोहर है, दुस्तर है, मरण मुख है। इस कीचड़ में, इस दल-दल में फँसे हुए हीनात्म लोग तैर कर पार नहीं हो सकते।

[पालि] —जातक (हत्थिपाल जातक)

ते अन्धकरणे कामे बहुदुक्खे महाविसे।

कामभोग अन्धा बना देने वाले हैं, दुःखदायी है, महाविषैले है।

[पालि] —जातक (चुल्लसुक जातक)

काम-विनय

ते धीर अछत[1] बिकार हेतु जे रहत मनसिज[2] बस किए।

—तुलसीदास (पार्वती मंगल, १५)

१. अक्षत, विकलता-रहित। २. कामदेव।

भगवान् का आश्रय लेकर काम को जीतना उपासना-पक्ष है। अपने आप में स्थित होकर निवृत्ति का निरोध करना योगपक्ष है। विवेक से ही काम छोड़ देना सांख्यपक्ष है। वेदान्तपक्ष है अपने को अद्वितीय जानकर कामिता, काम, काम्य तीनों मिथ्या हैं—इसका साक्षात्कार कर लेना। यह काम की मृत्यु है।

—अखंडानंद सरस्वती (कर्मयोग, पृ० ३४८)

काम पर विजय प्राप्त करने का प्रमुख उपाय है सब स्त्रियों को मातृरूप में देखना और स्त्रियों जैसे दुर्गा, काली, भवानी का चिन्तन करना। स्त्री-मूर्ति में भगवान या गुरु का चिन्तन करने से मनुष्य शनैः शनैः सब स्त्रियों में भगवान के दर्शन करना सीखता है। उस अवस्था में पहुंचने पर मनुष्य निष्काम हो जाता है। इसीलिए महाशक्ति को रूप देते समय हमारे पूर्वजों ने स्त्री मूर्ति की कल्पना की है। व्यावहारिक जीवन में सब स्त्रियों को मां के रूप में सोचते-सोचते मन शनैः शनैः पवित्र हो जाता है।

—सुभाषचन्द्र वसु (पत्र श्री हरिचरण बागची को, १९२६ ई०)

कायरता

दोषभीतेरनारम्भस्तत् कापुरुषलक्षणम्।

विघ्न के भय से कोई काम न करना कायरता का लक्षण है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।५७)

वरमल्पबलं सारं न कुर्यान्मुण्डमण्डलीम्।
कुर्यादसारभंगो हि सारभंगमपि स्फुटम्॥

सेना चाहे थोड़ी ही हो, किन्तु उनके सैनिकों को पूर्ण निर्भीक तथा बहादुर होना चाहिए। केवल मुंड गिनाना उचित नहीं है क्योंकि कायरों के हिम्मत हार जाने पर वीर सैनिक भी हताश हो जाते हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।८९)

कायर मनुष्य कभी सदाचारी और नीतिमान हो ही नही सकता।

—महात्मा गांधी (मोहनमाला, ६६)

पशु-बल जिसके पास जितना अधिक होता है वह उतना ही अधिक कायर बन जाता है।

—महात्मा गांधी (सी० एफ० एन्ड्रयूज को पत्र २२-८-१९१९)

जो चूहे के शब्द से भी शंकित होते हैं, जो अपनी सांस से चौंक उठते हैं, उनके लिए उन्नति का कंटकित मार्ग नहीं है। महत्त्वाकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उनके लिए स्वप्न है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक)

भय जब स्वभावगत हो जाता है, तब कायरता या भीरुता कहलाता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृ०, १२५)

दुःख से डरना कायरता है।

—हरिकृष्ण प्रेमी (बन्धन, पृ० ३२)

कहत कौन कायर तुम्हें, बल-सायर! रण माहिं।
भभरि भाजिबो पीठ दै सब के बस को नाहिं॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, प्रथम शतक, पृ० ५०)

बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें रोज़ मरते ही देखा।

—अशफ़ाक उल्ला खाँ

आह्-ए-मरदां, न ऊह्-ए-ज़नां।
न पुरुषों जैसी 'आह', न औरतों जैसी 'ऊह'।

—फ़ारसी लोकोक्ति

कायर झूठो जीवणो, जाणै मन डरणो।
सूरां सांचो जीवणो, जे जाणै मरणो॥

कायर का जीना झूठा है जो केवल डरना जानता है। सच्चा जीवन वीरों का है जो मरना जानते हैं।

[राजस्थानी] —अज्ञात

पदं नधिपू जेसि ववरंबुनकु बंप।
वारि पोवु, गार्य भंग मगुनु।
पारुनट्टि वंदु पनिकिराईंदुनु॥

कायर को वीर का बाना पहनाकर रण में भेजने से कार्य-हानि ही होती है; वह मैदान से भाग खड़ा होता है। ऐसे भगोड़े सैनिक से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

[तेलुगु] —वेमना

कारण

यावच्छिरस्तावतो शिरोव्यथा।

जब तक सिर है तभी तक सिर की पीड़ा है।

—संस्कृत लोकोक्ति

Every why hath a wherefore.

प्रत्येक 'कथम्' (क्यों) के साथ एक 'कस्मात्' (किस कारण से) भी होता है।

—शेक्सपियर (मच एडो एबाउट नथिंग, २।२)

कारागार

जेल जाना गौरव की बात है। कोई भी जेल जाकर हम पर अहसान नही करता वह स्वयं कृतार्थ होता है।

—महात्मा गांधी (बंगाल के प्रतिनिधियों से भेंट में, २९-१२-१९२१)

मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से जेल को अत्यन्त उपयुक्त परीक्षण-शाला कह सकते हैं। वहाँ कोई व्यक्ति देर तक मुँह पर नक़ाब नहीं रख सकता। जल्दी या देर में उसका असली रूप प्रकट हो ही जाता है···जेल में मनुष्य के आन्तरिक गुण और अवगुण सात परदों को फाड़कर बाहर निकल आते हैं।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति (मैं इनका ऋणी हूँ, पृ० ११७)

परन्तु कभी-कभी ऐसा लगता है कि न जाने यहाँ कितने युगों से हूँ। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि यह मेरा अपना घर है; कारागार से बाहर की बात तो स्वप्नवत् प्रतीत होती है। ऐसा जान पड़ता है कि इस जगत् में यदि कुछ सत्य है तो केवल लोहे की सलाखें, गारद और जेल की पत्थर की दीवारें। वास्तव में यह भी अपने किस्म का एक राज्य है। कभी-कभी सोचता हूँ कि जिसने जेल नही देखी, उसने जगत् में कुछ नहीं देखा।

—सुभाषचन्द्र वसु (मांडले जेल से अनाथबंधु दत्त को पत्र, १९२६)

जेल में रहते-रहते आत्मनिष्ठ सत्य एक हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो भाव और स्मृति सत्य में परिणत हो गए हैं। मेरा भी ऐसा ही हाल है। भाव ही इस समय मेरे लिए सत्य है। इसका कारण भी स्पष्ट है—एकत्व-बोध में ही शांति है।

—सुभाषचन्द्र बसु (मांडले जेल से श्री अनाथबंधु दत्त को पत्र, १९२६)

कार्य

न च कश्चित् कृते कार्ये कर्तारं समवेक्षते।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत्॥

काम पूरा हो जाने पर कोई भी उसके करने वालें को नहीं देखता—हित पर ध्यान नहीं देता, अतः सभी कार्यों को अधूरे ही रखना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १३८।१११-१२)

नासम्यक्कृतकारी स्यादप्रमत्तः सदा भवेत्।
कण्टकोऽपि हि दुश्छिन्नो विकारं कुरुते चिरम्॥

किसी कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न किए विना न छोड़े और सदा सावधान रहे। शरीर में गड़ा हुआ काँटा भी यदि पूर्णरूप से निकाल न दिया जाए तो चिरकाल तक विकार उत्पन्न करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १४०।६०)

कृत्यं निर्वर्त्य विश्रान्त्यै धीरस्याबध्नतो मनः।
विधिर्विधत्ते दीर्घान्यकार्यभारसमर्पणम्॥

जब धीर व्यक्ति कर्त्तव्य पूर्ण कर विश्राम में मन लगाता है तभी विधाता उसको अन्य महान कार्य-भार अर्पित कर देता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१७९१)

आत्मकार्यं महाकार्यं परकार्यं न केवलम्।

आत्मकार्य भी महाकार्य है, केवल परकार्य नहीं।

—अज्ञात

काम, काम और काम ही हमारा जीवन सूत्र होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (गांधी खंड ४१, पृ० २८८)

जब काम बहुत है और समय कम है, तो मनुष्य क्या करे? धैर्य रखे, और जो ज़्यादा उपयोगी माने उसे पूरा करे और बाक़ी ईश्वर पर छोड़ दे। दूसरे रोज़ ज़िंदा होगा तो जो रह गया है उसे पूरा करेगा।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १८८)

जो काम अच्छी नीयत से किया जाता है, वह ईश्वरार्थ होता है।

—प्रेमचन्द (कर्मभूमि, पृ० ४०६)

काम का अन्दाज़ा यह है कि इस मुल्क में ऐसे कितने लोग हैं—जिनकी आँखों से आँसू बहते हैं, उनमें से कितने आँसू हमने पोंछे, कितने आँसू हमने कम किए। वह अन्दाज़ा है इस मुल्क की तरक्क़ी का, न कि इमारतें जो हम बनाएँ, या कोई शानदार बात जो हम करें।

—जवाहरलाल नेहरू (लालकिले के प्राचीर से, भाग १, पृ० ४६)

है आदमी, है काम; नहीं आदमी, नहीं काम।

—हिन्दी लोकोक्ति

यदि तुम्हारा लक्ष्य महान हो और तुम्हारा साधन सामान्य हो तो भी कार्य करो क्योंकि केवल कार्य के द्वारा ही तुम्हारे साधनों में वृद्धि हो सकती है।

—अरविन्द (विचारमाला और सूत्रावली)

बड़े क्षेत्रों पर आधिपत्य करो, लेकिन छोटे क्षेत्रों को विकसित करो।

—वर्जिल

हम सबके लिए कुछ न कुछ कार्य है ही—छोटा हो या बड़ा हो, हमारा काम हमारे पास ही है।

—डगलस मैलोस

Work, especially good work, becomes easy only when desire has learnt to discipline itself.

कार्य, विशेषत: अच्छा कार्य, तभी सरल हो पाता है जब इच्छा आत्मानुशासन सीख लेती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दि रिलीजन आफ़ मैन, पृ० २०१)

The action of men are the best interpreters of their thoughts.

मनुष्यों के कार्य उनके विचारों के सर्वोत्तम व्याख्याता हैं।

—जॉन लॉक

Blessed is he, who has found his work, let him ask no other blessedness.

भाग्यशाली है वह जिसे अपना कार्य मिल गया है। उसे अब किसी और भाग्यशालिता की माँग नहीं करनी चाहिए।

—कार्लाइल (पास्ट ऐंड प्रिज़ेंट, ३।११)

कार्यकर्ता

हमारे सभी कार्यकर्ता, चाहे वे किसी भी पद पर क्यों न हों, जनता के सेवक हैं और हमारा हर कार्य जनता की सेवा के लिए है। ऐसी हालत में भला यह कैसे हो सकता है कि हम अपनी किसी भी बुराई को दूर करने की अनिच्छा प्रकट करें?

—माओ-त्से-तुंग (माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण, पृ० १६५)

Mere literary work is useless. Workers are not produced like that. Virtues are not implanted by economic histories of India.

केवल साहित्यिक कृतियाँ व्यर्थ है। कार्यकर्ता उस प्रकार से निर्माण नहीं हो सकते, भारत के आर्थिक इतिहासों से सद्गुण नहीं जगाए जा सकते।

—लाला हरदयाल (श्री राना को पत्र)

कार्य-कारण

कारणेन विना कार्यं न च नामोपपद्यते।
कदा क इव खे केन दृष्टो लब्धः स्फुटो द्रुमः॥

कारण के बिना कार्य कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। पृथ्वी पर उगने स्पष्ट वृक्ष के समान क्या कभी किसी ने आकाश में भी वृक्ष देखा है?

—योगवासिष्ठ (निर्वाण प्रकरण, ५७।१३)

कारण बना है जब तलक, ना कार्य तब तक जायेगा।

—भोले बाबा (वेदांत छन्दावली, भाग २)

मानव के सभी कार्यों के कारणों में इन सात में से एक या अनेक होते हैं—संयोग, प्रकृति, विवशताएँ, आदत, तर्क, मनोभाव, इच्छा।

—अरस्तू (रेटोरिक, अध्याय १)

कार्य-कुशलता

दे० 'कर्म-कौशल'।

कार्यसिद्धि

अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् ।

काम में देरी न होना कार्य-सिद्धि का ही लक्षण है ।

—कालिदास (रघुवंश, १०।६)

आमुखापातिकल्याणं कार्यसिद्धि हि शंसति ।

कार्य के प्रारम्भ में होने वाला मंगल कार्यसिद्धि का सूचक होता है ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४)

पुरुषारथ पूरब करम, परमेश्वर परधान ।
तुलसी पैरत सरित ज्यों, सबहि काज अनुमान ।।

—तुलसी (दोहावली, ४६८)

काल

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।

इस लोक में जो सब लोगों के द्रष्टा गुप्तचरों के समान ये दिन बीत रहे है, वे न तो किसी के लिए कभी रुकते हैं और न कभी पलक मारते हैं ।

—ऋग्वेद (१०।१०।८)

कालो हि सर्वस्येश्वरः ।

काल सब विश्व का स्वामी है ।

—अथर्ववेद (१६।५३।८)

आयुः स्तम्बमिवासाद्य कालस्तामपि कृन्तति ।

आयु को ऋण के समान पाकर काल उसे काटता ही जा रहा है ।

—महोपनिषद् (३।३७)

कालोऽयं सर्वसंहारी तेनाक्रान्तं जगत्त्रयम् ।

यह काल सर्वसंहारी है । उससे तीनों लोक आक्रांत हैं ।

—महोपनिषद् (३।३८)

ध्रुवं ह्यकाले मरणं न विद्यते ।

निश्चय ही विना काल आए मरना असम्भव है ।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, २०।५१)

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते ।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ।।

जो रात बीत गई है, वह फिर नहीं लौटती, जैसे जल से भरे हुए समुद्र की ओर यमुना जाती ही है, उधर से लौटती नहीं ।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०५।१६)

न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते ।

काल भी काल का उल्लंघन नहीं कर सकता । काल कभी क्षीण नहीं होता ।

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, २५।६)

न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः ।
न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः ।।

काल का किसी के साथ बंधुत्व, मित्रता अथवा जाति-बिरादरी का सम्बन्ध नहीं है । उसे वश में करने का कोई उपाय नहीं है और उस पर किसी का पराक्रम नही चल सकता । कारणस्वरूप काल जीव के भी वश में नहीं है ।

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, २५।७)

कालकलंकितो लोकः ।

सब लोग काल से कलंकित हैं ।

—योगवासिष्ठ (१।२६।१०)

मन्वन्तरयुगेऽजस्त्रं संकल्पा भूतसम्प्लवा ।
चक्रवत् परिवर्तन्ते सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।

मन्वन्तर, युग, कल्प और प्रलय—ये निरन्तर चक्र की भाँति घूमते रहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है ।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, ३८, प्रक्षिप्त)

असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः ।

निःसन्देह काल की गति का उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है ।

—वेदव्यास (महाभारत, सौप्तिक पर्व, ८।१५१)

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधानि च ।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ।।

काल सभी विविध प्राणियों को खींचता है । कुरुश्रेष्ठ ! काल के लिए न तो कोई प्रिय है और न कोई द्वेष्य ।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्रीपर्व, ६।१४)

न कर्मणा लभ्यते चिन्तया वा
नाप्यस्ति दाता पुरुषस्य कश्चित्।
पर्याययोगाद् विहितं विधात्रा
कालेन सर्वं लभते मनुष्यः ॥

राजन् ! न तो कोई कर्म करने से नष्ट हुई वस्तु मिल सकती है, न चिन्ता से ही। कोई ऐसा दाता भी नहीं है जो मनुष्य को उसकी विनष्ट वस्तु दे दे। विधाता के विधानानुसार मनुष्य बारी-बारी से समय पर सब कुछ पा लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २५।५)

सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिः।

काल की गति अत्यन्त सूक्ष्म है।

—वेदव्यास (महाभारत, आश्रमवासिक पर्व, ३८।६)

नाकालतो म्रियते जायते वा
नाकालतो व्याहरते च बालः।
नाकालतो यौवनमभ्युपैति
नाकालतो रोहति बीजमुप्तम् ॥

बालक समय आए बिना न जन्म लेता है, न मरता है और न असमय में बोलता ही है। बिना समय के जवानी नहीं आती और बिना समय के बोया हुआ बीज भी नहीं उगता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २५।१२)

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ॥

धनंजय ! काल ही इन सबका मूल है, वह समस्त संसार का बीज है तथा काल ही अपनी इच्छानुसार सबको (संहार कर) स्वयं में धारण कर लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, मौसल पर्व, ८।३३-३४)

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतो वेगेन वालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥

जैसे स्रोत के वेग से बालू के कण जुड़ते और बिछुड़ते हैं, वैसे ही काल के प्रवाह में शरीरधारी मिलते और बिछुड़ते हैं।

—भागवत (६।१५।३)

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया।
आरुरुक्षत्युपानह् वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥

सचमुच यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि काल की अमिट गति से कभी मुकुट-सेवित शिर पर जूता चढ़ना चाहता है।

—भागवत (१०।६८।२४)

कालपक्वमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु त्वद्विधः।

इस सम्पूर्ण जगत को काल ही पका देता है। तुम्हारे जैसे लोग तो केवल निमित्तमात्र होते है।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व, ४।६१)

कः केन हन्यते जन्तुस्तथा कः केन रक्ष्यते।
हनिष्यति सदा कालस्तथा रक्षति दुःखतः ॥
अहं करोमि कर्त्ताहं हर्त्ताहं पालकोऽप्यहम्।
यो वदेच्चेदृशं वाक्यं स विनश्यति कालतः ॥

कौन प्राणी किसके द्वारा मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है ? सदा काल ही सबको मारता है और वही दुख से सबकी रक्षा करता है। "मैं करता हूं, मैं कर्ता-संहर्ता हूँ-पालक हूँ", जो ऐसी बात कहता है, वह काल से ही विनाश को प्राप्त होता है।

—गर्ग संहिता (३५।१४-१५)

निम्नस्थलोत्पादको हि कालः।

समय ही पतन का कारण है।

—भास (प्रतिमानाटक, ७।३ के पश्चात्)

जाग्रततोऽपि हि बलवत्तरः कृतान्तः।

काल तो उपाय करने वाले से भी अधिक बलवान होता है।

—भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १।६ के पश्चात्)

यावन्न हिंस्रः समुपैति कालः
शमाय तावत्कुरु सौम्य बुद्धिम्।
सर्वास्ववस्थास्विह वर्तमानं
सर्वाभिसारेण निहन्ति मृत्युः ॥

हे सौम्य, जब तक घातक काल समीप नहीं आता, तब तक बुद्धि को शांति में लगाओ क्योंकि मृत्यु इस संसार में सब अवस्थाओं में रहने वाले की सब प्रकार से हत्या करती है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२२)

नित्यं हरति कालो हि स्थाविर्यं न प्रतीक्षते।

काल नित्य ही लोगों का हरण कर रहा है, बुढ़ापे की प्रतीक्षा नहीं करता।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १५।६२)

लंध्यते न खलु कालनियोगः।

काल की आज्ञा अनुल्लंघनीय है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ६।१३)

पातयति महापुरुषान्सममेव बहूननादरेणैव।
परिवर्तनमानः एकः कालः शैलानिवानन्तः॥

निरन्तर परिवर्तित होता हुआ यह काल अनेक महा-पुरुषों को भी एक साथ अनादरपूर्वक गिरा देता है जैसे बड़े-बड़े पर्वतों को शेषनाग।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १५०)

विदन्ति जन्तवो हन्त पच्यमानस्य नात्मनः।
अवस्थां कालसूदेन कृतां तां तां क्षणे क्षणे॥

हाय! कालरूप पाचक हर क्षण प्राणियों के शरीरों में अवस्था-परिवर्तन करता रहता है फिर भी उनकी समझ में कुछ नहीं आता।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३८५)

गच्छन् पुनरेवमेव कालः शोकोर्मीनुदितान् मृदू करोति।

यों ही व्यतीत होता काल शोक-तरंगों को शान्त कर देता है।

—अभिनन्द (रामचरित, १४।३४)

अनियतकालाः प्रवृत्तयो विप्लवन्ते।

समय का नियमित विभाग न करके किये जाने वाले कार्य अस्तव्यस्त हो जाते हैं।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१०)

सर्वः कालवशेन नश्यति नरः को वा परित्रायते।

काल के वश होकर सब कुछ नष्ट हो जाता है, कौन रक्षा कर पाता है?

—बल्लाल कवि (भोजप्रबंध, २८)

न लक्ष्यते कालगतिः सवेगचक्रभ्रमभ्रान्ति-विधायिनीयम्।
ह्यो यः शिशु सस्फुटयौवनोऽद्य प्रातर्जराजीर्णतनुः॥

वेग के साथ घूमती हुई, चक्र का भ्रम उत्पन्न करने वाली काल-गति देखी नहीं जाती। कल जो शिशु था, आज वही पूर्ण युवा है और कल प्रातः वही जरा-जीर्ण शरीर वाला हो जाएगा।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ४।७)

कालं जेतुमुपायौ द्वौ कलिकल्मषसंप्लुतम्।
कथा वा निषधेशस्य काशी वा विश्वपावनी॥

कलि-कल्मष से युक्त काल को जीतने के दो उपाय हैं—निषधेश्वर नल की कथा अथवा विश्वपावनी काशी।

— नीलकंठ (नलचरित्र नाटक, १।११)

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्।
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बानना।
उद्वृत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः।
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः॥

वह सुन्दर नगरी, वह महान राजा, वह उसका सामंत-चक्र, उसके समीप वह विद्वन्मण्डली, वे चन्द्रमुखी नारियाँ, उच्छृंखल राजपुत्रों का वह समूह, वे बन्दीगण, वे कथाएँ—यह सब जिसके वश होकर स्मृति मात्र शेष रह गया, उस काल को नमस्कार है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ३६)

स च नृपतिस्ते सचिवास्ताः प्रमदास्तानि काननवनानि।
स च ते च ताश्च तानि च कृतान्त-दृष्टानि नष्टानि॥

वह राजा, वे मंत्री, वे स्त्रियाँ तथा वे कानन और वन, ये सब काल द्वारा दृष्टि-निक्षेप मात्र से नष्ट हो गए।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।२७०)

रामस्य व्रजनं बलेर्नियमनं पाण्डोःसुतानां वनं
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपतेः राज्यात् परिभ्रंशनम्।
नाट्याचार्यकमर्जुनस्य पतनं संचिन्त्य लंकेश्वरे
सर्वं कालवशाज्जनोऽत्र सहते कः कं परित्रायते॥

राम का वनवास, बलि का बन्धन, पाण्डवों का वनवास, वृष्णियों का विनाश, राजा नल का राज्य से निकलना, अर्जुन जैसे वीर का नृत्यसंगीत, लंकेश्वर रावण का पतन, यह सब कालवश मनुष्य को सहन करना पड़ता है। कौन किसकी रक्षा करता है?

—अज्ञात

न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ॥

काल तलवार लेकर किसी का सिर नही काटता । काल का बल इतना ही है कि वह विपरीत अर्थ का दर्शन कराता है ।

—अज्ञात

कालो जगद्भक्षकः ।

काल जगत्-भक्षक है ।

—अज्ञात

कालो हि दुरतिक्रमः ।

काल अनुल्लंघनीय है ।

—अज्ञात

कालस्य कुटिला गतिः ।

काल की गति कुटिल होती है ।

—अज्ञात

अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ।

अर्चित गुणों वाले गुणी जन भी कालवश लघुता को प्राप्त कर जाते हैं ।

[प्राकृत] —हालसातवाहन (गाथा सप्तशती, ५।२९)

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
ना जाणौ कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेश ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २१)

सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद ।
काल खड़ा सिर ऊपरै, ज्यूं तोरणि आया नींद ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७२)

काची काया मन अजिर, थिर थिर काम करंत ।
ज्यूं ज्यूं नर निधड़क फिरै, त्यूं त्यूं काल काल हसंत ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७६)

इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावन घरि दिया न बाती ।
लंका सा कोट समंद सी खाई, ता रावन की खबरि न पाई ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ११६)

कालि करंता अबहि करु अब करता सुइ ताल ।
पाछै कछू न होइगा जो सिर पर आवै काल ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, परिशिष्ट, पृ० २५१)

काल बली तैं सब जग काँप्यौ ब्रह्मादिक हूं रोए ।
—सूरदास (सूरसागर १।५१)

सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १९८)

जिन्ह भूपनि जग जीति, बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो ।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें, तू गिनती कब आयो ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद २००)

तुलसी समयहिं सब बड़ो बूझत[1] कहुँ[2] कोउ कोउ[3] ।
—तुलसीदास (दोहावली, ४४५)

गहे फिरै काल फंद मारैगो छिनक में ।
—संत केशवदास

कारज धीरै होतु है, काहे कोत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै, केतक सींचौ नीर ॥
—वृन्द (वृन्द सतसई, १७८)

जाने कहावत है जग मैं जन जाने नहीं जमफाँस जरी को ।
आपुन काल के जाल पर्‍यो अरु चाहत और की राजसिरी को ।
—देव (देवशतक)

सब कोऊ ऐसे कहैं काटत है हम काल ।
काल नास सब कौ करै बृद्ध तरुन अरु बाल ॥
—सुन्दरदास (आत्म अचलाष्टक, ८)

साध संग और राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै ।
—दरिया महाराज

बहुत गई थोरी रही, "नारायण" अब चेत ।
काल चिरैया चुग रही, निस दिन आयू खेत ॥
—नारायण स्वामी

इहि काल बली सौं बली नहिं कोय ।
—भैया भगवतीदास (अनित्य पचीसिका, ब्रह्म विलास)

बैद धनंतर मरि गया, पलटू अमर न कोय ।
सुर नर मुनि जोगी जती, सबै काल बस होय ॥
—पलटू साहब

१. जानते हैं । २. कहीं । ३. कोई-कोई ही ।

विना किये अपराध भी रिपु बनता है काल।
गाली देती जीभ है मुँह बनता है लाल ॥
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(हरिऔध-सतसई)

काल हम सबको अपने मुख में रखे है, और नचा रहा है। जीवन डोरी कच्चे सूत से भी कच्ची है, थोड़े दिन मे दुनिया से मिट जाना है तव कर्त्तव्य से क्यों भ्रष्ट हों, क्यों काम, क्रोध में जीवन गँवा दें ?
—महात्मा गांधी (गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ७१)

निर्मोह काल के काले
पट पर कुछ अस्फुट लेखा।
सब लिखी पड़ी रह जाती
सुख-दुखमय जीवन रेखा।
—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ४५)

ख़ाली न काल का है निषंग।
—जयशंकर प्रसाद (लहर, अशोक की चिन्ता)

है विश्व में सबसे बली सर्वान्तकारी काल ही,
होता अहो अपना पराया काल के वश हाल ही।
— मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० ७९)

हा दैव ! अब वे दिन कहाँ हैं और वे रातें कहाँ ?
हैं काल की घातें कि कल की आज हैं बातें कहाँ ?
क्या थे तथा अब क्या हुए हम जानता बस काल है,
भगवान जानें, काल की कैसी निराली चाल है !!!
—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० ८८)

पीठ पर अतीत और पेट में भविष्य, मेरा नाम काल है।
—रामधारीसिंह 'दिनकर'
(साहित्यमुखी, पृ० १६)

चोट कड़ी है काल प्रबल की
उसकी मुसकानों से हलकी
राजमहल कितने सपनों का पल में नित्य ढहा रहता है।
—हरिवंशराय बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० ४५)

काल नहीं वीतता इस देह की आयु भर बीतती है।
—लक्ष्मीनारायण मिश्र
(जगद्गुरु, अंक द्वितीय)

काल की गति का तीव्र प्रवाह,
वहे जाते हैं हम सब आह !
—बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत सन्त, ४।३८)

पुरुष कुछ नहीं, समय बलवान
समय के हाथ फलाफल दान।
रत्न बन गए धूल के ढेर,
न क्या कर सका समय का फेर ॥
—बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत सन्त, ४।४०)

उस अजन्मे अमर्त्य महाकाल को
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से
योजित या विभाजित किया जा सकता।
उस महानियम के निकट
हम केवल कर्म के क्षण हैं।
—नरेश मेहता (संशय की एक रात, पृ० ५६)

यदि फूल सूखा आज तो, मुरझायेंगी कल को कली।
सब काल के हैं गाल में, यह काल है सबसे बली ॥
—भोलेबाबा (वेदान्त छंदावली, भाग २)

जमाना ख़ुद जुज़ीं कारे न दानद
कि अन्दोहे देहद जाने सितानद।
ज़माना इस कार्य के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता है कि ग़म देता है और प्राणों को कष्ट देता है।
[फ़ारसी] —निज़ामी

आमार कीर्तिरे आमि करि ना विश्वास।
जानि, कालसिन्धु तारे
नियत तरंगघाते
दिने दिने दिबे लुप्त करि।
अपनी कीर्ति का मैं विश्वास नहीं करता। मैं जानता हूँ कि कालसिन्धु अपनी प्रतिदिन की नियमित तरंगों की मार से उसे लुप्त कर देगा।
[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, ६२)

सुबह और शाम के आने और जाने ने छोटे को जवान और बूढ़े को नष्ट कर दिया।
—सलल्ता उल अबदी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ६१)

काल ने अब मुझको रुलाया। परन्तु मुझको असंख्य बार काल ने मनभावनी वस्तुओं के साथ हँसाया है।

—हिसान बिन मुअल्ला (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० १०४)

Time, which is the authnrs.

समय, जो रचयिताओं का भी रचयिता है।

—फ्रांसिस बेकन (एडवांसमेंट आफ़ लर्निंग ४।१२)

He said, 'What's time? Leave New for dogs and apes! Man has forever'.

उसने कहा, "समय क्या है? वर्तमान को कुत्तों और बन्दरों के लिए छोड़ो मनुष्य के पास अनन्त काल है।"

—रावर्ट ब्राउनिंग (ए ग्रामेरियन्स फ्यूनरल)

काला

कारे काम, राम, जलधर जल बरसन वारे।
कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे॥

—बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

And I am black, but O! my soul is white.

मैं काला हूँ परन्तु अरे! मेरी आत्मा तो श्वेत है।

—विलियम ब्लेक (सांग्स आफ़ इन्नोसेंस, दि लिटिल ब्लेक ब्वाय)

कालिदास

दे० 'कालिदास और शेक्सपियर' भी।

पुरा कवीनां गणना-प्रसंगे
कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत् तुल्यकवेरभावा-
दनामिका सार्थवती बभूव॥

पहले कवियों की गणना करते समय छोटी अँगुली पर कालिदास का नाम पड़ा। तब से आज तक भी उसके समान कवि न होने से दूसरी अंगुली का 'अनामिका' नाम सार्थक हो गया।

—अज्ञात

कालिदास-गिरा सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

कालिदास की वाणी के अभिप्राय को कालिदास, सरस्वती और ब्रह्मा ही जान सके हैं, मेरे समान अन्य लोग नहीं।

—अज्ञात

उपमा कालिदासस्य।

कालिदास का उपमा-कौशल अद्भुत है।

—अज्ञात

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

काव्यों में नाटक सुन्दर है, उसमें भी शकुन्तला नाटक, उसमें भी चौथा अंक तथा वहाँ भी श्लोक-चतुष्टय।

—अज्ञात

चिरकाल रसाल ही रहा,
जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा,
जय हो उस कालिदास की—
कविता-केलि-कला-विलास की!

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, दशम सर्ग)

विश्वेर विरही यत सकलेर शोक
राखियाछे आपन आँधार स्तरे स्तरे
सघन संगीत माझे पुंजीभूत क' रे।

विश्व में जितने भी विरही है, उन सब के शोक को तुम्हारे मेघ-मन्द श्लोक ने सघन संगीत में पुंजीभूत करके अपनी अंधेरी तहों में छिपा रखा है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोतरशती, मेघदूत)

क्या तू वर्ष के प्रारम्भ के पुष्पों को, वर्ष के पिछले समय के फलों को, क्या तू उसको जो मनोहर है और मोहक है और तुष्टि व पुष्टिप्रद है, क्या तू इस सब को तथा आकाश व पृथ्वी को एक नाम द्वारा ग्रहण करना चाहता है? मैं तुझको 'शकुन्तला'[1] का नाम वतलाता हूँ और वस इसमें सब कहा गया है।

—गेटे (कालिदासकृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के जर्मन अनुवाद को पढ़ने पर प्रशंसा का उद्गार)

१. अभिज्ञानशाकुन्तल।

कालिदास और शेक्सपियर

शेक्सपियर को मानव-चरित्र के चमत्कार दिखाने में अधिक कौशल है और कालिदास को प्रकृति के वर्णन में। शेक्सपियर को मानव-स्वभाव के भीतर जो पहुँच थी वह कालिदास को प्रकृति के चमत्कारों में थी। इसीलिए शेक्सपियर का साहित्य गंभीर है और कालिदास का रंगीन।

—प्रेमचंद (विविध प्रसंग, पृ० २२०)

कावेरी नदी

सारि वे डलिन ई कावेरिनि चूडरे
वारु वीरनुचु चूडक तानव्वारिगाभीष्टमुल नोसगुचु
दूरमुन नोकावुन गर्जनभीकरमोकतावुन निडुकरूणतो
निरतमुग नोक तावुन नडुचुचु
वर कावेरि कन्यकामणि
वेडुकगा कोकिललु म्रोयगनु
वेडुचु रंग शुनि जूचि मरि ई रेडु
जगमुलकु जीवनमैन
मुडू रेंडु नदि नाथुनि जूड
राज राजेश्वरि यनि पोगडुचु
चुचि सुममुल वरामरगणमुलु
पूजलिरनगडल सेयग त्यागराज सन्नतुरौल मुद्दुग ॥

देखो, कावेरी नदी बल खाती कैसे बढ़-बढ़कर बहती जा रही है। रास्ते में अपना-पराया सारा भेद-भाव छोड़कर सब को सुख प्रदान करती, कहीं गरज-गरजकर चलती, कहीं बरस-बरसकर बहती, कहीं कोकिल के स्वर में स्वर मिलाती, कहीं रंगनाथ का गुणगान करती है और कही पंचनदीश्वर को खोजते हुए आगे बढ़ती और राजेश्वरी की तरह ठाठ से चलने वाली इस नदी-सुन्दरी की शोभा देखते ही बनती है।

[तेलुगु] —त्यागराज

काव्य

दे० 'कवि', 'कवि और आलोचक', 'कवि और काव्य', 'कवि और श्रोता', 'कवि-कल्पना', 'कवि-समय', 'काव्य और कहानी', 'काव्य पर दोषारोपण' भी।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ॥

सत्काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में प्रवीणता, कलाओं में प्रवीणता, आनन्द व यश प्रदान करती है।

—भामह (काव्यालंकार, १।२)

विलक्षणा हि काव्येन दुःसुतमेव निन्द्यते।

लक्षण-रहित काव्य से कुपुत्र के समान ही निन्दा होती है।

—भामह (काव्यालंकार, १।११)

शब्दार्थौ सहितं काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।

शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते है और उसके दो भेद होते हैं गद्य और पद्य।

—भामह (काव्यालंकार, १।१६)

स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुंजते।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटुभेषजम् ॥

काव्य के मधुर रस में मिलाकर शास्त्र का भी उपयोग होता है। पहले मधु को चखने वाले कड़वी दवा भी पी लेते है।

—भामह (काव्यालंकार, ५।३)

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्य दुष्टं कथंचन।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥

काव्य में अत्यन्त अल्प दोष की भी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि अत्यन्त मनोहर शरीर भी केवल एक श्वेत कुष्ठ चिह्न से श्रीहीन हो जाता है।

—दण्डी (काव्यादर्श, १।७)

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥

नवीन विषय, ग्राम्यदोष का अभाव, स्वाभाविक सुन्दर जाति (वर्णन-शैली), सरल श्लेष, स्फुट रस प्रतीति, गम्भीर पदावली इन सबका किसी काव्य में एकत्र प्रयोग दुर्लभ होता है।

—बाणभट्ट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १३७)

काव्यं ग्राह्यमलंकारात्।

काव्य अलंकार से उपादेय होता है।

—वामन (काव्यालंकारसूत्र, १।१।१)

प्रतिष्ठां काव्यबंधस्य यशसः सरणिं विदुः।

काव्य-रचना की प्रतिष्ठा यश की प्राप्ति का मार्ग कही जाती है।

—वामन (काव्यालंकार सूत्र, १।१।५ की वृत्ति के अन्तर्गत श्लोक १)

रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्टपदरचनारीतिः।
विशेषो गुणात्मा।

काव्य की आत्मा रीति है। विशिष्ट पदरचना रीति कहलाती है। विशेष गुणस्वरूप है।

—वामन (काव्यालंकारसूत्र, १।२।६-८)

लोको विद्या प्रकीर्णं च काव्यांगानि।

लोक[1], विद्या[2] और प्रकीर्ण[3] काव्य के अंग हैं।

—वामन (काव्यालंकारसूत्र, १।३।१)

शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिचणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तर-प्रवाह्लिकादिकं च वाक्-केलिः अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलंकुर्वन्ति।

शब्द और अर्थ तेरे शरीर हैं। अपभ्रंश भाषा जंघा है। पिशाच भाषा चरण है और मिश्र भाषा वक्षःस्थल है। तू सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी है। तेरी वाणी उत्कृष्ट है। रस तेरी आत्मा है। छन्द तेरे रोम हैं। प्रश्नोत्तर, पहेली, समस्या आदि तेरे वाग्विनोद हैं। और अनुप्रास, उपमा आदि तुझे अलंकृत करते हैं।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। तृतीय अध्याय)

गुणवदलंकृतं च वाक्यमेव काव्यम्।

गुणों और अलंकारों से युक्त वाक्य का नाम काव्य है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।६)

---

१. स्थावर—जंगमात्मक लोक का व्यवहार। २. समस्त विद्याएं। ३. काव्य का ज्ञान, काव्यज्ञ-सेवा, पद-निर्वाचन-दक्षता, प्रतिभा तथा उद्योग।

नासत्यं नाम किंचन काव्ये यस्तु स्तुत्येष्वर्थवादः।
स न परं कविकर्मणि श्रुतौ च शास्त्रे च लोके च॥

काव्यों में वर्णित व्यक्ति या विषय के प्रति जो अर्थवाद या अतिशयोक्ति की जाती है, वह असत्य नहीं है। इस प्रकार के अर्थवाद-पूर्ण वर्णन तो वेदों में, शास्त्रों में और लोक में भी पाये जाते है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।६)

या साधूनिव साधुवादमुखरान् मात्सर्यमूकानपि,
प्रोच्चैर्नो कुरुते सतां मतिमतां दृष्टिर्न सा वास्तवी।
या याताः श्रुतिगोचरं च सहसा हर्षोल्लसत्कंधरा—
स्तिर्यंचोऽपि न मुक्तशष्पकवलारताः किं कवीनां गिरः॥

बुद्धिमान महापुरुषों का वह चिन्तन यथार्थ नहीं है, जो मत्सरवश मूक बने हुओं को भी सत्पुरुषों के समान ही साधुवाद देने के लिए विवश न कर दे, तथा कवियों की वह वाणी भी वास्तविक नहीं है, जो कानों में प्रविष्ट होने पर पशुओं को भी घास चरने से रोक न दे।

—आनन्दवर्धन (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १६५)

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

नियति के द्वारा निर्धारित नियमों से रहित, आनन्द-मात्र-स्वभावा, अन्य किसी के अधीन न रहने वाली, तथा नौ रसों से मनोहारिणी, काव्य-सृष्टि की रचना करने वाली, कवि की भारती की जय हो।

—मम्मट (काव्यप्रकाश, १।१)

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

काव्य का प्रयोजन यश-प्राप्ति, अर्थ-प्राप्ति, व्यवहार-ज्ञान, अशिव का नाश, तत्काल परम आनन्द की प्राप्ति और स्त्री के समान उपदेश देना है।

—मम्मट (काव्यप्रकाश, १।२)

शक्तिर्निपुणता लोक-शास्त्र-काव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

शक्ति तथा लोक, शास्त्र, काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता और काव्यज्ञ की शिक्षा के अनुसार अभ्यास, यह काव्यहेतु है।

—मम्मट (काव्यप्रकाश, १।३)

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।

दोषों से रहित, गुण-युक्त और कहीं-कहीं अलंकार-रहित शब्द और अर्थ काव्य है ।

—मम्मट (काव्यप्रकाश, १।४)

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः ।
काव्यबंधोऽभिजातानां, हृदयाह्लादकारकः ॥
व्यवहारपरिस्पन्दसौन्दर्यं व्यवहारिभिः ।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥

—(वक्रोक्तिजीवित १।३-४)

काव्य-बंध उच्चकुल में उत्पन्नों के हृदयों को आह्लादित करने वाला और सुकुमार शैली से कहा हुआ धर्मादि की सिद्धि का मार्ग है । लोक-व्यवहार के अनुष्ठान का सौंदर्य जो नूतन औचित्य से युक्त है *सामान्यजनों को सत्काव्यों के* परिज्ञान से ही प्राप्त होता है ।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।३-४)

कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् ।
आह्लाद्यामृतवत् काव्यमविवेकगदापहम् ॥

शास्त्र कटु औषधि के समान अविद्यारूप व्याधि का नाश करता है । काव्य आनन्ददायक अमृत के समान अज्ञान रूप रोग का नाश करता है ।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।५ की वृत्ति में उद्धृत)

शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि ।
अर्थः सहृदयाह्लादकारि स्वस्पन्दसुन्दरः ॥

काव्य में शब्द का अर्थ है अन्य (पर्यायवाची शब्दों आदि) के रहते हुए भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक शब्द और 'अर्थ' का अर्थ है सहृदयों को आनन्दित करने वाला अपने स्वभाव से सुन्दर अर्थ ।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।९)

कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् ।
आह्लाद्यामृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ॥

शास्त्र तो कटु औषधि के समान अविद्या रूप व्याधि का नाशक होता है परन्तु काव्य आह्लादक अमृत के समान अविवेक रूप रोग का विनाशक होता है ।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।७ श्लोक)

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी ॥

वक्र कवि-कर्म से शोभित और उसको संभालने वालों को आह्लादकारी बन्ध[1] में विशेष रूप से अवस्थित तथा सहित भाव से युक्त शब्द और अर्थ 'काव्य' होते हैं ।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।७ कारिका)

भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धं जगत् त्वां विना ।

हे भाई सत्कवि-कर्म ! तुम्हारी सैकड़ों स्तुतियों से क्या प्रशंसा करें, यह जगत् तुम्हारे बिना अन्धा है ।

—कल्हण (वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि, १८८)

वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

रसात्मक वाक्य ही 'काव्य' है ।

—विश्वनाथ कविराज (साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद)

अर्थादि-पर्याकलनं विनाऽपि प्रह्लादयन्ते सुकवेर्वचांसि ।
विनावगाहादपि दृष्टिमात्रान्मनः पुनन्त्येवहि पुण्यनद्यः ॥

सुकवि के वचन अर्थादि का विचार किए बिना ही *आनन्दमग्न कर देते हैं, पुण्यमयी नदियाँ स्नान के* बिना ही *दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देती हैं ।*

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, १।११)

तावत् पदानि जायन्ते निर्दोषाणि पृथक् पृथक् ।
यावत् स्वरसनासूच्या तानि प्रथ्नाति नो कविः ॥

अलग-अलग बिखरे हुए शब्द तभी तक निर्दोष रह पाते हैं जब तक कवि उन्हें अपनी जिह्वा रूपी सुई से गूंथ नहीं देता (अर्थात् काव्य का सर्वथा निर्दोष होना असंभव है) ।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, १।१२)

सुकवे शब्दःसौभाग्यं सत्कविर्वेत्तिनापरः ।
बन्ध्या न हि विजानाति परां दोहद-संपदम् ॥

जिस प्रकार गर्भिणी की अवस्था को बाँझ नहीं जानती है, उसी प्रकार उत्तम कवि के शब्द-सौष्ठव को सत्कवि ही जानता है, दूसरा नहीं ।

—बल्लाल (भोजप्रबंध, ८०)

---

१. वाक्यविन्यास ।

कथासु ये लब्धरसाः कवीनां ते नानुरज्यन्ति कथान्तरेषु।

जो कवियों के काव्यों का आनन्द लेते हैं, वे अन्य विषयों में अनुरक्त नहीं होते।

—बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।१७)

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो।
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः।
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥

चोर कवि[1] जिसका केश-समूह है, मयूर कवि जिसका कर्ण-भूषण है, भास कवि जिसका हास्य है, कविकुलगुरु कालिदास जिसका विलास है, हर्ष कवि जिसके हृदय में वास करने वाला हर्ष है और बाण कवि जिसके हृदय में वास करने वाला कामदेव है, ऐसी कविता रूपी सुन्दरी किसके कौतुक का विषय नहीं होगी ?

—प्रसन्नराघव (१।२२)

काव्यकर्मणि कवेः समाधिः परं व्याप्रियते।

कवि को कविता करने में एकाग्रता की परम आवश्यकता है।

—श्यामदेव (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा १। चतुर्थ अध्याय में उद्धृत मत, १।४)

चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
मानन्दिसर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम्।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपानमिव वक्त्रविवर्त्ति राहोः॥

चित्त को प्रसन्न करने वाला, देवताओं को भी आनन्द देने वाला, सर्वरस-सम्पन्न तथा प्रसादादि गुणों से युक्त काव्य भी खल-हृदय में उसी प्रकार प्रतिष्ठा नहीं पाता जिस प्रकार राहु के मुख में पहुँचा हुआ भी अमृत उसके हृदय में नहीं पहुँचता।

—हरिश्चन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १६१)

किं तेन काव्यमधुना प्लाविता रसनिर्झरः।
जडात्मानोऽपि नो यस्य भवन्त्यंकुरितान्तराः॥

उस काव्य-मधु से क्या लाभ जिसकी रस-निर्झरिणी से प्लावित होकर जडात्मा (मूर्ख अथवा असहृदय) भी अंकुरित अन्तर वाला (सहृदय) न बन जाय? रस-निर्झरों (जल-प्रवाह) से सिंचित होकर तो जड़ात्मा वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते हैं।

—कल्लट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १३६)

न पुष्यति मनोरथं कमिव काव्यचिन्तामणिः।

काव्यरूपी चिन्तामणि से कौन सा मनोरथ पूर्ण नहीं होता ?

—भर्तृ सारस्वत (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १६०)

ते वंद्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः॥

वे ही वन्दनीय हैं, वे ही महात्मा हैं और उन्हीं का यश लोक में स्थायी है, जिन्होंने काव्य-रचना की अथवा जो काव्यों में वर्णित किये गये हैं।

—भट्ट त्रिविक्रम (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १४६)

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

कवि के उस काव्य से क्या और धनुर्धारी के उस बाण से क्या जो दूसरे के हृदय में लगकर सिर को घुमा न दे।

—कल्लट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १३४)

बद्धा यदर्पणरसेन विमर्दपूर्व-
मर्थान् कथं झटिति तान्प्रकृतान्न दधुः।
चौरा इवातिमृदवो महतां कवीना-
मर्थान्तराण्यपि हठाद् वितरन्ति शब्दाः॥

चोर चोरी किया हुआ धन दे दे, इस उद्देश्य से बाँधकर मर्दित करने पर जिस प्रकार वह शीघ्र ही धन दे देता है और मृदु होने पर अन्य चोरियों का धन भी लौटा देता है, उसी प्रकार महाकवि के शब्द वाच्यार्थ तो दे ही देते हैं, साथ ही मृदु पदावली का मर्दन करने पर दूसरे अर्थ (अर्थात् व्यंग्यार्थ) भी मिल जाते हैं।

—वल्लभदेव (सुभाषितावलि, १६२)

---

१. एक प्राचीन संस्कृत कवि।

तत् किं काव्यमनल्पपीतमधुवत् कुर्यान्न यद् हृद्गतं,
मात्सर्यावृत्तचेत्तसां रसवशादप्युद्गति लोमसु।
कम्पं मूर्ध्नि कपोलयुग्ममरुणं वाष्पाविले लोचने,
अध्यारोपितवस्तुकीर्तनपरं वाचः करालम्बनम् ॥

वह काव्य कैसा जो पर्याप्त मात्रा में पान की गयी मदिरा के समान हृदय में पहुँचते ही मत्सरग्रस्त पुरुषों को भी रस के द्वारा शरीर में रोमांच, शिर में कम्पन, कपोलों पर लालिमा, नेत्रों में अश्रु, वाणी में काव्य-वस्तु का कीर्तन तथा साधुवाद के रूप में हाथों का प्रसार न उत्पन्न कर दे ?

—वल्लभदेव (सुभाषितावलि, १६३)

किं तेन किल काव्येन मृद्यमानस्य यस्य ताः।
उदधेरिव नायान्ति रसामृतपरम्पराः ॥

उस काव्य से क्या लाभ जिसकी आवृत्ति करने पर समुद्र-मंथन से एक के बाद एक उत्तम रत्न की प्राप्ति की रसामृत-परम्परा प्राप्त न हो ?

—जयमाधव (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १३३)

सर्वंकषोऽपि कालः तिरयति सूक्तानि न कवीनाम् ॥

सब कुछ नष्ट करने वाला काल भी कवियों की सूक्तियों को नष्ट नहीं करता।

—भगदत्त जल्हण (सूक्तिमुक्तावली)

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥

विद्वान लोग ईर्ष्या से ग्रस्त है। धनी लोग गर्व से दूषित हैं। अन्य लोग अज्ञानी है। अतः श्रेष्ठ काव्य शरीर में ही सूख जाता है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, २)

अविदितगुणापि सुकवेर्भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।

गुण अज्ञात होने पर भी सत्कवि का कथन कर्ण-कुहरों में मधु-धारा प्रवाहित कर देता है।

—सुबन्धु

इत्थं कविकुटुम्बस्य वचांसि विचिनोति यः।
अनिद्धवचनस्यापि तस्य वश्या सरस्वती ॥

जो व्यक्ति कवि-समूह के वचनों को चुनता है, वह अधिक पढ़ा हुआ न हो तो भी सरस्वती उसके अधीन रहती है।

—अज्ञात

औजस्यं व्यवहाराणाम् आर्जवं परमं धियाम्।
स्वातन्त्र्यमपि तन्त्रेषु सूते काव्यपरिश्रमः ॥

काव्य में परिश्रम, व्यवहार में सौम्यता, बुद्धि में परम सरलता तथा उचित कार्यों में स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

—अज्ञात

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ॥

जिस कवितारूपी रमणी के 'भास' तो हास है और कविकल-गुरु कालिदास विलास हैं, वह किनके हृदय में आनन्द उत्पन्न नहीं करेगी ?

—अज्ञात

वचः स्वादु सतां लेह्यं लेशस्वाद्वपि कौतुकात्।
बालस्त्रीहीनजातीनां काव्यं याति मुखान्मुखम् ॥

अन्यान्य काव्य-गुणों के उत्कर्ष से रहित अल्प-मनोहर काव्य भी यदि सरल और श्रुति-मधुर हो, तो उसे सज्जन सुनते है और कौतुकवश बालकों, स्त्रियों, और हीन जातियों में जाकर दूर-दूर तक फैल जाता है।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

गीतसूक्तिरतिक्रान्ते स्तोता देशान्तरस्थिते।
प्रत्यक्षे तु कवौ लोकः सावज्ञा सुमहत्यपि ॥

कवि के मर जाने पर अथवा उसकी रचना के आलोचक के दूरदेश-निवासी होने पर ही प्रशंसा होती है। परन्तु, कवि के प्रत्यक्ष विद्यमान रहते हुए उसकी रचना की प्रशंसा नहीं, प्रत्युत अवज्ञा ही होती है।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

सोऽयं भणितिवैचित्र्यात्समस्तो वस्तुविस्तरः।

काव्य में समस्त अर्थ-विस्तार उक्ति की विचित्रता से विविध रूप धारण करता है।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

यांस्तर्ककर्कशानर्थान्सूक्तिष्वाद्रियते कविः ।
सूर्यांशव इवेन्दौ ते कांचिदर्चन्ति कान्तताम् ॥

कवि, जिन तर्क-तर्कश अर्थों का वर्णन अपनी सूक्तियों द्वारा करता है, वे कठोर अर्थ भी इस प्रकार कोमल और रमणीय हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्य की सन्तापदायिनी किरणें चन्द्रमा के रूप में परिणत होकर शीतल, कोमल और सन्तापहारिणी हो जाती हैं ।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

असत्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम् ।

काव्यों में असत्य और आलंकारिक बातों का उल्लेख रहता है । अतः यह उपदेश करने योग्य नहीं है ।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

नमो नमः काव्यरसाय तस्मै
निषिक्तमन्तः पृषतापि यस्य ।
सुवर्णतां वक्त्रमुपैति साधो-
र्दुर्वर्णतां याति च दुर्जनस्य ।

उस काव्य-रस को नमस्कार है, जिसकी बूंद मात्र से भी हृदय के सिंचित होने पर सत्पुरुष का मुख सुवर्णता[1] को प्राप्त हो जाता है तथा असज्जन का दुर्वर्णता[2] को ।

—अज्ञात

उपपत्तिभिरम्लाना नोपदेशैः कदर्थिताः ।
स्वसंवेदनसंवेद्यसाराः सहृदयोक्तयः ॥

सहृदयों की उक्तियाँ तर्कों से युक्त, उपदेशों से परिपूर्ण और स्वानुभूति से अन्यों को भी परिचित करा देने में समर्थ होती हैं ।

—अचितदेव (वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि, १४२)

निज कवित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होउ अथवा अति फीका ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।८।६)

१. कांतियुक्त अथवा सुन्दर वचनों से युक्त ।
२. कांतिहीन अथवा अपशब्दों से युक्त ।

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११।४)

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१४ क)

लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत ।

—घनानन्द

आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कविताई
न तौ राधिका कन्हाई सुमरन कौ बहानो है ।

—भिखारीदास (काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास,३)

एक लहै तप-पुंजन को फल, ज्यों 'तुलसी' अरु 'सूर' गुसाईं ।
एक लहैं बहु संपत, केसव भूषन ज्यों बरबीर बड़ाईं ।
एकन को जस ही सों प्रयोजन है रसखान रहीम की नाईं ।
'दास' कवित्तन की चरचा बुधिवंतन को सुख देति सदाईं ॥

—भिखारीदास (काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास)

कजरी ठुमरिन सो मोंड़ि मुख सत कविता सब कोई कहै ।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति)

जिस कविता से जितना ही अधिक आनन्द मिले, उसे उतना ही अधिक ऊँचे दरजे की समझना चाहिए ।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी ('मेघदूत' निबन्ध)

कवि तो समय की परिधि में नहीं बँधता, उसकी रचना अनन्त काल के लिए होती है और इसीलिए उसके काव्य से ऐसे अर्थ भी सिद्ध होते हैं जो उसकी अपनी कल्पना में नहीं होते । यही उसके काव्य की पूर्णता और विशेषता है ।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २३-१०-१९२१)

कवि जिस ग्रंथ की रचना करता है उसके सब अर्थों की कल्पना नहीं कर लेता है । काव्य की यही खूबी है कि वह कवि से भी बढ़ जाता है ।

—महात्मा गांधी (नवजीवन १५-१०-१९२५)

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १४१)

यह धारणा कि काव्य व्यवहार का बाधक है, उसके अनुशीलन से अकर्मण्यता आती है, ठीक नहीं। कविता तो भावप्रसार द्वारा कर्मण्य के लिए कर्मक्षेत्र का और विस्तार कर देती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १५१)

जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे, वह तो है काव्य। जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना-वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे, वह है सूक्ति।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १७१)

नाद-सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १७६)

काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त्त विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसी प्रकार नादसौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ सहारा लेती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १७०)

मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में, किसी-न-किसी रूप में, पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १८६)

कवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष, हाहाकार, और ध्वंस का दृश्य भी लाता है। पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर-भीतर आनंद-कला के विकास में ही योग देते पाए जाते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० २१६)

काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना में ही नहीं माना जा सकता। क्रोध आदि उग्र और प्रचण्ड भावों के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुण-भाव अव्यक्त रूप में स्थित हो, पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० २८४)

कविता का सम्बन्ध ब्रह्म की व्यक्त सत्ता से है, चारों ओर फैले हुए गोचर जगत् से है; अव्यक्त सत्ता से नहीं। जगत् भी अभिव्यक्ति है; काव्य भी अभिव्यक्ति है। जगत् अव्यक्त की अभिव्यक्ति है और काव्य इस अभिव्यक्ति की भी अभिव्यक्ति है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग २, पृ० ५४)

तुच्छ वृत्ति वालों का अपवित्र हृदय कविता के निवास के योग्य नहीं। कविता देवी के मन्दिर ऊँचे, खुले, विस्तृत और पुनीत हृदय हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ४३)

यदि किसी उक्ति में रसात्मकता और चमत्कार दोनों हों तो प्रधानता का विचार करके सूक्ति या काव्य का निर्णय हो सकता है। जहाँ उक्ति में अनूठापन अधिक मात्रा में होने पर भी उसकी तह में रहने वाला भाव आच्छन्न नहीं हो जाता, वहाँ भी काव्य ही माना जायेगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ३०)

काव्य की उक्ति का लक्ष्य किसी वस्तु या विषय का बोध कराना नहीं, बल्कि उस वस्तु या विषय के सम्बन्ध में कोई भाव या रागात्मक स्थिति उत्पन्न करना होता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० १३२)

वचन की जो वक्रता भावप्रेरित होती है, वही काव्य होती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० १३२)

कविता करना अनन्त पुण्य का फल है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक, पृ० १२)

अन्धकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से और बाह्य जगत् का अन्तर्जगत् से सम्बन्ध कौन कराती है? कविता ही न।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक)

कवित्व वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक, पृ० ३०)

सूरदास के वात्सल्य में संकल्पात्मक मौलिक अनुभूति की तीव्रता है, उस विषय की प्रधानता के कारण। श्रीकृष्ण की महाभारत के युद्ध-काल की प्रेरणा सूरदास के हृदय के उतने समीप न थी, जितनी शिशु गोपाल की वृन्दावन की लीलाएं।

तुलसीदास के हृदय में वास्तविक अनुभूति तो रामचन्द्र की भक्त-रक्षण-समर्थ दयालुता है, न्यायपूर्ण ईश्वरता है, जीव की शुद्धावस्था में पाप-पुण्य-निर्लिप्त कृष्णचन्द्र की शिशु-मूर्ति का शुद्धाद्वैतवाद नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता है, वहीं अभिव्यक्ति के क्षेत्र में पूर्णता हो सकी है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ४४)

संभव और असंभव
दोनों के उस पार
सत्य के रस अम्बर में
शब्द अर्थ से परे
कहीं कविता रहती है।
सूक्ष्म भाव कविता के
होते स्फुरित हृदय में।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता)

चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी वाद के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।

—महादेवी वर्मा (यामा, अपनी बात, पृ० ३)

सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त।

—महादेवी वर्मा ('दीपशिखा, 'चिंतन के क्षण' भूमिका, पृ० ५)'

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १८०)

नवीनता काव्य का प्राथमिक उपादान है और पिष्ट-पेषण उसका अंतिम अभिशाप।

—नंददुलारे वाजपेयी (नई कविता, पृ० १२६)

कविता की सप्राणता भावना मे ही है। परन्तु भावना के लिए बुद्धि का नियंत्रण आवश्यक है। अनियंत्रित भावना की परिणति सस्ती भावुकता होती है।

—गोपालशरणसिंह (आधुनिक कवि, भूमिका, पृ० २०)

कविता का क्षेत्र वहाँ से आरम्भ होता है जहाँ दुनियावी प्रयोजन की सीमा समाप्त हो जाती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य-सहचर, पृ० ४७)

कविता शब्दों में उतनी नही होती जितनी शब्दों के बीच विरामों में होती है।

—अज्ञेय (अद्यतन, पृ० ६१)

मैंने पीड़ा को रूप दिया, जग समझा मैंने कविता की।

—बच्चन (मधुबाला, पृ० ५८)

मुझको शायर न कहो 'मीर' कि साहब मैंने
दर्दोग़म कितने किये जमा तो दीवान किया।

—मीर

सहल है 'मीर' का समझना क्या
हर सखुन[1] उसका इक मुक़ाम[2] से है।

—मीर तक़ी 'मीर'

नज़्म[3] है या गोहरे शहवार[4] की लड़ियाँ 'अनीस'
जौहरी भी इस तरह मोती पिरो सकता नहीं।

—अनीस

दिल को खूब किया है हमने तब ये कवित कहे
वही गुणी इनको परखेगा जिसने दर्द सहे।

—अफ़ज़ल परवेज़

---

१. रचना। २. एक स्थान, एक कोटि।
३. कविता, मोती पिरोना। ४. बहुमूल्य मोती।

शेर अच्छा हो तो जादू का असर रखता है।

—अज्ञात

वा अक़्लो फ़हमो दानिश दादे सख़ुन तवाँ दाद

बुद्धि, ज्ञान और विद्या के बल से कविता को प्रशंसनीय बनाया जा सकता है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

व चिकार आयदते ज़ि गुल तबक़े।
अज़ गुलिस्ताने मन् बिबर वरक़े॥
गुल हमीं पंज रोज़ो शश बाशद।
वीं गुलिस्ताँ हमेशा ख़ुश बाशद॥

फूलों का थाल तेरे किस काम आएगा? मेरे गुलिस्ताँ का एक पत्र ले जा। फूल पाँच या छह रोज रहता है और यह गुलिस्ताँ हमेशा खिला रहेगा।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, भूमिका)

कत शेखा सेइ शेखालो,
कत गोपन पथ देखालो,
चिनये दिल कत तारा
हृद्गगने।

इन गीतों ने मुझे अनेक शिक्षाएँ दी हैं, कहीं गुप्त मार्ग दिखाये हैं तथा हृदय-गगन में अनेकों नक्षत्रों से परिचित कराया है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, १०३)

फुदे तोरान्
हितो मो आरो का
क्यो नो त्सुकि

इस शारदीय चन्द्रिका को देखकर ऐसा कौन होगा जो कविता रचने के लिए लेखनी न उठा ले?

[जापानी] —ओनित्सुरा

काव्य मात्र भावना या अभिव्यक्ति नहीं, यह तो रूप की रचना है। कवि के अन्दर छिपे सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल के कारण विचार आकार ग्रहण करते हैं। यह सर्जनात्मक शक्ति काव्य का उद्गम है। इन्द्रियानुभूति, भावनाएँ और भाषा तो इसके केवल उपादान कारण है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

काव्य के भीतर से कोई इतिहास का तथ्य निकालता है, कोई दर्शन का तत्त्व निकालता है, कोई नीति-शिक्षा और कोई विषय-ज्ञान बाहर लाता है और कोई-कोई तो काव्य के सिवा दूसरी कोई चीज़ ही नहीं निकाल सकते। जिनको जो कुछ मिल जाए उसी को लेकर वे घर लौट जाएँ। इसमें झगड़ा-तकरार की कोई आवश्यकता नहीं। इससे कोई मतलब नहीं निकलेगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पाँच सदस्य, पृ० ६७)

कविता निर्माण है नक़ल नहीं; यह दिव्य दर्शन है, प्रतिलिपि नहीं; यह चित्र हैं, फ़ोटोग्राफ़ नहीं।

—राधाकृष्णन् (रवीन्द्र दर्शन, पृ० १२५)

जो कविता के रस को नहीं समझता, वह अमानुष है।

—विमल मित्र (वे आंखें)

हर प्राचीन कविता कितनी पवित्र है!

—होरेस (इपिसिल्स, २।१।५४)

इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक दार्शनिक और गंभीरतर अभिप्राय-युक्त वस्तु है।

—अरस्तू (पोइतिक)

जापानी कविता मनुष्य के हृदय में बीज सदृश स्फुटित होकर शब्द रूपी असंख्य कोपलों में फूट निकलती है।

—किनो त्सुरायुकि ('कोकिन्शु' की भूमिका)

कविता वह है जो बिना प्रयत्न ही पृथ्वी आकाश को स्पर्श कर ले, देवों और दानवों को समान रूप से द्रवित कर दे, नर-नारी सम्बन्धों में नवमाधुर्य भर दे और वीरों के कठोर हृदयों को मृदुल कर दे।

—कि नो त्सरायुकि ('कोकिन्शु' की भूमिका)

कविता नहीं मरती है।

—चो जेंहीनी

Peoms are not like market commodities transferable. We cannot receive the smiles and glances of our sweetheart through an attorney, however diligent and dutiful he may be.

कविताएँ बाजार की वस्तुओं के समान हस्तान्तरणीय नहीं होतीं। हम अपने प्रिय की मुस्कानों और चितवनों को किसी भी प्रतिनिधि के द्वारा नही पा सकते चाहे वह कितना ही परिश्रमी और कर्त्तव्यपरायण हो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रिलीजन आफ़ ऐन आर्टिस्ट)

Poetry is the breath and finer spirit of all knowledge.

काव्य समस्त ज्ञान का प्राण और शुद्धतर चेतना है।

—वर्डसवर्थ (लिरीकल बैलड्स की भूमिका)

Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings; it takes its origin from emotion recollected in tranquillity.

काव्य शक्तिशाली भावनाओं की सहज बाढ़ है। इसका उद्भव शांति में संस्कृत भावावेग से होता है।

—वड्सवर्थ (लिरीकल बैलड्स की भूमिका)

Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds.

काव्य प्रसन्नतम और सर्वोत्तम मानसों के सर्वोत्तम एवं प्रसन्नतम क्षणों का लेखा है।

—शैले (ए डिफ़ेंस आफ़ पोयट्री)

Prose, words in their best order;
poetry, the best words in their best order.

गद्य अर्थात् अपने सर्वश्रेष्ठ क्रमयुक्त शब्द, कविता अर्थात् सर्वश्रेष्ठ शब्द।

—कालरिज (१२ जुलाई १८२७ के वार्तालाप में)

Poetry should surprise by a fine excess, and not by singularity, it should strike the reader as a wording of his own highest thoughts and appear almost a remembrance.

काव्य को अपनी सुन्दर अतिशयता से चकित करना चाहिए, न कि विलक्षणता से। पाठक को काव्य उसके अपने ही विचारों का शब्दरूप लगना चाहिए और लगभग एक स्मृति जैसा ही प्रतीत होना चाहिए।

—कीट्स (जॉन टेलर को पत्र, २७ फ़रवरी १८१८)

If poetry comes not as naturally as leaves to a tree, it had better not come at all.

यदि काव्य ऐसे सहज रूप में उद्भूत नहीं होता जैसे वृक्ष में पत्तियाँ, तो यह अच्छा होगा कि काव्य उद्भूत ही न हो।

—कीट्स (जान टेलर को पत्र, २७ फ़रवरी, १८१८)

Nothing so difficult as a beginning
In poesy, unless perhaps the end.

कविता में प्रारंभ करने जैसा कठिन कुछ नहीं है — संभवतः उसके अन्त को छोड़कर।

—बायरन (डॉन जुआन, ४।१)

Poetry, therefo e, we will call Musical Thought.

अतः हम काव्य को 'संगीतात्मक विचार' कहेंगे।

—कार्लाइल (हीरोज ऐंड हीरो वर्शिप, भाषण ३)

All that is best in the great poets of all countries, not what is national in them, but what is univesral.

सभी देशों के महान् कवियों में जो कुछ सर्वोत्तम है, वह वह नहीं है जो राष्ट्रीय है, अपितु वह है जो सार्वभौम है।

—लॉगफ़ेलो

The difference between genuine poetry and the poetry of Dryden, Pope, and all their school is briefly this : their peotry is conceived and composed in their wits, genuine poetry is conceived and composed in the soul.

ड्राइडन, पोप तथा उनके अनुयायियों के काव्य तथा सच्चे काव्य में जो अन्तर है, वह संक्षिप्ततः यह है— उनका काव्य उनकी बुद्धियों में कल्पित और रचित है, किन्तु सच्चा काव्य आत्मा में कल्पित और रचित होता है।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (फ़ंक्शंस आफ़ क्रिटिसिज्म एट दी प्रिजेंट टाइम भाग २ में 'टामस ग्रे' निबंध)

१. अनुवाद योग्य।

The grand style arises in poetry, when a noble nature, poetically gifted, treats with simplicity or with severity a serious subject.

काव्य में भव्य शैली का जन्म तब होता है जब कवित्व से युक्त एक सत्प्रकृति किसी गम्भीर विषय पर सरलता या गंभीरता से लिखती है।

— मैथ्यू आर्नोल्ड (ऑन ट्रांस्लेटिंग होमर)

Poetry a criticism of life under the conditions fixed for such a criticism by the laws of poetic truth and poetic beauty.

काव्य का अर्थ है जीवन की समीक्षा जो ऐसी समीक्षा के लिए काव्यसत्य और काव्य-सौन्दर्य के नियमों के द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धों के अन्तर्गत है।

— मैथ्यू आर्नोल्ड (दि स्टडी आफ़ पोइट्री)

Poetry is a mixture of common sense, which not all have, with an uncommon sense, which very few have.

सामान्य बुद्धि का, जो सबके पास नहीं है, असामान्य बुद्धि से, जो बहुत कम लोगों के पास होती है, मिश्रण काव्य है।

—जॉन मेसफ़ील्ड (पब्लिक स्कूल वर्स, भूमिका)

As civilization advances, poetry almost necessarily declines.

जैसे-जैसे सभ्यता प्रगति करती है, वैसे-वैसे काव्य का प्राय: अनिवार्य रूप से ह्रास होता जाता है।

— बैरन मैकाले ('मिल्टन' निबंध)

Perhaps no person can be a poet, or can even enjoy poetry, without a certain unsoundness of mind.

शायद कोई भी व्यक्ति मन की निश्चित विकृति के बिना कवि नहीं बन सकता और न काव्य का रसास्वादन कर सकता है।

—बैरन मैकाले ('मिल्टन' निबंध)

काव्य और कहानी

कविता सुनने वाला कहता है, 'ज़रा फिर तो कहिए।' कहानी सुनने वाला कहता है—'हाँ! तब क्या हुआ?'

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग, १, पृ० १६३)

काव्यगोष्ठी

अन्तरान्तरा च काव्यगोष्ठीं शास्त्रवादानुजानीयात्
मध्वनपि नानवदंशं स्वदते।

काव्य-गोष्ठी के बीच-बीच में साहित्य-चर्चा और शास्त्र-चर्चा के लिए भी विद्वानों को अनुमति दें। अचार-चटनी-आदि से रहित मधुर भोजन भी स्वादिष्ट नहीं लगता।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१०)

काव्य पर दोषारोपण

जो पंडित जन होइ न बाएं[1]।
का मूरख[2] के दोस लगाएं॥

—मंझन (मधुमालती, पृ० ४२)

काव्य-पाठ

ललितं काकुसमन्वितमुज्ज्वलमर्थवशकृतपरिच्छेदम्।
श्रुतिसुखविविक्तवर्णं कवयः पाठं प्रशंसन्ति॥

ललित स्वर से, काकु से युक्त, सुस्पष्ट अर्थ के अनुसार विराम करते हुए, कर्ण-मधुर ध्वनि से और एक-एक अक्षर स्पष्ट रूप से पढ़ना प्रशंसनीय कहा गया है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

अतितूर्णमतिविलम्बितमुल्बाणनादं च नादहीनं च।
अपदच्छिन्नमनावृतमतिमृदुपुरुषं च निन्दति॥

अतिशीघ्र या अतिविलम्ब से, बहुत ज़ोर से या चिल्लाकर अथवा अति मन्द स्वर से, बिना पदच्छेद किए हुए एवं अतिमृदुता या अति कठोरता से पढ़ना निन्दनीय कहा जाता है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

१. विरुद्ध। २. मूर्ख।

गम्भीरत्वमनैश्वर्यं निर्व्यूढिस्तारमन्द्रयोः।
संयुक्तवर्णलावण्यमिति पाठगुणाः स्मृताः॥

गम्भीरता, सस्वरता, ऊँचे-नीचे स्वर की भली-भाँति निर्वाह और संयुक्ताक्षरों के पढ़ने में लावण्य—ये पाठक के गुण हैं।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान् दंष्ट्राभिश्च न पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णा न् प्रयोजयेत्॥

अक्षरों का उच्चारण ऐसे ढंग से करना चाहिए जैसे व्याघ्री कोमल बच्चों को दाँतों से पकड़े हुए भी उन्हें गिराने और कटने से बचाती है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

विभक्तयः स्फुटा यत्र समासश्चाकदर्थितः।
अम्लानः पदसन्धिश्च तत्र पाठः प्रतिष्ठितः॥

जिस पाठ मे विभक्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रतीत हों, समास भी स्पष्ट प्रतीत हों और पदों की सन्धियाँ भी अस्पष्ट न हों, वह पाठ उत्तम कहा जाता है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

न व्यस्तपदयोरैक्यं न भिदां तु समस्तयोः।
न चाख्यातपदम्लानिं विदधीत् सुधीः पठन्॥

विद्वानों को चाहिए कि पृथक् पदों को एक साथ मिलाकर न पढ़ें, समास वाले पदों को पृथक्-पृथक् न पढ़ें और क्रिया-पदों का स्पष्ट रूप से उच्चारण करें।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

येऽपि शब्दविदो नैव नैव चार्थविचक्षणाः।
तेषांमपि सतां पाठः सुष्ठु कर्णरसायनम्॥

विद्वानों का पाठ, जिन्हें न तो शब्द ज्ञान है और न अर्थज्ञान, उनके लिए भी कर्णमधुर होता है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १। सप्तम अध्याय)

काव्यभाषा

अत्यणि वेसा तेज्जेव सद्दा ते ज्जेव्व परिणमंतावि।
उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होदु॥

संस्कृत में परिवर्तित होने पर भी काव्य का अर्थ वही रहता है, जो प्राकृत के शब्दों का रहता है। उक्ति-विशेष ही काव्य है, भाषा चाहे जो भी हो।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।७)

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसम्।
षडभाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया॥

—चंदबरदाई (पृथ्वीराज रासो, १।३९)

भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ।
मिले संस्कृत फारसिहुँ सो अति प्रघट जु होइ॥
ब्रज मागधी मिलें अमर नाग जँमन भाषानि।
सैहेंज पारसी हूँ मिलें, षट विधि कहत बखानि॥

—भिखारीदास (काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास)

तुलसी गंग दोऊ भए, सुकविन के सरदार,
इनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार।

— भिखारीदास (काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास)

काशी

काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका॥

काशी (प्रकाशवान आत्मा) काशी में प्रकाशित होता है काशी सर्वप्रकाशिका है। उस काशी को जिसने जान लिया है, उसने वास्तव में ही काशी (मोक्ष) को प्राप्त कर लिया है।

— शंकराचार्य (काशीपंचक, ४)

विद्यानां सदनं काशी काशी लक्ष्म्या परालयः।
मुक्तिक्षेत्रमिदं काशी काशी सर्वा त्रयीमयी॥

काशी विद्या का आवास है, काशी लक्ष्मी का निवास-स्थान है, काशी मुक्ति का क्षेत्र है, काशी इन तीनों से युक्त सर्वगुण-सम्पन्न क्षेत्र है।

—अज्ञात

किरण

किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग।

—जयशंकर प्रसाद (झरना, पृ० २४)

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल
वेदना-दूती-सी तुम कौन?

—जयशंकर प्रसाद (झरना, पृ० २४)

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
मिलाती हो उससे भूलोक ?
—प्रसाद (झरना, पृ० २५)

किसान

भोले भाले कृषक देश के अद्भुत बल है
राजमुकुट के रत्न कृपक के श्रम के फल है।
कृपक देश के प्राण कृपक खेती की कल है
राजदण्ड से अधिक मान के भाजन हल है।
—लोचन प्रसाद पांडेय

भोले-भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है।
—सरदार पूर्णसिंह ('मजदूरी और प्रेम' निबंध)

अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में बिखर रहा है।
—सरदार पूर्णसिंह ('मजदूरी और प्रेम' निबंध)

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, बजाज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है,वह खुद पीने नही जाती दूसरे ही पीते हैं; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान !
—प्रेमचंद (गोदान, पृ० १४)

हमारे किसानों की निरक्षरता की दुहाई देना एक फ़ैशन-सा हो गया है, लेकिन किसान निरक्षर होकर भी बहुत से साक्षरों से ज्यादा चतुर है। साक्षरता अच्छी चीज़ है और उससे जीवन की कुछ समस्याएँ हल हो जाती हैं, लेकिन यह समझना कि किसान निरा मूर्ख है, उसके साथ अन्याय करना है। वह परोपकारी है, त्यागी है, परिश्रमी है, कफ़ायती है, दूरदर्शी है, हिम्मत का पूरा है, नीयत का साफ़ है, दिल का दयालु है, बात का सच्चा है, धर्मात्मा है, नशा नहीं करता, और क्या चाहिए। कितने साक्षर है जिनमें ये गुण पाये जाएँ। हमारा तजरबा तो यह है कि साक्षर होकर आदमी काइयाँ, बदनीयत, क़ानूनी और आलसी हो जाता है।
—प्रेमचंद (विविध प्रसंग, पृ० ५०७)

किसान के बराबर सरदी, गरमी, मेह, और मच्छर-पिस्सू वगैरा का उपद्रव कौन सहन करता है ?
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १४५)

इस धरती पर अगर किसी को सीना तानकर चलने का अधिकार हो, तो वह धरती से धन-धान्य पैदा करने वाले किसान को ही है।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १४७)

सारी दुनिया किसान के आधार पर टिकी हुई है। दुनिया के आधार किसान और मज़दूर पर है। फिर भी सबसे ज्यादा जुल्म कोई सहता है, तो ये दोनों ही सहते हैं। क्योंकि ये दोनों बेजुबान होकर अत्याचार सहन करते हैं।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १४७)

जो किसान मूसलाधार बरसात में काम करता है, कीचड़ में खेती करता है, मरखने बैलों से काम लेता है और सरदी-गरमी सहता है, उसे डर किसका ?
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १४७)

जहाँ किसान सुखी नहीं है, वहाँ राज्य भी सुखी नहीं है और साहूकार भी सुखी नही है।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३४८)

कृषक सारे संसार के लिए किल्ली के समान है, क्योंकि वह अन्य सभी का भार वहन कर रहा है।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०३२)

कृषकों का जीवन ही जीवन है। अन्य सब दूसरों की वन्दना करके भोजन पाकर उनके पीछे चलने वाले ही हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०३३)

हिन्दुस्तान में किसान राष्ट्र की आत्मा है। उस पर पड़ी निराशा की छाया को हटाया जाए तभी हिन्दुस्तान का उद्धार हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम यह अनुभव करें कि किसान हमारा है और हम किसान के हैं।

—लोकमान्य तिलक

कुटिलता

टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसहि न राहू॥

टेढ़ा जानकर सब लोग किसी की भी वन्दना करते हैं, टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८१।३)

कुत्ता

कुत्तों से इस मूर्खतापूर्ण प्रेम का अंत होना चाहिए। पशुओं का तो हमें सहकर्मियों के रूप में स्वागत करना चाहिए।

—लाला हरदयाल

Pray tell me, sir, whose dog are you ?

कृपया यह बताइए कि आप किसके कुत्ते हैं ?

—अलेक्जेंडर पोप

The one, absolute, unselfish friend that man can have in this selfish world, the one that never deserts him, the one that never proves ungrateful or treacherous is his dog.

इस स्वार्थी संसार में किसी मनुष्य के लिए उपलब्ध एकमात्र पूर्ण तथा निःस्वार्थ मित्र, जो कभी उसे नही छोड़ता, जो कभी कृतघ्न या विश्वासघाती नहीं निकलता, उसका कुत्ता है।

—जार्ज ग्राहम वेस्ट

कुपुत्र

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेनवह्निना।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा॥

अग्नि से जलते हुए एक ही सूखे वृक्ष से समस्त वन इस प्रकार जल जाता है जैसे एक ही कुपुत्र से सम्पूर्ण कुल।

—अज्ञात

ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होय॥

—रहीम

कुमारी

Maidens like moths are ever caught by glare.

पतंगों की तरह कुमारियाँ सदा चमक में फँस जाती हैं।

—बायरन (चाइल्ड हेरॉल्ड्स, पिलिग्रमेज, १।९)

कुमार्ग

अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति।

अनुचित मार्ग पर चलने वाले पुरुषों को सहोदर भाई भी छोड़ देता है।

—अज्ञात

कुमित्र

परोक्षे कार्यहन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं, विषकुम्भं पयोमुखम्॥

जो मित्र पीठ के पीछे कार्य को नष्ट करने वाला, परन्तु सामने बहुत मीठा बोलने वाला है, उस मित्र का परित्याग कर देना चाहिए। वह तो हलाहल विष से भरा घड़ा है, जिसके मुख पर थोड़ा-सा दूध लगा हुआ है।

—अज्ञात

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्, दुरावासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्, नरः शीघ्रं विनश्यति॥

दुराचारी, दुष्ट दृष्टि से युक्त, दुष्टता से रहने वाले दुर्जन पुरुषों से जो मनुष्य मैत्री करता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

—अज्ञात

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।७।५)

आगे कह मृदु वचन बनाई।
पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि-गति सम भाई।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।७।४)

कुरूप

कुरूपता शीलयुता विराजते।

कुरूपता शील से युक्त होने पर शोभित होती है।
—चाणक्यनीति

अकुद्धस्स मुखं पस्स, कथं कुद्धो करिस्सति॥

अभी क्रुद्ध नहीं है, तब इसका मुख देखिये, क्रुद्ध होने पर क्या करेगा ?

[पालि] —जातक (उलूकजातक)

कुल

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥

कुल के नाश होने से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नाश होने से संपूर्ण कुल को पाप भी बहुत दबा लेता है।
—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २५।४० अथवा गीता, १।४०)

कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता।

सभी अपने-अपने कुल की विद्या को सबसे अच्छा समझते हैं।
—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।३ के बाद)

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।

कांति से देदीप्यमान बिजली पृथ्वीतल से उत्पन्न नहीं होती।
—कालिदास (अभिज्ञानशाकुंतल, १।२४)

निर्दहतिहित कुलविशेषं ज्ञातीनां वैरसंभवः क्रोधः।

जाति-बंधुओं में वैर से उत्पन्न क्रोध समस्त कुल विशेष को जला देता है।
—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचंद्रोदय, ५।१)

कुल खोया कुल ऊबरै, कुल राख्या कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेटि लै, सब कुल रह्या समाइ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २५)

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५३)

कुलीन

दे० 'कुलीनता' भी।

भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां
धर्माधिकारवचनेषु शमी भवन्ति॥

महाकुलों में जन्मे जनों का पारस्परिक विरोध धर्मोपदेश के अधिकारी गुरुजनों के वचनों से शान्त हो जाया करता है।
—भास (पंचरात्र, १।४१)

आकोपितोऽपि कुलजो न वदत्यवाच्यं।

कुलीन पुरुष क्रोध दिलाने पर भी अवाच्य नहीं कहता।
—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २६६)

छिन्नोपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्।
यंत्रार्पितो मधुरां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः॥

काटा हुआ चन्दन का वृक्ष गंध नहीं त्याग देता है। वृद्ध हो जाने पर भी गजराज अपनी लीला (मन्द-मन्द गति) को नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरी हुई ईख भी मधुरता नहीं छोड़ देती। इसी प्रकार दरिद्र हो जाने पर भी कुलीन व्यक्ति सुशीलता आदि गुणों को नहीं छोड़ता है।
—अज्ञात

कुलीनता

अपमानितोऽपि कुलजो
न वदति परुषं स्वभावदाक्षिण्यात् ।
नहि मलयचन्दनतरुः
परशुप्रहतः स्रवेत् पूयम् ॥

कुलीन व्यक्ति स्वभाव की सरलता के कारण अपमानित होने पर भी कटु वचन नही बोलता है; मलय-चन्दन के वृक्ष पर परशु का प्रहार किए जाने पर भी पीव नहीं निकलती ।

—अज्ञात

अकुलीनः कुलीनश्च मर्यादां यो न लंघयेत् ॥
धर्मापेक्षी मृदुर्दान्तः स कुलीनशतैर्वरः ॥

अकुलीन हो या कुलीन, जो मर्यादा का उल्लघन नहीं करता, धर्म में तत्पर रहता है, मृदु है, जितेन्द्रिय है, वह सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है ।

—अज्ञात (वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि, ३०५१)

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते संभ्रमविधि-
रनुत्सेको लक्ष्म्याप्यनभिभवनीयाः परकथाः ।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः
श्रुतेऽत्यन्तासक्तिः पुरुषमभिजातं कथयति ॥

दान को गुप्त रखना, घर आए हुए का सत्कार करना, ऐश्वर्य का मद न होना, शत्रु के पराजय पात्र की नहीं अपितु गुणों की चर्चा करना, किसी का प्रिय करके मौन रहना, अपने प्रति किए गए उपकार को सभा में अर्थात् बहुतों से वर्णन करना, शास्त्र में अत्यन्त आसक्ति···ये गुण पुरुष की कुलीनता को प्रदर्शित करते हैं ।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २८१)

अणुवत्तणं कुणन्तो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।
अप्पवसो यि हु सुअणो परव्वसो आहिआईए ॥

सज्जन मनुष्य अपने मुख की आकृति में परिवर्तन लाये बिना ही विद्वेषी मनुष्य की इच्छाओं को पूरा कर देता है, क्योंकि यद्यपि वह स्वतन्त्र है तथापि अपनी कुलीनता के वश में है ।

[प्राकृत] —हाल (गाथा सप्तशती, ३।६५)

कुलीनता पूर्वजन्म के कर्मों का फल है, चारित्र्य इस जन्म के कर्मों का प्रकाशक है ।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (आलोक पर्व, पृ० ३७)

I don't know who my grandfather was; I am much more concerned to know what his grandson wil be ?

मैं नहीं जानता कि मेरे बाबा कौन थे । मुझे यह जानने की अधिक चिन्ता है कि उनका पौत्र क्या बनेगा ।

—अब्राहम लिंकन (ग्रॉस द्वारा अंकित कथन)

कुश्ती

कुश्ती का उद्देश्य सुरुचिपूर्ण स्पर्धा ही होनी चाहिए, निर्दयता का प्रसार नहीं । जिसके शरीर में बल है और पास में मल्लशास्त्र का ज्ञान है वह आवश्यकता पड़ने पर शत्रु को परास्त कर सकता है और दुष्ट को दंड दे सकता है परन्तु अखाड़े में प्रतिस्पर्धी के हाथ-पाँव तोड़ना कदापि श्लाघ्य नहीं है ।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० १६७)

कुसंगति

अपां प्रवाहो गांगोऽपि समुद्रं प्राप्य तद्रसः ।
भवत्यवश्यं तद् विद्वान् नाश्रयेदशुभात्मकम् ॥

गंगा के जल का प्रवाह भी समुद्र को प्राप्त कर तद्रस हो जाता है, इसीलिए विद्वान को अशुभ मन वाले व्यक्तियों का साथ नहीं करना चाहिए ।

—कामन्दकीयनीतिसार

कामं व्यसन वृक्षस्य मूलं दुर्जन-संगतिः
सत्य ही है कि संगति व्यसन रूपी वृक्ष की जड़ है ।

—सोमेदेव (कथासरित्सागर)

शमयति यशः क्लेशं सुते दिशत्यशिवां गतिं ।
जनयति जनोद्वेगायासं नयत्युपहास्यताम् ।
भ्रमयति मतिं मानं हन्ति क्षिणोति च जीवितं
क्षिपति सकलं कल्याणानां कुलं खलसंगमः ॥

दुष्ट की संगति कीर्ति नष्ट कर देती है, क्लेश उत्पन्न करती है, अशुभ गति प्रदान करती है, मनुष्यों में उद्वेग और खिन्नता उत्पन्न करती है, उपहास का पात्र बनाती है, बुद्धि को भ्रम में डाल देती है, प्रतिष्ठा का नाश कर देती है, प्राण शक्ति क्षीण कर देती है—इस प्रकार सकल मंगलों को नष्ट कर देती है।

—मुरारि (वल्लभदेव की सुभाषितावलि, ३६३)

आदावाप्युपचारचाटुविनयालंकारशोभान्वितं,
मध्ये चापि विचित्रवाक्यकुसुमैरभ्यर्चितं निष्फलैः।
पैशुन्याविनयावमानमलिनं बीभत्समन्ते च यद्,
दूरे वोऽस्त्वकुलीनसंगतमसद्धर्मार्थमुत्पादितम्॥

अकुलीन शठ की संगति पहले तो सेवा, मधुर वचन, में विनय आदि अलंकारों से सुशोभित होती है, मध्य विचित्र वचनों रूपी फूलों से युक्त रहती है जो सहृदयता लाने में असफल रहते है तथा अन्त में दुष्टता, अविनय, अवमान से मलिन तथा बीभत्स होती है, असत् धर्म को उत्पन्न करने वाला ऐसा दुष्ट संग तुमसे दूर रहे।

—अज्ञात

आरम्भरमणीयानि विमर्दे विरसानि च।
प्रायो वैरावसानानि संगतानि खलैः सह॥

दुष्टों की संगति आरम्भ में रमणीय, टूटने पर विरस तथा समाप्ति पर वैर-भाव से पूर्ण होती है।

—अज्ञात

निहीनसेवी न च वुद्धसेवी,
निहीयते कालपक्खे व चन्दो।

जो नीच पुरुषो के संग रहते है, ज्ञानी जनों का सत्संग नहीं करते, वे कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान निरन्तर हीन होते जाते हैं।

[पालि] —दीघनिकाय (३।८।२)

को न कुसंगति पाय नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२४।४)

वसि कुसंग चाहत कुसल यह रहीम अपसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस॥

—रहीम (दोहावली, १२७)

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि॥

—रहीम (दोहावली २०२)

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध[1]।

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६३८)

प्राप्त कलेस कुसील को, मेटि सके नहिं कोइ।
जिमि अंजन की असितता, जाय न को पै धोइ॥

बुरे स्वभाव के कारण प्राप्त क्लेश को कोई नही मिटा सकता, जैसे काजल का कलुष नही धोया जा सकता।

—दयाराम (दयाराम सतसई, पृ० ३८२)

कवहुं कुसग न कीजिए, किए प्रकृति की हानि।
गूंगे को समझाइयो, गूंगे की गति आनि॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है।

—हिंदी लोकोक्ति

कुसंगति अच्छे चरित्र को बिगाड़ देती है।

—नवविधान (कुरिन्थियों के नाम प्रथम पत्र, १५।३३)

असुरों के गृह में जाने से लक्ष्मी धर्षिता नहीं होती। चरित्रहीनों के बीच वास करने से सरस्वती कलंकित नहीं होती।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० १०९-११०)

आरवल मंज नागा रोवुख
सादा रोवुख चूरन मंज,
मुडगरन मंज गोरा रोवुख
राजहोंज रोवुख कावन मंज॥

झरनों के बीच एक स्रोत खो गया, चोरों के बीच एक सन्त खो गया, मूर्ख-मण्डली के बीच एक गुरु खो गया तथा कौवों के बीच एक राजहंस खो गया।

[कश्मीरी] —शेख नरुद्दीन

1. धन्धा।

कुसंगु बळे नाहि जगते पाप
कुसंगी संग मिळे घोर सन्ताप गो।

कुसंग से बढ़कर पाप संसार में नहीं है और कुसंगी के साथ रहने के कारण बहुत दु.ख झेलना पड़ता है।

[मराठी] —गंगाधर मेहेर (तपस्विनी, सप्तम सर्ग)

दुर्मतुल तेरणु गैकोनि
धर्ममु नेड व्रीति वदल दगदु बुधुनकुन्।

दुर्जनों की संगति में पड़कर धर्म को ठुकराना अच्छा नहीं है।

[तेलुगु] —एर्रना (महाभारत, अरण्य पर्व)

श्रेष्ठता कुसंग से डरती है। नीचता ही उसे बन्धु मानकर उससे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर देती है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल ४५१)

कुसमय

'रहिमन' असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।

—रहीम (दोहावली, १६४)

रहिमन चुप ह्वै बैठिए देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहै बेर॥

—रहीम (दोहावली, १८०)

समय के फेर ते सुमेरु होत माटी को।

—अज्ञात

कूटनीति

सांप न जाय न लाठी टूटे,
बुरी नहीं यह रीति;
किन्तु कापुरुपता है फिर भी,
कूटनीति क्या नीति।

—मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर, पृ० ११४)

मैंने कूटनीतिज्ञों को धोखा देने की कला को खोज लिया है। मैं सत्य बोलता हूँ और वे कभी भी मेरा विश्वास नहीं करते हैं।

—कौण्टे कैमिलो बेन्सो डि केवर

A diplomat is a man who always remembers a woman's birthday but never remembers her age.

कूटनीतिज्ञ एक ऐसा व्यक्ति होता है जो स्त्री का जन्म-दिन याद रखता है लेकिन कभी उसकी आयु याद नहीं रखता।

—रावर्ट ली फ्रास्ट

I never refuse. I never contradict. I sometimes forget.

मैं कभी मना नहीं करता। मैं कभी खंडन नहीं करता। मैं कभी-कभी भूल जाता हूँ।

—डिज़रायली

कृतघ्नता

अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम्।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः॥

जो बल पराक्रम से सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले कार्यार्थी पुरुषों को आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसार के सभी पुरुषों मे नीच है।

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, ३०।७१)

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

हे राजन्! ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रत तोड़ने वाले के लिए शास्त्र मे प्रायश्चित का विधान है परन्तु कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नही बताया गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्तिपर्व, १७२।२५)

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृति.॥

कृतघ्न को यश कैसे प्राप्त हो सकता है? उसे कैसे स्थान और सुख की उपलब्धि हो सकती है? कृतघ्न विश्वास के योग्य नहीं होता। कृतघ्न के उद्धार के लिए शास्त्रों में कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १७३।२०)

कृतघ्नानां शिवं कुतः।

कृतघ्न व्यक्तियों का कल्याण कहाँ!

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १।३।४४)

कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः ।

धन के लोभ से अन्धे कृतघ्न पुरुष किसी का उपकार नहीं मान सकते ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४।३०८)

यो पुब्बे कतकल्याणो कतत्थो नावबुज्झति ।
पच्छा किच्चे समुपन्ने कत्तारं नाधिगच्छति ।।

जो कोई उपकृत व्यक्ति पहले किए हुए उपकार को याद नहीं रखता, उसको पीछे काम पड़ने पर कोई उपकार करने वाला नहीं मिलता ।

[पालि] —जातक (अकतंञ्ञु जातक)

सँउसे खीरा खा गेनी मुँह पर तीत ।

सारा खीरा खाकर उसके मुख को कड़ुवा बताते हो ।

—हिंदी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

खाय नाना का, कहाय दादा का ।

—हिंदी लोकोक्ति

उपकारों को भूलना मनुष्य का स्वभाव है। अतः यदि हम दूसरों से कृतघ्नता की आशा करेंगे तो हमें व्यर्थ ही सर-दर्द मोल लेना पड़ेगा ।

—डेल कार्नेगी (हाऊ टू स्टाप वरीयिंग एंड स्टार्ट लिविंग)

Blow, blow thou Winter's wind,
Thou art not so unkind
As man's ingratitude.

हे शीतकालीन हवा ! तुम चलती रहो, चलती रहो। तुम इतनी निर्दयी नहीं हो जितनी मानव की कृतघ्नता ।

—शेक्सपियर (ऐज यू लाइक इट, २।७)

कृतज्ञता

भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ।

आपके उपायों से डूबते हुए हम उबारे गए हैं ।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ६।१८)

तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

पशु-पक्षी भी उपकार मानते हैं ।

—भास (प्रतिमानाटक, ६।६ के पश्चात्)

किमदेयमुदाराणामुपकारिषु तुष्यताम् ।

उपकारियों पर संतुष्ट होने वाले के लिए कोई वस्तु अदेय नहीं होती ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४)

कृतज्ञता का बन्धन अमोघ है ।

—जयशंकरप्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेती है, जो नियम की दृष्टि से त्याज्य है । यह वह चक्की है, जो हमारे सिद्धान्तों और नियमों को पीस डालती है ।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ५)

कृतज्ञता शब्दों में आकर शिष्टता का रूप धारण कर लेती है। उसका मौलिक रूप वही है जो आँखों से बाहर निकलते हुए काँपता और लजाता है ।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ३२)

मेरे बारे में पूछताछ करने वाला संसार में एक प्रकार से कोई नहीं है। इसलिए अगर कोई मेरे बारे में भला-बुरा जानना चाहता है, तो सुनकर हृदय कृतज्ञता से भर जाता है, मेरे जैसे हतभाग्य संसार में बहुत ही कम है ।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३०)

सब बातों में परमात्मा को धन्यवाद दो ।

—नवविधान (थिस्सलुनीकियों के नाम प्रथम पत्र ५।१८)

सुसंस्कृत स्वभाव इस बात को जानकर परेशान होता है कि कोई उसके प्रति आभार मानता है किन्तु विकृत स्वभाव यह जानकर परेशान होता है कि वह स्वयं किसी के प्रति आभारी है ।

—नीत्शे (ह्यूमन, आल टू ह्यूमन)

जिन बातों के लिए आप कृतज्ञ हैं उन्ही के विषय में सोचिए और उपलब्ध ऐश्वर्य तथा वैभव के लिए भगवान को धन्यवाद दीजिए ।

—डेल कार्नेगी (हाऊ टू स्टाप वरीयिंग एंड स्टार्ट लिविंग)

कृति

यद्यपि यह ग्रन्थ समुद्र का प्रतिनिधित्व करने में एक बूंद के ही समान है, फिर भी यह बूंद है और समुद्र का प्रतिनिधित्व करता है।

—रांगेय राघव (महायात्राः गाथा, अंधेरा रास्ता, भाग १, पृ० ६६०)

कृत्रिमता

क्लेशभीरुकृतज्ञः सुखासंगलुब्धो लोकः स्नेहसदृश कर्मानुष्ठातुमशक्तो निष्फलेनाश्रुपातमात्रेण स्नेहमुपदर्शयन् रोदिति।

क्लेशभीरु, अकृतज्ञ तथा केवल सुखाभिलाषी व्यक्ति सच्चे स्नेह से काम करने में असमर्थ होते हैं अतः निरर्थक आंसू गिराने के द्वारा ही लोग अपना स्नेह दिखाने के लिए रोया करते हैं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ५०४)

हिअ आहिन्तो पसरन्ति जाइँ अण्णाइँ ताइँ वआणाइं।
ओसरसु किं इमेहिं अहरुत्तरमेत्त भणिएहिं॥

जो बातें हृदय से निकलती हैं, वे और होती हैं। दूर हट इन ओंठ पर की कही हुई बातों से क्या होगा?

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, ५।५१)

हम बहुधा अपनी झेंप मिटाने और दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कृत्रिम भावों की आड़ लिया करते हैं।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ४५)

कृत्रिमता को हमने इतना अधिक अपना लिया है कि अब वह स्वयं ही प्राकृतिक हो गयी है।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० १४८)

चमचमाते हुए बनावटी दाँतों से आदमी को सिर्फ़ बंदरघुड़की ही दी जा सकती है। उनसे काट खाने का काम नहीं लिया लिया जा सकता।

—शरत्चन्द्र (विप्रदास)

कृपणता

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुंजतश्च रेवतः।
उभा ता बस्त्रि नश्यतः॥

प्रातःकाल के स्वप्न तथा कंजूस धनी से मैं खिन्न हूं क्योंकि दोनों ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

—ऋग्वेद (१।१२०।१२)

य आध्राय चकमानाय पित्वो—
ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो,
चित् स मर्डितारं न विन्दते॥

जो कठोर हृदय पुरुष धन एवं अन्न से सम्पन्न होते हुए भी, घर पर आए अन्न की याचना करने वाले क्षुधार्त दरिद्र व्यक्ति को भोजन नहीं देता है, अपितु उसके समक्ष स्वयं भोजन कर लेता है, उसे सुखी करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

—ऋग्वेद (१०।११७।२)

अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च।

कृपणता मनुष्य के मन व संकल्प को मलिन कर देती है।

—अथर्ववेद (५।७।८)

जिस तरह दानशीलता मनुष्य के दुर्गुणों को छिपा लेती है, उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है।

—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० ८४)

कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफ़रत होती है।

—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० ८४)

कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख़ क्यों न हो, नहीं चढ़ सकता।

—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० ८५)

सीमे बख़ील वक़्ते अज़ ख़ाक बर आयद।
कि बख़ील व ख़ाक दर आयद॥

कंजूसी की चाँदी उस समय ज़मीन से बाहर आती है जब कंजूस ज़मीन के अन्दर चला जाता है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, सातवाँ अध्याय)

कृपण मनुष्य को उस वस्तु का भी वैसा ही अभाव है जो उस पर है जैसा उस वस्तु का जो उस पर नहीं है।

—पब्लिलियस साइरस

A mere madness to live like a wretch that he may die rich.

यह निरा पागलपन है—दुःखी की तरह जीवन बिताना ताकि धनी रूप में मर सके।

—रिचार्ड यूजीन बर्टन

A miser grows rich by seeming poor; an extravagant man grows poor by seeming rich.

कृपण व्यक्ति स्वयं को निर्धन दिखाते रहने से धनी हो जाता है और फिज़ूलख़र्च मनुष्य स्वयं को धनी दिखाते रहने से निर्धन हो जाता है।

—विलियम शेंस्टन

कृपा

अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः॥

जैसे सूर्य की कृपा से अग्नि मे बहुत चमक आ जाती है, वैसे ही रात्रि की कृपा पाकर चन्द्रमा मे भी बहुत चमक आ जाती है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१३)

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम्।
आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगतिश्लाध्यत्वमल्पेतरं
संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरां चेतः कृपार्द्रान्तरम्॥

कृपा से आर्द्र चित्त, दीर्घ आयु, बलवान शरीर, उच्च कुल, अधिक धन, अधिक बल, उच्च स्वामित्व, विपरीत अवस्था से रहित आरोग्य, और तीनों लोकों में अत्यधिक यश प्रदान करता है तथा संसार-सागर का पार करना सहज कर देता है।

—अज्ञात

कृपक

दे० 'किसान'।

कृषि

जितना गहिरा जोतै खेत। बीज परे फल अच्छा देत॥

—घाघ

उत्तम खेती जो हरगहा[1]। मध्यम खेती जो सँग रहा॥
जो पूछेसि हरवाहा कहाँ। बीज बूड़िगे[2] तिनके तहाँ॥

—घाघ

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा,
खेती उपजै अपने कर्मा।

—हिंदी लोकोक्ति

पूरी खेती काकी? जो हाथ करै ताकी।
आधी खेती काकी? जो देखे आवै ताकी।
डंगरा बिकै काके? जो पूछ आवै ताके।

—हिंदी लोकोक्ति

संसार कुछ भी करता फिरे, हल पर ही आश्रित है। अतएव कष्टप्रद होने पर भी कृषि-कर्म ही श्रेष्ठ है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०३१)

साम्राज्यच्चेंम्मिन्नु चेंकोलुयर्त्तानुम्,
सन्यास वाष्चक्कु दंडेन्तामुम्,
वाणिज्य लक्ष्मिक्कु वळ्ळियुं पॊन्नुमां
नाणयं वेर् तिरिच्चॆण्णुवानुम्,
कैक्कॊल्पु नल्कुन्नतार् तन् प्रसादमों,
दीर्घ नमस्कार मा निनक्काय।
वेदङ्ङ्ळपोलुं कृषीपूर्वरि, निन्नुट
वेरुट्ट माहात्म्यं वर्णिक्कुन्नु।
अल्लॆंकिलङ्ङयें वपत्ति स्तुतिक्कुन्न
चाल्लु यातॊन्न ते वेदमाकू॥

जिसका अनुग्रह साम्राज्य-श्री को राजदंड ऊँचा करने और संन्यासी जीवन को योगदण्ड उठाने तथा वाणिज्य-लक्ष्मी को चाँदी-सोने की मुद्राओं को अलग करके गिनने के लिए भुजबल प्रदान करता है, उसको मेरा प्रणाम। कृषीश्वरि! वेद भी तुम्हारी महिमा गाता है। नहीं, नहीं, जो वाक्य तुम्हारी प्रशंसा और पूजा करता है, वही वेद हो सकता है।

[मलयालम] —वल्लतोल ('कर्षक जीवित' कविता)

१. स्वयं हाथ से हल चलाए। २. बीज नष्ट हो गए।

कृष्ण

दे० 'कृष्ण और अर्जुन', 'कृष्ण और गोपियाँ', 'कृष्ण की दीनवत्सलता', 'कृष्ण की बाललीला' भी।

गोप्यो गाव ऋचस्तस्य।

ऋचाएँ उस (श्रीकृष्ण) की गौएँ व गोपियां हैं।

—कृष्णोपनिषद् (८)

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते॥

दान, दक्षता, शास्त्र ज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि—ये सभी सद्गुण भगवान श्री कृष्ण में नित्य विद्यमान हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, ३८।२०)

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

—भागवत (१।३।२८)

कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।

भगवान श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्य किसी भी तत्त्व को मैं नहीं जानता।

—मधुसूदन सरस्वती (श्रीगीता गूढ़ार्थ दीपिका टीका, १५।२०)

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने माता समस्तं जगद्—
दृष्ट्वा यस्य जगाम विस्मयवशं पायात् स वः केशवः॥

भगवान कृष्ण खेलने के लिए बाहर निकले ही थे कि बलराम ने आकर माता यशोदा से उनकी शिकायत की कि कृष्ण ने मिट्टी खाई है। यशोदा ने कृष्ण को बुलाकर पूछा—कृष्ण क्या यह सब सत्य है? इस पर कृष्ण ने पूछा—ऐसा किसने कहा? माता--मुसली(बलराम) ने। कृष्ण—माता, यह बात झूठी है तुम मेरा मुँह देख लो। माताखोलो। और तब कृष्ण के मुँह खोलने पर माता उसके भीतर सारे जगत को समाया हुआ देखकर विस्मय में पड़ गई—ऐसे लीलाधारी केशव तुम्हारी रक्षा करें।

—चन्दक (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ४०)

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगमवनेषुनितान्तचारखिन्नाः।
विचिनुत भवनेषु बल्लवीना—
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥

उपनिषदों के बीहड़ जंगलों में घूमते-घूमते नितान्त श्रान्त हुए लोगों! मेरे इस सर्वश्रेष्ठ उपदेश को आदरपूर्वक सुनो। उपनिषदों के सार-तत्त्व को व्रजांगनाओं के घरों में ऊखल से बँधा हुआ देख लो।

—लीलाशुक भक्त बिल्वमंगल

कालकालगलकालकालमुखकालकालकालकालपनकालकाल-
घनकालकाल।
कालकालसितकालका लालनिकालकालकालकालगतु काल-
काल कलिकालकाल॥

नीलकंठ, लंगूर तथा यम के समान कृष्ण वर्ण वाले, जलयुक्त काले बादल के समान बोलने वाले मोर के समान, आलपनशील, काल के काल तथा कलियुग की मृत्यु हे कृष्ण! कालेपन से सिर पर शोभायमान केशों से युक्त मधुर-भाषिणी रमणी आकर्षित हो।

—अज्ञात (दंडी द्वारा काव्यादर्श में उद्धृत)

अभूत कंसरिपोर्नेत्रं शास्त्रमेवार्थदृष्टये।
नेत्राम्बुजं तु युवतिवृन्दोन्मादाय केवलम्॥

अर्थदृष्टि के लिए तो शास्त्र ही श्रीकृष्ण के नेत्र थे। उनके नेत्रकमल तो केवल युवतियों को उन्मत्त बना देने के लिए थे।

—अज्ञात (रूपगोस्वामी द्वारा 'भक्तिरसामृतसिंधु' में उद्धृत)

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत॥

—सूरदास (सूरसागर १।१२३८)

तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं
नीकेई लागत मन रहत समाने।

कृष्ण में यह विशिष्टता है कि वे सदा अच्छे ही लगते हैं, इसी से मन में समाए रहते हैं।

—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, पद ३)

टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितो समझैहै।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै।
—रसखान (सुजान-रसखान, ८०)

मोहिनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोय।
वसति सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय॥
—बिहारी (बिहारी सतसई, ३)

मोर-पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई;
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल डोलनि मैं छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि, को न बिलोकि भयो बस माई;
वा मुख की मधुराई कहा कहौं? मीठी लगै अँखियान लुनाई॥
—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३४१)

श्रीकृष्ण का लोकरक्षक और लोकरंजक रूप गीता में और भागवत-पुराण में स्फुरित है। पर धीरे-धीरे वह स्वरूप आवृत्त होता गया है और प्रेम का आलंबन मधुर रूप ही शेष रह गया।

—रामचन्द्र शुक्ल (तुलसीदास, पृ० १०)

सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रहै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥
—रसखान (सुजान रसखान, ८)

ब्रह्म में ढूंढ्यौ पुरातन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूं न, कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका-पायन॥
—रसखान (सुजान-रसखान, १२)

धूरि भरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजती पीरी कछोटी।
वा छबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों लै गयो माखन-रोटी॥
—रसखान (सुजान-रसखान, ३२)

यामैं संदेह कछू दैया हौं पुकारे कहौं
भैया की सौं मैया री कन्हैया जादूगर है।
—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (प्रेम-माधुरी, ८२)

संसार में एक कृष्ण ही हुआ जिसने दर्शन को गीत बनाया।

—राममनोहर लोहिया, (कृष्ण, पृ० १४)

वृन्दावन सो वन नहीं, नन्दगांव सो गांव।
बंशीवट सो वट नहीं, कृष्ण नाउँ सो नाउँ॥
—अज्ञात

लाम के मानिन्द हैं ज़ुल्फ़ें मेरे घनश्याम की
वे हैं काफ़िर जो नहीं बन्दे हुए इस-लाम के।

मेरे घनश्याम की ज़ुल्फ़ें उर्दू के 'लाम' अक्षर के समान हैं। जो इस लाम के ('इस्लाम' के नहीं) भक्त नहीं बन पाए, उन्हें 'क़ाफ़िर' (नास्तिक) समझो।

—अज्ञात

कालिकालिल तटविन पोटिच्चार्त्तुंकोंटात्त शोभम्
पीलिक्कण्णाल कालत चिकुरम् पीत कौशेय चीरम्।
कोलुम् कोलक्कुषलुमियलुम बालगोपाललीलम्
कोलम् नीलम् तव नियतवुम् कोयिल कालकेड्डचेतः॥

गोधूलि से शोभायमान, मोर-पंख से अलंकृत केश वाला, पीत वस्त्रों से आच्छादित शरीर वाला, हाथों में छड़ी और बाँसुरी लिये हुए, बाल गोपाल की लीलाओं वाला, सुन्दर श्यामल रंग के शरीर वाला यह रूप मेरे मन में हमेशा के लिए स्थिर रहे।

[मलयालम] —अज्ञात (उण्णुनीलि सन्देश)

कृष्ण के चरित्र में तुमको केन्द्रीय भाव अनासक्ति मिलता है। उनको किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वे कुछ भी नहीं चाहते। वे कर्म के निमित्त कर्म करते है, कर्म के निमित्त कर्म। उपासना के निमित्त उपासना।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खंड ७, पृ० २९२)

सर्वदा और सर्वत्र सर्व गुणों के प्रकाश से श्रीकृष्ण तेजस्वी थे। वह अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय; दृढ़कर्मी, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निरपेक्ष, शास्ता, मोह-रहित, निरहंकार, योगी और तपस्वी थे। वह मानुषी शक्ति से कार्य करते थे, परन्तु उनका चरित्र अमानुषिक था।

—बंकिमचंद्र (कृष्ण चरित्र, पृ० ५१५)

कृष्ण और अर्जुन

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहाँ श्री, विजय, वैभव और ध्रुवनीति रहेंगे, यह मेरा[1] मत है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ४२।७८ अथवा गीता, १८।७८)

कृष्ण और गोपियाँ

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारदलौं सुक व्यास रटैं पचि हारैं तऊ पुनिपार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै ना नचावैं॥

—रसखान

आवत निहारे हौं गुपाल एक बाल जाकी,
लाग्यौ उपमा मैं कबि कोबिद समाज है।
तरुन दिनेस दिव्य अरुन अमोल पाय,
छीन कटि केहरि औ गति गजराज है।
संभु कुच मुख पदमाकर दिमाक देव,
तापै घनआनंद घनेरो कच-साज है।
छवि की तरंग रत्नाकर है अंग मुस-
कानि रस-खानि बानि आतम निवाज है॥

—रत्नाकर (श्रृंगार लहरी, ६)

कृष्ण की दीनवत्सलता

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निवाहक।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।
कह पांडव कैं घर ठकुराई? अरजुन के रथ-वाहक।
कहा सुदामा कै धन हो? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक॥

—सूरदास (सूरसागर, १।१९)

1. संजय का।

सुनि कै पुकार धायौ द्वारिका ते यदुराई
बाढत दुकूल खैंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है
कि सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है।

—अज्ञात

कृष्ण की बाललीला

कालिन्दीपुलिनोदरेषु मुसली यावद्गतः क्रीडितुं
तावत् कर्बुरिकापयः पिब हरे वर्धिष्यते ते शिखा।
इत्थं बालतया प्रतारणपराः श्रुत्वा यशोदागिरः
पायाद्वः स्वशिखां स्पृशन् प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः॥

माता यशोदा कहती हैं—ऐ कृष्ण, जब तक बलराम यमुना के तट पर खेलने को गए हुए हैं तब तक तुम चित-कबरी गाय का दूध पी लो। इससे तुम्हारी चोटी उनसे लम्बी हो जाएगी। यशोदा की बालक की वंचना से युक्त इस प्रकार की वाणी सुनकर आधा दूध पी लेने के बाद ही चोटी बढ़ी या नहीं इस आशय से अपनी शिखा का स्पर्श करते हुए प्रमुदित श्रीकृष्ण आपकी रक्षा करें।

—जीवक (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ३८)

कृष्णभक्त कवि

मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखा कर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ९२)

कृष्णभक्ति

धिग् दाक्ष्यं धिगुदारतां धिगधिकां विद्यां धिगात्मज्ञतां
धिक् शीलं च धिगध्वरादिरचनां धिक् पौरुषं धिग् धियम्।
धिग्ध्यानासनधारणादिकमहो धिङ् मन्त्रतन्त्रज्ञतां
श्रीकृष्णप्रणयेन हीनमनसां धिग् जन्म धिग् जीवितम्॥

जिनका मन श्रीकृष्ण के प्रेम से रहित है उनके क्रिया-नैपुण्य को धिक्कार है, उदारता (दानशीलता) को धिक्कार है, अधिक पढ़ी हुई विद्या को धिक्कार है, आत्मज्ञता को धिक्कार है, शील को धिक्कार है, यज्ञ आदि की रचना को धिक्कार है, पुरुषार्थ को तथा बुद्धि को धिक्कार है; ध्यान, आसन, धारणा को धिक्कार है, मंत्र-तंत्र की जानकारी को धिक्कार है, जन्म को तथा जीवन को धिक्कार है।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, १३।१४)

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥२॥

रत्नाकर आपका गृह है और लक्ष्मी आपकी गृहिणी है, तब हे जगदीश्वर! आपको देने के योग्य क्या वस्तु बच गई? राधाजी ने आपका मन हरण कर लिया है, इसलिए मैं अपना मन ही आपको अर्पण करता हूँ। आप ग्रहण कीजिए।

—रहीम

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियम्
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचन-चमत्काराय भूयाच्चिरम्
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलं अहो धावति॥

यदि ध्यानाभ्यास से मन को वश में करके योगी लोग किसी निष्क्रिय परम ज्योति को देखा करते हों तो भले ही देखा करें। हमारी आँखों को चमत्कृत करने के लिए तो यही बहुत है कि हम यमुना के तट पर किसी नीले-नीले को दौड़ते हुए देर तक देखते रह जाते है।

—अज्ञात

जा दिन तैं हरि दृष्टि परे री।
ता दिन तैं मेरे इन नैननि, दुख सुख सब बिसरे री॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२४८२)

जब तैं प्रीति स्याम सों कीन्ही।
ता दिन तैं मेरे इन नैननि, नैकहुं नींद न लीन्ही॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२४८३)

स्याम करत हैं मन की चोरी।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२५१२)

माई कृष्न-नाम जब तैं स्रवन सुन्यौ है री,
तब तें भूली नी मौन बावरी सी भई री।
'भरि 'भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन,
बैननहिं सूधो दसा औरहिं ह्वै गई री।
कौन माता, कौन पिता, कौन भैनी,
कौन भ्रात, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मनमथ हई री॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२५१४)

नैन न मेरे हाथ रहे
देखत दरस स्याम सुंदर कौ, जल की ढरनि बहे।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२८४८)

मेरे नैननिहीं सब खोरि।
स्याम-बदन-छवि निरखि जु अटके, बहुरे नहीं बहोरि।
जउ में कोटि जतन करि राखति, घूंघट-ओट अगोरि।
तउ उड़ि मिले बधिक के खग ज्यों पलक पाँजरा तोरि॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२९७५)

लोचन मानत नाहिंन बोल।
ऐसे रहत स्याम के आगे, मनु हैं लीन्हे मोल॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२९९९)

जिहिं गुपाल मेरैं बस होते, सो विद्या न पढ़ी।
सूरदास प्रभु हरि न मिलैं तो, घर तें भली मढ़ी॥

—सूरदास, (सूरसागर १०।३८८७)

अँखियाँ हरि दरसन कीं भूखी।
कैसे रहतिं रूप रस राँची, ये बतियाँ सुनि रूखी।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१ ७५)

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहति कमलनैन कौं निसिदिन रहति उदासी॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१७६)

ऊधौ मन न भए दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम सँग, को आराधै ईस।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४३४४)

जो ब्रजराज सों प्रीति नहीं केहि
काज सुरेसहु की ठकुराई।
—नरोत्तमदास (सुदामाचरित, १७)

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो।
दूध वही जु दुहायो री या ही दही सु सही जु वही ढरकायो।
और कहां लौं कहौं रसखानि, री भाव वही जु वही मन भायो॥
—रसखान (सुजान रसखान, १२५)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
रसखानि कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के वन बाग तडाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं॥
—रसखान

मानषु हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‍यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥
—रसखान

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी हौं निवाज हूँ भुलानी तजे-
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं।
सांवला सलोना, सिरताज सिर कुल्ले दिये
तेरे नेह दाग में निदान हो रहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै
हूँ तो तुरकानी हिंदुआनी हो रहूँगी मैं॥
—ताज

पगी प्रेम नँदलाल के, हमैं न भावत जोग।
मधुप, राजपद पाय के, भीख न मांगत लोग॥
—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३८०)

ऊधो तुम कहत वियोग तजि जोग करौ,
जोग तब करैं जो वियोग होय स्याम कौ।
—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ४२४)

फली सकल मनकामना लूट्यो अगनित चैन।
आज अँचै हरि-रूप सखि, भए प्रफुलित नैन॥
—भिखारीदास (काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास)

पलकें उघारौं कैसे, कढ़ि जाइ आँखिन ते
सोर ना करौ री, चितचोर मूँदि राख्यौ मैं।
—बेनी

मती धरम रति कृष्ण मम, गति वृन्दावन धाम।
कृति सेवा श्रीनाथ कत्र, होंहैं रट हरिनाम॥
—दयाराम (दयाराम सतसई, २७)

गोकुल[1] ब्रंदावन्न[2] लिहु, मोपैं जगजीवन्न।
पलटैं मोकों देहु फिर, गोकुल ब्रंदावन्न॥
—दयाराम (दयाराम सतसई, २९)

चाकर हैं ब्रज सांवरे के।
—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (प्रेम-प्रलाप, ७३)

गोकुल गाँव की गैल गुपाल चरावत गाय ठड़े अभिलाखे।
गोरस बेंचन जात लख्यो मनमोहन रोकि रहे मग राखे।
जोरि थकी कर पाँय परी नहीं कान करी सिगरे घट चाखे।
थामि लियो कर कैसी करौं अब भाखे बने न बने बिन भाखे।
—श्यामाचरण मिश्र (श्याम-सरोज, पृ० ३३)

वंधु तुमि से आमार प्रान
देह मन आदि तोहोर सपेछि
कुल शील जाति मान
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया
योगिर आराध्य धन।
गोप ग्वालिनि हम अति दीना
ना जानि भजन पूजन।
कलंकी बलिया डाके सबलोके
ताहाते नाहिक दुःख
तोमार लागिया कलंकेर हार
गलाय परिते सुख।

१ इन्द्रियों का समूह। २. वृन्दा—तुलसी, वन—जल।

प्रियतम तुम मेरे प्राण हो। मैंने देह, मन, कुल, शील, जाति, मान सब तुम्हें सौंप दिया। हे अखिल के नाथ श्याम, तुम योगियों के आराध्य धन हो। हम गोपियां हैं, बड़ी दीन है, भजन-पूजन कुछ नहीं जानतीं। सब लोग हम पर कलंक लगाते हैं, पर उसका मलाल नही है। तुम्हारे लिए कलंक का हार गले में धारण करना सुख की बात है।

[बँगला] —चंडीदास

कृष्ण-सुदामा

ऐसे बिहाल बिवाइन सों मग
कंटक जाल लगे चुनि जोए।
'हाय महादुख पायौ सखा तुम
आए इतै न ,कितै दिन खोए'।
देखि सुदामा की दीन दसा
करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात कौ हाथ छुयौ नहिं
नैनन के जल सौं पग धोए ॥

—नरोत्तमदास (सुदामाचरित, ४२)

केश

अनुपम रूप घटइते सब विघटल
जत छल रूपक सारे।
से जानि दैवे आनि कए निरमल
कामिनि कुन्तल भारे ॥

विधाता के पास सौन्दर्य का जितना कोप था, इसके अनुपम सौन्दर्य की रचना करते हुए, वह सब सूना हो गया। यही जानकर विधाता ने शून्य को लाकर कामिनी की केश-राशि का निर्माणकिया ।

—विद्यापति (विद्यापति-पदावली, भाग २)

भँवर केस वह मालति रानी। विसहर लुरहिं लेहि अरघानी।
बेनी छोरि झारु जौं वारा। सरग पतार होइ अँधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअंग विसारे।
बेधे जानु मलैगिरि वासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा।
घुंघरवारि अलकैं विख भरीं। सिकरी पेम चहहिं गियँ परीं।

—जायसी (पद्मावत, ६६)

भँवर गएउ केसन्ह द भुवा। जोवन गएउ जियत जनु मुवा।

—जायसी (पद्मावत, ६५३)

केशव केसन अस करी जस अरिहू न कराय।
चन्द्रमुखी मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाय ॥

—केशवदास

जुल्फ़ों को लेके हाथ में कहने लगा वह शोख़
गर दिल को बाँधना हो तो काकुल से बाँधिए।

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (स्फुट कविताएँ, २४)

स्वेत स्वेत सब कुछ भलो स्वेत भलो नहिं केस
नारी रीझै न रिपु डरे न आदर करे नरेस ॥

—अज्ञात

केशवदास

केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भापा पर जैसा अधिकार चाहिए, वैसा उन्हें प्राप्त न था।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०१)

कोमलता

को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति।
भला कौन नवमालिका को गर्म जल से सींचेगा!

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुंतल, ४।१ के पश्चात्)

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रस्ते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥

अपराध समान होने पर भी राहु सूर्य को चिरकाल बाद और चन्द्रमा को जल्दी-जल्दी ग्रसता है, वह चन्द्रमा की मृदुता का ही स्पष्ट परिणाम है।

—माघ (शिशुपालवध, २।४६)

---

१. श्वेत केश।

सन्दर्भ्यंते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन।

कोमल चमेली के पुष्पों की माला अत्यन्त कर्कश कुश की रस्सी में नहीं पिरोई जाती।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ३।४६)

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
सीता जवात्रिचतुराणि पदानि गत्वा।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥

शिरीष के समान कोमल अंगों वाली सीता अयोध्या नगरी के पास ही तीन-चार पग चली थी कि राम से बार-बार पूछने लगीं—"अभी और कितना चलना है?", जिससे राम के नेत्रों में प्रथम बार आंसू आ गए।

—अज्ञात (साहित्यदर्पण में उद्धृत, ३।१४५ कारिका के पश्चात्)

ज्यों इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजायो।
त्यों 'हरिश्चंद' जू पंकज के दल सो सुकुमार सबै अँग भायो।
अमृत से जुग ओंठ लसे नव पल्लव सो कर क्यों है सुहायो।
पाहन सो मन होते सबै अँग कोमल क्यों करतार बनायो॥

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (प्रेम-माधुरी, ४०)

नालवानी[1] मेरी देखी तो मुसव्वर[2] ने कहा
डर है तुम भी कहीं खिंच आओ न तस्वीर के साथ।

—अकबर 'इलाहाबादी'

कोयल

कोकिलानां स्वरो रूपम्।

कोयलों का (मीठा) स्वर ही उनका रूप-सौंदर्य है।

—चाणक्य

जन्मजात कवि तुम निसर्ग प्रिय, अयि गिरि कोयल,
गाती हो स्वच्छन्द,—हृदय तन्मय उड़ेल कर।

—सुमित्रानंदन पंत (पतझर, कवि कोकिल)

कागा काको धन हरै, कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाय के, जग को वश कर लेय॥

—अज्ञात

1. सुकुमारता। 2. चित्रकार।

क्रम

ननु प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते, पश्चाद्विद्युल्लता॥

पहले तो मेघपंक्ति दिखाई देती है और बाद में विद्युत्-लता।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, २।१४)

अभ्यर्हितं पूर्वम्।

आदरणीय को पहले रखें।

—अज्ञात

क्रमशः

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां, धर्मस्य च धनस्य च॥

क्रम से जल की एक-एक बूंद गिरने पर कलश भर जाता है, यही रहस्य सभी विद्याओं, धर्म और धन के सम्बन्ध में है।

—चाणक्यनीति

क्रांति

अहिंसक प्रक्रिया में क्रांति का साध्य भी मनुष्य है और क्रांति का साधन भी मनुष्य है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २४१)

सबको खाना, कपड़ा, मकान, मिल जाना क्रांति नहीं है। जितनी ज़रूरत हो, उतना खाना मिले, कपड़े की ज़रूरतें पूरी हो जाएं, हर एक को रहने के लिए अच्छा मकान मिल जाए—यह मनुष्य को सुखी जानवर बना सकता है, लेकिन स्वतंत्र मानव नहीं बना सकता। इसलिए यह क्रांति नहीं है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २८४)

जीविका की पद्धति में और प्रतिष्ठा में जब आमूलाग्र परिवर्तन हो तब वह क्रांति कहलाती है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २८४)

क्रांति में मूल्य का परिवर्तन होगा। सबसे पहले हमें अपने जीवन में परिवर्तन करना होगा।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २८४)

सच, कर्म और चरित्र को क्रांति के बाद की चीज़ नहीं समझना चाहिए। इन्हें तो क्रांति के साथ-साथ चलना चाहिए।

—राममनोहर लोहिया (सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र-निर्माण, आवाहन, पृ० १३३)

क्रांति दूसरों को बांध कर नहीं होती, अपने को मुक्त करके होती है।

—अज्ञेय (अद्यतन, पृ० १४७)

निर्बल व्यक्ति की आहें संगठित होकर समुदाय द्वारा जनित क्रांति का रूप धारण कर सकती हैं।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० १२)

काम है मेरा बग़ावत नाम है मेरा शबाब[1],
मेरा नाम इंक़िलाबो—इंक़िलाबो—इंक़िलाब।

—'जोश' मलीहाबादी

हमने माना जंग कड़ी है सर फूटेंगे, खून बहेगा
खून में ग़म भी बह जायेंगे, हम न रहेंगे, ग़म भी न रहेगा।

—'फ़ैज़' (शीशों का मसीहा, पृ० ४६)

यदि क्रांति सफल न हो पाए तो इतिहासकार उसे 'विप्लव' और 'विद्रोह' के सम्बोधन प्रदान कर देता है। वस्तुतः सफल विद्रोह ही क्रांति कहलाता है।

—विनायक दामोदर सावरकर

अर्थहीन अकारण विप्लव की चेष्टा में रक्तपात होता है, और कोई फल प्राप्त नहीं होता। विप्लव की सृष्टि मनुष्य के मन में होती है, केवल रक्तपात में नहीं। इसी से धैर्य रखकर उसकी प्रतीक्षा करनी होती है।

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह)

जो लोग यह समझते हैं कि संसार में और सब कामों के लिए तैयारी की आवश्यकता होती है, केवल विप्लव ही ऐसा काम है जिसमें तैयारी का कोई आवश्यकता नहीं होती—उसे प्रारंभ कर देने से ही काम चल जाता है, वे चाहे और जितना कुछ जानें विप्लव तत्त्व के विषय में कुछ नहीं जानते।

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह)

क्रांतियां क्षुद्र बातों के लिए नहीं हैं किन्तु क्षुद्र बातों से उद्भूत होती हैं।

—अरस्तू (पालिटिक्स, अध्याय १)

फ्रांस की राज्यक्रांति तो कहीं अधिक बड़ी और कहीं गंभीर राज्यक्रांति की, ज़ो अंतिम होगी, अग्रदूत मात्र है··· 'समता' की मांग के लिए न्याय व प्रसन्नता की शक्तियों को संगठित होना चाहिए। हर मनुष्य के लिए महान् शरण-स्थल 'समानों का गणतंत्र' स्थापित करने की वेला आ गयी है।

—फ्रेंक्वाइ एमिली बेल्युफ़ (कांज्युरेशन द एगोक्स)

क्रान्ति आम जनता और व्यक्ति से शक्ति के संचय तथा संधान की मांग करती है।

—लेनिन ('नारी मुक्ति' लेख संग्रह, पृ० १३६)

क्रांति की आधारभूत प्रतिज्ञा यह है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था राष्ट्र के विकास की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को हल करने में असमर्थ हो चुकी है।

—ट्राट्स्की (रूसी क्रांति का इतिहास, भाग ३, अध्याय ६)

यदि तुम क्रांति का सिद्धान्त और विधियों के जिज्ञासु हो तो तुम्हें क्रांति में भाग लेना चाहिए। समस्त प्रामाणिक ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से उद्भूत होता है।

—माओ-त्से-तुंग
(जुलाई १६३७ में येनान के एक कालेज में भाषण)

यदि क्रांति करनी हो, तो उसके लिए एक क्रांतिकारी संस्था का होना अनिवार्य है।

—माओ-त्से-तुंग

In politics experiments mean revolution.
राजनीति में प्रयोगों का अर्थ है क्रांतियां।

—डिज़रायली

---

१. यौवन।

शासक वर्गों को साम्यवादी क्रांति होने पर कांपने दो। सर्वहाराओं पर अपनी बेड़ियों के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, जिसकी हानि होगी। जीतने के लिए उनके सामने एक संसार है। सभी देशों के श्रमिकों संगठित बनो।

—कार्ल मार्क्स (कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, १८४८ ई०)

The law of love and justice alone can affect a clean revolution.

स्वच्छ क्रांति तो प्रेम व न्याय के सिद्धान्त से ही हो सकती है।

—एमर्सन

क्रांतिकारी

जब कोई पूछे कि कौन हो तुम, तो कहना 'बाग़ी' यह नाम अपना।
ज़ुल्म मिटाना हमारा पेशा, ग़दर का करना यह काम अपना
नमाज़, संध्या यही हमारी, औ पाठ-पूजा भी सब यही है।
धरम-करम सब यही है भाई, यही ख़ुदा और राम अपना।

—करतारसिंह क्रांतिकारी

हम तुम्हारे मिशन को पूरा करेंगे बाग़ियों
क़सम हर हिन्दी तुम्हारे खून की खाता है आज।

—पं० जगतराम (क्रांतिकारी करतारसिंह की फांसी के समय रचित)

क्रान्तिकारी को गृहस्थी में पड़ कर अपनी शक्ति कम नहीं कर लेनी चाहिए अपितु सदैव अपनी शक्ति बढ़ाते रहने का प्रयत्न करना चाहिए, दिन पर दिन अपनी शक्ति को गहरा और विशाल बनाने का प्रयत्न करते रहना चहिए। इस काम के लिए पूरा समय चाहिए। क्रान्तिकारियों को सदा दूसरों से आगे रहना चाहिए।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

कोई क्रान्तिकारी किसी व्यक्ति-विशेष से चिपटकर नहीं रह सकता, किसी के साथ लगातार हाथ मिलाए हुए जीवन में नहीं चल सकता। ऐसा करे तो उसे अपने क्रान्तिकारी विश्वास को कम और ढीला करना होगा।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

क्रांतिकारी मंगल पांडे

मंगल पांडे ने सत्तावन के इस क्रांतियुद्ध के लिए अपना उष्ण रक्त प्रदान किया था। किन्तु इसके साथ ही साथ उसने अपना नाम भी अमिट रहने वाले अक्षरों में कर दिया। स्व-धर्म और स्वराज्य हेतु लड़े गए १८५७ के स्वातन्त्र्य-समर में भाग लेने वाले सभी क्रांतिकारियों को भी इस क्रांति के शत्रुओं ने 'पाण्डे' नाम से संबोधित किया। प्रत्येक माता का यह पावन दायित्व है कि अपने बालक को इस पवित्र नाम का स्वाभिमान सहित उच्चारण करना सिखला दे।

—विनायक दामोदर सावरकर (१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर, पृ० १११)

क्रिया

क्रिया बलवती राजन् नान्यत् किंचिद् युधिष्ठिर।

हे राजा युधिष्ठिर! क्रिया ही बलवान् है, दूसरी कोई वस्तु नहीं।

—वेदव्यास (महाभारत, शल्य पर्व, ३१।१५)

ज्ञानं भारः क्रियां बिना।

क्रिया के बिना ज्ञान भार है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१८)

क्रूर

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम्॥

हे निशाचर! जो लोक-विरोधी कठोर कर्म करने वाला है, उसे सब लोग सामने आए हुए दुष्ट सर्प की भांति मारते हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, अरण्यकाण्ड, २९।४)

क्रूर और नीच मनुष्य यदि कभी आकर नम्रता प्रकट करे तो उसे बहुत डर की बात समझना चाहिए।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १३९)

क्रूरता

'उग्रता' के साथ 'निष्ठुरता' या 'निर्दयता' के मेल से 'क्रूरता' का आविर्भाव होता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० १७८)

क्रोध

धन्याः खलु महात्मानो ये बुद्ध्या कोपमुत्थितम्।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाम्भसा॥

वे महान् पुरुष धन्य हैं जो अपने उठे हुए क्रोध को अपनी बुद्धि के द्वारा उसी प्रकार रोक देते है, जैसे दीप्त अग्नि को जल से रोक दिया जाता है।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकाण्ड, ५५।३)

वाचावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य न वाच्यं विद्यते क्वचित्॥

कुपित मनुष्य कभी इस बात का विचार नहीं करता कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं। क्रोधी के लिए कुछ भी अकार्य नही है और न कुछ अकथनीय है।

— वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकाण्ड, ५५।५)

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः।
क्रोधो ह्यसिमहातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति॥

क्रोध प्राणहारी शत्रु है। क्रोध मित्रमुख शत्रु (ऊपर से भित्र किन्तु अन्दर से शत्रु) है। क्रोध महातीक्ष्ण तलवार है तथा क्रोध सब कुछ को खीच लेता है।

—वाल्मीकि (रामायण, उत्तरकाण्ड, प्रक्षिप्त सर्ग २।२१)

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात्क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते॥
वाच्यावाच्यं हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा॥

क्रोधी मनुष्य पाप कर सकता है, क्रोधी गुरुजनों की हत्या कर सकता है, क्रोधी कठोर वाणी द्वारा श्रेष्ठ जनों का अपमान भी कर सकता है। क्रोधी मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि क्या कहना चाहिए तथा क्या नहीं। क्रोधी के लिए कुछ भी अकार्य एवं अवाच्य नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २९।४-५)

मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः।
मूर्खों को ही क्रोध होता है, ज्ञानियों को नही।

—विष्णु पुराण (१।१।१७)

अज्ञान-प्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः।
क्रोध अज्ञान से उत्पन्न होता है और अहंकार से बढ़ता है।

—भागवत (८।१९।१३)

अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरतैः।
प्रायः क्रोध से प्रेरित मूर्ख लोग अकार्य कर बैठते हैं।

—मत्स्यपुराण (१५७।३)

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।

क्रोध से कीर्ति नष्ट होती है और क्रोध स्थिर लक्ष्मी का भी नाशक है।

—मत्स्यपुराण (१५७।४)

स्निग्धं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति—
र्माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम्।
निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः
कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोप्येषं स्फुटं लक्ष्यते॥

यद्यपि आँखों से स्नेहपूर्ण भाव से देख रही हो, फिर भी उनकी कान्ति रक्ताभ हो रही है। वचन में मिठास है, फिर भी तुम्हारी यह गद्गद् वाणी रह-रहकर रुक जाती है। इन साँसों को तुमने नियंत्रित कर लिया है, फिर भी स्तनभार के उत्कम्प से साँसों का संलक्षण हो रहा है। इस प्रकार स्फुट प्रयत्नों से छिपाये जाने पर भी तुम्हारा यह कोप स्पष्ट लक्षित हो रहा है।

—हर्ष (प्रियदर्शिका, ३।१३)

अतिरोपणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः।

अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का नेत्रधारी भी अन्धा ही होता है।

— बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १२)

कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः।

कुपित व्यक्ति की पहले विद्या धुँधली हो जाती है और बाद में भृकुटि।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १२)

न हि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं वा।

क्रोध से कुलपित बुद्धि कर्त्तव्य-अकर्तव्य का विचार नहीं करती।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १२)

निर्दहति कुलमशेषं ज्ञातीनां वैरसम्भवः क्रोधः।

परिचित लोगों के वैर से उत्पन्न होने वाला क्रोध सारे कुल का नाश कर देता है।

—कृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय)

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति
धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति॥

मैं (क्रोध) भुवन को अन्धा कर देता हूँ, बहिरा कर देता हूँ, धीर और सचेतन को भी अचेतन बना देता हूँ। जिससे मनुष्य अपना करणीय नहीं देखता, हित की बात नहीं सुनता, बुद्धिमान होकर पड़े हुए को भी स्मरण नहीं कर पाता।

—कृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय)

वशिनां रुषो मतिषु नाऽसते चिरं जलविप्रुषश्च
नृप सस्यसूचिषु।

संयमी महापुरुषों की बुद्धि में क्रोध उसी प्रकार देर तक नहीं ठहर सकता जैसे धान की बाली पर पानी की बूँदें ज्यादा देर तक नहीं ठहर पातीं।

—परिमल पद्मगुप्त (नवसाहसाकंचरित, १०।४६)

अपां कणस्तिष्ठति वीचिकम्पिते
च पद्मिनी पत्रपुटोदरे चिरम्॥

जल-तरंगों से कपित कमलिनी के पत्ते पर भला चिरकाल तक कहीं पानी की बूंद टिक सकती है।

—परिमल पद्मगुप्त(नवसाहसांकचरित, १३।५७)

क्रोधान्धः परमान्ध एव हतधीर्नान्धो दृशान्धो जनः।

क्रोध से अन्धा हुआ व्यक्ति ही परमान्ध होता है क्योंकि उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। केवल नेत्र से अन्धा हुआ मनुष्य अन्धा नहीं होता।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १५।१४०)

कोपाग्निदग्धस्य क्वापि शान्तिर्न विद्यते।

क्रोधाग्नि से दग्ध व्यक्ति को शांति कही नही है।

—अचिन्त्यानन्दवर्णी (श्रीहरिलीलाकल्पतरु, ४।१०।३३)

प्रकृतिकोपस्सर्वकोपेभ्योः गरीयान्।

प्रजा का कोप सब कोपों से बड़ा होता है।

—चाणक्य (नीतिसूत्र, १३)

कियतो मरिष्यामि दुर्जनान् गमनोपमान्।
मारिते क्रोधचित्ते तु मारिताः सर्वशत्रवः॥

अनन्त दुष्टों में से मैं कितनों को मार सकूँगा किन्तु क्रोध को चित्त में मार देने से मैंने सभी शत्रु मार दिए।

—अज्ञात

आयूंषि क्षणिकानि यौवनमपि प्रायो जराध्यासितं
संयोगा विरहावसानविरसा भोगाः क्षणध्वंसिनः।
जानन्तोऽपि यथा व्यवस्थितमिदं लोकाः समस्तं जगच्—
चित्रं यद्गुरुगर्वभाविताधियः कुध्यन्ति माद्यन्ति च॥

आयु क्षणभंगुर है, यौवन भी वृद्धावस्था से आक्रान्त है, संयोग भी विरह से रस-हीन है, भोग भी क्षण भर में समाप्त होने वाले है। आश्चर्य है कि समस्त जगत् को इस प्रकार व्यवस्थित जानकर भी भारी अहंकार से आक्रान्त बुद्धि वाले मनुष्य क्रोधित होते हैं तथा मस्त होते हैं।

—अज्ञात

आत्मानमन्यमथ हन्ति जहाति धर्मं,
पापं समाचरति युक्तमपाकरोति।
पूज्यं न पूजयति वक्ति विनिन्द्यवाक्यं
किं किं करोति न नरः खलु कोपयुक्तः॥

कोप-युक्त मनुष्य अपने को तथा अन्यों को मारता है, धर्म त्याग देता है, पापाचरण करता है, उचित को दूर कर देता है, पूज्य को नहीं पूजता, निन्दा युक्त वाक्य बोलता है, क्रोध-युक्त मनुष्य क्या-क्या नहीं करता ?

—अज्ञात

अक्रोधस्य यदा क्रोधः सर्वनाशाय कल्पते ।
अक्रोधी व्यक्ति का क्रोध सर्वनाश का हेतु होता है ।
—अज्ञात

उत्तमे तु क्षणे कोपो मध्यमे घटिकाद्वयम् ।
अधमे स्यादहोरात्रं चाण्डाले मरणान्तिके ॥
उत्तम मनुष्य का क्रोध क्षणभर का ही होता है, मध्यम मनुष्य का क्रोध दो घड़ी, अधम का क्रोध एक दिन और रात तथा अतिनीच मनुष्य का क्रोध जीवन भर चलता है ।
—अज्ञात

कोवेण रक्खसो वा, णराण भीमो णरो हवदि ।
क्रुद्ध मनुष्य राक्षस की तरह भयंकर बन जाता है ।
—भगवतीआराधना (१३६१)

कठ्ठस्मिं मन्थमानस्मिं पावको नाम जायति
तं एवं कट्ठं डहति यस्मा सो जायते गिनि ॥
एवं मन्दस्स पोस्सस्स बालस्समविजानतो
सारंभा जायते कोधो सोपितेनेव डहति ॥
लकड़ी की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होती है । वह अग्नि उसी लकड़ी को जला देती है, जिससे उत्पन्न होती है । इसी प्रकार जो मन्दबुद्धि है, जो मूर्ख है, जो अज्ञानी है, ऐसे मनुष्य के खींचतान करने से क्रोध उत्पन्न होता है । वह उसी क्रोध से जलता है ।
[पालि] —जातक (चुल्लबोधि जातक)

कोधो वुच्चति धूमो ।
क्रोध मन का धुआँ है ।
[पालि] चुल्लानिद्देसपालि (२।३।१७)

रिसि आपुहि बुधि औरहि खाई ।
—जायसी (पद्मावत, ९०)

लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२७७)

गरजति कहा तरजिनिन्ह तरजति,
बरजत सैंन नैंन के कोए ।
क्या गरज रही हो ? और तर्जनी अंगुली दिखाकर डाँट रही हो और फिर नेत्र के कोए से संकेत करके मना भी कर रही हो ।
— तुलसीदास (श्रीकृष्णगीतावली, पद ११)

क्रोध के लक्षण शराव और अफीम दोनों से मिलते हैं । शराबी की भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले आवेशवश लाल-पीला होता है । फिर यदि आवेश के मन्द पड़ जाने पर भी क्रोध न घटा हो तो वह अफीम का काम करता है और मनुष्य की बुद्धि को मन्द कर देता है । अफ़ीम की तरह वह दिमाग़ को कुतर कर खा जाता है ।
—महात्मा गांधी (नवजीवन, २०-१०-१९२९)

गुस्सा करने का मतलब है थोड़ा पागल होना ।
—महत्मा गांधी (प्रार्थना-प्रवचन, ५ जून १९४७)

गुस्सा एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है ।
—महात्मा गांधी (गांधी वाणी, पृ० ९०)

वही चीज़ एक निगाह से देखें, ग़ुस्सा आता है । दूसरी निगाह से देखें, हँसी आती है । क्या अच्छा यह नहीं कि हम न ग़ुस्सा करें, न हँसें ?
—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २१९)

ग़ुस्सा किस पर करना ? अपने पर ? यह तो रोज़ करो । दूसरों पर ? यह तो करने का कारण ही क्यों ?
—*महात्मा गांधी* (बापू के आशीर्वाद, ५२५)

क्रोध और वैर का भेद केवल कालकृत है । दुःख पहुँचने के *साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा करने वाला* मनोविकार क्रोध है और कुछ काल बीत जाने पर प्रेरणा करने वाला भाव वैर है ।
—रामचन्द्र शुक्ल, (चिंतामणि, भाग १, पृ० १३८)

वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है ।
—रामचन्द्र शुक्ल, (चिंतामणि, भाग १, पृ० १३८)

क्रोध का एक हलका रूप है चिड़चिड़ाहट, जिसकी व्यंजना प्रायः शब्दों ही तक रहती है ।
—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १३९)

न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होता है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जाँचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौक़ा मिलता है । इस कड़वी दवा से अकसर अनुभव को शक्ति, दृष्टि को व्यापकता और चिंतन को सजगता प्राप्त होती है ।
—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० ९८)

व्यंग्य और क्रोध में आग और तेल का सम्बन्ध है।
—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद १०)

क्रोध अत्यन्त कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक-एक वाक्य निशाने पर बैठता है या नहीं, वह मौन को सहन नहीं कर सकता। उसकी शक्ति अपार है। ऐसा कोई घातक-से-घातक शस्त्र नहीं है, जिससे बढ़कर काट करने वाले यंत्र उसकी शस्त्रशाला में न हों; लेकिन मौन वह मंत्र है जिसके आगे उसकी सारी शक्ति विफल हो जाती है। मौन उसके लिए अजेय है।
—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ३२)

क्रोध में आदमी अपने मन की बात नहीं करता, वह केवल दूसरे का दिल दुखाना चाहता है।
—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम, पृ० २७)

क्रोध निरुत्तर होकर पानी हो जाता है।
—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १०५)

तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा, जिसकी तरलता के साथ, मिट्टी ही नहीं, पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती है।
—महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, पृ० ४८)

क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है बसा तुम्हारे घर में।
हो सकते हो उसे जीत कर विजयी तुम जग भर में।।
—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पृ० ५६)

अपने तें जे छुद्र अति, तिहिं पै करिउ न क्रोध।
किहूँ भाँति सोहत नहीं, केहरि ससक विरोध।।
—रामचरित उपाध्याय

लोहा भले ही गरम हो जाय, परन्तु हथौड़े को तो ठंडा ही रहना चाहिए। हथौड़ा गरम हो जाय तो अपना ही हत्था जला देगा। आप ठंडे ही रहिए। कौन-सा लोहा गरम होने के बाद ठंडा नहीं होता? कोई भी राज्य प्रजा पर कितना ही गरम क्यों न हो जाय, उसे अन्त में ठंडा होना ही पड़ेगा।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १५२)

लाल-लाल आँखों से देखने से कोई अच्छी चीज नहीं होती। इससे न विचार साफ़ हो सकते है, और न हमारे कर्म।
—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, प्रथम खंड पृ० २०२)

पाँच मिनट का क्रोध जन्म भर की मित्रता को नष्ट कर देता है।
—ठाकुर कल्याण सिंह (भाग्य-निर्माण, पृ० १६८)

खिसियानी बिल्ली, खंभा नोचे।
—हिंदी लोकोक्ति

रूठी आहें घोट सां, गाल्हाए न थी गोठ सां।
पति से रूठी, गाँव से बोलती नहीं।
—सिंधी लोकोक्ति

कोपमुननु ब्रदुकु कोंचेमै पोवुनु
कोपमुननु गुणमु कोरत वडुनु।
कोपमुननु नरक कूपमु जेंदुनु।।

क्रोध सब अनर्थों की जड़ है। उससे मनुष्य-जीवन में हल्कापन आ जाता है। क्रोध के कारण गुण भी अवगुण बन जाते हैं। अतः क्रोधी व्यक्ति नरक-कूप में गिर जाता है।
—वेंमना

क्रोधमु तपमुं जेरचुनु
ग्रोधमु याणिमादुलैन गुणमुल बापुं
ग्रेधमु धर्म क्रियलकु
बाधयगुं ग्रोधिगा दपस्विकि जन्न।

क्रोध तपस्या को भंग करता है। क्रोध अणिमा, महिमा आदि सद्गुणों का नाश करता है। क्रोध धर्म-क्रियाओं में बाधा पहुंचाता है। तपस्वी को क्रोध अच्छा नहीं लगता है।
[तेलुगु] —नन्नया (आदिपर्व)

कोई स्वयं अपनी रक्षा करना चाहे तो क्रोध से रक्षा करे। अन्यथा क्रोध ही उसे मार डालेगा।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३०५)

क्रोध चाण्डाल है। क्या कभी क्रोध के वशीभूत होना चाहिए? सज्जन व्यक्ति का क्रोध जल के दाग की तरह उठते ही शान्त हो जाता है। हीन बुद्धि वाले न जाने कितनी बातें कहते हैं। ऐसे विषयों पर लड़ते-झगड़ते रहने से तो जीवन ही नष्ट हो जाता है।
—रामकृष्ण परमहंस

एक गुस्सा था रुके हुए पानी की तरह जिसके निकलने की कोई राह नहीं थी, इसलिए जहाँ वह रुका हुआ था, उन दीवारों को ही चाट रहा था।

—अमृता प्रीतम (जेबकतरे, पृ० ४६)

कोई भी व्यक्ति क्रुद्ध हो सकता है—यह सरल है। लेकिन सही व्यक्ति पर, सही मात्रा में, सही समय पर, सही उद्देश्य के लिए और सही ढंग से क्रुद्ध होना प्रत्येक की सामर्थ्य में नहीं है और न सरल है।

—अरस्तू (निकोमैकियन एथिक्स)

क्रोध, मूर्ख को मारता है और ईर्ष्या, बुद्धिहीन को।

—पूर्वविधान (जाब, ५।२)

हर मनुष्य सुनने के लिए तत्पर, बोलने में धीमा और क्रोध में धीमा होवे क्योंकि मनुष्य का क्रोध ईश्वर के धर्माचार का निर्वाह नहीं कर सकता।

—नवविधान (जेम्स, १।१६-२०)

Men in rage strike those that wish them best.

क्रुद्ध मनुष्य उन्हें आघात पहुँचाते हैं जो उनके सर्वोत्तम हितैषी होते हैं।

—शेक्सपियर (ओथेलो, २।३)

To be angry is to revenge the fault of others upon ourselves.

क्रुद्ध होने का अर्थ है दूसरों की ग़लतियों का स्वयं से प्रतिशोध लेना।

—अलेक्ज़ेंडर पोप (थाट्स ऑन वेरियस सब्जेक्टस)

क्लेश

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।

फल-प्राप्ति होने पर क्लेश पुनः नयी स्फूर्ति ला देता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।८६)

क्षण

आपदः क्षणमायान्ति संपदः क्षणमेव च।
क्षणं जन्माथ मरणं मुने किमिव न क्षणम्॥

क्षण भर में आपत्तियाँ आ जाती हैं और क्षण भर में संपत्तियाँ, क्षण भर में जन्म होता है और क्षण भर में मरण। हे मुनि! क्षण भर में क्या नहीं होता?

—अज्ञात

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स चेन्निरर्थकं नीतिः का नु हानिस्ततोऽधिका।

आयु का एक क्षण भी करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से प्राप्त नहीं किया जा सकता, उसे यदि निरर्थक बिता दिया तो उससे बड़ी हानि क्या है!

—अज्ञात

जीवन की गहराई की अनुभूति के कुछ क्षण ही होते हैं, वर्ष नहीं। परन्तु यह क्षण निरंतरता से रहित होने के कारण कम उपयोगी नहीं कहे जा सकते।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण)

क्षणभंगुरता

नेह ध्रुवं किंचन जातु विद्यते।
लोके ह्यस्मिन् कर्मणोऽनित्ययोगात्॥

निश्चय ही इस संसार में कर्मों के अनित्य सम्बन्ध से कभी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती है।

—वेदव्यास (महाभारत, द्रोण पर्व, २।६)

कायः सन्निहितापायः संपदः पदमापदाम्।
समागमाः सापगमाः सर्वं पर्यन्तभंगुरम्॥

शरीर के लिए नाश अत्यन्त समीप है। सम्पत्ति आपत्ति का घर है। संयोग वियोग से मिला हुआ है। इस प्रकार सभी कुछ अन्त में क्षणभंगुर है।

—अज्ञात

क्षणवाद

यत् सत् तत् क्षणिकम्।

जिसकी सत्ता है, वह क्षणिक है।

—ज्ञानश्री ('सर्वदर्शनसंग्रह' में उद्धृत)

क्षणिकता

अभिच्छाया तृणादग्निः पराधीनं च यत् सुखम् ।
अज्ञानेषु च वैराग्यं क्षिप्रमेतद् विनश्यति ॥

बादलों की छाया, तिनके की अग्नि, पराधीनता का सुख तथा अज्ञान से वैराग्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

—अज्ञात

जीवन कितना है ? दो दिन का;
मिलन सदा होता दो दिन का।

—सोहनलाल द्विवेदी (चित्रा, पृ० ४७)

क्षत्रिय

क्षत्रात्परं नास्ति, तस्माद् ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्ताद् उपासते राजसूयेः, क्षत्त्र एव तद्यशो दधाति ।

क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं है। इसी से राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठकर क्षत्रिय की उपासना करता है। वह क्षत्रिय में ही अपने यश को स्थापित करता है।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (१।४।११)

क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ।

क्षत्रिय युद्ध में मारा जाए तो वह शोक के योग्य नहीं है, यह निश्चित बात है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, १०९।१८)

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ।

धर्म-युद्ध से बढ़कर अन्य कल्याणकारक कर्त्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।३१ अथवा गीता, २।३१)

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत् ।

खाट पर मरना क्षत्रिय के लिए अधर्म है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ९७।२३

बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः पुत्रापेक्षी वंच्यते सन्निधाता ।

क्षत्रियों की सम्पत्ति उनके बाणों पर निर्भर है। जो क्षत्रिय अपने पुत्र के लिए धन जोड़ता है वह ठगा जाता है।

—भास (पञ्चरात्र, १।२४)

न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् ।

वीर क्षत्रिय को अपनी प्रतिज्ञा शिथिल करना ठीक नहीं है।

—भट्टनारायण (वेणी संहार, ६।१६ से पूर्व)

सभी लोग हिंसा का त्याग कर दें तो फिर क्षात्रधर्म रहता ही कहाँ है ? और यदि क्षात्रधर्म नष्ट हो जाता है तो जनता का कोई त्राता नहीं रहेगा।

—लोकमान्य तिलक (गीतारहस्य, पृ० ३२)

लड़ते हुए मर जाना जीत है, धर्म है। लड़ने से भागना पराधीनता है, दीनता है। शुद्ध क्षत्रियत्व के विना शुद्ध स्वाधीनता असम्भव है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, ९-१-१९३०)

घोड़ां घर ढालाँ पटल, भालाँ थंभ वणाय ।
जो ठाकर भोगै जमी, और किसूँ अपणाय ॥

जो ठाकुर घोड़ों को अपना घर, ढालों को छत और भालों को खभे बनाता है, वह भूमि का उपभोग करता है, उसे दूसरा कौन अपना सकता है ?

[राजस्थानी] —सूरजमल

क्षमा

अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा ।

स्त्री अथवा पुरुष के लिए क्षमा ही अलंकार है।

—वाल्मीकि (रामायण, बालकांड, ३३।७)

यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति ।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः ।

वत्स ! जो सदा क्षमा ही करता है, उसे अनेक दोष प्राप्त होते हैं उसके भृत्य, शत्रु तथा उदासीन सभी उसका तिरस्कार करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २८।७)

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञ क्षमा वेदा क्षमा श्रुतम् ।

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है तथा क्षमा शास्त्र है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २९।३६)

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते
यदेदं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः।
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ॥

क्षमाशील पुरुषों में एक ही दोष का आरोप होता है। दूसरे की तो सम्भावना ही नहीं है। दोष यह है कि क्षमाशील को लोग असमर्थ समझ लेते हैं किन्तु क्षमाशील का वह दोष नहीं मानना चाहिए क्योंकि क्षमा में बड़ा बल है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४७-४८)

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां भूषणं क्षमा।

क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थ मनुष्यों का भूषण है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४९)

यः समुत्पतितं कोपं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥

जो मनुष्य अपने उत्पन्न क्रोध का क्षमा द्वारा उसी प्रकार निराकरण कर देता है जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुली का, वही सच्चा पुरुष कहा जाता है।

—मत्स्यपुराण (२८।४)

मूढस्य सततं दोषं क्षमां कुर्वन्ति साधवः।

सज्जन मूर्ख के दोष को सदा क्षमा कर देते हैं।

—ब्रह्मवैवर्तपुराण

क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्।

क्षमा तो सब तपस्याओं का मूल है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १२)

कः कोपो नश्वरस्यास्य देहस्यार्थे मनस्विनः।
प्रियाप्रियेषु साम्येन क्षमा हि ब्रह्मणः पदम् ॥

प्रिय तथा अप्रिय दोनों में ही सम-भाव होने के कारण मनस्वी पुरुष को इस नश्वर देह के निमित्त क्रोध कैसा ? क्षमा ब्रह्मपद है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ६।२)

क्षमाविहीनेन विधीयते यत्पुण्यं भवेदेव निरर्थकं तत्।

क्षमाहीन व्यक्ति जो भी पुण्य करता है, वह निरर्थक होता है।

—अचिन्त्यानन्दवर्णी (श्रीहरिलीलाकल्पतरु, ४।१०।४७)

क्षमाधनुः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥

जिसके हाथ में क्षमारूपी धनुप है, दुर्जन व्यक्ति उसका क्या कर लेगा ? अग्नि में तृण न डाला जाए, तो वह स्वयं ही बुझ जाती है।

—अज्ञात

द्वेमे, भिक्खवे, बाला। यो च अच्चयं अच्चयतो न पस्सति,
यो चे अच्चयं देसेंतस्स यथा धम्मं नप्पटिग्गण्हाति।

भिक्षुओं ! दो प्रकार के मूर्ख होते हैं—एक वह जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखता है, और दूसरा वह जो दूसरे के अपराध स्वीकार कर लेने पर भी क्षमा नहीं करता है।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।११।२४)

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि।

जिसके बिना जीना संभव नहीं, उससे अपराध होने पर भी उसे क्षमा कर देते है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, २।६३)

छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन को उत्पात।

—रहीम (दोहावली, ५५)

दंड देने की शक्ति होने पर भी दंड न देना सच्ची क्षमा है।

—महात्मा गांधी (सर्वोदय, ९८)

क्षमा पर मनुष्य का अधिकार है, वह पशु के पास नहीं मिलती।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

क्षमा और उदारता वही सच्ची है, जहाँ स्वार्थ की भी बलि हो।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, चतुर्थ अंक)

सब स्थानों पर क्षमा की एक सीमा होती है।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, चतुर्थ अंक)

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो ?

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग)

रोक लो गर[1] ग़लत चले कोई
बख़्श[2] दो, गर ख़ता[3] करे कोई।

—गालिब (दीवान)

क्षमा शस्त्र जयां नराचिया हातीं।
दुष्ट तया प्रति काय करी॥
तृण नाहीं तेथें पडिला दावाग्नि
जाय तो विझोनिआपसाय॥

जिस मनुष्य के हाथ में क्षमारूपी शस्त्र हो, उसका दुष्ट क्या बिगाड़ सकता है ? यदि दावाग्नि में तृण न पड़े, तो वह स्वयं ही बुझ जाती है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३९९५)

जब तक इस संसार से पाप बिलकुल ही मिटा न दिया जावेगा, जब तक मनुष्य का मन पत्थर न बन जायगा, तब तक इस पृथ्वी में अन्याय-मूल भ्रांति होती ही रहेगी और उसे क्षमा करके प्रश्रय भी देना ही पड़ेगा।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन, पृ० २८६)

क्षमा का फल क्या सिर्फ़ अपराधी को ही मिलता है ? जो क्षमा करता है, उसे क्या कुछ भी नहीं मिलता ?

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० २६६)

संसार में ऐसे अपराध कम नहीं हैं जिन्हें हम चाहें और क्षमा न कर सकें।

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० २६६)

यह मैं नहीं मानता कि मन ही मन क्षमा चाहने की अपेक्षा प्रकट रूप से क्षमा माँगना ही हर हालत में सबसे बड़ी बात है।

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० २०-२१)

१. यदि। २. क्षमा। ३. अपराध।

हे पिता[1] ! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

—नवविधान (लूका, २३।३४)

जो धैर्य रखे और क्षमा कर दे, तो निश्चय ही यह बड़े साहस के कामों में से है।

—कुरान (४२।४३)

भगवान भले ही पापों को क्षमा कर दे किन्तु स्नायु-संस्था हमें किसी भी भूल के लिए क्षमा नहीं करती।

—विलियम जेम्स

Good to forgive;
Best, to forget.

क्षमा करना अच्छा है। भूल जाना सर्वोत्तम है।

—राबर्ट ब्राउनिंग (ला सैसियाज़, समर्पण)

To err is human, to forgive divine.

ग़लती करना मानवीय है किन्तु क्षमा करना दिव्य है।

—अलेक्ज़ेंडर पोप (ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज़्म)

It is easier to forgive an enemy than to forgive a friend.

मित्र को क्षमा करने की अपेक्षा शत्रु को क्षमा कर देना सरल है।

—विलियम ब्लेक (व्हाट गाड इज़)

क्षमा और दया

वास्तव में क्षमा मानवीय भावों में सर्वोपरि है। दया का स्थान इतना ऊँचा नहीं। दया वह दाना है जो पोली धरती पर उगता है। इसके प्रतिकूल क्षमा वह दाना है जो काँटों में उगता है। दया वह धारा है, जो समतल भूमि पर बहती है, क्षमा कंकड़ों और चट्टानों में बहने वाली धारा है। दया का मार्ग सीधा और सरल है, क्षमा का मार्ग टेढ़ा और कठिन है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद २०)

क्षुद्रता

सम्पत्कणिकामपि प्राप्य तुलेव लघुप्रकृतिरुन्नतिमायाति।

छोटी प्रकृति के लोग सम्पत्ति के कण को भी पाकर तराजू के समान ऊपर को उठ जाते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ११६)

१. ईश्वर।

न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।

क्षुद्र प्राणी अपनी ग्रहण की हुई वस्तु की तुच्छता को नहीं समझ पाता।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ९)

अगाधजलसंचारी विकारी न च रोहितः।
गण्डूषजलमात्रे तु शफ़री फर्फरायते॥

अथाह जल में विचरण करने वाली रोहू मछली विकार को प्राप्त नहीं होती, लेकिन छोटी-मोटी मछली चुल्लू भर पानी में भी फड़फड़ाती है।

—अज्ञात

तुष्टे सति न लाभाय रुष्टे नाशाय नैव च।
प्रज्वलितानि शष्पाणि नांगाराय न भस्मने॥

क्षुद्र व्यक्ति यदि प्रसन्न हो जाए तो उससे किसी को लाभ नहीं होता और यदि वह रुष्ट हो जाए तो उससे किसी को हानि नहीं होती। वह उस घास के समान है जो जलने पर न कोयला होती है न राख।

—अज्ञात

सणन्ता यन्ति कुसोब्भा, तुण्ही याति महोदधि।

छोटी नदियाँ शोर करती हैं और बड़ी नदियाँ शान्त चुपचाप बहती हैं।

[पालि] —सुत्तनिपात (३।३७।४२)

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं।
बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस ५।२३।३)

रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो जात है कहुँ चूहे के चाम॥

—रहीम (दोहावली, १८१)

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दुहूँ भाँति बिपरीति॥

—रहीम (दोहावली, १६६)

कवौं न ओछे नरन सों, सरत बड़न को काम।

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६२४)

हमें जिस पाप ने घेर रखा है, वह हमारा मतभेद नहीं बल्कि हमारा ओछापन है। हम शब्दों पर झगड़ा करते हैं। कई बार तो हम परछाई के लिए लड़ते हैं और मूल वस्तु को खो बैठते हैं।

— महात्मा गांधी (अरुंडेल को पत्र, ४।८।१९१९)

ओछे की प्रीत, बालू की भीत।

—हिंदी लोकोक्ति

ओछे के घर खाना, जनम-जनम का ताना।

—हिंदी लोकोक्ति

रक़बा[1] तुम्हारे गाँव का मीलों हुआ तो क्या
रक़बा तुम्हारे दिल का तो दो इंच भी नहीं।

—अकबर इलाहाबादी

नीचें लोक उच्च पदपाय,
टेंरीयाकै पाग मारि घुरि घुरि जाय।

नीच व्यक्ति को उच्च पद मिलने पर वह टेढ़ी पगड़ी बाँधकर मुड़-मुड़कर देखता है।

— असमिया लोकोक्ति

Little things affect little minds.

क्षुद्र बातें क्षुद्र मनों को प्रभावित करती हैं।

—डिज़रायली (सिबिल, ३।२)

क्षोभ

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्नि—
विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं
क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः॥

अग्नि लकड़ियों को हिला देने से प्रज्वलित हो जाती है। साँप छेड़ने पर अपना फन फैलाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी प्रायः क्षोभ से अपने पराक्रम को प्राप्त होता है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ६।३१)

---

१. क्षेत्रफल।

ख

खतरा

ख़तरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुंजी है।

—प्रेमचंद (गुप्तधन भाग २, पृ०५२)

Danger past, God is forgotten.

ख़तरा टलते ही ईश्वर का विस्मरण हो जाता है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया, १२३४)

Dangers by being despised grow great.

ख़तरों से घृणा की जाए तो वे और बड़े हो जाते हैं।

—एडमंड बर्क (यूनिटेरियनों के पेटीशन पर भाषण, १७९२ ई.)

खांसी

हँसते ठाकुर खँसते चोर[1], इन दोनों का आया ओर[2]।

—हिंदी लोकोक्ति

खादी

खादी मानवीय मूल्यों की प्रतीक है, जबकि मिल का कपड़ा केवल भौतिक मूल्य प्रकट करता है।

—महात्मा गांधी (खादी)

खादी मजदूरों की सेवा करती है, मिल का कपड़ा उनका शोषण करता है।

—महात्मा गांधी (खादी)

खादी की जड़ सत्य और अहिंसा में है।

—महात्मा गांधी (खादी)

खादी द्वारा कला की—जीवित कला की—उपासना होती है।

—विनोबा

खद्दर अति को खरखरो, तऊ नेह को गेह।
पर-चरवी चखि चाटि कै, करी न चिकनी देह।

—किशोरीदास वाजपेयी (तरंगिणी, पृ० २४)

खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा,
माँ-बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा।

—सोहनलाल द्विवेदी (भैरवी)

खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी
कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी !

—सोहनलाल द्विवेदी (भैरवी)

खेद

यद्यपि का नो हानिः परकीयां रासभो चरति द्राक्षाम्।
असमंजसमिति मत्वा तथापि नो खिद्यते चेतः॥

किसी दूसरे के अंगूरों को गधा खा रहा है तो यद्यपि हमारी कोई हानि नहीं है तथापि असमंजस-सा प्रतीत होकर चित्त को खेद होता ही है।

दिल में यही मलाल था उनको न पा सके
अब यह मलाल है कि तमन्ना निकल गई।

—अज्ञात

हाफ़िज़ अज बादे खिजां दर चमन दहर मरंज
फ़िक्रे माक़ूल ब-फ़रमाँ गुले बेख़ार कुजास्त।

जमाने के उपवन में पतझड़ की हवा पर खेद मत कर। सत्य बात सोच कि बिना काँटे का पुष्प कहाँ है?

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान हाफ़िज़, पृ० ५३)

१. हंसोड़ राजा और खाँसी से पीड़ित चोर। २. अंत।

खेल

बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारु होइ न पराएँ हाथा।
आजुहि खेल बहुरि कित होई। खेल गएँ कत खेलै कोई।

—जायसी (पदमावत, ६३)

धनि सो खेल खेलहि रस पेमा। रौताई और कूसल खेमा।

वह खेल धन्य है जो प्रेम रस से खेला जाए। ठकुराई और कुशल क्षेम साथ-साथ नहीं रहती।

—जायसी (पदमावत, ६३)

कत नैहर फिर आइब, कत ससुरें यह खेल।
आपु-आपु कहँ होइ है, ज्यों पांखिन महँ डेल।।

—जायसी (चित्ररेखा, २०)

मुझे लगता है कि गेंद-बल्ला या बाल-बैट इस ग़रीब देश के लिए ठीक नहीं। हमारे देश में निर्दोष और कम ख़र्च वाले बहुत से खेल है।

—महात्मा गांधी (भागलपुर में १७ अक्तूबर १६१७ का भाषण)

खेलो ताकि तुम गंभीर बन सको।

—अनाकार्सिस (अरस्तू द्वारा उद्धृत)

खेल में हम प्रकट कर देते हैं कि हम किस प्रकार के लोग है।

—ओविड

The Battle of Waterloo was won on the playing-fields of Eton.

वाटरलू का युद्ध एटन के खेल के मदानों पर जीता गया था।

—आर्थर वेलेज़ली

To the art of working well a civilized race would add the art of playing well.

अच्छी प्रकार कार्य करने की कला में सभ्य जाति अच्छी प्रकार खेलने की कला भी जोड़ देती है।

—जार्ज सांतायना (लिटिल एसेज़, ६१)

We are inclined to think that if we watch a football game or a baseball game we have taken part in it.

हमारी यह सोचने की प्रवृत्ति होती है कि यदि हम फ़ुटबाल या बेसबाल का खेल देख रहे हैं तो हमने उसमें भाग भी ले लिया है।

—जान एफ़ केनेडी (एक साक्षात्कार में, ३१ जनवरी १६६१)

In America, it is sport that is the opiate of the masses.

अमरीका में तो खेल ही जनता की अफ़ीम हैं।

—रसेल बेकर (दि न्यूयार्क टाइम्स, ३ अक्तूबर १६६७ में लेख)

खोटा मनुष्य

सूरदास जे मन के खोटे, अवसर परे जाहिँ पहिचाने।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४३६६)

रहिमन खोटो आदि को सो परिनाम लखाय।
ज्यों दीपक तम को भखै कज्जल वमन कराय।।

—रहीम (दोहावलि)

ग

गंगा

यत्र गंगा महाराज स देशस्तत् तपोवनम् ।
सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गंगातीरसमाश्रितम् ॥

महाराज ! जहां गंगा बहती है, वही उत्तम देश है और वही तपोवन है। गंगा के समीपवर्ती स्थान को सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ८५।९७)

यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा।
सुधा यथा च नागानां तथा गंगाजलं नृणाम् ॥

जिस प्रकार देवताओं को अमृत, पितरों को स्वधा (हवि की आहुति) तथा नागों को सुधा तृप्तिकारक है, उसी प्रकार मनुष्यों को गंगाजल तृप्तिकारक है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, २६।४९)

दर्शनात् स्पर्शनात् पानात् तथा गंगेति कीर्तनात् ।
पुनात्यपुण्यान् पुरुषांछतशोऽथ सहस्रशः ॥

दर्शन से, स्पर्श से, जलपान करने तथा नाम कीर्तन से सैकड़ों तथा हजारों पापियों को गंगा पवित्र कर देती है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, २६।६४)

नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः ।

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है और माता के समान कोई गुरु नहीं है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ६।५६)

नमस्तेऽस्तु गंगे त्वदंगप्रसंगाद् भुजंगास्तुरंगा कुरंगाः प्लवङ्गाः।
अनंगारिरंगाः ससंगाः शिवांगा भुजंगाधिपांगी कृतांगा भवन्ति।

हे गंगे! तुम्हारे शरीर के संसर्ग से साँप घोड़े, हरिण और बंदर आदि भी कामारि शिव के समान वर्ण वाले, शिव के संगी और कल्याणमय शरीर वाले होकर, अंग में भुजंगराजों को लपेटे हुए सानंद विचरते हैं, अतः तुमको नमस्कार है।

—कालिदास (गंगाष्टक)

तीर्थं गंगा तदितरदपां निर्मलं संघमात्रं
देवो तस्याः प्रसवनिलयो नाकिनोऽन्ये वराकाः।
सा यत्रास्ते स हि जनपदो मृत्तिकामात्रमन्यत्
तां यो नित्यं नमति स बुधो बुद्धिशून्यस्ततोऽन्यः ॥

तीर्थ तो केवल गंगा है, उसके अतिरिक्त नदियाँ तो निर्मल जल का समूह मात्र है। उसकी उत्पत्ति साक्षात् विष्णु से हुई है, अन्य बेचारे देवता तो स्वर्ग के हैं। जहाँ वह है, वही जनपद है, शेष तो मिट्टी मात्र हैं। उसको जो नित्य नमन करता है, वही विद्वान् है, अन्य तो बुद्धिशून्य हैं।

—अज्ञात

अगा गांगांगकाकाक गाहकाघककाकहा।
अहाहांक खगांकागकंकागखगकाकका ॥[1]

गंगा के जल के सशब्द तिर्यक् प्रवाह में स्नान करने वाले संसार-तापकृत हा-हा शब्द से अपरिचित, सुमेरुपतिपर्यन्त जाने में समर्थ, कुटिल इन्द्रियों के वश में न रहने वाले, पाप-रूपी कौओं को नष्ट करने वाले आप स्वर्ग को जाओगे तथा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करोगे।

—अज्ञात

गंग सकल मुद मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस, २।८७।२)

हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ फरित ॥
सोहत ससि धवल धार सुधा सलिल-भरित।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर के से चरित ॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १९)

---

1. केवल कण्ठ्य वर्णों का प्रयोग है।

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गंगा तुमरी साँच बड़ाई।
एक सगर-सुत-हित जग आई तार्‌यौ नर समुदाई॥
....
नाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई।
'हरीचन्द' याही तें तो सिव राखी सीस चढ़ाई॥

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (कृष्ण-चरित्र, ३७)

आरा है अनूप काटिबे कौं पाप-डारा अरु,
गंग-धुनि धारा जम-धार कौं दुधारा है॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (गंगा लहरी, १७)

गंगा की पवित्रता में कोई विश्वास नहीं करने जाता। गंगा के निकट पहुँच जाने पर अनायास, वह विश्वास पता नहीं कहाँ से आ जाता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ध्वज, पृ० ७६)

सेवक तीर पै ठाढ़ो भयो पद द्वै वहि विष्णुता गंग दई है।
न्हात समय सिर ते कढ़ी ता छन शंकर लौं शुभ शोभा भई है।
बाहर आये पढ़े श्रुति मंत्र तबै विधि को पद साँचो हुई है।
आय त्रिगामिनि तीर त्रितापिहु होत सदेह त्रिदेवमयी है।

—मुंशी कालीचरन 'सेवक'

भारत की तो गंगा प्राण है, शोभा है, वरंच सर्वस्व है।

— प्रतापनारायण मिश्र (प्रतापनारायण ग्रंथावली, भाग १, पृ० ११०)

और वह नदी! वह लहराता हुआ नीला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझाने वाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्रोत! वह मुट्ठीभर ख़ाक को आश्रय देने वाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी।

—प्रेमचंद (गुप्तधन भाग १, पृ० १४३)

गंगा तो विशेष कर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ और उसके भय, उसके विजयगान, उसकी विजय और पराजय! गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है, निशानी रही है, सदा बलवती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा।

—जवाहरलाल नेहरू (२१ जून १९५४ की वसीयत)

Indeed, it would be difficult to live long beside the Ganges and not fall under the spell of her personality.

निस्सन्देह गंगा के तट पर, बहुत समय तक रहना और उसके व्यक्तित्व के जादू से प्रभावित न होना कठिन बात है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज़ वर्क्स, खंड २, पृ० ४)

गंगा-यमुना

जमना के हैं गले में गंगा की आह! बाँहें,
गंगा से रो रही है जमना लिपट लिपट कर।

—'सुरूर' जहानाबादी (जामे सुरूर, पृ० ९६)

गंभीरता

तोयदाः खलु जलं जलधीनां
बिभ्रतोऽपि न तथापि गंभीराः॥

यह सत्य है कि बादल समुद्रों का जल पीकर ही पुष्ट होते हैं, तथापि वे उसकी गंभीरता को नहीं पाते हैं।

—धनंजय (द्विसंधान महाकाव्य, १०।४)

मुहमद नीर गंभीर जो सो नै[1] मिलै समुंद।
भरे ते भारी होइ रहे छूँछे बाजहिं दुंद[2]॥

—जायसी (पदमावत, ५५१)

ता कूदकान् बयाबुर्दम्—दिगर कूदकी न करदम्।
जब से बच्चे हुए तब से बचपन नहीं करता हूँ।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, छठा अध्याय)

---
१. झुककर   २. दुंदुभि, नगाड़ा

गमन गम्भीर वचन गम्भीर
गम्भीर नाभि-कमल।
एहि त्रिगंभीर स्मरणे कृष्ण
मिलिय महामंगल।

व्यवहार में गंभीरता, वचन में गंभीरता और भावों में गंभीरता—इन तीन गंभीरताओं के साथ कृष्ण का स्मरण करें तो महामंगल मिलेगा।

[असमिया] —माधवदेव (नवघोषा २६।१७१।४३३)

फडकडीत विजेचे कल्लोळ।
तेणें गगनासि नसे खळबळ।
तैसा नाना ऊर्मी माजी निश्चल।
गांभीर्य केवळ या नांव॥

चाहे जितनी बिजली तड़पे पर आकाश में कभी खलबली नहीं मचती। विविध लहरों में निश्चलता, यही समुद्र का सच्चा गांभीर्य है।

[मराठी] —एकनाथ

निडुटेरु निलिचि पारनु।

भरी नदी शांत बहती है।

—तेलुगु लोकोक्ति

The gods approve
The depth, and not the tumult of the soul.

देवगण आत्मा के शोर को नहीं, गहराई को पसन्द करते हैं।

—वर्ड्सवर्थ (लाओडेमिया)

गणित

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि स्थितम्॥

जैसे मयूरों की शिखा और नागों की मणियां सिर पर होती हैं उसी प्रकार वेदांगों व शास्त्रों के शीर्ष पर गणित स्थित है।

—वेदांगज्योतिष (श्लोक ४)

Mathematics stands forth as that which unites, mediates between Man and Nature, inner and outer world, thought and perception, as no other subject does.

गणित ऐसा विषय है जो एकता स्थापित करता है तथा मनुष्य और प्रकृति, आंतरिक और बाह्य जगत्, विचार और प्रत्यक्ष ज्ञान में मध्यस्थता करता है जैसाकि अन्य कोई विषय नहीं करता है।

—फ़्रेबल (हरफ़ोर्ड ट्रांसलेशन)

To think the thinkable that is the mathematician's aim.

जो कुछ भी चिंतनीय है, उस पर चिंतन किया जाए—यही तो गणितज्ञ का लक्ष्य है।

—सी० टी० केसर (दि यूनिवर्स ऐंड बीयांड)

Mathematics, the priestess of definiteness and clearness.

गणित—निश्चयात्मकता और स्पष्टता की पुजारिन।

—जे० एफ़० हर्बर्ट (वर्क)

Everything that the greatest minds of all times have accomplished toward the comprehension of forms by means of conceptsis gathered into one great Science, Mathematics.

प्रत्ययों के द्वारा रूपों की धारणा की दिशा में हर युग के महत्तम मस्तिष्कों ने जो कुछ प्राप्त कर पाया है, वह एक ही महान विज्ञान, गणित, में संगृहीत है।

—जे० एफ़० हरबर्ट

Without mathematics one cannot fossow the depths of philosophy; without philosophy one cannot fathom the depths of mathematics; without the two one cannot fathom anything.

गणित के बिना दर्शनशास्त्र की गहराई नहीं नापी जा सकती। दर्शनशास्त्र के बिना गणित की गहराई नहीं नापी जा सकती। दोनों के बिना किसी वस्तु की भी गहराई नहीं नापी जा सकती।

— डेमोलिन्स बोर्डास (मैथिमेटिक्स एट मैथिमेटिशियन्स)

गणितज्ञ फ्रांसीसियों की तरह होते हैं। उनसे कुछ भी कहो, वे उसे अपनी भाषा में अनूदित कर लेते हैं और उसी क्षण बात बिल्कुल भिन्न हो जाती है।

—गेटे

अधिकांश विज्ञानों में एक पीढ़ी पिछली पीढ़ी की निर्मिति को नष्ट कर देती है और जो एक पीढ़ी ने स्थापित किया है उसे उन्मूलित कर देती है। गणित ही एक ऐसा विषय है जिसमें हर नयी पीढ़ी पिछली निर्मिति में एक नयी मंज़िल जोड़ती जाती है।

—हरमान हैंकिल

गणेश

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः श्रृणवन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

हे गणों के अधिपति! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम कवियों के कवि और सबसे अधिक कीर्तिमान हो। हे ब्रह्मज्ञान के अधिपति! तुम आध्यात्मिक ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ राजा हो। हमारी प्रार्थना सुनकर तुम कृपापूर्वक अपने स्थान पर विराजमान होओ।

—ऋग्वेद (२।२३।१)

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥

अजन्मे, निर्विकल्प, निराकार, एक, आनन्दस्वरूप किन्तु स्वयं आनन्दरहित, अद्वैत, पूर्ण, परम तत्त्व, निर्गुण, निर्विशेष, इच्छारहित और परब्रह्मरूप गणेश की वन्दना करता हूँ।

—गणपतिस्तव (श्लोक १)

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरम्
विघ्नेशं मधुगंधलुब्धमधुपव्याधूतगंडस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरम्
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥

नाटे, स्थूल शरीर वाले, गज के मुख वाले, लम्बोदर, सुन्दर, विघ्नों के स्वामी, मधु-गंध-लोभी भौंरों द्वारा कपोलों के समीप पंखचालन वाले, दन्त के आघात से विदारित शत्रुओं के रुधिर से शरीर पर सिंदूर की शोभा वाले पार्वती-पुत्र, सिद्धिप्रद तथा इच्छाएँ पूर्ण करने वाले गणेश की वन्दना करता हूँ।

—प्रसिद्ध ध्यानश्लोक

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम्।
अमन्दानन्दसंदोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ॥

सम्मानपूर्ण मन्दार (गज-श्रेष्ठ), चन्द्रभूषण शंकर के पुत्र और आध्यात्मिक आनन्द से विभूषित गजानन गणेश की मैं वन्दना करता हूँ।

—अज्ञात

जो सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१)

ॐ गणेश का प्रतीक है। इसमें ॐ का ऊपर वाला भाग मस्तक का वृत्त, नीचे वाला भाग उदर का विस्तार, सूँड़ नाद और लड्डू बिन्दु हैं।···सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा इसके तीन नेत्र हैं।

—जनार्दन मिश्र (भारतीय प्रतीकविद्या, पृ० ३९-४०)

गति

चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है।
खड़े मत रहो, कर्म-मार्ग विस्तीर्ण है।
चलने वाला पीछे को ही छोड़ता
सारी बाधा और आपदा-वृन्द को।

—जयशंकर प्रसाद (करुणालय)

छाया पथ में विश्राम नहीं,
है केवल चलते जाना।

—जयशंकर प्रसाद (लहर)

बहते पानी रमते जोगी का मूलस्रोत नहीं पूछा जाता।

—वृन्दावनलाल वर्मा (कचनार, पृ० २१५)

सत्य नहीं पातक की ज्वाला में मनुष्य का जलना,
सच है बल समेटकर उसका फिर आगे को बढ़ना।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

गति का अर्थ है—एक समय और एक स्थान से दूसरे समय और स्थान में प्रवेश करना, अर्थात् परिवर्तन। यह परिवर्तन ही गति है, गति ही जीवन है! अमरता का अर्थ है—अपरिवर्तन, गतिहीनता।

—यशपाल (दिव्या, पृ० १६२)

सांस रुकती है, उसे मौत कहते हैं। गति रुकती है, तब भी मौत है। हवा रुकती है, वह भी मौत है। रुकान सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।

'—हिमांशु जोशी (तुम्हारे लिए, पृ० १५५)

विज्ञान के नाम पर आधुनिक फ़ैशन, परिवर्तन के नाम पर परम्परा-द्रोह तथा सन्तुलन के नाम पर अति-वादिता को स्वीकार करना ज्यादा आसान है।

—शिवप्रसाद सिंह (शिखरों का सेतु, पृ०६)

रमता जोगी, बहता पानी।

—हिंदी लोकोक्ति

ज़मीं को रौंदते हुए, सफ़ों को चीरते हुए
बढ़े चलो! बढ़े चलो! यह वक़्त की पुकार है।

—'जिगर' मुरादाबादी

आबे दरिया बहे तो बेहतर
इन्सां रवां रहे तो बेहतर।

नदी का जल बहता रहे, तो अच्छा, और मनुष्य चलता रहे, तो उत्तम।

—अज्ञात

जलधारा, यौवन, समय, संसार—सब केवल आगे ही चलते रहते हैं, पीछे लौटना नहीं जानते। केवल मनुष्य का मन ही इनसे विपरीत है जो बारम्बार भूत पर भी निगाह डालता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (चारुलता)

Wisely and slow; they stumble that run fast.

बुद्धिमता के साथ और धीमे चलो। जो तेज़ भागते हैं, उन्हें ठोकर लगती है।

—शेक्सपियर (रोमियो ऐण्ड जूलियट, २।३)

गर्व

दे० 'अभिमान'।

ग़लती

ग़लती स्वीकार करना झाड़ू के समान है, जो गंदगी को हटाकर सतह को साफ़ कर देती है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १६-२-१९२२)

ग़लतियां अपने नाश की केवल भूमिकाएँ हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दि किंग आफ़ दि डार्क चैम्बर)

एक ही पत्थर से दो बार ठोकर खाना लज्जाजनक है।

—प्लूटार्क

ग़लती करना मनुष्य का काम है, परन्तु जानबूझ कर ग़लती पर जमे रहना शैतान का काम है।

—संत आगस्टीन (धर्मोपदेश, क्र १६४, खंड १४)

त्रुटियां तो केवल उसी से नहीं होंगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं।

—लेनिन

ग़लती हर हालत में ग़लती ही है।

—लेनिन (नारी-मुक्तिलेख संग्रह, पृ० १३२)

Error is the comrade of our mortal thought.

ग़लती तो हमारे मानवीय चिंतन की साथी है।

—अरविन्द (सावित्री, ६।२)

Best men are moulded out of faults.

सर्वोत्तम मनुष्य त्रुटियों से ढलकर निकलते हैं।

—शेक्सपियर (मेजर फार मेजर ५।१)

A man should never be ashamed to admit he is in the wrong, which is but saying, in other words that he is wiser today than he was yesterday.

मनुष्य को यह स्वीकार करने में लज्जा नहीं होनी चाहिए कि वह ग़लती पर है जो दूसरे शब्दों में यह कहता हैं कि वह कल की अपेक्षा आज अधिक बुद्धिमान है।

—स्विफ़्ट

The man who makes no mistakes does not usually make anything.

वह मनुष्य, जो ग़लतियां नही करता है, प्रायः कुछ नहीं कर पाता है।

—एडवर्ड जान फ़ेल्प्स (भाषण, २४ जनवरी १८९९)

It is one thing to show a man that he is in error, and another to put him in possession of truth.

यह एक बात है कि किसी व्यक्ति को यह दिखाया जाए कि वह ग़लती पर है और यह दूसरी बात है कि उसे सत्य प्राप्त करा दिया जाए।

—जॉन यॉक (एसेज आन दि ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग, ४।७।११)

All men are liable to error; and most men are, in many points by passion or interest, under temptation of it.

सब मनुष्य ग़लती कर सकते है और अधिकांश लोग, बहुत सी बातों में वासनावश अथवा स्वार्थवश ग़लती की ओर आकृष्ट होते हैं।

—जॉन लॉक (एसेज आन दि ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग, ४।२०।१७)

No man ever became great or good except through many and great mistakes.

कोई भी व्यक्ति अनेक और बड़ी ग़लतियां करे बिना कभी महान नहीं हुआ।

—ग्लैडस्टन

गांधी

दे० 'महात्मा गांधी' भी।

महात्मा गांधी ने मिट्टी से सोना बनाया। साधारण लोगों में असाधारणत्व निर्माण किया।

—माधव स. गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड ५, पृष्ठ ८३

गांधी भारतवर्ष के अनेक युगों के संचित पुण्य का मधुर फल था।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १३०)

इतिहास परख नूतन विधान, पन्ने समेट ले पुराचीन।
बापू ने क़लम उठायी है, लिखने को कुछ गाथा नवीन॥

—:रामधारीसिंह 'दिनकर'

मेरी पीढ़ी के लोगों के लिए गांधी जी कल्पना थे, जवाहरलाल जी कामना और नेताजी सुभाष कर्म। कल्पना सर्वथा द्रष्टा रहेगी, तथापि विस्तार में उसके कुछ अपने दोष थे, पर उसकी कीर्ति, मैं आशा करता हूँ कि समय के साथ चमकेगी। कामना कड़वी हो गयी है और कर्म अपूर्ण रहा।

—राममनोहर लोहिया (भारत विभाजन के अपराधी, पृ० ८१)

गांधीवाद

Let Gandhism be destroyed if it stands for error. Truth and Ahimsa will never destroyed, but if Gandhism is another name for sectarianism, it deserves to be desteoyed.

यदि गांधीवाद ग़लत बात के लिए है तो इसे नष्ट हो जाने दो। सत्य और अहिंसा तो कभी नष्ट नहीं होगे। परन्तु यदि गांधीवाद मतांधता का दूसरा नाम है, तो यह नष्ट कर देने योग्य ही है।

—महात्मा गांधी (हरिजन, २-३-१९४०)

गांधीवाद नवयुग का प्रतीक है या युगान्त का?

—यशपाल (न्याय का संघर्ष, पृ० २०)

गाय

सूयक्सादभगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वेदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥

गौ उत्तम घास खाकर भाग्यवती बने और हम उस गौ से भाग्यवान बनें। हे अवध्य गौ ! तू सदा घास खा और वापस आते समय शुद्ध जल पी।

—ऋग्वेद (१।१६४।४०)

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।

जो गो-हत्या करके उनके दूध से अन्यों को वंचित करता है, तो अपने तेज से उसके सिर को काट डाल।

—ऋग्वेद (१०।८७।१६)

गां मा हिंसीरदितिं विराजम्।

गौ तेजस्वी और अवध्य है, इसलिए इसकी हत्या मत कर।

—यजुर्वेद (१३।४२)

घृतं दुहानामदितिं जनाय···मा हिंसीः।

गौ अवध्य है और वह जनों के लिए घी देती है, इसलिए गौ की हिंसा न कर।

—यजुर्वेद (१३।४९)

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥

ज्ञान के लिए सूर्य की उपमा है, द्युलोक के लिए समुद्र की उपमा है तथा पृथ्वी बहुत बड़ी है तो भी उससे इन्द्र अधिक समर्थ है, परन्तु गौ के साथ किसी की भी तुलना नहीं होती।

—यजुर्वेद (२३।४८)

सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः।

गायें सब के प्रेम की वस्तु हैं, सब के लिए सुन्दर हैं।

—ऐतरेय ब्राह्मण (४।१७)

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत् तु यः ॥

गौओं का नाम ही 'अघ्न्या' (अवध्य) है, फिर इन गौओं को कौन काट सकता है ? जो लोग गौ को या बैल को मारते हैं, वे बड़ा अयोग्य कर्म करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २६२।४७)

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।

गाएँ सब प्राणियों की माताएँ हैं तथा सब सुख प्रदान करने वाली होती हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ६९।७)

अरिहु दन्त तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ ॥
अमरित पय नित स्रवहिं वच्छ महि थमन जावहिं।
हिन्दुहि मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं ॥
कहि कवि नरहरि अकबर, सुनो, विनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥

—नरहरिदास[1]

गैया माता तुम का सुमरो कीरत सबते बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन के पुरिखन बैतरनि देउ तारि ॥
तुमरे दूध दही की महिमा जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जिहि का गोबर लगे पवित्तर होय ॥
जिनके लरिका खेती करिकै पालैं मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रच्छा मां, जो कुछ जतन करौ सौ बार ॥
घास के बदले दूध पियावैं मरि के देय हाड़ और चाम।
धनि यह तन मन धन जो आवै ऐसी जगदम्बा के काम ॥

—प्रतापनारायण मिश्र

थोरे घास पानी में अघानी रहै रैन दिन,
दूध, दही, माखन मलाई देत खाने को।
पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र,
जाके धड़ चाम आँत गोवर ठिकाने को।
'दीन' कवि मोरे जान याही बात अनुमानि,
मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को।
ऐसी उपकारी की कृतज्ञता बिसारि अब,
भारत निवासी मारे फिरैं दाने-दाने को ॥

—लाला भगवानदीन

गऊ उसके लिए केवल श्रद्धा और भक्ति की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और घर का गौरव बढ़ाना चाहता था।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ४१)

---

१. यह छन्द 'गंग' और ब्रह्म' कवियों के नाम से भी प्रचलित है।

गाय मूर्तिमंत करुणामयी कविता है।

—महात्मा गांधी (सर्वोदय)

गो-सेवा के बारे में अपने दिल की बात कहूँ तो आप रोने लग जाएँ, और मै रोने लग जाऊँ—इतना दर्द मेरे दिल में भरा हुआ है।

—महात्मा गांधी (गांधी वाणी)

दाँतों तले तृण दाबकर हैं दीन गायें कह रहीं,
हम पशु तथा तुम हो अनुज, पर योग्य क्या तुमको यही!
हमने तुम्हें माँ की तरह है दूध पीने को दिया,
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया॥
....
जारी रहा क्रम यदि यहाँ यों ही हमारे ह्रास का—
तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्य के आकाश का।
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायगी,
यह स्वर्ण-भारत-भूमि, बस, मरघट-मही बन जाएगी॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारतभारती)

गाय का दूध सो माय[1] का दूध।

—हिंदी लोकोक्ति

गो-मांस रोग है, उसका दूध आरोग्य है, और घी औषधि है।

—अल गजाली (इह्या उलुम अल-दीन)

गायत्री

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग् वै
गायत्री वाग् वा इदं सर्वं भूतं गायति च त्रायते च।

यह सब जगत् 'गायत्री' का ही रूप है। गायत्री का ही उच्चारण वाणी से होता है। गायत्री के उच्चारण से भी भगवान का गुण गाया जाता है और यह उपासक की रक्षा करती है अतः वाणी गायत्री का ही रूप है।

—छान्दोग्य उपनिषद् (३।१२।२)

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्या
होदं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते।

वह जो गायत्री है, वह मानो पृथ्वी ही है। जैसे पृथ्वी में सारा जगत् प्रतिष्ठित है, वह सबकी रक्षा करती है, कोई इसे लाँघ नहीं सकता, उसी प्रकार गायत्री में उपासक की सब भावनाएँ निहित है, वह उपासक की रक्षा करती है, इसे कोई लाँघ नहीं सकता।

—छान्दोग्य उपनिषद् (३।१२।२)

सा हैसा गयाँस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणाँस्तत्रे
तद्यद्गयाँस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम।

'गय' का अर्थ है 'प्राण'। क्योंकि यह शरीर के 'गय' अर्थात् 'प्राणों' का त्राण करती है अतः इसे 'गायत्री' कहते हैं।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (५।१४।४)

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥

गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री पापनाशिनी है। गायत्री से बड़ा और कोई पवित्र मंत्र नहीं है।

—वसिष्ठ स्मृति

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृति-संयुक्तां प्रणवेन च संजपेत्॥

गायत्री से बढ़कर पापों का शोधक अन्य कुछ भी नहीं है। ओंकार सहित तीन महाव्याहृतियों से युक्त गायत्री का जाप करना चाहिए।

—संवर्त स्मृति

गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन कथ्यते।

गायन करने वाले की त्राता होने से वह 'गायत्री' कही जाती है।

—अज्ञात

गाली

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥

---

1. माता।

दूसरों से गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। गाली सहन करने वाले का रोका हुआ क्रोध ही गाली देने वाले को जला डालता है और उसके पुण्य भी ले लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३६।५)

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥

मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देने वाला पाप का भागी होता है और क्षमा करने वाला पाप से मुक्त हो जाता है।।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।७४)

ददतु ददतु गाली गालिवन्तो भवतः
वयमपि तदभावाद् गालिदानेऽसमर्थः।
समर्थाः विदितमिव हि लोके दीयते विद्यमानं
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

जी हाँ, आप गाली दिये जाइए क्योंकि आप गालीवान हैं। हमें तो गाली आती नहीं इसलिए हम कहाँ से गाली दे पा सकते हैं। संसार में सभी लोग जानते हैं कि जिसके पास जो होता है वही दे पाता है। क्या कभी कोई किसी को खरगोश के सींग दे पाया है?

—अज्ञात

गारी आई एक से, पलटें भई अनेक।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक॥

—पलटू साहब

मेरी डाक में आने वाले खतों में कुछ खत तो गालियों से ही भरे होते हैं। उन गालियों का तो मेरे ऊपर कोई असर नहीं होता, क्योंकि मैं इन गालियों को ही स्तुति समझता हूँ, परन्तु वे लोग गालियाँ इसलिए नहीं देते कि मैं उनको स्तुति समझता हूँ बल्कि इसलिए कि मै जैसा उनकी निगाह में होना चाहिए वैसा नहीं हूँ। एक वक़्त वह था जब वे मेरी स्तुति भी करते थे। इसलिए गालियाँ देना या स्तुति करना तो दुनिया का एक खेल है।

—महात्मा गांधी (दिल्ली की प्रार्थना सभा में प्रवचन, २६ जून १९४७)

बोलने में मर्यादा मत छोड़ना। गालियाँ देना तो कायरों का काम है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० २३२)

गीत

कथासु षट्पदी योज्या विवाहे धवलस्थता।
उत्सवे मंगलो गेयश्चर्या योगिजनैस्तथा॥

कथाओ में षट्पदी, विवाह में धवल-गीत, उत्सव में मंगल-गीत तथा योगीजनो के गीत-गायन हेतु चर्या पदों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

—सोमेश्वर तथा भूलोक मल्ल (मानसोल्लास, पृ० ८१)

शब्दो हि धूमवल्लोके बाह्याभ्यंतरयोगतः।
विराजते विनिर्गच्छन् तारतम्यं च गच्छति॥

बाह्याभ्यंतर के योग से शब्द-लय और भाव के योग से, गायक के हृदय से निस्सृत होकर गीत अत्यन्त मोहक बन जाता है और सुन्दर से सुन्दरतर हो जाता है।

—रासपंचाध्यायी (सुबोधिनी कारिका)

अन्तः स्थितो रसः पुष्टो बहिश्चेन्न विनिर्गतः।
तदा पूर्णो नैव भवेदिति वाग्निर्गमस्तथा॥

अंतःस्थित रस यदि बाहर अभिव्यक्त न हो तो वह पूर्ण नहीं हो सकता। इसीलिए गान के रूप में हृदय के रस की अभिव्यक्ति आवश्यक है।

—रासपंचाध्यायी (सुबोधिनी कारिका)

मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है।

—प्रेमचंद (गुप्तधन, भाग १, पृ० ६९)

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अर्चना, ५९)

रुदन का हँसना ही तो गान।

—मैथिलीशरण गुप्त (यशोधरा, पृ० ९८)

साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ५६)

आ, सोने से पहले गा लें।

—हरिवंशराय बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० ३१)

मेरे गीत किन्हीं गालों पर रुके हुए दो आँसू कन हैं।

—गिरिजाकुमार माथुर (मंजीर, बिदा समय)

मेरे गीतों के स्वर तुम्हारे चरण प्रक्षालित करते हैं किन्तु मैं नहीं जानता कि उन चरणों तक कैसे पहुँचूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पथ का गीत, ६७)

स्वर का गीत मीठा है सही, किन्तु हृदय का गीत ही तो ईश्वर की सच्ची आवाज़ है।

—ख़लील जिब्रान (शैतान, पृ० ५०)

सब कामों में सर्वोत्तम है गीत-रचना और उसके बाद सर्वोत्तम है गीत-गायन।

—जोशिम द्यू वेल्ले

Our sweetest songs are those that tell of saddest thought.

हमारे मधुरतम गीत वे ही होते हैं जो अधिकतम विषादयुक्त विचार व्यक्त करते हैं।

—शैले (टू ए स्काईलार्क)

गीता

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्र हैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।।

अन्य बहुत से शास्त्रों का संग्रह करने की क्या आवश्यकता है? गीता का ही अच्छी तरह से गान करना चाहिए, क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान् के मुख कमल से निकली हुई है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४३।१)

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः।
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्ववेदमयो मनुः।।

गीता सर्वशास्त्रमयी है। भगवान् श्री हरि सर्वदेवमय हैं। गंगा सर्वतीर्थमयी है और मनु का धर्मशास्त्र सर्ववेदमय है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४३।२)

[यही श्लोक स्कन्दपुराण में भी निम्नलिखित रूप में मिलता है—

सर्ववेदमयी गीता सर्वधर्मयो मनुः।
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः।।]

गीता गंगा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते।।

गीता, गगा, गायत्री और गोविन्द—इन गकार-युक्त चार नामों को हृदय में धारण कर लेने पर मनुष्य का फिर इस संसार में जन्म नही होता।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४३।३)

गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति।
सर्वपापहरा नित्यं गीतैका मोक्षदायिनी।।

गीता के समान कोई शास्त्र न तो हुआ है, न होगा। एकमात्र गीता ही सदा सब पापों को हरने वाली और मोक्ष देने वाली है।

—स्कन्दपुराण

मलनिर्मोचनं पुंसां गंगास्नानं दिने दिने।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्।।

गंगा में प्रति दिन स्नान करने से मनुष्यों का मल दूर होता है, परन्तु गीतारूपिणी गंगा के जल में एक ही बार का स्नान सम्पूर्ण संसार मूल को नष्ट करने वाला है।

—स्कन्दपुराण

चिदानन्देन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्।
वेदत्रयी परानन्दा तत्त्वार्थ-ज्ञानसंयुता।।

चिदानन्दमय भगवान श्रीकृष्ण ने साक्षात् अपने मुख से ही अर्जुन के प्रति इसका उपदेश दिया है। यह वेदत्रयीरूपा परमानन्दस्वरूपिणी और तत्त्वार्थज्ञान से युक्त है।

—वाराहपुराण

गीतासु न विशेषोऽस्ति जनेषूच्चावचेषु च ।
ज्ञानेष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्मस्वरूपिणी ॥

गीता का अध्ययन करने के विषय में ऊंच-नीच मनुष्यों का कोई भेद नहीं है। गीता सम्पूर्ण ज्ञानों में समान तथा ब्रह्मस्वरूपिणी है।

—वैष्णवीय तंत्रसार

साधु गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ।
श्रद्धाहीनस्य तत्कार्यं हस्तिस्नानं वृथैव तत् ॥

गीता रूपी सरोवर के जल में स्नान करना बहुत ही अच्छा है, क्योंकि वह संसार-मल को नष्ट करने वाला है। परन्तु श्रद्धाहीन पुरुष के लिए यह कार्य हाथी के स्नान की भाँति व्यर्थ ही है।

—वैष्णवीय तंत्रसार

भारते सर्ववेदार्थो भारतार्थरूप कृत्स्नशः ।
गीतायामस्ति तेनेयं सर्वशास्त्रमयी मता ॥

महाभारत में सम्पूर्ण वेदों का अर्थ भरा है और महाभारत का सारा अर्थ गीता में विद्यमान है, इसलिए यह गीता सर्वशास्त्रमयी मानी गयी है।

—नीलकंठ

एतस्मिन् भगवच्छास्त्रे न यौक्तिकमाग्रहः ।
सर्वोपनिषदध्यात्ममेतरात्मानुभूतिकृत् ॥

भगवान के इस गीताशास्त्र में युक्तिवादियों का मताग्रह नहीं है। यह तो आत्मतत्त्व का अनुभव कराने वाला, सम्पूर्ण उपनिषदों का सारभूत अध्यात्मशास्त्र है।

— दैवज्ञ पंडित सूर्य

गीता के मुख्य विषय से जिसकी संगति नहीं बैठती, वह मेरे लिए शास्त्र नहीं है, चाहे वह कहीं भी छपा क्यों न मिलता हो।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, १७-११-१९३२)

गीता मेरे लिए पूर्ण पर्याप्त है, क्योंकि वह न केवल उन मूल सिद्धान्तों के अनुरूप है, बल्कि यह भी बताती है कि हर क़ीमत पर हमें उन पर किन कारणों से जमे रहना चाहिए।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, १७-११-१९३२)

गीता का मध्य विन्दु अनासक्ति है।

—महात्मा गांधी (एक पत्र, ३१-१०-१९३२)

यदि अन्य सभी धर्म ग्रंथ जलकर भस्म हो जायें तो भी इस (गीता) अमर गुटके के सात सौ श्लोक यह बताने के लिए काफी हैं कि हिन्दू धर्म क्या है और उसे जीवन में कैसे उतारा जा सकता है।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, ४-११-१९३२)

वन्दनीय (गीता) माता द्वारा उपदिष्ट सनातन धर्म के अनुसार जीवन का लक्ष्य बाह्य आचार और कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि मन की अधिक से अधिक शुद्धि और तन, मन और आत्मा से अपने को दिव्य तत्त्व में विलीन कर देना है। गीता के इसी सन्देश को अपने जीवन में उतार कर मैं लाखों करोड़ों लोगों के पास गया हूँ।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, ४-११-१९३२)

गीता का उद्देश्य आत्मार्थी को आत्मदर्शन करने का एक अद्वितीय उपाय बताना है। वह अद्वितीय उपाय है कर्म के फल का त्याग।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ९५)

गीता में आये हुए महान शब्दों के अर्थ प्रत्येक युग में बदलेंगे और व्यापक बनेंगे। परन्तु गीता का मूल-मन्त्र कभी नहीं बदलेगा। यह मन्त्र जिस रीति से जीवन में साधा जा सके उस रीति को दृष्टि में रख कर जिज्ञासु गीता के महाशब्दों का मनचाहा अर्थ कर सकता है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ९८)

गीता में ज्ञान की महिमा गायी गयी है। फिर भी गीता बुद्धिगम्य नहीं है, वह हृदयगम्य है। इसलिए वह अश्रद्धालु मनुष्य के लिए नहीं है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ९९)

हृदय के पट खुल जाने पर तो 'गीता' अवश्य अच्छी लगती है। जब 'गीता' अच्छी नहीं लगती, तब तक यह समझ कि कहीं कुछ कमी है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४६, पृ० ८०)

मैं प्राय: गीता के ही वातावरण में रहता हूँ, गीता मेरा प्राणतत्त्व है। जब मैं गीता के सम्बन्ध में किसी से बात करता हूँ तब गीता-सागर पर तैरता हूँ और जब अकेला होता हूँ तब उस अमृत सागर में डुबकी लगाकर बैठ जाता हूँ।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ६)

गीता जीवनोपयोगी शास्त्र है और इसलिए उसमें स्व-धर्म पर इतना ज़ोर दिया गया है।

—विनोबा (गीता-प्रवचन, पृ० १६१)

गीता-गीत-सिंहनाद-
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अनामिका, ५८)

गीता 'कर्मभूमि' में पैदा होकर भी विचार ग्रंथ है और रामचरित मानस 'मानस' कहाकर भी दिव्य और भव्य कर्मों की रंगस्थली है। गीता में विचारों का सूत्रपक्ष है तो मानस कर्म का मूर्तरूप है।

—युगेश्वर (तुलसीदास : आज के संदर्भ में, पृ० १३५)

आतां भारतकमलपरागु। गीताख्य प्रसंगु।
जो संवादला श्रीरंगु। अर्जुनेसीं॥

इस महाभारत ग्रंथ रूपी कमल का पराग गीता नामक प्रकरण है जिसका उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १।५०)

गीतो जाणा हे वाङ्मयी। श्री मूर्ति प्रभूची।

इस गीता को भगवान की सुन्दर वाङ्मयी मूर्ति ही समझना चाहिए।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १७।८८ की व्याख्या)

भगवद्गीता वेदान्त का सर्वश्रेष्ठ प्रमाणभूत ग्रन्थ है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ०६६)

बलवान शरीर और मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम श्रीकृष्ण की महती प्रतिभा और महान तेजस्विता को अच्छी तरहसमझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ता पूर्वक खड़ा होगा, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा को भली-भाँति समझोगे।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत, जाग्रत पृ० ६२)

गीता वह बिना तेल का दीपक है जो अनन्त काल तक हमारे ज्ञान-मन्दिर में प्रकाश करता रहेगा। पाश्चात्य दार्श-निक ग्रंथ भले ही खूब चमकें, किन्तु हमारे इस लघु दीपक का प्रकाश उन सबसे अधिक चमक कर उन्हें ग्रस लेगा।

—द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

हमने अपने अनुवाद में गीता के सरल, खुले और प्रधान अर्थ को ले जाने का प्रयत्न किया है सही, परन्तु संस्कृत शब्दों में विशेषत: भगवान् की प्रेमयुक्त, रसीली, व्यापक और प्रतिक्षण में नई रुचि देने वाली वाणी में लक्षण से अनेक व्यंग्यार्थ उत्पन्न करने का जो सामर्थ्य है, उसे जरा भी न घटा-बढ़ा कर दूसरे शब्दों में ज्यों का त्यों झलका देना असंभव है।

—लोकमान्य तिलक (गीता रहस्य, पृ० ५६८)

ज्ञान-भक्ति-युक्त कर्मयोग ही गीता का सार है।

—लोकमान्य तिलक (गीतारहस्य, उपसंहार)

गीता-धर्म कैसा है? वह सर्वतोपरि निर्भय और व्यापक है। वह सम है अर्थात् वर्ण, जाति, देश या किसी अन्य भेदों के झगड़े में नहीं पड़ता, किंतु सब लोगों को एक ही मापतौल से सद्गति देता है। वह अन्य सब धर्मों के विषय में यथोचित सहिष्णुता दिखलाता है। वह ज्ञान, भक्ति और कार्ययुक्त है; और अधिक क्या कहें? वह सनातन वैदिक धर्म-वृक्ष का अत्यन्त मधुर तथा अमृत-फल है।

—लोकमान्य तिलक (गीतारहस्य, उपसंहार)

समता, अनासक्ति, कर्मफल-त्याग, भगवान में आत्म-समर्पण, निष्काम कर्म, गुणातीतता और स्वधर्म-सेवा ही गीता का मूल तत्त्व या सारांश है।

—अरविन्द

गीता नीतिशास्त्र या आचार शास्त्र का ग्रंथ नहीं है अपितु आध्यात्मिक जीवन का ग्रंथ है।

—अरविन्द (गीता-प्रबन्ध)

गीता जिस कर्म का प्रतिपादन करती है, वह मानव-कर्म नहीं अपितु दिव्य कर्म है।

—अरविन्द (गीता-प्रबन्ध)

युद्ध को पाप तथा आक्रामकता को नैतिकता का अधः-पतन समझकर पीछे हटने वालों के लिए गीता सर्वोत्तम उत्तर है।

—अरविन्द

एक नर, किस प्रकार नारायणत्व को प्राप्त कर सकता है, इस रहस्य को श्रीगीता ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है। हमारे राष्ट्रीयत्व की आत्मा ही यहाँ पर प्रकट हो गई है। यहाँ पर स्वजन अथवा परजनों का निर्धारण, उनके गुणों एवं वृत्तियों पर ही से किया गया है न कि केवल निवास-भूमि या किसी अन्य बाह्य उपाधियों के आधार पर।

—उमाकान्त केशव आप्टे (हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा, पृ० १४१)

गीता केवल ज्ञान, कर्म और भक्ति को योगमन्त्र से संजीवित करके उनका समन्वय ही नहीं करती, बल्कि वह सारे जीवन को योग में परिणत करने की, जीवन के छोटे-बड़े प्रत्येक व्यापार को योग का अंगीभूत करने की, शिक्षा प्रदान करती है।

—अक्षयकुमार बंद्योपाध्याय (गीता में भगवान श्री कृष्ण का परिचय और उपदेश, पृ० २४६)

श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं। उनके उपदेश अत्यन्त उदार, वास्तव में सार्वभौम एवं व्यापक हैं। जड़-चेतन समस्त प्राणियों के उत्पन्न करने वाले होने से वे सबके भीतर निवास करते हैं। उनके उपदेश बिना किसी भेदभाव के सबके लिए प्रयोज-नीय हैं। भगवद्गीता पर बाहर वालों का तथा अहिन्दुओं का उतना ही अधिकार है, जितना किसी भारतीय अथवा हिन्दू कहलाने वाले का है।

—डा० मुहम्मद हाफ़िज सैयद (कल्याण के 'गीतांक' में लेख)

मैं प्रतिदिन भगवद्गीता के जल में स्नान करता हूँ। वर्तमान काल की कृतियों से यह कहीं बढ़ चढ़कर है। जिस काल में यह लिखी गयी, वह सचमुच निराला ही समय रहा होगा।

—थोरो

प्राचीन युग की सभी स्मरणीय वस्तुओं में भगवद्गीता से श्रेष्ठ कोई भी वस्तु नहीं है। भगवद्गीता में इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखने वाले देवता को हुए अगणित वर्ष हो जाने पर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभी तक नहीं लिखा गया। गीता के साथ तुलना करने पर जगत् का आधुनिक समस्त ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है।

—थोरो

जगत् के सम्पूर्ण साहित्य में यदि उसे सार्वजनिक लाभ की दृष्टि से देखा जाए, भगवद्गीता के जोड़ का अन्य कोई भी काव्य नहीं है। दर्शनशास्त्र होते हुए भी वह सर्वदा पद्य की भाँति नवीन और रसपूर्ण है। इसमें मुख्यतः तार्किक शैली होने पर भी यह भक्तिग्रन्थ है।

—जे० एल० फरक्यहर

इतने उच्च कोटि के विद्वानों के पश्चात् जो मैं इस आश्चर्यजनक काव्य के अनुवाद करने का साहस कर रहा हूँ, वह केवल उन विद्वानों के परिश्रम से उठाए हुए लाभ की स्मृति में है। और इसका दूसरा कारण यह भी है कि भारत-वर्ष के इस सर्वप्रिय काव्यमय दार्शनिक ग्रंथ के बिना अंग्रेजी साहित्य निश्चय ही अपूर्ण रहेगा।

—एडविन आरनोल्ड

भगवद्गीता और उपनिषदों में सभी वस्तुओं पर ईश्वर का ऐसा पूर्ण ज्ञान मिलता है कि मुझे अनुभव होता है कि इतने विश्वासपूर्वक लिखने के पूर्व, इनके लेखकों ने शान्त स्मृति के द्वारा उग्र अन्तर्द्वन्द्व से भरे हुए हजारों लालसापूर्ण जीवनों को अवश्य देखा होगा, तभी तो वे ऐसी चीजें लिख सके, जिसे पढ़कर हमारी आत्मा को इतनी शान्ति और निश्चितता अनुभव होती है।

—जार्ज डब्लू० रसेल (ए मेम्वायर आफ़ ए० ई० में उद्धृत)

Nothing is omitted from the Gita that the unconsoled heart requires.

अशांत मन के लिए अभीष्ट ऐसा कुछ भी नहीं है जो गीता में न आया हो।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज़ वर्क्स, खंड २, पृ० ६१)

That place which the four gospels hold to Christendom, the Gita holds to the world of Hinduism and in a very real sense, to understand it is to understand India and the Indian people.

ईसाई जगत में जो स्थान चारों सुसमाचारों का है, हिंदू जगत् में वही स्थान गीता का है, और बहुत सही अर्थ में कहें तो इसे समझ लेना भारत को और भारतीयों को समझ लेना है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज़ वर्क्स, खंड २, पृ० १६३)

गुजराती भाषा

जो नरसी मेहता की भाषा है, जिसमें नंदशंकर ने अपना 'करणघेलो' उपन्यास लिखा, जिसमें नवलराम, नर्मदाशंकर, मणिलाल, मलबारी आदि लेखक अपना साहित्य लिख गये हैं, जिस भाषा में स्व० राजचन्द्र कवि ने अमृतवाणी सुनाई है, हिन्दू, मुसलमान और पारसी जातियाँ जिस भाषा की सेवा करती हैं, जिसके बोलने वालों में पवित्र साधु-सन्त हो चुके हैं, जिस भाषा को बोलने वालों में धन भी प्रचुर है और जिसमें जहाजों द्वारा परदेश में व्यापार करने व्यापारी भी हैं, जिसमें मुल् माणिक और जोधा माणिक की बहादुरी की प्रतिध्वनि काठियावाड़ के बरड़ा पहाड़ में आज भी गूंजती है, उस भाषा के विकास की सीमा नहीं बाँधी जा सकती।

—महात्मा गांधी (भड़ौच में भाषण, २० अक्टूबर १६१७)

गुण

दे० 'गुण और रूप', 'गुण-ग्रहण', 'गुण-ग्राहकता', 'गुण-दोष', 'गुणी' भी।

कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय।

काली गौ भी पुष्टिकारक श्वेत दूध से मानवों का पोषण करती है।

—ऋग्वेद (४।३।६)

एतत् त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति।

दम, दान और दया—इन तीनों को सीखे।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (५।२।३)

निराशता निर्भयता नित्यता समता ज्ञता।
निरीहता निष्क्रियता सौम्यता निर्विकल्पता॥
धृतिर्मैत्रीमनस्तुष्टिर्मृदुता मृदुभाषिता।
हेयोपादेयनिर्मुक्ते ज्ञे तिष्ठन्त्यपवासनम्॥

वासना से विहीन, हेय और उपादेय से मुक्त ज्ञानी मनुष्य में निराशा, निर्भयता, नित्यता, समता, अभिज्ञता, निष्कामता, निष्क्रियता, सौम्यता, निर्विकल्पता, धैर्य, मित्रता, मनःतुष्टि, मृदुता और मृदुभाषिता गुण रहते हैं।

—महोपनिषद् (६।२६-३०)

तपश्च दानं च शमो दमश्च
ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो
द्वाराणि सप्तेव महान्ति पुंसाम्।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः
पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः।

साधु पुरुषों ने तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता तथा प्राणियों पर दया—ये सात स्वर्ग के महान द्वार बताये हैं। ये महान द्वार पुरुष के अभिमान रूपी तम से आच्छादित होने पर नष्ट हो जाते हैं, ऐसा सन्त-पुरुषों का कथन है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदि पर्व, ६०।२२)

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषत् दमः।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा॥

वेदों का सार सत्य है। सत्य का सार दम है। दम का सार त्याग है। त्याग शिष्ट पुरुषों के व्यवहार में सदा विद्यमान रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २०७।६७)

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

मनुष्य को कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, असूया-रहितता, क्षमा तथा धैर्य—इन छह गुणों का त्याग नहीं करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।८१)

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्र-ज्ञान, पराक्रम, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३३।९९)

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशमे स्वर्गयोनयः॥

सत्य, उत्तम स्वभाव, शास्त्र ज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना ये दस स्वर्ग के हेतु हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३५।५९)

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते॥

अपने से अधिक गुण वालों से आनन्द प्राप्त करे, कम गुण वालों के प्रति दयाभाव रखे और समान गुण वालों से मित्रता की इच्छा करे—ऐसा पुरुष सन्तापों से व्यथित नहीं होता।

—भागवत (४।८।३४)

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः॥
ब्रह्मचर्यं तपं शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेव दुरासदम्।

संसार के किसी भी प्राणी के प्रति अद्रोह, दम-शम, जीवों पर दया, ब्रह्मचर्य, तप, पवित्रता, करुणा, क्षमा तथा धैर्य—ये सब सद्‌गुण उस सनातन धर्म के मूल हैं जो कठिनाई से प्राप्त करने योग्य है।

—मत्स्यपुराण (१४३।३१-३२)

संतोषः साधुसंगश्च विचारोऽथशमस्तथा।
एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम्।

मनुष्यों के लिए संतोष, सत्संगति, विचार और शम—ये चार भवसागर पार करने के साधन हैं।

—योगवासिष्ठ (२।१६।१८)

ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः।

गुण से भरी हुई बातें अपना लेनी ही चाहिएं, उनका कहने वाला कोई भी क्यों न हो।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।५)

कमिवेशते रमयितुं न गुणाः।

गुण किसे प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होते?

—भारवि (किरातार्जुनीय, ६।२४)

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।

गुण प्रेम में रहते हैं, वस्तु में नहीं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ८।३७)

प्राप्यते गुणवतापि गुणानां व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः।

गुणवानों के द्वारा भी गुणों का वैशिष्ट्य आश्रय की अधीनता के अनुसार पाया जाता है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ९।५८)

सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्।

संसार में रम्यता तो सुलभ है, किन्तु गुण की प्राप्ति दुर्लभ है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ११।११)

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।

विश्वनिर्माता की यह प्रवृत्ति है कि प्रायः वह सभी पदार्थों में कुछ न कुछ गुण की कमी करके किसी को सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न नहीं होने देता।

—कालिदास (कुमारसंभव, ३।२८)

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते॥

गुणों का आदर सर्वत्र होता ही है।

—कालिदास (रघुवंश, ३।६२)

शास्त्रे प्रतिष्ठा, सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोधः प्रतिमानवत्त्वमेते गुणाः कामदुधाः क्रियासु॥

शास्त्र में निष्ठा, स्वाभाविक ज्ञान, प्रगल्भता, गुणों के अभ्यास से सम्पन्न वाणी, कार्य के उचित समय का अनुसरण और प्रतिभा की नवीनता—ये गुण कार्यों में मनोरथों को पूर्ण करने वाले होते हैं।

—भवभूति (मालतीमाधव, ३।११)

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

गुणियों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, लिंग अथवा वय नहीं।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ४।११)

दुर्लभा गुणा विभवाश्च। अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।

गुण और धन दोनों का मेल दुर्लभ है। जिस जलाशय का पानी पिया नहीं जाता उसमें अतिशय जल भरा रहता है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, २।१४ के पश्चात्)

अभिगमनीयाश्च गुणाः सर्वस्य।

सबके गुण अनुसरण के योग्य होते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २३३)

गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते।
दोग्ध्रीकुलोद्भवा धेनुर्वन्ध्या कस्योपयुज्यते॥

गुणवान कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई स्वयं गुणहीन है, तो वह पूजा का पात्र नहीं हो सकता, जैसे दुधारी गाय से उत्पन्न होने पर भी यदि गौ वन्ध्या है तो उसका उपयोग कौन करेगा?

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१३)

गुणाधीनं कुलं ज्ञात्वा गुणेष्वाधीयतां मतिः॥

कुलों के सम्मान का कारण गुण है, अतः गुणों में बुद्धि लगानी चाहिए।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१४)

दयैव विदिता विद्या सत्यमेवाक्षयं धनम्।
अकलंकविवेकानां शीलमेवामलं कुलम्॥

कलंकहीन विवेक वाले प्राणियों की दया ही प्रशस्त विद्या है, सत्य ही धन है और शील ही निर्मल कुल है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।१४)

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।

दूसरों के गुण को प्रख्यात करने वाले सज्जन पुरुष का सौन्दर्य और भी अधिक हो जाता है।

—सुबन्धु

गुणांल्लोकोत्तराञ्श्रृण्वन्नस्यानुभवगोचरान्।
भविता पूर्वभूपालकृत्ये सप्रत्ययो जनः॥

अनुभव-गोचर उसके अलौकिक गुणों को सुनकर लोगों को पहले के उत्तम राजाओं के कार्य में विश्वास होगा।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१५५७)

न च निकषपाषाणशकलं विना निजगुणमाविष्करोति काञ्चनी रेखा।

सुवर्ण की रेखा भी कसौटी के पत्थर के टुकड़े विना अपने गुण को प्रकट नहीं कर पाती।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, ८।१५)

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पंचमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्ति हि तैर्बुधाः॥

विद्या, वीरता, दक्षता, बल और पाँचवाँ धैर्य—ये मनुष्य के सहज मित्र होते हैं क्योंकि विद्वान इन्हीं से व्यवहार करते है।

—शुक्रनीति (४।१३)

ख्याति यत्र गुणा न यान्ति गुणिनस्तत्रादरः स्यात् कुतः।

जहाँ गुणों की प्रशंसा नहीं होती, वहाँ गुणी का आदर कैसे हो सकता है?

—सीतकाररत्न (वल्लभदेव की सुभाषितावलि, २८४)

गुणैरुत्तमतां याति, नोच्चैरासन-संस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि, काकः किं गरुडायते॥

मनुष्य गुणों से उत्तम बनता है, न कि ऊँचे आसन पर बैठा हुआ उत्तम होता है। जैसे ऊँचे महल के शिखर पर बैठकर भी कौआ कौआ ही रहता है, गरुड़ नहीं बनता।

—चाणक्यनीति

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम्।
शौर्यं साधुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥

जो स्वजनों पर उदारता, सेवकों पर दया, दुर्जन के साथ शठता, सज्जन के साथ प्रीति, राजा के साथ नीति, विद्वानों के साथ सरलता, शत्रु जनों के साथ शौर्य, गुरुजनों के साथ क्षमा और स्त्रियों के साथ चतुरता का व्यवहार करते हैं और कलाकुशल हैं, उन्हीं पुरुषों पर यह जगत स्थित है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, २२)

गुणवत्तरपात्रेण छाद्यन्ते गुणिनां गुणाः।
रात्रौ दीपशिखाकान्तिर्न भानावुदिते सति॥

अधिक गुणशाली पात्र से गुणियों के गुण तिरस्कृत हो जाते हैं जैसे रात में चमकने वाली दीपशिखा सूर्य के उदय होने पर सुशोभित नहीं होती।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, १।३१०)

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥

गुणी जनों के पास गुण, गुण बने रहते हैं। वे ही गुण निर्गुण मनुष्य के पास जाकर दोष रूप में परिणत हो जाते हैं। वैसे तो नदियों का जल पीने योग्य होता है, पर जब वे नदियाँ समुद्र में जाकर मिल जाती हैं तो उनका जल खारा होने के कारण अपेय हो जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका।४७)

कल्पयति येन वृत्तिं येन च लोके प्रशस्यते सद्भिः।
स गुणस्तेन च गुणिना रक्ष्यः संवर्धनीयश्च॥

जिस गुण से मनुष्य की जीविका चलती हो और प्रशंसा होती हो, गुणी को चाहिए कि उस गुण की रक्षा करे और उसे बढ़ाये।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।६५)

सा स्यादसाधारणता गुणानां प्रमोदयेत्। यद् द्विषतोऽपि चेतः।

जो शत्रुओं के चित्त को भी प्रसन्न कर दे, वही गुणों की असाधारणता होती है।

—चन्द्रशेखर (सुर्जनचरित, १७।५४)

उपकर्तुमप्रकाशं क्षन्तुं न्यूनेष्वयाचितं दातुम्।
अभिसंधातुं च गुणैः शतेषु केचिद् विजानन्ति॥

अपने को प्रकट किये बिना उपकार करना, छोटों को क्षमा कर देना, बिना माँगे देना, गुणों से प्रेम करना, बहुतों में से कुछ ही लोग जानते हैं।

—अमृतवर्धन

अल्पाश्च गुणाः स्फीता
भवन्ति गुणसमुदितेषु पुरुषेषु।

गुणों से सम्पन्न पुरुष में थोड़े भी गुण अधिक हो जाते हैं।

—अज्ञात

उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छह जहाँ हैं, वहाँ भगवान सहायक होते हैं।

—अज्ञात

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेऽपि वसतां सताम्।

सज्जनों के दूर रहने पर भी गुण दूत का कार्य करते हैं।

—अज्ञात

साधुरेव प्रवीणः स्यात् सद्गुणामृतचर्वणे।

सद्गुण रूप अमृत का आस्वाद लेने में प्रायः सत् पुरुष ही कुशल होते हैं।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २८८)

सज्जना एव साधूनां प्रथयन्तिः गुणोत्करम्।
पुष्पाणां सौरभं प्रायस्तन्वते दिक्षु मारुताः॥

सज्जन लोग ही सत्पुरुषों के गुण-समूह को विख्यात करते हैं। प्रायः वायु ही पुष्पों की सुगन्ध का चारों ओर प्रसार करती है।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २७)

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते।

गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं।

—अज्ञात

मानुष्यं वरवंशजन्म विभवो दीर्घायुरारोग्यता
सन्मित्रं सुसुतः सती प्रियतमा भक्तिश्च नारायणे।
विद्वत्त्वं सुजनत्वमिन्द्रियजयः सत्पात्रदाने रति-
स्ते पुण्येन विना त्रयोदश गुणा संसारिणां दुर्लभाः॥

मनुष्यता, कुलीनता, ऐश्वर्य, दीर्घजीवन, आरोग्य, समित्र, सुपुत्र, सतीभार्या, ईश्वर-भक्ति, विद्वत्ता, सौजन्य, जितेन्द्रियता और सत्पात्र को दान देने की प्रवृत्ति—ये तेरह गुण मनुष्यों को पुण्य के विना दुर्लभ हैं।

—अज्ञात

केतकीगन्धमाघ्राय स्वयमायान्ति षट्पदाः।

भौंरे केतकी की गंध सूंघकर स्वयं आ जाते हैं।

—अज्ञात

यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्।
नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते॥

यदि मनुष्य में गुण है तो वे स्वयं प्रकाशित होते हैं, कस्तूरी की सुगन्ध सौगन्ध की अपेक्षा नही करती!

—अज्ञात

अवज्ञातोऽपि दुष्टेन गुणो दोषो न मन्यते।

दुष्ट के द्वारा अनादृत गुण दोष नहीं माना जाता।

—अज्ञात

आत्मानं भावयेन्नित्यं ज्ञानेन विनयेन च।
न पुनर्म्रियमाणस्य पश्चात्तापो भविष्यति॥

स्वयं को ज्ञान और विनय से नित्य ही शुद्ध करे, ऐसा करने पर मरण होने पर पश्चात्ताप नही होगा।

—अज्ञात

माने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये।
विस्मये नहि कर्त्तव्यो नानारत्ना वसुन्धरा॥

मान, तप, शौर्य, विज्ञान, विनय, और नीति में किसीको देखकर विस्मय नहीं करना चाहिए क्योंकि पृथ्वी नाना रत्नमयी है।

—अज्ञात

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः।
वासुदेव नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः॥

गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं, पिता का वंश निरर्थक है। मनुष्य वासुदेव को नमस्कार करते है, वसुदेव को नहीं।

—अज्ञात

अंगनानामिवाङ्गानि गोप्यन्ते स्वगुणा यदा।
तदा ते स्पृहणीयाः स्युरिमे ह्यत्यन्तदुर्लभाः॥

स्त्रियों के अंगों के समान जब अपने गुण छिपाये जाते हैं, तो वे स्पृहणीय तथा अत्यन्त दुर्लभ हो जाते हैं।

—अज्ञात

कंखे गुणे जाव सरीर भेऊ।

जब तक जीवन है, सद्गुणों की आराधना करते रहना चाहिए।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (४।१३)

बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदही।

सद्गुणों की साधना का कार्य भुजाओं से सागर तैरने जैसा है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१९।३७)

अप्पमत्ता सतीमन्तो, सुशीला होथ भिक्खवो।

भिक्षुओं! सदैव अप्रमत्त, स्मृतिमान और सुशील होकर रहो।

[पालि] —दीघनिकाय (२।३।१७)

बाहुसच्चं च सिप्पं च, विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मंगलमुत्तमम्॥

बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, विनयी होना, सुशिक्षित होना और सुभाषित वाणी बोलना—यह उत्तम मंगल है।

[पालि] —खुद्दक पाठ (५।४)

हीनजच्चोपि च होति उट्ठाता धितिमा नरो।
आचारसीलसम्पन्नो निसेव अग्गीव भासति॥

हीन-जन्मा होने पर भी यदि मनुष्य उत्साही और धृतिमान होता है तो आचारशीली होने पर वह रात्रि में अग्नि की तरह प्रकाशित होता है।

[पालि] —जातक (हंस जातक)

सीलं च वुद्धानुमतं सुतं च
धम्मानुवत्ती च अलीनता च
अत्थस्स दारा पमुखा छलेते।

शील, ज्ञानवृद्धों का उपदेश, बहुश्रुतता, धर्मानुकूल आचरण और अनासक्ति—ये छह अर्थ (उन्नति) के प्रमुख द्वार है।

[पालि] —जातक (अत्थस्सद्वार जातक)

काठ काठ सब एक से, सब काहू दरसात।
अनिल मिलै जब अगर को, तब गुन जान्यो जात॥

—नागरीदास

लहे जाय गुन कहे तें, सो गुनि कहे न जाय।
दीसें जो मनि दीपसों, वह ज्यों मनि न कहाय॥

जिनके गुणों का ज्ञान बताने से हो, उन्हें गुणी नही कहा जाता, जैसे जो मणि दीपक द्वारा दिखाई दे, उसे मणि नही कहा जाता।

—दयाराम (दयाराम सतसई, दोहा ६०६)

कहा भयो जो धन भयो, आदर गुन ते होइ।

—वृन्द (वृन्द सतसई, २५४)

गुन आयो तब जानिये, अवगुन नाम विलाय।
अरथ भलो सो परसरां जो अनरथ बहि जाय॥

—परशुराम (परशुराम सागर)

जनता का अर्थ-प्रेम की शिक्षा देकर उसे पशु बनाने की चेष्टा अनर्थ करेगी। उसमें ईश्वर भाव का, आत्मा का निवास न होगा तो सब लोग उस दया, सहानुभूति और प्रेम के उद्गम से अपरिचित हो जायेंगे जिससे आपका व्यवहार टिकाऊ होगा।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १२८)

सद्गुणों पर है लगी मुद्रा न जाति विशेष की।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, पद ३८)

त्याग और तपस्या तुम्हारे मुख-मण्डल पर अंकित हो और तत्परता और क्रियाशीलता तुम्हारे कामों पर।

—गणेशशंकर विद्यार्थी (साप्ताहिक प्रताप)

शक्ति, प्रेम, दया, सहानुभूति आदि गुण स्थूल प्रयोजनों की सिद्धि करें तो, और न करें तो, बड़े है और पालनीय हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० ६१)

किसी में जीवन की प्रेरणा है तो उसका होना भी उसमें गुण होने का प्रमाण है। गुण है, इसलिए जीवन की आकांक्षा है।

—विनोबा (भागवत धर्म मीमांसा, पृ० १०३)

नाम बड़ा अरु दर्शन थोड़े।

—हिंदी लोकोक्ति

जहां न जाको गुन लहे, तहां न ताको ठांव।
धोबी बसिकै का करै, दिगंबरन के गांव॥

—अज्ञात

हुनर ब चश्मे अदावत बुजुर्गतर ऐबे'स्त।
शत्रुता की आंख से गुण ज्यादा बड़ा दोष होता है।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, चौथा अध्याय)

फुलमु कन्न मिगुल गुणमे प्रधानंबु।
कुल से बढ़कर गुण ही प्रधान है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

जानुग भूतिकि दोडवु सज्जन भावमु शौर्यलक्ष्मिकिन्
मौनमु नीति विद्यकु शमंबु सुबुद्धिकि वित्त वृद्धिकिन्
दानमु दलिमि शक्तिकिन् क्षम निरुढि कदंभवृत्तियुं
बूनिकतोड सर्व गुण भूषण मेन्नग शीलमे सुभी।

स्वामित्व के लिए सुजनत्व, शौर्य के लिए कम बोलना, ज्ञान के लिए शब्दादि विषयों में आसक्ति-रहित होना, शास्त्र के लिए विनय, धन के लिए उचितानुचित विनियोग, तप के लिए बिना क्रोध के रहना, सामर्थ्य के लिए सहनशीलता, धर्म के लिए व्याज का रहना भूषण है। परन्तु शील तो इन सभी भूषणों से बढ़कर है।

[तेलुगु] —एनुगु लक्ष्मण कवि

पाप जाल विमुक्तुंडे ब्राह्मणुंड्,
शान्त गुण भूषितुंडे बो श्रमणकुंडु
आस बासिन बाडे सन्यासि सुम्मु
सत्य भूषण निरतुंडे साधु जनुडु।

पाप-जाल से विमुक्त ही ब्राह्मण है। शान्त गुणों से भूषित व्यक्ति श्रमणक है। आशा को छोड़ने वाला ही संन्यासी है। सत्य रूपी भूषण से भूषित व्यक्ति ही साधु है।

[तेलुगु] —विक्रमदेव वर्मा

प्रेम, लज्जा, सद्योग, दयार्द्रता तथा सत्य वचन—ये पांच शान्ति के स्तम्भ हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुवक्कुरल, ९८३)

अनमोल मोती सागर की सतह पर ही नहीं मिल जाते। रात्रि के अन्धकार में सूर्यकान्त मणि तेज की किरणें नहीं फेंकतीं। चकमक पत्थर कोमल वस्तु की रगड़ पर चिंगारी उत्पन्न नहीं करता। इन सबको विरोध की अपेक्षा होती है। अन्याय से पिसे हुए मन को बेचैन बना दो—अन्दर तक, रक्त की एक-एक बूंद में उबाल आना चाहिए। अन्याय का ईंधन प्रतिशोध की भट्टी को तपाता रहे, ऐसी भट्टी में फिर सद्गुणों के कण चमकने लगते हैं।

—विनायक दामोदर सावरकर (१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर, पृ० ४५८-४५९)

सुन्दर मनुष्य में प्रकट होने पर गुण भी सुन्दरतर हो जाता है।

—वर्जिल

मेरे पास तीन निधियाँ हैं जिन्हें मैं सँभाले हूँ और जिनकी रक्षा करता हूँ। पहला सहिष्णुता है। दूसरा आत्म-संयम है। तीसरा है संसार में प्रथम होने का साहस न करना।

—लाओ-त्स (पथ का प्रभाव, पृ० ७१)

केवल सुन्दर पंखों से सुन्दर पक्षी नहीं बन जाते।

—ईसप (नीति कथाएँ)

अपने भीतर छुपे हुए इन गुणों को प्रकट करो—ईमानदारी, गंभीरता, परिश्रम, भोग से अरुचि, सन्तुष्टि, उदारता, स्पष्टवादिता और चरित्रबल।

—मार्क्स एन्टोनियस (कर्तव्य, ७)

'Tis virtue, and not birth that makes us noble.

गुण, न कि वंश, हमें श्रेष्ठ बनाता है।

—फ्रांसिस ब्यूमां तथा जॉन फ्लेचर (दि प्रोफ़ेटेस, २।३)

गुण और रूप

जैसो गुन दीनों दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहँ पाइए, सोनो और सुगन्ध॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ७५)

गुण-ग्रहण

श्रद्दधानः शुभा विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

श्रद्धायुक्त होकर अपनी अपेक्षा नीच व्यक्ति से भी श्रेष्ठ विद्या को ग्रहण करना चाहिए। चांडाल से भी परम धर्म को प्राप्त करना चाहिए तथा अपने से नीच कुल से भी स्त्री-रत्न को ग्रहण करना चाहिए।

—मनुस्मृति (२।२३८)

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम्॥

विष से भी अमृत को, बालक से भी सुभाषित को, शत्रु से भी सदाचार को और अपवित्र से भी सुवर्ण को ग्रहण करना चाहिए।

—मनुस्मृति (२।२३९)

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥

युक्तियुक्त वचन को बालक से भी ले लेना चाहिए। ब्रह्मा द्वारा भी कहा युक्तिहीन वचन तृण की तरह त्याज्य है।

—योगवासिष्ठ

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्॥

रत्न किसी को नहीं खोजते अपितु रत्न को ही खोजते फिरते हैं।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।४५)

गुंजा मौक्तिकहारयुंजपतिता प्राज्ञैर्न किं त्यज्यते?

क्या विद्वान लोग मोतियों की माला में पड़ी गुंजा को अलग नहीं कर देते?

—दैवज्ञ पंडित सूर्य (नृसिंह चम्पू, ५।१०)

शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः।

शत्रु का भी अच्छा गुण ग्रहण करने योग्य होता है।

—चाणक्यनीति

ज्यूं अहीरी काढ़ि घृत तक्र देत है डारि कै।
यूं गुन ग्रहै सु भीखजन औगुन तजै विचारि कै॥

—भीखजन

मोती तो जहाँ से मिलें, वहाँ से ले लेने चाहिए।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, पृ० २०)

औरों के पास से जो कुछ अच्छा पाओ, अवश्य सीखो। किन्तु उसे इस प्रकार लो कि वह तुममें आत्मसात हो जाए। कहीं तुम पराए न बन बैठो।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठित जाग्रत, पृ० ५६)

गुणग्राहकता

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥

बड़े गुणों और सत्कर्मों के करने वाले लोग संसार में सर्वदा सुलभ हुआ करते हैं किन्तु उनके ज्ञाता तो दुर्लभ हैं।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ४।६)

दोषमपि गुणवति जने दृष्ट्वा गुणरागिणो न खिद्यन्ते।
प्रीत्यैव शशिनि पतितं पश्यति लोकः कलंकमपि॥

किसी गुणवान मनुष्य में कोई दोष भी देख कर गुणानुरागी व्यक्ति खिन्न नहीं होते। चन्द्रमा में पड़े हुए कलंक को भी लोग प्रेम से ही देखते हैं।

—हरिभट्ट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २४४)

गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।

गुणज्ञों को शत्रुओं के गुणों से भी आनन्द होता है।

—हर्ष (प्रियदर्शिका, प्रथम अंक)

गुणप्रकर्षे हि सदा मनांसि गुणान्तरज्ञानवतां रमन्ते।

विभिन्न गुणों के ज्ञानी लोगों के मन सदैव उत्कृष्ट गुणों पर रम जाते हैं।

—परिमल पद्मगुप्त (नवसाहसांकचरित, १४।४१)

ण कत्थूरिया कुग्गामे बणे वा विक्किणी अदि, ण सुवण्णं कसवट्टिअं विणा सिलापट्टए कसी अदि।

कस्तूरी छोटे मोटे गाँव में अथवा जंगल में नहीं बेची जाती, न सोना ही कसौटी के विना पत्थर पर घिसा जाता है।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।१८ के पश्चात्)

मन्दा रतन भेद नहि जान
बान्दर[1] मूह[2] न सोभए पान॥

—विद्यापति (विद्यापति पदावली, प्रथम भाग, पद ११२)

जब गुण कूं गाहक मिले, तब गुण लाख विकाइ।
जब गुण कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७८)

कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ।
बगुला मंझ न जाँणई, हंस चुणे चुणि खाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७८)

भँवर आइ बनखंड हुति लेहि कँवल कै वास।
दादुर बास न पावहिं भलेहिं जो आछहिं पास॥

—जायसी (पदमावत, २४)

हीरे को जौहरी पहचाने।

—हिंदी लोकोक्ति

अंधा क्या जाने वसन्त की बहार।

—हिंदी लोकोक्ति

का पर करूं सिंगार पिया मोर आंधर।

—हिंदी लोकोक्ति

लगी चहकने जहाँ भी बुलबुल, हुआ वहीं पर जमाल पैदा
कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर' करे तो कोई कमाल पैदा।

—अकबर इलाहाबादी

निगाहें क़ाबिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने में
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तों में निहाँ होकर।

—अकबर इलाहाबादी

---

१. बन्दर। २. मुख।

तुका म्हणे हिरा। पारखियां मुढ़ां गारा।

हीरे की परख पारखी को होती है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १३२३)

गुण-दोष

शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि।

शत्रु के भी गुण ग्रहण करने चाहिएँ और गुरु के भी दोष बताने में संकोच नहीं करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, विराट पर्व, ५१।१५)

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा॥

कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें सर्वथा गुण ही गुण हों। ऐसी भी वस्तु नहीं है जो सर्वथा गुणों से वंचित ही हो। सभी कार्यों मे अच्छाई और बुराई दोनों ही देखने मे आती हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १५।५०)

विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्॥

सज्जनों के लिए गुण-स्वरूप विद्या, तप, धन, शरीर, युवावस्था और उच्चकुल—ये छह दुष्टों के लिए दुर्गुण हैं, जिनके कारण विवेक के नष्ट होने पर अभिमानी और दोष-पूर्ण दृष्टि वाले होकर वे ढीठ लोग महापुरुषों की तेजस्विता को नहीं देख पाते।

—भागवत (४।३।१७)

किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितम्॥

गुण और दोष के लक्षण बहुत क्या बताए जाएं? गुण और दोष दोनों की ओर दृष्टि जाना ही दोष है और गुण है दोनों से अलग रहना।

—भागवत (११।१९।५४)

भवत्यरूपोऽपि हि दर्शनीयः स्वलंकृतः श्रेष्ठतमैर्गुणैः स्वैः।
दोषैः परीतो मलिनीकरैस्तु सुदर्शनीयोऽपि विरूप एव॥

अपने श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत होकर कुरूप मनुष्य भी दर्शनीय हो जाता है, किन्तु गंदे दोषों से व्याप्त होकर रूप-वान भी कुरूप हो जाता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।३४)

एको हि दोषो गुणसंनिपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।

गुणों के समुदाय में एक दोष चन्द्र की किरणों में कलंक की तरह लीन हो जाता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, १।३)

बन्धूनां गुणदोषयोरपि गुणे दृष्टिर्न दोषग्रहः।

बन्धुओं के गुण और दोष में गुण पर दृष्टि डालनी चाहिए, दोषों पर नहीं।

—कर्णपूर (चैतन्यचन्द्रोदय नाटक)

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥

यदि मनुष्य के पास क्षमा है तो कवच की क्या आवश्यकता? यदि क्रोध है तो शत्रुओं की क्या आव-श्यकता? यदि स्वजातीय है तो अग्नि की क्या आवश्यकता? यदि मित्र हैं तो दिव्य औषधियों की क्या आवश्यकता? यदि दुर्जन हैं तो सर्पों की क्या आवश्यकता? यदि निर्दोष विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता? यदि लज्जा है तो आभूषण की क्या आवश्यकता? यदि काव्य-शक्ति है तो राज्य की क्या आवश्यकता?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, २१)

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्तितीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥

यदि लोभ है तो और अवगुणों की क्या आवश्यकता है? यदि चुग़लखोरी है तो और पापों की क्या आवश्यकता है? यदि सत्य है तो तपस्या की क्या आवश्यकता है? यदि मन शुद्ध है तो तीर्थों की क्या आवश्यकता है? यदि सज्जनता है तो और गुणों की क्या आवश्यकता है? यदि यश है तो आभूषणों की क्या आवश्यकता है? यदि उत्तम विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता है? यदि अपयश है तो मृत्यु की क्या आवश्यकता है?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ५५)

दोषानपि गुणीकर्तुं दोषीकर्तुं गुणानपि।
शक्तो वादी न तत्तथ्यं दोषा दोषा गुणा गुणाः॥

वाद-विवाद में कुशल व्यक्ति दोषों को भी गुण और गुणों को भी दोष सिद्ध करने में समर्थ हो सकता है किन्तु वह सत्य नहीं होता। दोष, दोष ही हैं और गुण, गुण ही हैं।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २१५)

सब्बं न कल्याणं सब्बं वापि न पापकं।

न सब कल्याण कारक ही है, न सब बुरा ही है।

[पालि] —जातक (असिलक्खण जातक)

कहूँ कहूँ गुन तें अधिक, उपजत दोष सरीर।
मधुरी वानी बोलिकै, परत पींजरा कीर॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन हूँ गुन होय।
धन संग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

लोभ सो न औगुन पिसुनता सो पातुकु न,
साँच सो न तप नाहिं ईरषा सो दहनो।
सुचि सो न तीरथ सुजनता सो सेवक न।
चाह सो न रोग तीनि लोक माँह कहनो।
धरम सो मीत न दुरित जीवघातक सो
काम सो प्रबल नाहिं दत्त सो लहनों।
चिंता सो न साल 'देवीदास' तीन्यों लोक कहें
सन्तोष सो सुख नाहिं कीरति सो गहनो॥

—देवीदास

राजा में फ़कीर छिपा है और फ़कीर में राजा। बड़े-से-बड़े पंडित में मूर्ख छिपा है और बड़े-से-बड़े मूर्ख में पंडित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। पापी में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा हुआ है।

—सरदार पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

मनुष्य—घर
गुण—दरवाज़ा
दोष—दीवारें

—विनोबा (विचार पोथी, ७३६)

हीन से हीन प्राणी में भी एक-आध गुण है, उसी के आधार पर वह जीवन ज़ी रहा है।

—विनोबा (भागवत धर्म-मीमांसा, पृ० १०३)

किसी को बैंगन बाय,[1] किसी को पथ्य।

—हिंदी लोकोक्ति

ठाँव गुन काजल, ठाँव गुन कालख।

एक ही वस्तु किसी स्थान पर काजल बन कर शोभा देती है, कहीं कालिख बनकर बुरी लगती है।

—हिंदी लोकोक्ति

ओइसन गुलाबक फूल तइमें कांट।

इतना सुन्दर गुलाब का फूल, उसमें भी काँटे!

—हिंदी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

निज गुण दोष कर्म मुल नेट्टन मेलुनु गीडु वच्चु।

अपने गुण-दोषों के अनुसार ही अपनी भलाई-बुराई और सुख-दुःख चलते हैं।

[तेलुगु] —एर्रना (महाभारत, अरण्यपर्व)

तन कोपमे तन शत्रुवु
तन शान्तमे तनकु रक्ष दय चुट्टंबौ
तन संतोषमे स्वर्गमु
तन दुःखमे नरक मंड्रु तथ्यमु सुमती।

अपना क्रोध ही अपना शत्रु है। अपनी शांत भावना ही अपना रक्षक है। अपनी दया की भावना ही रिश्तेदार है। अपना संतोष ही अपने लिए स्वर्ग है। और अपना दुःख ही अपना नरक है।

[तेलुगु] —बद्देना (सुमतिशतक)

१. वायुकारक

गुणहीन

भैंस के आगे बीन बजे वह बैठी पगुराय।

—हिंदी लोकोक्ति

आँखे के अंधे नाम नयनसुख।

—हिंदी लोकोक्ति

गुणी

एकस्यां तनावेतावती गुणसमाहारस्य संनिवेशः कथमिवाभूत्।

एक शरीर में इतने गुणों के समुदाय की स्थिति कैसे हुई ?

—भवभूति (मालतीमाधव, नवम अंक)

गुणेष्वेव हि कर्त्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः॥

मनुष्यों को सदा गुण-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि गुणी दरिद्र भी गुणहीन धनिकों के समान नहीं अपितु उनसे बढ़कर है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ४।२२)

न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्।

गुणी जनों के लिए कुछ भी अलभ्य नहीं है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ४।२३)

गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।

गुणज्ञों को शत्रुओं के गुणों से भी आनन्द होता है।

—हर्ष (प्रियदर्शिका, प्रथम अंक)

गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्यः क्षणभंगिन्यो दुरतिक्रमणीया न रमणीया दैवस्य वामा वृत्तयः।

गुणवान लोगों के विषय में दैवी प्रवृत्तियाँ मर्यादाहीन, दुर्जनों की तरह क्रूर, क्षणभंगुर, दुरतिक्रमणीय तथा अरमणीय होती हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १६)

गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति॥

गुणी पुरुष का आश्रय लेने से, गुणहीन भी गुणी हो जाता है।

—चाणक्यनीति

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव संभवति।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात्॥

गुणी व्यक्तियों को भी अपने स्वरूप का परिचय दूसरों के द्वारा ही होता है क्योंकि आँखों को भी अपनी महिमा का दर्शन दर्पण में ही होता है।

—सुवन्धु (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ३१२)

यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः।

किसी से भी उत्पन्न गुणवान मनुष्य पूजा जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका, २३)

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः।
अलिरेति वनात् कमलं न दर्दुरस्तन्निवासोऽपि॥

गुण की परख रखने वाला गुणी को पाकर प्रसन्न हो जाता है किन्तु निर्गुण व्यक्ति गुणवान् से सन्तुष्ट नहीं होता। भौंरा तो जंगल से कमल के पास चला आता है किन्तु मेंढक जलाशय में कमल के अत्यन्य समीप होते हुए भी उसके समीप नहीं जाता।

—अमृतवर्धन (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २५३)

आयान्तं गुणिनं दृष्ट्वा प्रहृष्येदाद्रियते च।
गुणिनो ह्यादृता भूयश्चेष्टन्ते तस्य संपदे॥

गुणी व्यक्ति को आता देख कर प्रसन्न होना चाहिए तथा आदर करना चाहिए। फिर समादृत गुणी व्यक्ति उसके सुख के लिए चेष्टा करते है।

—अज्ञात

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥

योग्य पुरुषों के लिए कोई भी कार्य अत्यन्त कठिन नहीं होता, उद्योगी मनुष्यों के लिए कोई स्थान दूर नहीं होता, विद्वानों के लिए कोई देश, विदेश नहीं होता और प्रिय वचन बोलने वालों के लिए कोई व्यक्ति पराया नहीं होता।

—अज्ञात

अवरज्झसु वीसद्धं सव्वं ते सुहअ विसहियो अम्हे।
गुणणिब्भरम्मि हिअए पवित्र दोसा ण माअन्ति ॥

हे प्रिय! विश्वासपूर्वक अपराध करते जाओ, हम तुम्हारा सब कुछ सहन कर लेंगे। विश्वास रखो कि गुणों से भरे हृदय में दोष नहीं समाते।

[प्राकृत] —हाल सालवाहन (गाथासप्तशती, ४।७६)

आडम्बर तजि कीजिए, गुन संग्रह चित चाय।
छोर रहित गऊ ना विकै, आनिय घंट बँधाय ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

जहाँ रहे गुनवंत नर, ताकी शोभा होत।
जहाँ धरे दीपक तहाँ, निहचै करे उदोत ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ५१०)

जिस तरह का किसी में हो कमाल अच्छा है।

—ग़ालिब (दीवान, १७४।७)

गर हुनरमन्द जि ऑवाश जफ़ाए वीनद
ता दिले ख़ेश नयाज़ारदो दरहम न शवद।
संगे वद गौहर अगर कासाए ज़रीं वशिकस्त
वक़ीमते संगे नयफ़ज़ायदो ज़रकम न शवद।

यदि गुणी व्यक्ति मूर्खों से कष्ट पाये, तो उसका चित्त नहीं दुखे, न क्रुद्ध हो। दुष्कुलोत्पन्न पत्थर यदि स्वर्ण पात्र को तोड़ दे, तो पत्थर का मूल्य बढ़ नहीं जाता और सोने का कम नहीं होता।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

बुजुर्ग रा पुर्सीदन्द—कि चन्दी फ़ज़ीलत कि दस्ते रास्त रास्त खातिम दर अंगुश्ते चप चिरा मी कुनन्द? गुफ्त—'न शुनीदई कि अहले फ़ज्ल हमेशा महरूम' न्द।

एक बुजुर्ग से लोगों ने पूछा कि—'इतनी महिमा दाएँ हाथ की है, तो अँगूठी बाएँ हाथ में क्यों पहनते है?' उसने कहा—'क्या तूने सुना नहीं कि गुणी जन सदा वंचित रहते हैं।'

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

कुलीन व्यक्ति में प्रसन्न मुख, दान, मधुर बोल तथा दूसरों की निन्दा न करना ये चारों गुण स्वाभाविक होते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ९५३)

उद्यान की सुगन्धि कलियों से हुआ करती है, और भद्र पुरुष की प्रतिष्ठा न्याय और नेकी के कारण होती है।

—अबुल-फ़तहिल-बुस्ती (अरबी काव्य दर्शन, पृ० १७)

As many languages as he has, as many friends, as many arts and trades, so many times is he a man.

जो व्यक्ति जितनी अधिक भाषाओं का ज्ञाता है, जितने अधिक उसके मित्र है तथा जितनी अधिक कलाओं व शिल्पों में निष्णात है, वह उतने ही गुना मनुष्य है।

—एमर्सन ('कल्चर')

गुप्तता

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥

विष का रस एक को ही मारता है। शस्त्र से भी एक का ही वध होता है, किन्तु मंत्रणा का प्रकाशित होना राष्ट्र और प्रजा के साथ ही राजा का भी विनाश कर डालता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।४५)

करिष्यन् न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत्।
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ॥

धर्म को काम और अर्थ-सम्बन्धी कार्यों को करने से पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करने से अपनी मन्त्रणा दूसरों पर प्रकट नहीं होती।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३८।१६-१७)

मनसा चिन्तितं कार्यं, वचसा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं, कार्ये चापि नियोजयेत् ॥

मन से विचारे हुए कार्य को वाणी से नहीं कहना चाहिए। मंत्रणा द्वारा गुप्त बात की रक्षा करे। और फिर क्रियात्मक रूप से कर देना चाहिए।

—चाणक्यनीति

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वचनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥

बुद्धिमान मनुष्य अपने धन-नाश, मनस्ताप, घर के दुश्चरित, धोखा खाने के प्रसंग तथा अपमान की बातों को प्रकाशित न करे।

—अज्ञात

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्।
अपमानं तपो दानं नव गोप्यानि यत्नतः॥

आयु, धन, घर का भेद, मन्त्र, मैथुन, औषधि, अपमान, तपस्या और दान—इन नौ को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए।

—अज्ञात

जराधम्मो योब्बञ्ञे, व्याधिधम्मो आरोग्ये, मरणधम्मो जीविते।

यौवन में बुढ़ापा छिपा है, आरोग्य में रोग छिपा है और जीवन में मृत्यु छिपी है।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (५।४८।४१)

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्मं,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्नत्थो यथासुखं भणेय्य॥

गुप्त बात का गुप्त रहना ही अच्छा है। गुप्त बात का प्रकट होना अच्छा नहीं। धीर पुरुष को चाहिए कि जब तक काम न बन जाय, तब तक गूढ़ बात को मन में रखे। जब काम पूरा हो जाए, तब सुखपूर्वक मुँह खोले।

[पालि] —जातक (महाउम्मग्ग जातक)

कलहन्तरे वि अविणिगाआइँ हिअअम्मि जरमुवगआइँ।
सुअणकआइ रहस्साइँ डहइ आउक्खए अग्गी॥

सज्जन द्वारा सुनी हुई रहस्य की बातें कलह होने पर भी मुख के बाहर नहीं निकलती, हृदय में ही पुरानी पड़ जाती है, आयु-क्षय होने पर अग्नि ही उन्हें जलाती है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथासप्तशती, ४।२१)

बैर पेम नहिं दुरइ दुराए।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२६४।१)

करो न मंत्र मूढ़ सौ न गूढ़ मंत्र खोलिये।

—केशव (रामचन्द्रिका, ३९।३०)

मैं तृन सो गन्यो तीनहु लोकनि तू तृन ओट पहार छपावै।

—मतिराम (मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४२२)

धरनी आपन मरम हो, कहिये नाहीं काहि।
जाननहार सो जानि है, जैसो जो कुछ आहि॥

—धरनीदास (धरनीदास जी की बानी, पृ० ४७)

भीरु छिपावत, जीव ज्यों, कृपण छिपावतु दामु।
सूर छिपावत शक्ति त्यौं, चतुर छिपावतु नामु॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, सातवाँ शतक, २७)

आँख की बदी भौंह के सामने।

—हिन्दी लोकोक्ति

चाँद उगेगा तो क्या उसे आँचल छिपा लेगा?

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

चंचल नार की चाल छिपे नहीं, नीच छिपे न बड़प्पन पाए,
जोगी का भेष नीक धरो कोई, करम छिपे न भभूत रमाए।

—अज्ञात

यूँ आप तो कहूँगा न रंजिश का माजरा
पूछोगे तुम तो मुझसे छुपाया न जायगा।

—निज़ाम

आदमी आदमी का बहुत कुछ जानता है, तो भी बहुत से काम वह उससे छिप कर आड़ से करता है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २५)

गुरु

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद् वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यंजसीनाम्॥

मार्ग को न जानने वाला अवश्य ही मार्ग को जानने वाले से पूछता है। वह क्षेत्रज्ञ विद्वान से शिक्षित होकर उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है। गुरु के अनुशासन का यही कल्याणदायक फल है कि वह अनुशासित, अज्ञपुरुष भी ज्ञान को प्रकाशित करने वाला वाणियों को प्राप्त करता है।

—ऋग्वेद (१०।३२।७)

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

'गु' शब्द का अर्थ है 'अन्धकार'। 'रु' शब्द का अर्थ है उसका 'निरोधक'। अंधकार का निरोध करने से 'गुरु' कहा जाता है।

—द्वयोपनिषद् (४)

शिष्यस्याशिष्यवृत्तेस्तु न क्षन्तव्यं बुभूषता।

जो शिष्य होकर भी शिष्योचित बर्ताव नहीं करता, अपना हित चाहने वाले गुरु को उसकी धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, ७६।६)

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते॥

अपना गुरु स्वयं प्राणी ही होता है, विशेषकर पुरुष के लिए, क्योंकि वह प्रत्यक्ष और अनुमान से श्रेय को जान लेता है।

—भागवत (११।७।२०)

गुकारस्त्वन्धकारः स्याद् रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

'गु' शब्द का अर्थ है 'अंधकार' और 'रु' का अर्थ है तेज; अज्ञान का नाश करने वाला तेजरूप ब्रह्म, गुरु ही है, इसमें संशय नहीं है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है; गुरु महेश्वर है; गुरु ही परब्रह्म है, उस गुरु के लिए नमस्कार है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

जिसने ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से अज्ञानरूपी अंधेरे से अंधी हुई आँखों को खोल दिया, उन श्री गुरु को नमस्कार है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरुवाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

ध्यान का आदिकारण गुरु मूर्ति है। गुरु का चरण पूजा का मुख्य स्थान है। गुरु का वाक्य सब मन्त्रों का मूल है और गुरु की कृपा मुक्ति का कारण है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतम्
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

केवल ज्ञानमूर्ति, द्वन्द्व से परे, आकाश के समान, 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य के लक्ष्य (शुद्धतत्त्व रूप) एक, नित्य, निर्मल, अचल, सदा साक्षी रूप, संसार से अतीत, तीनों गुणों से रहित और नित्य, ऐसे उस सद्गुरु को नमस्कार करता हूँ।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः॥

हे देवि! शिष्य के धन का हरण करने वाले गुरु बहुत से हैं परन्तु शिष्य के दुःख को हरने वाला गुरु दुर्लभ है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

अतीत्य बन्धूनवलंघ्य मित्राण्याचार्यमागच्छन्ति शिष्यदोषः।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातुर्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः।

बन्धुओं तथा मित्रों पर नहीं, शिष्य का दोष केवल उसके गुरु पर आ पड़ता है। माता-पिता का अपराध भी नहीं माना जाता क्योंकि वे तो बाल्यावस्था में ही अपने बच्चों को गुरु के हाथों में समर्पित कर देते हैं।

—भास (पंचरात्र, १।२१)

विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति।

यदि गुरु अयोग्य शिष्य चुने तो उससे गुरु की बुद्धिहीनता ही प्रकट होती है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१६ के पश्चात्)

गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति
श्रवणस्थित शूलमभव्यस्य।

गुरु का उपदेश निर्मल होने पर भी असाधु पुरुष के कान में जाने पर उसी प्रकार दर्द उत्पन्न करता है जैसे जल।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, शुकनासोपदेशवर्णन पृ० ३१६)

गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिल-मल-प्रक्षालनक्षममजलस्नानम् अनुपजातपलितादि-वैरूप्यमजरं वृद्धत्वं, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणं, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतितिलोको, नोद्वेगकरः प्रजागरः।

गुरु का उपदेश मनुष्यों के वृद्धत्व के समान है किंतु इस वृद्धत्व में केशों का पकना और अंगों की शिथिलता आदि दोष उत्पन्न नहीं होते है तथा शरीर जीर्ण-शीर्ण भी नहीं होता है। यह भारीपन देता है परन्तु मेद-दोष उत्पन्न नहीं करता है। यह कानों का आभूषण है परन्तु सुवर्ण-निर्मित नहीं है और न ग्राम्य है। यह जागरण-स्वरूप है किंतु उद्वेगकर नहीं है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१७-३१८)

कस्य नोच्छृंखलं बाल्यं गुरुशासनवर्जितम्।

गुरुओं के शासन से विहीन किस की वाल्यावस्था उच्छृंखल नहीं हो जाती ?

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥

अभिमान करने वाले, कार्य और अकार्य को न जानने वाले तथा कुपथ पर चलने वाले गुरु का भी परित्याग कर देना चाहिए।

—कृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय)

गुरौ प्रणामो हि शिवाय जायते।

गुरु को किया गया प्रणाम कल्याणकारी होता है।

—कर्णपूर (पारिजातहरण, १।२९)

यथापि नाम जच्चंधो नरो अपरिनायको।
एकदा याति मग्गेन कुमग्गेनापि एकदा॥
संसारे संसरं बालो तथा अपरिनायको।
करोति एकदा पञ्जं अपुञ्ञमपि एकदा॥

जिस प्रकार जन्मांध व्यक्ति हाथ पकड़ कर ले जाने वाले व्यक्ति के अभाव में कभी मार्ग से जाता है तो कभी कुमार्ग से। उसी प्रकार संसार में संसरण करता अज्ञानी प्राणी पथप्रदर्शक सद्गुरु के अभाव में कभी पुण्य करता है तो कभी पाप।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (१७।११९)

अंधो अंधं इहं णितो, दूरमद्धाणुगच्छइ।

अन्धा अन्धे का पथप्रदर्शक बनता है तो वह अभीष्ट मार्ग से दूर भटक जाता है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१।२।१९)

कथणी कथै सों सिष्य बोलिए, वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी॥

जो केवल कहता फिरता है, वह शिष्य है। जो वेद का पाठ मात्र करता है, वह नाती है। जो आचरण करता है, वह हमारा गुरु है और हम उसी के साथी हैं।

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी, २७१)

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १)

सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड़या कलेजै छेक॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १)

गूँगा हुवा बावला, बहरा हूआ कान।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मार्‍या बान॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २)

पीछैं लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २)

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २)

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूण।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरोगे कौंण॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २)

भली भई जु गुरु मिल्या, नहिं तर होती हाणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ पड़ता पूरी जाणि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३)

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थें, एक आध उबरंत॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३)

कबीर हीरा-वणजिया हिरदे उकठो खाणि।
पारब्रह्म क्रिपा करी सतगुर भये सुजाण॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४)

चलौ चलौं सबको कहै, मोहि अँदेसा और।
साहिब सूँ पर्चा नहीं, ए जाइगे किस ठौर॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३१)

भरम न भागा जीय का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचै बाहिरा, अंतरि रह्या अलेप॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४७)

ऐसा कोई नाँ मिलै, हम कौं दे उपदेस।
भौसागर मैं डूबताँ, कर गहि काढैं केस॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६६)

पार ब्रह्म बूठा मोतियाँ, घड़ बाँधी सिषराह।
सगुराँ सगुराँ चुणि लिया, चूक पड़ी निगुराँह॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८३)

मान सरोवर माँहि जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोस न दीजिये, घर घर कहण न जाइ॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० ९)

दादू काढ़े काल मुखि, अंधे लोचन देइ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० ४)

वहे जात संसार मैं, सद्गुरु पकरे केश।
सुन्दर काढे डूबते, दै अद्भुत उपदेश॥

—सुन्दरदास (गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक, दोहा २)

सद्गुरु सुधा समुद्र है, सुधामई हैं नैन।
नष शिष सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन॥

—सुन्दरदास (गुरुकृपाष्टक, दोहा ९)

नाव मिली केवट नहीं कैसे उतेरे पार।

—पलटू साहब

पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरन्नार।
पर स्वारथ के कारने संत लिया अवतार॥

—पलटू साहब

पलटू सतगुरु शब्द का तनिक न करै विचार।
नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरैं पार॥

—पलटू साहब

हउमै मेरा मरी मरू मरि जन्मे वारोवार।
गुरु के सबदे जे मरैं फिरि मरैं न दूजी वार॥

—गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब)

झड़ झखड़ ओहाड़ लहरी वहनि लखेसरी।
सतिगुर सिउ आलाइ बेड़े डुबणि नाहि भउ॥

बादल चल रहे हैं, आंधी चल रही है, बाढ़ के कारण लाखों लहरें उठ रही हैं। ऐसी अवस्था में सद्गुरु को पुकारो फिर तुम्हें बेड़ा डूबने का भय नहीं रहेगा।

—गुरुनानक (गुरु ग्रंथ साहब)

गुरु आए घन गरज करि, सबद किया परकास।
बीज पड़ा था भूमि में, भई फूल फल आस॥

—दरियाव

मस्तक पर गुरुदेव जी, हृदय विराजे राम।
रामदास दोनूं पखा, सब बिध पूरण काम॥

—रामदास महाराज

जो स्वरूप गुरु का अंतर में प्रकट होता है वह हाड़-माँस का नहीं है बल्कि ऐन चैतन्य है क्योंकि चैतन्य मंडल में अन्तर्यामी पुरुष अपने प्रेमी और भक्तजन के निमित्त गुरु स्वरूप का आकार धारण करता है।

—राय सालिगराय हुजूर महाराज

बिन गुरु पंथ न पाइअ भूलै सोइ जो भेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौं भेंट॥

—जायसी (पद्मावत, २१२)

महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १। मंगलाचरण ।५)

श्री गुर पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोप दुख भव रजनी के॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१।३-४)

गुर के वचन प्रतीत न जेही।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।८०।४)

गुरु विन मारग न चलै, गुरु विन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुंध है, गुरु विन पूरी हान॥

—सहजोबाई

हरख सोग चिंता नही लोभ मोह ते पाक।
ताको सतिगुर जानिये अद्भुत जाके वाक॥

—सुक्खासिंह (गुरु विलास, २२।८४)

गुरु बिन पंथ न पावै कोई,
केतिकौ ज्ञानी ध्यानी होई।

—नूर मुहम्मद (अनुराग बाँसुरी, पृ० ३३)

केवल कान में मन्त्र देना गुरु का काम नही है।···संकट से रक्षा करना···शिष्य के कर्म को गति देना भी गुरु का काम है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (सरयू की धार, पहला अंक, ३१)

ज्ञान की प्रथम गुरु माता है। कर्म का प्रथम गुरु पिता है। प्रेम का प्रथम गुरु स्त्री है और कर्त्तव्य का प्रथम गुरु सन्तान है।

—आचार्य चतुरसेन शास्त्री (अन्तस्तल, पृ० ८२)

पसरी सारे ज्योति वह, अंधे तोहि न दिखाय।
सद्गुरु के उपदेश को, अंजन क्यों न अँजाय॥

—रामदास गौड़

गुरु में हम पूर्णता की कल्पना करते हैं। अपूर्ण मनुष्यों को गुरु बना कर हम अनेक भूलों के शिकार बन जाते है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, भाग १९, पृ० १८४)

गुरु हमें सिखाता है कि विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान के लिए हमें किस प्रकार व्याकुल रहना चाहिए, किस प्रकार पागल-जैसा बनना चाहिए। शिष्य को यह प्रतीत होता है कि गुरु मानो अनन्त ज्ञान की मूर्ति है। गुरु मानो एक प्रतीक होता है। गुरु मानो मूर्त ज्ञान-पिपासा है। गुरु मानो अनन्त ज्ञान की विकलता है। गुरु मानो सत्य के ज्ञान की उत्कटता है। हमारे गुरु का न आदि है, न अन्त। हमारे गुरु का न पूर्व है, न पश्चिम। हमारा गुरु है परिपूर्णता।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० १२४)

गुरु अपनी अन्धभक्ति पसन्द नहीं करते। गुरु के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाना, उनके प्रयोगों को आगे चालू रखना ही उनकी सच्ची सेवा है। निर्भयतापूर्वक ज्ञान की उपासना करते रहना ही गुरु-भक्ति है। एक दृष्टि से सारा भूतकाल हमारा गुरु है। सारे पूर्वज हमारे गुरु हैं।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० १२६)

शिष्य के ज्ञान पर सही करना, इतना ही गुरु का काम। बाक़ी शिष्य स्वावलंबी है।

—विनोबा भावे (विचार पोथी)

गुरु कीजे जान कर, पीनी पीजे छान कर।

—हिन्दी लोकोक्ति

मज हृदयीं सद्गुरु। जेणें तारिलो हा संसारपूरु।
म्हणअनि विशेषें अत्यादरु। विवेकावरी॥
जैसे डोलयां अंजन भेटे। ते वेळीं दृष्टी सी फांटा फुटे।
मग वास पाहिजे तेथ प्रगटे। महानिधी॥
का चिंतामणि आलिया हातीं। सदा विजयवृत्ति मनोरथीं।
वैसा मी पूर्णकाम श्रीनिवृत्ति। ज्ञानदेव म्हणे॥
म्हणोनि जाणतेनें गुरु भजिजे। तेणें कृतकार्य होइजे॥

जिन सद्गुरु ने मुझे इस संसार-सागर से पार उतारा, वे मेरे अन्तःकरण में विराजमान है, इसी कारण विवेक के प्रति मेरे मन में विशेष अति आदर है। जिस प्रकार नेत्रों में अंजन लगाने से दृष्टि को अपूर्व बल प्राप्त होता है और तब मनुष्य भूमि के अन्दर गड़ी महानिधियाँ देखने लगता है, अथवा जिस प्रकार चिंतामणि हाथ में आने पर सदा मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं ज्ञानदेव कहता हूँ कि श्री

निवृत्तिनाथ की कृपा से मैं पूर्ण काम हो गया हूँ। इसीलिए बुद्धिमानों को गुरु-भक्ति करनी चाहिए और उसके द्वारा कृतकार्य होना चाहिए।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १।२२-२४)

सद्‌गुरू हुनि थोर। नाहीं सत्पात्र तिहीं लोकीं॥

सद्‌गुरु से बढ़ कर तीनों लोकों में कोई दूसरा नहीं है।

[मराठी] —एकनाथ

मेघवृष्टिनें करावा उपदेश। परि गुरूनें न करावा शिष्य॥

उपदेश ऐसे करे जैसे मेघ बरसे। पर गुरु बन कर किसी को शिष्य न बनावे।

[मराठी] —तुकाराम

जो समाज गुरु द्वारा प्रेरित है, वह अधिक वेग से उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है, इसमें कोई सन्देह नही। किन्तु जो समाज गुरु-विहीन है, उसमें भी समय की गति के साथ गुरु का उदय तथा ज्ञान का विकास होना उतना ही निश्चित है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० १६०)

तुमको अन्दर से बाहर विकसित होना है। कोई तुमको न सिखा सकता है न आध्यात्मिक बना सकता है। तुम्हारी आत्मा के सिवा और कोई गुरु नहीं है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

गुरुकृपा

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्‌गुरोः करुणां विना॥

विषयों का त्याग दुर्लभ है। तत्त्वदर्शन दुर्लभ है। सद्‌गुरु की कृपा बिना सहजावस्था की प्राप्ति दुर्लभ है।

—महोपनिषद् (४।७७)

गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं हिरदै कँवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझ्या, परम जोति प्रकासा॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ८९)

'सहजो' गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मधि एक ही, सूझि पैर भगवन्त॥

—सहजोबाई

'सहजो' गुरु दीपक दियो, रोम रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिट्यो भरम अँधियार॥

—सहजोबाई

गुरु कीन कृपा भव त्रास गई।
मिट भूख गई छुट प्यास गई।
नहीं काम रहा नहिं कर्म रहा।
नहिं मृत्यु रहा नहिं जन्म रहा॥

—भोले बाबा (वेदांत छंदावली, भाग ५)

गुरु की कृपा से, शिष्य बिना ग्रंथ पढ़े ही पंडित हो जाता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य भाग १०, पृ० २१८)

गुरु गोविन्दसिंह

देस-भक्ति-वेदी पै स्वतन्त्रता को मंत्र साधि,
पूत पंच पूतनि की पंच बलि दीन्ही है।

—जगन्नाथ दास रत्नाकर (वीराष्टक, गुरु गोविंदसिंह)

गुरुभक्ति

गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या तु लभ्यते।

गुरु के मुख मे स्थित विद्या गुरु की भक्ति से प्राप्त होती है।

—स्कन्दपुराण (गुरुगीता)

यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्।

भवरोग के लिए वैद्य स्वरूप गुरु की शरण में जाता हूँ।

—विवेकानन्द (श्रीरामकृष्ण स्तोत्र, ३)

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं।
गुरु के सम हरि कूं न निहारूं॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं।
गुरु ने आवागमन छुटाहीं॥
हरि ने पांच चोर दिये साथा।
गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने रोग भोग उरझायो।
गुरु जोगी करि सबै छुटायो॥
हरि ने कर्म मर्म भरमायो।
गुरु ने आतम रूप लखायो॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये।
गुरु ने सब ही भर्म मिटाये॥
चरनदास पर तन मन वारूँ।
गुरु न तजूं हरि को तज डारूँ॥

—सहजोबाई

जहां पांव गुरु राखैं, चेला राखे माथ।

—जायसी (जायसी ग्रंथावली पृ० ६२)

गुरुभक्ति अन्त मे ज्ञानभक्ति ही है। पूर्वजों के सदनुभव के प्रति आदर, उनके प्रयत्नों के लिए आदर, उनके साहस, उनकी ज्ञान-निष्ठा के लिए आदर। गुरु की पूजा मानो सत्य की पूजा, ज्ञान की पूजा, अनुभव की पूजा, विचारों की पूजा है। जब तक मनुष्यों में ज्ञान-पिपासा है, ज्ञान के लिए आदर की भावना है, तब तक संसार में गुरुभक्ति रहेगी।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० १२६)

गुरु-शिष्य

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कहा है। इस पर पूर्णतया विचार कर और फिर जैसी तेरी इच्छा हो, वैसे ही कर।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४२।६३ अथवा गीता, १८।६३)

एकमप्यक्षरं यस्तु, गुरुः शिष्यं निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं, यद् दत्वा चानृणी भवेत्॥

गुरु शिष्य को यदि एक अक्षर भी पढ़ा देता है, तो दुनिया में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसको देकर शिष्य उऋण हो सकता है।

—अज्ञात

अन्नं पुट्ठो अन्नं जो साहइ, सो गुरू न बहिरोव्व।
न च सीसो जो अन्नं सुणेइ, परिभासए अन्नं॥

वह गुरु नहीं है जो बहरे के समान शिष्य के कुछ पूछने पर कुछ और बताए और वह शिष्य भी शिष्य नहीं है जो सुने कुछ और कहे कुछ।

[प्राकृत] —विशेष आवश्यक भाष्य (१४४३)

अधिक तत्त ते गुरु बोलिये हींण तत्त ते चेला।
मन मानै तो संगि रमो नहीं तो रमो अकेला॥

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी १६१)

नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या दाव।
दून्यूं बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० २)

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ३)

सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिषही मांहे चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यों बंसि बुजाई फूक॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली पृ० ३)

गुरुहू सिखवै ज्ञान गुन, सिष्य सुबुधि जो होय।
लिखै न खुरदरि भीत पर, चित्र चितेरो कोय॥

—वृन्द (वृन्द-सतसई)

हर गुरु का एक ही शिष्य होता है और वह उसके प्रति निष्ठाहीन हो जाता है, क्योंकि उसकी नियति भी गुरुपन है।

—नीत्शे (अंग्रेजी अनुवाद 'मिक्स्ड ओपिनियन्स एँड मैक्सिज्म्स')

गृह

दे० घर'।

गृहस्थ

जायेदस्तं मघवन्।

हे इन्द्र! गृहिणी ही गृह है।

—ऋग्वेद (३।५३।४)

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः॥

दो ही अपने विपरीत कर्म के कारण शोभा नहीं पाते—अकर्मण्य गृहस्थ तथा प्रपंच में लगा हुआ सन्यासी।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।५७)

समीक्ष्य तुलया पार्थ कामं स्वर्गं च भारत।
अयं पन्था महर्षीणामियं लोकविदां गतिः॥

हे भारतवंशी नरेश! हे पार्थ! इस प्रकार विवेक की तुला पर रखकर जब देखा गया तो गृहस्थ-आश्रम ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ; क्योंकि वहाँ भोग और स्वर्ग दोनों सुलभ थे। तब से उन्होंने निश्चय किया कि यही मुनियों का मार्ग है और यही लोक-वेत्ताओं की गति है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १२।१३)

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः॥

अहिंसा, सत्य, वचन सब प्राणियों पर दया, शम तथा यथाशक्ति दान गृहस्थ का उत्तम धर्म है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १४१।२५)

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम्॥

जिस प्रकार जलयान से समुद्र पार करते हैं वैसे ही सभी आश्रमों का भरण करते हुए गृहस्थ अपने आश्रम से दुःख के समुद्र पार जाता है।

—भागवत (३।१४।१७)

गृहस्थाश्रमः कर्मक्षेत्रम्।

गृहस्थाश्रम कर्मक्षेत्र है।

—भागवत (५।१४।४)

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥

तीनों आश्रमों के लोग ज्ञान और अन्न के द्वारा गृहस्थ से पोषित है अतएव गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ आश्रम है।

—मनुस्मृति (३।७८)

गृहगतैरनुगन्तव्या एव लोकवृत्तयः।

गृहस्थों को समाज के नियमों का अनुगमन करना ही पड़ता है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १४१)

गृहस्थाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद् गृहम्।

गृहस्थाश्रम परम पवित्र है, घर सदा तीर्थ के समान है।

—अज्ञात

देवार्चनरतस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।
श्राद्धं कृत्वा ददद् द्रव्यं गृहस्थोऽपि हि मुच्यते॥

देवार्चन में रत, तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथि-सेवी और श्राद्ध करके धन दान करने वाला गृहस्थ भी मोक्ष को प्राप्त होता है।

—अज्ञात

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च।
सामान्यं भोजनं सद्भिर्गृहस्थस्य प्रशस्यते॥

गृहस्थ द्वारा अपने सभी अतिथियों, सेवकों और संबंधियों को एक सा भोज दिये जाने की सज्जन प्रशंसा करते है।

—अज्ञात

आनन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनमिष्टान्नपानं गृहे
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

घर आनन्दपूर्ण है, पुत्र बुद्धिमान् है, स्त्री मधुरभाषिणी है, अच्छा मित्र है, पर्याप्त धन है, अपनी पत्नी से प्रेम है, आज्ञा में सलग्न सेवक हैं, प्रतिदिन अतिथि-पूजन, शिवपूजन तथा इच्छानुसार भोजन व पान होता है और निरन्तर साधुओं की संगति मिलती है, ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है।

—अज्ञात

भगवान को सभी आश्रमों में प्राप्त किया जा सकता है, बोध भी सभी को हो सकता है। किन्तु यदि 'गृहस्थ' शब्द का अर्थ 'गृहासक्त' किया जाये तो वह भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। जो गृहस्थाश्रम में रहते हुए उसके राग-द्वेषपूर्ण झगड़ों से दूर रहकर शान्तिपूर्वक भगवद्भजन में लगा रहता है वह अवश्य भगवत्प्राप्ति कर सकता है।

—उड़िया बाबा

विवाह-सम्बन्ध और गृहस्थाश्रम पवित्र इसीलिए माना गया है कि उसमें संयम, परस्परार्पण, त्याग, निष्ठा और सेवा के आदर्श को प्रधानता दी है।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवन-दृष्टि, पृ० २७७)

रमवती जिसकी मृदु भारती,
गृहवधू शुभ पुत्रवती सती,
बहुल दानवती वर सम्पदा,
सफल जीवन है वह ही गृही।

—अनूप शर्मा (वर्द्धमान, पृ० ३१०)

बाघ[1], बिया[2], बेकहल[3], बानिक[4], बारी, बेटा, बैल।
ब्योहर[5], बढ़ई, बन, बबुर, बात, सुनो यह छैल॥
जो बकार बारह बसें सो पूरन गिरहस्त[6]।
औरन को सुख दै सदा आप रहे अलमस्त।

—घाघ

भूल गए राग रंग, भूल गए छकड़ी।
तीन चीजें याद रहीं, नोन तेल लकड़ी॥

—हिन्दी लोकोक्ति

गृहस्थ जीवन स्नेह एवं धर्म से युक्त हो तो वही उसका सौन्दर्य एवं फल होता है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४५)

धर्मानुसार गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को अन्य मार्गों का अनुसरण करने का क्या लाभ ?

— तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४६)

वस्तुतः गृहस्थ जीवन ही धर्म का पूर्ण रूप है और वह भी दोषारोपण से दूर हो तो फिर कहना ही क्या ?

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४९)

गृहिणी सद्गुण सम्पन्न है तो गृहस्थ को किस वस्तु का अभाव ? और यदि वैसी नहीं है तो उसके पास है ही क्या ?

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ५३)

गृहिणी का सद्गुण ही गृहस्थ की मांगलिक शोभा है और सुपुत्र उसका आभूषण।

— तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६०)

गोपाल कृष्ण गोखले

श्री गोखले का नाम मेरे लिए एक पवित्र नाम है। वे मेरे राजनीतिक गुरू हैं।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपीनियन, दिनांक २-११-१९१२)

वे स्फटिक के समान शुद्ध, मेमने की भांति विनम्र और सिंह के समान शूर थे। उनमें उदारता तो इतनी थी कि वह एक दोष बन गई थी।

—महात्मा गांधी (श्रद्धा का स्वरूप, यंग इंडिया, १३-७-१९२१)

अपनी आभा और सुगन्ध के बल से दूर-दूर के भ्रमरों से भी अपना आकर्षण मनवा लेने वाला पुष्प देवी के पवित्र चरणों में पड़कर पवित्रता की उस सिद्धि को प्राप्त कर चुका था, जो देवताओं के बाँटे में नहीं पड़ी है, जिस पर किसी भेद-भाव की छाप नहीं लगी है, जिसके लेने के लिए सब कुछ दे देना पड़ता है, और जो मनुष्य को परमात्मा और उसकी सच्ची विभूति का ज्ञान देती है।

—गणेश शंकर विद्यार्थी (साप्ताहिक प्रताप, १ मार्च १९१५)

गोरखनाथ

गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु।

गोरखनाथ ने योग क्या जगाया, लोगों को भक्ति से विमुख ही कर दिया।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ८४)

---

१. खाट बुनने की रस्सी। २. बीज। ३. ढाक की जड़ की छाल। ४. बनिया। ५. महाजन। ६. पूर्ण गृहस्थ।

तेणें योगाब्जिनीसरोवरु । विषयविध्वंसैकवीरु ।

वे गोरखनाथ योग रूपी कमलिनी के सरोवर और विषयों का नाश करने वाले महावीर थे ।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १८।७८ श्लोक की व्याख्या)

गौरव

कलकी चन्द्र भी धूमकेतु से तो अधिक गौरव और महिमावान है ।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ध्वज, तीसरा अंक)

जब तक हम अर्जुन, प्रताप, शिवाजी आदि वीरों की पूजा और उनकी कीर्ति पर गर्व करते हैं, तब तक हमारे पुनरुद्धार की कुछ आशा हो सकती है । जिस दिन हम इतने जाति-गौरव-शून्य हो जाएँगे कि अपने पूर्वजों की अमर कीर्ति पर आपत्ति करने लगें, उस दिन हमारे लिए कोई आशा न रहेगी ।

—प्रेमचंद (विविध प्रसंग-२, पृ० ३५८)

ग्रंथ

दे० 'पुस्तक' ।

ग्राम

दे० 'नगर-ग्राम' ।

ग्रामीण

आप एक ग्रामीण के साथ लंबी से लंबी यात्रा हँसते हुए कर सकते हैं, लेकिन बाबू साहब के साथ आप छोटी यात्रा करके ऊब भी जाते हैं । उस ग्रामीण के जीवन में कुछ रस है कुछ उत्साह है, कुछ आशावादिता है, कुछ बालकों का-सा कुतूहल है, कुछ अपनी विपत्ति पर हँसने की सामर्थ्य है, लेकिन मास्टर या बाबू साहब अपने आप में सिमट कर मानो सारी दुनिया से रूठ गये हैं ।

—प्रेमचन्द (विविध प्रसंग, ४८६)

अविचार अत्याचार भाबे निज करमेर फल
नयनेर जल छाड़ा ताइ किछु थाके ना सम्बल ।

वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म-फल सोचता है, इसीलिए आँसुओं के सिवा उसका कोई सम्बल नहीं ।

[बँगला] —यतीन्द्रमोहन बागची ('देशेर लोक' कविता)

एई देश—एई लोक—हासिओ ना शिक्षा-अभिमानी
धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि ।

ऐसा तो हमारा देहात है. और ये देहाती है, यह सुनकर हे शिक्षा अभिमानी मत हँसना । धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची कीमत है ।

[बँगला] —यतीन्द्रमोहन बागची ('देशेर लोक' कविता)

ग्रीष्मऋतु

कहलाने[1] एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ[2] निदाघ[3] ।।

— बिहारी (बिहारी सतसई, ५६५)

ग्लानि

अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि पर एकान्त अनुभव करने से वृत्तियों में जो शैथिल्य आता है, उसे ग्लानि कहते हैं । उसे अधिकतर उन लोगों को भोगना पड़ता है जिनका अन्तःकरण सत्त्व-प्रधान होता है, जिनके संस्कार सात्त्विक होते हैं जिनके भाव कोमल और उदार होते हैं ।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, लज्जा और ग्लानि)

---

१. किस कारण । २. दाह । ३. ग्रीष्म ऋतु ।

घ

घटना

प्रत्यक्ष घटना विचार से कहीं अधिक प्रभावशालिनी होती है।

—प्रेमचन्द

An event has happened, upon which it is difficult to speak, and impossible to be silent.

ऐसी घटना घटित हुई है जिस पर बोलना कठिन है और चुप रहना असंभव है।

—एडमंड बर्क (वारेन हेस्टिंग्ज पर महाभियोग, ५ मई १७८९)

घनानंद

समझै कविता घनआनंद की
जिन आँखिन प्रेम की पीर तकी।

—अज्ञात

घमंड

दे० 'अभिमान'।

घर

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ॥

वास्तव में घर को घर नहीं कहते, गृहिणी को ही घर कहते हैं। गृहिणी के बिना घर अरण्य सदृश है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व, १४४।६)

स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो भवति।

अपने घर में कुत्ता भी बलवान होता है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १।४२ के पश्चात्)

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

जिसके घर माता अथवा प्रियवादिनी पत्नी नहीं है, उसे वन में चला जाना चाहिए क्योंकि उसके लिए जैसा वन, वैसा ही घर।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, ४।५३)

यन्मनीषि-पदांभोज-रजःकण-पवित्रितम्।
तदेव भवनं नो चेद भकारस्तत्र लुप्यते ॥

वही भवन है जो मनीषियों के चरणकमल की धूलि से पवित्र हो चुका है। यदि ऐसा नहीं है तो उसमें भकार लुप्त हो जाता है अर्थात् वह 'भवन' नहीं रहता, 'वन' हो जाता है।

—अज्ञात

सर्वो हि आत्मगृहे राजा।

अपने घर में हर कोई राजा होता है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन चूर्णि (७)

हिन्दुस्तान का हर एक घर विद्यापीठ है, महाविद्यालय है, माँ-बाप आचार्य हैं। माँ-बाप ने आचार्य का यह काम छोड़कर अपना धर्म छोड़ दिया है।

—महात्मा गांधी (गुजरात महाविद्यालय के उद्घाटन पर भाषण, १५-११-१९२०)

घर मानो एक दूसरे को मनुष्यता सिखाने की पाठशाला है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० १८७)

दे देवत्व, ले राक्षसत्व और दे-ले मनुष्यत्व। जहाँ बैठकर हम जीवन की इस दे-ले का समन्वय करना सीखते है, उसी प्रयोगशाला का नाम घर है।

—कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (जियें तो ऐसे जियें, पृ० १७)

भुइयां खेड़े[1] हर ह्वै चार। घर होय गिहथिन[2] गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जड़हन का भात। गागल[3] निबुआ औ घिउ[4] तात॥
खाँड दही जो घर में होय। बाँके नैन परोसे जोय।[5]
कहैं घाघ तब सबही झूठा। उहाँ छोड़ि इहँवै बैकूंठा॥

—घाघ

अपने घर पर कुत्ता भी शेर।

— हिन्दी लोकोक्ति

तुम्हारा घर तुम्हारा कुछ बड़ा शरीर है।

— खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० ४३)

तुम्हारा घर जहाज का लंगर न बने, बल्कि मस्तूल बने।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ४३)

Houses are built to live in and not to look on, therefore let use be preferred before uniformity, except where both may he had.

मकान रहने के लिए बनाए जाते है देखने के लिए नहीं। अत: जहाँ दोनों बातों का होना संभव न हो, वह एकरूपता की अपेक्षा उपयोगिता को अधिक पसन्द किया जाना चाहिए।

— बेकन (एसेज, आफ़ बिल्डिंग)

No government program, no social service, no speech by a public official is a substitute for interest at home, inspiration at home, encouragement at home.

न तो कोई सरकारी कार्यक्रम, न कोई सामाजिक सेवा और न किसी भी राजकीय अधिकारी का भाषण, घर में रुचि, घर पर प्राप्त प्रेरणा और घर से प्राप्त प्रोत्साहन का स्थानापन्न हो सकता है।

—ह्यूबर्ट० एच० हम्फ्री (भाषण, २५ अगस्त १९६६)

घुमक्कड़

घुमक्कड़ असंग और निर्लेप रहता है, यद्यपि मानव के प्रति उसके हृदय में अपार स्नेह है।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० १६३)

१. गांव से लगा खेत। २. गृहकार्य में दक्ष पत्नी। ३. रसदार। ४. गर्म। ५. स्त्री।

कृतज्ञता और कृतवेदिता घुमक्कड़ का गुण है।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० १६५)

घुमक्कड़ी

आप अपना गाँव छोड़िए, हजारों गाँव स्वागत के लिए तत्पर मिलेंगे। एक मित्र और बंधु की जगह हजारों बंधु-बांधव आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप एकाकी नहीं हैं।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २४)

घर के पैसे के बल पर प्रथम या दूसरी श्रेणी का घुमक्कड़ नहीं बना जा सकता। घुमक्कड़ को जेब पर नहीं, अपनी बुद्धि, बाहु और साहस का भरोसा रखना चाहिए।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २५)

असली घुमक्कड़ मृत्यु से नहीं डरता, मृत्यु की छाया से वह खेलता है लेकिन हमेशा उसका लक्ष्य रहता है, मृत्यु को परास्त करना—वह अपनी मृत्यु द्वारा उस मृत्यु को परास्त करता है।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ७२)

वस्तुत: घुमक्कड़ी को साधारण बात नहीं समझना चाहिए, वह सत्य की खोज के लिए कला के निर्माण के लिए, सद्भावनाओं के प्रसार के लिए महान दिग्विजय है।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़शास्त्र, पृ० १४४)

तीस बरस से भारत से गए हुए एक मित्र जब पहली बार मुझे रूस में मिले, तो गद्गद् होकर कहने लगे—आपके शरीर से मुझे मातृभूमि की सुगंध आ रही है। हर एक घुमक्कड़ अपने देश की गन्ध ले जाता है।

—राहुल सांकृत्यायन (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० १४६)

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल, जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही भी तो नौजवानी फिर कहाँ ?

—इस्माइल मेरठी

घृणा

वैर का आधार व्यक्तिगत होता है, घृणा का सार्वजनिक।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० ९९)

कोई भी दु:खी आदमी घृणा के योग्य नहीं हो सकता।

—इलाचंद्र जोशी (प्रेत और छाया, पृ० ४०८)

हृदय से घृणा का भाव निकल जाना चाहिए। सब भगवत्स्वरूप हैं ऐसा अगर साक्षात्कार हुआ, तो हृदय में घृणा का भाव नहीं रहता।

—माधव स० गोलवलकर (श्रीगुरुजी समग्र दर्शन, खण्ड ६, पृ० २३)

काहारे करिछ घृणा तुमि भाई, काहारे मारिछ लाथि ?
हयतो उहारइ बुके भगवान् जागिछेन दिवा-राति।

तुम जिसे घृणा करते हो, भाई, जिसे लात मारते हो, हो सकता है, उसके हृदय में दिन-रात भगवान निवास करते हों।

[बँगला] —काज़ी नज़रुल इस्लाम (कवि श्रीमाला, पृ० ४४)

किसी भी गलत ढाँचे से रोष या घृणा स्वयं में जीवन की निशानी है, सदा रही है।

—अमृता प्रीतम (जेबकतरे, पृ० ७६)

घृणा के बदले घृणा से सत्परिणाम नहीं प्राप्त होता है।

—शिलर

The blindness of contempt is more hopeless than the blindness of ignorance; for contempt kills the light which ignorance merely leaves unignited.

घृणा की अन्धता अज्ञान की अन्धता से अधिक बुरी है क्योंकि अज्ञान जिस प्रकाश को जगाए बिना छोड़ देता है, घृणा उसे बुझा देती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, ईस्ट एण्ड वेस्ट, पृ० १०३)

In time we hate that which we often fear

जिससे हम प्राय: डरते हैं कालान्तर में उसी से घृणा करते हैं।

—शेक्सपियर (एंटोनी एंड क्लियोपेट्रा, १।३)

How a minority, reaching majority, seizing authority, hates a minority.

अल्पमत बहुमत बनकर, सत्ता को हस्तगत कर, अल्पमत से कैसी घृणा करने लगता है !

—लियोनार्ड हरमन राबिन्स

घोषणा

धजो रथस्स पञ्ञाणं धूमो पञ्ञाणमग्गिनो
राजा रट्ठस्स पञ्ञाणं भत्ता पञ्ञाणमित्थिया,

ध्वजा से रथ की घोषणा होती है, धुएँ से अग्नि की घोषणा होती है, राजा से राष्ट्र की घोषणा होती है स्वामी से स्त्री की घोषणा होती है।

[पालि] —जातक (महावेस्सन्तर जातक)

च

चंचलता

विकल्पमात्रावस्थाने वैरूप्यं मनसो भवेत्।
पश्चान्मूलक्रियारंभगंभीरावर्तदुस्तरः ॥

विकल्प मात्र का विचार करने से मन में विरूपता उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे पश्चात् प्रारम्भ किए गए कार्य में गंभीर आपत्तियों की भँवरें आ जाती हैं और कार्य दुस्तर हो जाता है।

—मत्स्यपुराण (१५३।२२७)

आत्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति।

अपने द्वारा की गयी अनियंत्रित चंचलता दुःख देती है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुंतल, ५।२३ के पश्चात्)

अनवस्थितचित्तस्य न जने न वने सुखम्।
जने दहति संसर्गो वने संगविवर्जनम्॥

अस्थिर चित्त वाला मनुष्य न मनुष्यों में सुखी होता है और न वन में। मनुष्यों के बीच उनका संसर्ग पीड़ित करता है और वन में संसर्ग का अभाव।

—चाणक्यनीति

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रंजयति॥

सर्वथा अज्ञ मनुष्य बड़ी आसानी से रास्ते पर आ सकता है। विशेष अनुभवी उससे भी सहज में मिलाया जा सकता है। किन्तु थोड़े ज्ञान से जिसका मन चंचल हो गया रहता है, यदि उसे ब्रह्मा भी चाहें तो नहीं समझा सकते।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।१००)

क्षणे तुष्टा क्षणे रुष्टास्तुष्टा रुष्टाः क्षणे क्षणे।

चंचल चित्त वाले व्यक्ति क्षण भर में संतुष्ट और क्षण-भर में रुष्ट हो जाते हैं तथा क्षण-क्षण में तुष्ट-रुष्ट होते रहते हैं।

—अज्ञात

मनो मधुकरो मेघो मानिनि मदनो मरुत्।
मा मदो मर्कटो मत्स्यो मकारा दश चंचलाः॥

मन, मधुकर, मेघ, मानिनी, मदन, मरुत्, मा[1], मद, मर्कट[2], मत्स्य—ये दस मकार चंचल हैं।

—अज्ञात

अनवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः।
सर्पी हन्ति किल स्नेहाद् अपत्यानि न वैरतः॥

अस्थिर चित्त वालों का अनुग्रह भी भयंकर होता है, सर्पिणी अपने बच्चों को प्रेम के कारण ही मार डालती है। वैर के कारण नहीं।

—अज्ञात

खिन हँसिवौ खिन रूसिवौ, चित्त चपल थिर नाहिं।
ताका मीठा बोलना, भयकारी मनमाहिं।

—बुधजन (बुधजन सतसई)

दुचित्ता मनुष्य अपनी सारी बातों में चंचल होता है।

—नवविधान (जेम्स का पत्र, १।८)

They are the weakest minded and the hardest hearted men that must love change.

दुर्बलतम चित्त वाले और कठोरतम हृदय वाले व्यक्ति ही परिवर्तन चाहते रहते हैं।

—रस्किन

A fickle memory is bad, a fickle course of conduct is worse; but a fickle heart and purposes worst of all.

चंचल स्मृति बुरी है। चंचल आचरण अधिक बुरा है। परन्तु चंचल हृदय और उद्देश्य तो सबसे बुरे हैं।

—चार्ल्स सिम्मन्स

---

१. लक्ष्मी। २. वानर।

चंदन

चदन विप व्यापत नही, लपटे रहत भुजंग।

—रहीम (रहीम-रत्नावली, दोहावली, ७५)

दुख सहे, पर दूसरों का हित करे।
वह रहा घिसता सदा ही इसलिये ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (चुभते चौपदे, पृ० ११९)

चंदबरदाई

हिन्दू कवि, हिंदवान-कवि, हिन्दी कवि रसकन्द।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य-धन्य कवि चन्द ॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, द्वितीय शतक-७)

चंद्रमा

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम्।
ददर्श धीमान् भुवि भानुमन्तं गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ॥
लोकस्य पापानि विनाशयन्तं महोदधिं चापि समेधयन्तम्।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ॥
या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥
हंसो यथा राजतपंजरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥
स्थितः ककुद्मानिव, तीक्ष्णशृंगो महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृंगः।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृंगो विभाति चन्द्रः परिपूर्ण शृंगः ॥
विनष्ट शीताम्बुतुषारपंको महाग्रहग्राहविनष्टपंकः।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलांको रराज चन्द्रो भगवांछशांकः ॥
शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः।
राज्यं सभासाद्य यथा नरेन्द्रस्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥

तब उन्होंने (हनुमान ने) प्रकाश फैलाते हुए चन्द्रमा को गोष्ठ में उन्मत्त बैल की भाँति आकाश में फिरते देखा। लोकों के पापों को नष्ट करते, समुद्र को बढ़ाते, सब जीवों को शोभित करते हुए चन्द्रमा को देखा। जो लक्ष्मी संसार में मंदरस्थ है, प्रदोष में सागरस्थ है, जल मे पद्मस्थ है, वही चन्द्रमा में शोभा दे रही थी। चाँदी के पिंजरे में हंस, मन्दर की कन्दरा में सिंह, गर्वित कुंजर पर वीर—वैसे ही आकाश में चन्द्रमा शोभा दे रहा था। पूर्ण कलाओं वाला चन्द्रमा तीक्ष्ण सींग वाले बैल या ऊँचे शृंग वाले महापर्वत या स्वर्ण से बँधे दाँत वाले हाथी के समान शोभित हो रहा था। वर्षा बीत जाने से जिसकी शीतल जलबिन्दु रूप कीचड़ दूर हो गई है, महाग्रह सूर्य की किरण के सम्बंध से जिसकी प्रभा बढ़ गई है, प्रकाश-लक्ष्मी के आश्रयवश जिसका कलंक भी निर्मल हो गया है, ऐसा चन्द्रमा शोभा दे रहा था। जैसे शिलातल को पाकर सिंह, महायुद्ध को पाकर हाथी, राज्य को पाकर राजा, वैसे ही चन्द्रमा शोभायमान था।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकांड, ५।१-७)

येषां वल्लभया समं क्षणमिव स्फारक्षया क्षीयते
तेषां शीततरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत्।
अस्माकं न तु वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिना-
मिन्दू राजति दर्पणाकृतिरयं नोष्णो न वा शीतलः ॥

जिन पुरुषों की लम्बी रातें प्रियतमा के साथ क्षण के समान क्षीण हो जाती हैं, उनके लिए चन्द्रमा अत्यन्त शीतल वस्तु है और जो विरही हैं, उनके लिए वही चन्द्रमा जलते हुए अंगारों के समान सन्तापकारी है। मुझे न तो प्रियतमा ही है और न उसका वियोग ही है अतः दोनों से रहित मेरे लिए यह चन्द्रमा शीशे के समान शोभित हो रहा है। न उष्ण है और न शीतल, न सुखद है और न दुःखद।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, ११९)

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी[1]। ससि केसरी गगन बन चारी ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२।१)

The moon is a friend for the lonesome to talk to.

अकेले व्यक्ति के लिए बात करने को चन्द्रमा एक मित्र है।

—कार्ल सैंडबर्ग (कम्प्लीट पोइम्स)

---

१. अंधकार रूपी मत्त हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके।

चमत्कार

चमत्कार विश्वास की प्रियतम सन्तान है।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

चयन

I cannot choose the best.
The best chooses me.

मैं सर्वोत्तम को नहीं चुन सकता। सर्वोत्तम मुझे चुनता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रेवर्ड्स, २०)

There's small choice in rotten apples

सड़े सेबों में क्या चुनाव ?

— शेक्सपियर (टेमिंग आफ़ दि श्रियु, १।१)

चरखा

चरखा हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य की, हमारी अहिंसा की, हमारे नियम-पालन की, हमारी परिश्रमशीलता की, योजना-शक्ति की, हमारी व्यापारिक शक्ति की, हमारी परोपकार-वृत्ति की, निर्धनों के प्रति हमारे प्रेम की और अपने स्त्री वर्ग की रक्षा करने की हमारी इच्छा की निशानी है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २५-६-१६२१)

कवि और किंकर, मालिक और मजदूर, सेठ और नौकर, सेठानी और दासी सब को लोक-कल्याण के अर्थ श्रम अवश्य करना चाहिए। करोड़पति भले अपने लिए शरीर श्रम न करे, चरखा न चलाये, लेकिन उसे देश के अर्थ, लोक के अर्थ, चरखा चलाना ही चाहिए, नहीं तो 'गीता' के वाक्य के अनुसार वह व्यर्थ ही जीता है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २३-१०-१६२१)

चरित्र

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्।
चरित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाशुचिम्॥

मनुष्य के चरित्र से ही ज्ञात होता है कि वह कुलीन है या अकुलीन, वीर है या दंभी, पवित्र है या अपवित्र।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकांड, १०६।४)

न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः।

अकुलीनों का चरित्र शुद्ध नहीं हुआ करता है।

—भास (अविमारक, २।५)

रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते।

साधुओं का परम विशुद्ध चरित्र सदा ही विजयी होना है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, २।२)

चारित्र्येण विहीन आढ्योऽपि दुर्गतो भवति।

चरित्रहीन धनी भी विपत्ति में पड़ता है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १।४३)

वरं पत्यौ प्रवासस्थे मरणं कुलयोषितः।
न तु रूपारमल्लोकलोचनपात्रता॥

पति के प्रवासी होने पर कुलीन स्त्री का मर जाना अच्छा है। किन्तु रूप के लोभी लोगों के लोचन-पथ में पड़ना नहीं अच्छा।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, १। तरंग ४)

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

धन आता-जाता है, चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन से क्षीण मनुष्य क्षीण नही है किंतु चरित्र से हीन मनुष्य है तो मृत तुल्य है।

—अज्ञात

सुगंधि दर्शनीयं च लोकरंजनतत्परं
दृष्ट्वा कुसुमारामे सर्वैरप्यभिनंदितम्।
प्रसाद सुमुखः शील-चारित्र्याभ्यां सुवासितः
उद्युक्तो लोकसेवायां भवेयमिति भावये॥

उपवन में सुगंधित, दर्शनीय, लोकरंजन में तत्पर और सबसे अभिनन्दित पुष्प को देखकर मेरे मन में आता है कि मुझे भी प्रसन्नमुख, शील व चारित्र्य से सुगंधित तथा लोक-सेवा-तत्पर होना चाहिए।

—अज्ञात

जहा खरो चंदणभारवाही,
भारस्स भागी नहु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो
नाणस्स भागी न हु सोग्गईए।

चंदन का भार उठाने वाला गधा सिर्फ़ भार ढोने वाला है, उसे चंदन की सुगंध का कोई पता नहीं चलता। इसी प्रकार चरित्रहीन ज्ञानी सिर्फ़ ज्ञान का भार ढोता है, उसे सद्‌गति प्राप्त नही होती।

[प्राकृत] —भद्रबाहु आचार्य (आवश्यक निर्युक्ति, १००)

णाणं चरित्तसुद्धं·· थोओ पि महाफलो होई।

चरित्र से विशुद्ध हुआ ज्ञान, यदि अल्प भी है, तब भी वह महान फल देने वाला है।

[प्राकृत] —कुंदकुंद आचार्य (शीलपाहुड, ६)

जोव्वण वियार रस वस पसरि सो सूरउ सो पंडियउ।
चल मम्मण वयणुल्लावएहि जो पारितियहि ण खंडियउ॥

वही शूर है और वही पंडित है जो यौवन के विषय-विकारों के बढ़ने पर-स्त्रियों के चंचल कामोद्दीपक वचनों से प्रभावित नहीं होता।

[अपभ्रंश] —धनपाल (भविसयत्त कहा, ३।१८।६)

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।

— रहीम (रहीम-रत्नावली, दोहावली, ७५)

नीतिज्ञ के लिए अपना लक्ष्य ही सब कुछ है, आत्मा का उसके सामने कुछ मूल्य नही। गौरवसम्पन्न प्राणियों के लिए अपना चरित्रबल ही सर्वप्रधान है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४३)

बहुत विद्वान् होने से मनुष्य आत्मिक गौरव नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए सच्चरित्र होना परमावश्यक है। चरित्र के सामने विद्वत्ता का मूल्य बहुत कम है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ४५)

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की॥

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, चौथा सर्ग)

धन की बात हम छोड़ दें। जो लोग ईमानदार हैं, सदाचारी हैं, जिनकी नेकी पर समाज का विश्वास है, वे ही समाज का उत्तम धन हैं। लोगों की चारित्र्य-सम्पत्ति ही किसी भी समाज की पूंजी है।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवन-दृष्टि, पृ० ४२०)

हमारा व्यक्तित्व जैसा होगा, वैसा ही दुनिया का नक़्शा हम बनाएँगे। इसे 'चारित्र्य' कहते हैं।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० ३२४)

बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नहीं वंश, धन, धाम॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (रश्मिरथी, पृ० ७)

सँभल कर ज़रा पांव रखिए ज़मीं पर
अगर चाल बिगड़ी तो बिगड़ा चलन भी।

—दाग़

याद रखो कि न धन का मूल्य है, न नाम का, न यश का, न विद्या का, केवल चरित्र ही कठिनाई रूपी पत्थर की दीवारों में छेद कर सकता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ३६३)

जगत् को जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिए, जिनका जीवन स्वार्थहीन ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण है। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रतिभाशाली बना देगा।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खण्ड, पृ० ४०८)

जो कुछ आँखों से नहीं दीखता, उसे चरित्र द्वारा देखना पड़ता है।

—विमल मित्र (जोगी मत जा, पृ० १०७)

मनुष्य के बाहर का रूप देखकर उसके चरित्र के बारे में निर्णय कर लेना अनुचित है।

—विमल मित्र (गवाह नं० ३)

चरित्र केवल सुदीर्घकालीन आदत है।

—प्लूटार्क

आत्मत्याग, प्रेम तथा कर्तव्य से प्रेरित होकर किए गए छोटे-बड़े कार्यों से ही चरित्र का निर्माण होता है।

—सैमुएल स्माइल्स (कर्त्तव्य, पृ० ११)

व्यवहार की छोटी-छोटी बातें ही व्यक्ति के चरित्र का दर्पण होती हैं, न कि लम्बी-चौड़ी बातें।

—सैमुएल स्माइल्स (कर्त्तव्य, पृ० ११)

मनुष्य का समस्त चरित्र उसके विचारों से बनता है।

—जेम्स एलेन (आनंद की पगडंडियाँ, पृ० ८)

मस्तिष्क में आया हुआ विचार मनुष्य के चरित्र का आरम्भ है।

—जेम्स एलेन (आनंद की पगडंडियाँ, पृ० ६)

As the act is expression of the man, so is the life the expression of the character.

जैसे कर्म मानव की अभिव्यक्ति है, वैसे ही जीवन, चरित्र की अभिव्यक्ति है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स भाग ३, पृ० ४३८)

Thoughts are the bricks with which character is built. Character is not born. It is formed.

विचार वे ईंटें हैं जिनसे चरित्र निर्मित होता है। चरित्र जन्मजात नहीं होता, बनाया जाता है।

—शिवानंद (थॉट पावर, पृ० १०६)

Men's evil manners live in brass; their virtues we write in water.

मनुष्यों के दुर्गुण पीतल पर अंकित रहते है और उनके सद्‌गुणों को हम पानी पर लिखते है।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी एर्थ, ४।२)

His words are bonds, his oaths are oracles;
His love sincere, his thoughts immaculate;
....
His heart as far from fraud as heaven from earth.

उसके शब्द इक़रारनामा हैं। उसकी शपथें आप्तवचन हैं। उसका प्रेम निष्ठापूर्ण है। उसके विचार निष्कलंक हैं।... उसका हृदय छल से दूर है जैसा स्वर्ग, पृथ्वी से।

—शेक्सपियर (दि टू जेंटिलमैन आफ़ वैरोना, २।७)

Character is like a tree, and reputation is its shadow. The shadow is what we think of it; the tree is the real thing.

चरित्र वृक्षवत् है और यश उसकी छायावत्। हम किसी के विषय में जो सोचते हैं, वह तो छाया है, वास्तविक वस्तु तो वृक्ष है।

—अब्राहम लिंकन (ग्रॉस द्वारा अंकित एक कथन)

चांडाल

अकृतज्ञमनार्यं च दीर्घरोषमनार्जवम्।
चतुरो विद्धि चाण्डालान् जात्या जायेत पञ्चमः॥

कृतघ्न, दुराचारी, अत्यन्त क्रोधी और कपटी—चांडालों के ये चार प्रकार है। पाँचवें प्रकार का चाण्डाल जन्म से होता है।

—गरुड़पुराण

चाटुकारिता

चाटुकारों में न होता लेश भी प्रभु-भक्ति का।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, ३४)

ख़ुशामद और शुद्ध सेवा में उतना अन्तर है जो झूठ और सच में है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्‌मय खंड ४६, पृ० २८४)

सभ्यता, शिष्टाचार और ख़ुशामद में फ़र्क़ करने की आदत डालिए।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १८१)

जिन्हें ख़ुशामद प्रिय होती है, उन्हें सच्ची बात मीठी भाषा में कही जाय तो भी कड़वी लगती है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३४६)

इस दुनिया में सत्ता के पीछे लगा हुआ सबसे बड़ा रोग कोई हो सकता है, तो वह ख़ुशामद है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३७३)

ऊँट बिलाई ले गयी, 'हाँ जी, हाँ जी' कीजै।

—हिन्दी लोकोक्ति

जिहि की खाई, तिहि की गाई।

—हिन्दी लोकोक्ति

वार पचै माछी पचै पाथर हू पचि जाय।
जाहि ख़ुशामद पचि गई ताते कछु न बसाय।।

—अज्ञात

जो ख़ुशामद करे ख़ल्क़ उससे सदा राज़ी है
सच तो यह है कि ख़ुशामद से ख़ुदा राज़ी है।

—नज़ीर

भावी पीढ़ियों की चापलूसी, समकालीन चापलूसी से अधिक महत्त्व की नहीं है और समकालीन चापलूसी महत्त्व-हीन है।

—जोरगे लुई बोरगेस (ड्रीमटाइगर्स)

सीखो कि हर चाटुकार जिसकी चाटुकारिता की गई है, उसीके व्यय पर जीवनयापन करता है।

—ला फ़ांटेन (द फ़ेबिल्स)

जो चाटुकारिता करना जानता है, वह निंदा करना भी जानता है।

—नेपोलियन प्रथम (मैक्ज़िम्स)

Love of flattery, in most men, proceeds from the mean opinion they have of themselves; in women, from the contrary.

अधिकांश पुरुषों में चाटुकारिता का प्रेम अपने विषय में अपने क्षुद्र अभिमत से प्रारम्भ होता है, किन्तु स्त्रियों में इससे उल्टी बात है।

—स्विफ़्ट (थाट्स ऑन वेरियस सब्जेक्ट्स)

We despise no source that can pay us a pleasing attention.

हम ऐसे किसी स्रोत से घृणा नहीं करते जो हम पर सुखद ध्यान दे सकता है।

—मार्क ट्वेन ('नार्थ अमरीकन रिव्यू' में एक लेख, अप्रैल १९०२)

Flatterers look like friends as wolves like dogs.

जैसे भेड़िए कुत्तों जैसे लगते हैं, वैसे ही चापलूस लोग मित्रों जैसे लगते है।

—जार्ज चैपमैन (बायरन्स काम्पिसपरेसी, ३।१)

चातक-प्रेम

रटत रटत रसना लटी, तृपा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग।।

—तुलसीदास (दोहावली, २८०)

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख।।

—तुलसीदास (दोहावली, २८१)

बध्यो बधिक पर्‍यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरतहुँ लगी न खोंच।।

—तुलसीदास (दोहावली, ३०२)

चाय

लार्ड कर्ज़न ने चाय पीने का फ़ैशन शुरू किया और आज यह हत्यारी बूटी सारे राष्ट्र को निगल लेने पर उतारू है। यह लाखों स्त्री-पुरुषों का हाज़मा बिगाड़ चुकी है और उनकी तंगदिली को बढ़ा रही है।

—महात्मा गांधी (मद्रास में 'स्वदेशी' पर भाषण, १४ फ़रवरी, १९१६)

Love and scandal are the best sweeteners of tea.

प्रेम और अपयश चाय को सबसे अधिक मधुर बनाने वाले है।

—हेनरी फ़ील्डिंग (लव इन सेवरल मास्क्स)

चारण

मात-पिता सै वीसरै, बंधू वीसारै।
सूरां पूरां वातड़ी चारण चीतारे ॥१॥

माता-पिता भूल जाते हैं, भाई-बन्धु भी भुला देते हैं, परंतु शूरवीरों की पूर्ण कथा को चारण याद रखते हैं।

[राजस्थानी] —अज्ञात

चार्वाक मत

त्याज्यं सुखं विषयसंगमजन्म पुंसां
दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैषा।
व्रीहीं जिहासति सितोत्तमतंडुलाढ्यान्
को नाम भोस्तुषकणोपहितान् हितार्थी ॥

यह मूर्खों का विचार है कि मनुष्यों को सुख का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि सुखों की उत्पत्ति विषयों के साथ होती है तथा वे दुःख से भरे हैं। अपने हित को चाहने वाला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो उज्ज्वल उत्तम तंडुलों वाली धान की बालियों को केवल इसीलिए त्यागना चाहता है कि इनमें भूसा और चावल के छिलके की धूल भी है।

—माधवचार्य कृत 'सर्वदर्शनसंग्रह' में 'चार्वाकदर्शन' में उद्धृत)

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

जब तक जीवित रहे, सुख से जिये, ऋण लेकर भी घी पिये। भस्मसात् हो गए शरीर का पुनर्जन्म कहां?

—माधवाचार्यकृत 'सर्वदर्शनसंग्रह' में 'चार्वाकमत'

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥

न स्वर्ग है, न मोक्ष और न पारलौकिक आत्मा। वर्ण-आश्रम आदि की क्रियायें भी फल देने वाली नहीं हैं।

—माधवचार्य कृत 'सर्वदर्शनसंग्रह' में उद्धृत बृहस्पति-मत

अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलाः।
चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ॥

इस चार्वाक मत में चार तत्त्व हैं—भूमि, जल, अग्नि और वायु। इन्हीं चारों भूतों से चैतन्य उत्पन्न होता है।

—माधवाचार्य द्वारा 'सर्वदर्शनसंग्रह' में उद्धृत

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदंडं भस्मगुंठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीवकेति बृहस्पतिः ॥

बृहस्पति का कहना है कि अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दंड धारण कर संन्यास लेना और भस्म लगाना, उन लोगों की जीविका के साधन हैं जिनमें न बुद्धि है, न पुरुषार्थ।

—माधवाचार्य द्वारा 'सर्वदर्शन संग्रह' में उद्धृत

चिंतन

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः।
एकाकी चिन्तमानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥

एकान्त स्थान में अकेला ही अपने हित का नित्य चिन्तन करे क्योंकि अकेले सोचने वाला ही परम श्रेय को प्राप्त करता है।

—मनुस्मृति (४।२५८)

कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

इन पर बार-बार चिन्तन करना चाहिए—कौन-सा समय है? कौन-कौन मित्र हैं? कौनसा देश है? आय कितनी और व्यय कितना है? मैं कौन हूं और, मेरी शक्ति क्या है?

—अज्ञात

हम बड़ी बातों को न सोचें, अच्छी सोचें।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ६८६)

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी ॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० ४)

हर बुद्धिमत्तापूर्ण बात पर पहले ही विचार हो चुका है; हम केवल उसपर एक बार पुनः विचार करने का प्रयत्न कर सकते है।

—गेटे

चिंता

चिन्ता बहुतरी तृणात्।
चिन्ताएँ तिनकों से भी अधिक होती हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, ३१३।६०)

द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः॥

परमानन्द में लीन दो ही तो चिन्तारहित है—विमूढ़ जड़ बालक और गुणों के परे पहुँचा हुआ संन्यासी।

—भागवत (११।९।४)

चिन्तनेनैधते चिन्ता त्विन्धनेनेव पावकः।
नश्यत्यचिन्तनेनैव विनेन्धनमिवानलः॥

इंधन से जैसे अग्नि बढ़ती है, ऐसे ही सोचने से चिन्ता बढ़ती है। न सोचने से चिन्ता वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे ईन्धन के बिना अग्नि।

—योगवासिष्ठ

सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता।

चिन्ता सजीव को जलाती है जबकि चिता निर्जीव को।

—अज्ञात

चिन्ता साँपिनि को नहिं खाया।

—तुलसी (रामचरितमानस, ७।७१।२)

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली?

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, चिन्ता सर्ग)

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा!

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, चिन्ता सर्ग)

एक सैनिक यह चिन्ता कब करता है कि उसके बाद उसके काम का क्या होगा? वह तो अपने वर्तमान कर्त्तव्य की ही चिन्ता करता है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४१) पृ० ४३६)

१. किसको।

क़ाजी जी दुबले क्यों? शहर के अनेसे[1] से।

—हिंदी लोकोक्ति

चिंता वंध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न बध्ध।
जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहिं सिध्ध॥

सारा जगत् चिंता से बँधा हुआ है, पर चिन्ता को किसी ने नहीं बांधा। जो मनुष्य चिंता को वश में कर लेते है, वे मनुष्य नहीं किन्तु सिद्ध हैं।

[राजस्थानी] —ढोला मारू रा दूहा (२२०)

यह पूछने की चिन्ता न करो कि क्या होगा, भाग्य जो भी दिन तुम्हें देता है, वह चाहे जैसा भी हो, उसे तुम लाभ के लिए काम में लाओ।

—होरेस (ओड्स, १।९।१३)

दुःख की तो सीमाएँ होती हैं परन्तु चिन्ता असीमित होती है।

—प्लिनी छोटे

Care's an enemy to life.
चिन्ता जीवन की शत्रु है।

—शेक्सपियर (ट्वेल्फ़थ नाइट, १।३)

चिकित्सक

शतमारी भवेद् वैद्यः सहस्रमारी चिकित्सकः।

चिकित्सा-कम में जो सौ को मार चुका हैं, वह 'वैद्य' है और जो हज़ार को मार चुका है, वह 'चिकित्सक' है।

—संस्कृत लोकोक्ति

नार्थार्थं नापि कामार्थमर्थं भूतदयां प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥

धन कमाने के लिए और भोग-विलास के लिए नहीं, प्रमाणिमात्र के प्रति करुणा के भाव से जो चिकित्सा करता है, वह सबसे महान है।

—अज्ञात

१. अनिष्ट।

वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर।
यमः हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥

हे वैद्यराज ! तुम्हें प्रणाम है, तुम यमराज के सहोदर हो। यम प्राणों को हरता है, वैद्य तो प्राणों और धन दोनों का हरण करता है।

—अज्ञात

एक सच्चा वैद्य जिसने अपने शास्त्र के आचार्यों की शिक्षा हृदयंगम की है, धन के लिए अपना कार्य नहीं करता। किन्तु समाज को चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों के प्रति अपना कर्त्तव्यपालन करे।

—सम्पूर्णानन्द (अधूरी क्रान्ति, पृ० १५५)

हकीम और वैद यकसां है अगर तशख़ीस[1] अच्छी है
हमें सेहत[2] से मतलब है वनफ़्शा हो कि तुलसी हो।

—अकबर इलाहाबादी

न मिले भीक तर वैद्यगिरी शीक।

भीख भी न मिले तो वैद्यगीरी सीख ले।

—मराठी लोकोक्ति

संसार के सबसे बड़े डाक्टर हैं—
डा० पथ्य, डा० शान्ति और डा० आनन्द।

—स्विफ़्ट

चिकित्सा

विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वानारम्भः प्रतीकारस्य।

निश्चय ही, रोग को ठीक-ठीक जाने बिना उसकी चिकित्सा प्रारम्भ नहीं की जा सकती।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ३।७ के पश्चात्)

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ॥

शरीर के जर्जर तथा व्याधिग्रस्त हो जाने पर गंगा का जल ही औषधि है तथा भगवान् विष्णु ही वैद्य हैं।

—अज्ञात

१. निदान। २ स्वास्थ्य।

चित्त

चित्तं वाव संकल्पाद् भूयः।

चित्त ही संकल्प से उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।५।१)

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत् सनातनम्।

चित्त ही संसार है अतः प्रयत्नपूर्वक इसको शुद्ध करना चाहिए। जिसका जैसा चित्त होता है, वैसा ही वह बन जाता है।

—मैत्रेयी उपनिषद् (१।५)

समासक्तं यदा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरम्।
यद्येवं ब्रह्मणि स्यात् तत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥

मनुष्य का चित्त जितना इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है उतना यदि ब्रह्म मे हो जाए तो बंधन से कौन न मुक्त हो जाए ?

—मैत्रेयी उपनिषद् (१।७)

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥

चित्त की प्रवृत्ति में दो हेतु है—वासना तथा प्राण वायु उन दोनों में से एक के भी नष्ट हो जाने पर दोनों ही नष्ट हो जाती हैं।

—स्वात्मारामयोगीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका, ४।२२)

चित्तद्रव्यं हि जतुवत् स्वभावात् कठिनात्मकम्।
तापकैर्विषयैर्योगं द्रवत्वं प्रतिपद्यते ॥

चित्त नाम की वस्तु एक ऐसी धातु से बनी है, जो लोहे की भाँति स्वभाव से ही कठोर है। तपाने वाली सामग्री का सम्पर्क होने पर ही वह पिघलती है।

—मधुसूदन सरस्वती

चित्तेन नीयति लोको।

चित्त से ही विश्व नियन्त्रित होता है।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।१।६२)

चितेके सअल वीअं भवणिव्वाणोवि जस्स विफुरंति।
तं चितामणि रूअं पणमह इच्छा फलं देंति॥
चित्ते वज्झे बज्झइ, मुक्के मुक्कइ णत्थि संदेहा।
वज्झति जेण विजड़ा लहु परिमुच्चंति तेण वि वुहा॥

चित्त ही सबका बीज रूप है। भव और निर्वाण भी उसी से प्राप्त होता है। चिंतामणि रूपी चित्त को प्रणाम करता है। वही अभीष्ट फल देता है। चित्त के बद्ध होने पर मानवबद्ध कहा जाता है। उसके मुक्त होने पर मानव निस्सन्देह मुक्त होता है। जिस चित्त से जड़ मूर्ख बद्ध होते हैं, उसी से विद्वान शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं।

—सरहपा

चित्त जड़ प्रकृति का चेतन के संसर्ग से उत्पन्न विकार-मात्र है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २१४)

चित्र

चित्र भाव को आकार प्रदान करता है और संगीत भाव को गति या जीवन प्रदान करता है। चित्र देह है और संगीत प्राण है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

चित्र एक बिना शब्दों की कविता है।

—होरेस

चित्र मूक कविता है और कविता, मुखर चित्र है।

—सिमोनिडीज

चित्रकला

चित्रांकन वह कला है जिसके लिए बहुत अवकाश, बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि, बड़ी व्यापक और ज्वलंत कल्पना, बड़ा दर्द-मंद और नाज़ुक दिल होना चाहिए। इन ख़ूबियों के होने पर भी आदमी बग़ैर दिन-रात अभ्यास किए और रंगों के रहस्य और उनकी बारीकियाँ समझे, बग़ैर उस्तादों की बनाई हुई तस्वीरें देखे और उनकी ख़ूबियों को समझे, इस कला में दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता। उसकी एक-एक विधा बल्कि एक-एक विधा की एक-एक शाखा में दक्षता प्राप्त करने के लिए एक ज़िंदगी दरकार है।

—प्रेमचन्द (विविध प्रसंग, पृ० ९१)

चित्रकला अंधे मनुष्य का व्यवसाय है। वह जो कुछ देखता है, उसे चित्रित नहीं करता अपितु जिसका वह अनुभव करता है अर्थात् अपने द्वारा देखी गई वस्तु के सम्बन्ध में वह जो कुछ स्वयं को बताता है, उसे चित्रित करता है।

—पिकासो

चित्रकला और काव्य

कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भाव-नाओं का परिणाम है। जो काम कवि करता है, वही चित्र-कार करता है, कवि भाषा से, चित्रकार पेंसिल या कलम से। सच्ची कविता की परिभाषा यह है कि तस्वीर खींच दे। उसी तरह सच्ची तस्वीर का यह गुण है कि उसमें कविता का आनन्द आये। कवि कान के माध्यम से आत्मा को सुख पहुँचाता है और चित्रकार आँख के द्वारा और चूँकि देखने की शक्ति सुनने की अपेक्षा अधिक कोमल और संवेदनशील होती है, इसीलिए जो बात चित्रकार एक चिह्न, एक रेखा, या ज़रा से रंग से पूरा कर देगा, वह कवि की सैकड़ों पंक्तियों से न अदा हो सकेगी।

—प्रेमचंद (विविध प्रसंग-१, पृ० ८५)

चिरजीवी

अश्वत्थामा वलिर्व्यासो हनुमाँश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

अश्वत्थामा, वलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठ चिरजीवियों का जो स्मरण करता है वह शतवर्ष की आयु तक अपमृत्यु-रहित होकर जीता है।

—अज्ञात

चुगली

गुणिनां गुणेषु सत्स्वपि
पिशुनजनो दोषमात्रमादत्ते।
पुष्पे फले विरागी
क्रमेलकः कण्टकौघमिव॥

गुणियों में गुणों के रहते हुए भी चुग़लखोर उनके दोष मात्र को ही ग्रहण करता है, जैसे ऊँट वृक्ष के पुष्प और फल से विरक्त होकर, काँटों के ढेर को ही ग्रहण करता है।

—अज्ञात

भूखे रहि लीजिये कि विस लाइ पीजिये,
पै भूलि रोजगार चुगली को नहिं कीजिये।

—गुपाल कवि (दम्पति वाक्य विलास)

चाहे कोई धार्मिक वचनों को न कहे और अधर्म कर्म करे, पर अपिशुन कहलाना अच्छा है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १८१)

चुनाव

सच्ची बात यह है कि गणतन्त्र पद्धति ही सर्वथा दूषित है। जिस पद्धति में बुद्धि, ज्ञान, अनुभव, विद्या, आचरण, भाव, सद्गुण आदि सबकी उपेक्षा करके सख्या को प्रधानता दी जाती है वहाँ परिणाम में उत्तम फल होना सम्भव ही नहीं है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

Elections are won by men and women chiefly because most people vote against somebody, rather then for somebody.

पुरुष व स्त्रियाँ मुख्यत: इसलिए चुनाव जीतते हैं क्योंकि अधिकतम लोग किसी पक्ष में मतदान करने के स्थान पर किसी के विरुद्ध मतदान करते हैं।

—फ्रैंकलिन पी० एडम्स (नॉड्स ऐंड बेक्स)

चुनौती

चुनौती देने के लिए अधिक साहस आवश्यक नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

If we face our tasks with the resolution to solve them, who shall say that anything is impossible.

यदि हम अपनी कठिन समस्याओं का सामना उन्हें हल करने के संकल्प से करें तो कौन कहेगा कि कुछ भी असम्भव है।

—सर विल्फ्रेड टामसन ग्रेनफ़ेल

चेतना

रे चित चिंता मत करो, चेतन तुमरो काम।
राम दुहाई फेर ले, काया नगरी गाम॥

—रोहल (शास्त्रमन प्रबोध, १६३)

क्षण का अनुभव अनंत में और अनंत का अनुभव क्षण में कराने वाली वह वैयक्तिक चेतना ही मूल जीवन-धारा की एक मात्र उपलब्धि और सार्थकता है।

—इलाचन्द्र जोशी (ऋतुचक्र, पृ० ४२६)

बाह्य और अंत:स्थित, सभी प्रकार के जीवन-चक्रों की मूल परिचालिका शक्ति है—विश्व-मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना।

—इलाचन्द्र जोशी (प्रेत और छाया, भूमिका, पृ० १२)

नाहीं तें चित्र दाविती। परी असे केवल भित्ती।
प्रकाशे ते संवित्ति। जगदाकारें।

जो है नहीं, उस चित्र को दिखाती है, पर होती है केवल दीवार। उसी प्रकार सम्पूर्ण जगदाकार से जो प्रकाशित होती है, वह संवित्ति (संवित्, चेतना) है।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (चांगदेव पासष्टी, १३)

अवचेतन और अतिचेतन रूपी महासागरों के मध्य चेतना एक झीना स्तर मात्र है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ० १४०)

चोर कवि

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति॥

हे कविवरो! आपने साहित्य समुद्र का मन्थन करके जो कर्णामृत सचित किया था, उसकी रक्षा करें क्योंकि इसको लूटने के लिए काव्यार्थों के चुराने वाले लोग दैत्यों की तरह प्रतिदिन बढ़ रहे हैं।

—बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।११)

इदं महाहासकरं विचेष्टितं
परोक्तिपाटच्चरतारतोऽपि यत्।
सदुक्तिरत्नाकरतां गतान् कवीन्
कवित्वमात्रेण समेन निन्दति ॥

यह तो अत्यन्त हास्य का विषय है कि दूसरों की सुन्दर उक्तियों को स्वयं चुराने वाला चोर-कवि भी, कवि कहलाने के नाते गर्व से भर कर नवीन सूक्तियों के भंडार महाकवियों की निंदा करने लगता है।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, ११ दशम अध्याय)

चोरी

प्रकाशवंचकास्तेषां नानापण्योपजीविनः।
प्रच्छन्नवंचकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥

उन दो प्रकार के चोरों में से मूल्य, तौल या नाप ठगने वाले प्रत्यक्ष चोर है तथा सेंध लगाकर धन चुराने वाले या वनों में छिपकर धन चुराने वाले परोक्ष चोर है।

—मनुस्मृति (९।२५७)

कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद् वर्द्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वंचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः
मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥

मनुष्य उस चोरी को अधम भले ही कहें जो मनुष्यों के सो जाने पर होती है तथा जिसमें विश्वस्त जनों का द्रव्य-अपहरण रूप अपमान होता है और निश्चय ही वह पराक्रम नहीं है। चोरी रूप धूर्तता स्वतन्त्र होने के कारण उत्तम है, इस कार्य में किसी का दास बनकर हाथ जोड़ना नहीं पड़ता। और यह कार्य बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने युधिष्ठिर के सोते हुए पुत्रों को (धोखे से) मार डालने में इस मार्ग का आश्रय लिया था, अतः इसमें कोई दोष नहीं है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ३।११)

नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः।
स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम् ॥

काव्य-रचना करने वाले कवि और व्यापारी चोर न हों ऐसा संभव नहीं है। आनन्द वही करता है जो चोरी को छिपा सके और जिसकी निन्दा न हो।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्दियं वेपुल्लमगमासि।
दालिद्दिये वेपुल्लं अदिन्नादानं वेपुल्लमगमासि ॥

निर्धनों को धन न दिए जाने से दरिद्रता बहुत बढ़ गई और दरिद्रता के बहुत बढ़ जाने से चोरी बहुत बढ़ गई।

[पालि] —दीघनिकाय (३।३।४)

मनुष्य अपनी कम-से-कम जरूरत से ज्यादा जितना भी लेता है, वह चोरी करता है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ३९)

चुराया गया पानी मीठा होता है और चोरी से खाई गई रोटी मज़ेदार होती है।

—नवविधान (लोकोक्तियां)

छ

छंद

देо 'दोहा' भी।

छन्द वास्तव में बँधी हुई लय के भीतरी भिन्न-भिन्न ढाँचों का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। लय स्वर के चढ़ाव-उतार के छोटे-छोटे ढाँचे ही हैं जो किसी छन्द के चरण के भीतर न्यस्त रहते हैं।

—रामचंद्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग २, पृ० १४५)

कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन; कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।

—सुमित्रानंदन पंत (पल्लव, भूमिका, पृ० ३३)

छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।

—सुमित्रानंदन पंत (पल्लव, भूमिका, पृ० ३३)

जहाँ छन्द के पद भावानुसार नहीं जाते, और मोहवश अपनी सजावट ही के लिए घटते-बढ़ते, चीन की सुन्दरियों अथवा पाश्चात्य महिलाओं की तरह केवल अपने चरणों को छोटा रखने के लिए लोहे के तंग जूते, कमर को पतली रखने के लिए चुस्त पेटी पहनने लगते, वहाँ उनके स्वाभाविक सौंदर्य का विकास तो रुक ही जाता है, कविता अस्वस्थ तथा लक्ष्यभ्रष्ट भी हो जाती है।

—सुमित्रानंदन पंत (पल्लव, भूमिका, पृ० ४४)

गुण-सागर दूहो धणी, गाह महेली सार।
गीत-कवित परधानड़ा, बीजा पहरेदार॥

गुणों का सागर दोहा राजा है, गाहा अन्तःपुर की शिरोमणि है, गीत और कवित्त मंत्री है, दूसरे छन्द पहरा देने वाले सिपाही हैं।

[राजस्थानी] —अज्ञात

छत्रसाल

भुज-भुजगेस की बैसंगिनी भुजंगिनी सी
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराय चंपति के छत्रसाल महाराज
भूषन सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर
तेरी बरछी ने बर छीने है खलन के।

—भूषण (भूषण ग्रन्थावली, प्रकीर्ण छन्द, ५१०)

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु कैसी
फारैं तमतोम से गयंदन के जाल कों।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन सी
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन की माल कों।
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल कों।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल कों।

—भूषण (भूषण ग्रंथावली, प्रकीर्ण छन्द, ५२२)

छद्मनाम

जब किसी की प्रतिकूल आलोचना करनी हो तो नाम मत छिपाया करो। नाम छिपाना पहली कमजोरी है। फिर वह और कमजोरियों को खींचती जाती है। नाम छिपाना भी सत्य को छिपाना ही है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'आलोक पर्व' में वार्तालाप के आधार पर उद्धृत, पृ० ३३)

छल

देо 'कपट' भी।

निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः।
न हि नैकृतिकं हत्वा निकृत्या पापमुच्यते॥

शठता करने वाले शत्रु को शठता द्वारा ही मारना चाहिए। शठता करने वाले व्यक्ति को छल से मारने में पाप नहीं बताया गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, ५२।२२)

मायावी मायया वध्यः।

मायावी का वध माया से ही करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शल्यपर्व, ३१।७)

अच्छलो हि स्नेहो नाम।

स्नेह में छल नहीं किया जाता है।

—भास (अविमारक, ५।५ से पूर्व)

अच्छलं मित्रत्वं नाम।

मित्रता में छल नहीं किया जाता।

—भास (अविमारक, ४।१२ के पश्चात्)

कर्मगृहीतेनापि कुम्भीलकेन संधिच्छेदे शिक्षितोऽस्मीति वक्तव्यं भवति॥

सेंध लगाते पकड़ा गया चोर भी यही कहता है कि वह दीवार में छेद करना सीख रहा था।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१६ के पश्चात्)

वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल-छन्द की धूल उड़ती है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

प्रतारणा में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, द्वितीय अंक)

छल का बहिरंग सुन्दर होता है—विनीत और आकर्षक भी; पर दुःखदायी और हृदय को वेधने के लिए।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, द्वितीय अंक)

और से करते हुए छल-पाप,
हम छले जाते प्रथम ही आप।

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सप्तम सर्ग)

ननदो के घर ननद होली।

ननद के भी घर ननद होती है अर्थात् छली को छलने वाला भी कोई मिलेगा।

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

तन सूधे सूधे वचन, मनमैं राखै फेर।
अगनि ढकी तो क्या हुआ जारत करत न वेर॥

—अज्ञात

तोंडावर हाँ जी, हाँ जी, नि मागे दगलबाजी

मुँह पर हाँ, जी! हाँजी! और पीछे छल।

—मराठी लोकोक्ति

छली को सदैव ऐसे लोग मिल जाते हैं जो छलने को तैयार होते हैं।

—मैकियावेली

छली को छलना दोहरा आनन्द है।

—ला फ़ोंतेन

छाया

कहो, कौन हो दमयन्ती सी
तुम तरु के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल सा निष्ठुर कोई?

—सुमित्रानन्दन पंत (पल्लव, छाया)

छायावाद

छाया भारतीय दृष्टि से अनुकृति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान और उपचारवक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएं हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२६)

छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता; विरोध-चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ६२५)

छायावादी काव्य, दिशा से अधिक, काल को वाणी देता रहा है।

—सुमित्रानन्दन पंत (छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० ४५)

छायावाद एक प्रकार से अज्ञातकुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका, फलतः उसने आकाश, तारे, फूल, निर्झर आदि से आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ा और उसी सम्बन्ध को अपना परिचय बनाकर मनुष्य के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न किया।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ५३)

छायावादी कवि

संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला जी ने किया है।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८०)

चिन्तन 'प्रसाद' ने अधिक किया। काव्य 'निराला' का श्रेष्ठ है। शब्द का ज्ञान 'पन्त' का सबसे सूक्ष्म है।

'प्रसाद' पढ़ाए जाएंगे। 'पन्त' से सीखा जाएगा। 'निराला' पढ़े जाएंगे।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ७८)

ज

जगत्

दे० 'संसार'।

जगत और ब्रह्म

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रं इति वेदांत-डिंडिमः॥

ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, भिन्न नहीं। जो भी उत्तम शास्त्र है, वह इसी से जानना चाहिए। यह वेदान्त का डंका है।

—शंकराचार्य

किमिदं किमस्य रूपं कथमिदमासीत् अमुष्य को हेतुः।
इति न कदापि विचिंत्य चिंत्यं मायेति धीमता विश्वम्॥

यह विश्व क्या है ? इसका रूप क्या है ? पहले यह कैसा था ? इसका उद्देश्य क्या है ?—ऐसा कभी विचार न करके बुद्धिमान मनुष्य को 'यह विश्व माया है', ऐसा ही समझना चाहिए।

—शंकराचार्य

दंतिनि दारु-विकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव।
जगति तथा परमात्मा परमात्मनि अपि जगत् तिरोधत्ते॥

लकड़ी के बने हाथी में हाथी दिखाई देता है तो लकड़ी लुप्त हो जाती है और लकड़ी दिखाई देती है तो हाथी लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार जगत् में परमात्मा और परमात्मा में जगत् लुप्त हो जाता है।

—शंकराचार्य

ब्रह्म-प्रत्यय संततिजगत्।

यह जगत् ब्रह्म के अनुभवों का प्रवाह है।

—शंकराचार्य (विवेकचूड़ामणि)

जो जातें कारय भयो सो ताही में छीन।
ऐसे ही यह जगत् सब होइ ब्रह्म महिं लीन॥

—सुन्दरदास (ज्ञान समुद्र, ५।२४)

जड़ता

दे० 'मूर्खता' भी।

चिरं ह्यपि जडः शूरः पंडितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव॥

जिसकी बुद्धि पर जड़ता छा रही हो, वह शूरवीर योद्धा दीर्घकाल तक विद्वान की सेवा में रहने पर भी धर्मों का रहस्य नहीं जान पाता, ठीक उसी तरह, जैसे करछली दाल में डूबी रहने पर भी उसके स्वाद को नहीं जानती।

—वेदव्यास (महाभारत, सौप्तिक पर्व, ५।३)

जनतन्त्र

मेरी कल्पना का प्रजातन्त्र वह है जिसमें अत्यन्त दुर्बल लोगों को वही अवसर प्राप्त हों जो अत्यन्त बलवानों को प्राप्त हैं।

—महात्मा गांधी (फ़ार पैसिफ़िस्ट, पृ० ८९)

अनुशासन और विवेकयुक्त जनतन्त्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है।

—महात्मा गांधी (मेरे सपनों का भारत, पृ० १७)

बाहरी नियन्त्रणों के तनाव में लोकतन्त्र टूट जाएगा।

—महात्मा गांधी (मोहनमाला, ११८)

जन्तन्त्र में इस बात की आवश्यकता है कि जो क्रान्ति हो, वह केवल जनता के लिए न हो, 'जनता की क्रान्ति', 'जनता के द्वारा' हो। आज क्रान्ति भी जनतांत्रिक होनी चाहिए, अन्यथा दुनिया में जनतन्त्र की कुशल नहीं है। क्रांति की प्रक्रिया ही जनतांत्रिक होनी चाहिए।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० ८०)

लोकतन्त्र लोक-कर्त्तव्य के निर्वाह का एक साधन मात्र है। साधन की प्रभाव-क्षमता लोकजीवन में राष्ट्र के प्रति एकात्मकता, अपने उत्तरदायित्व का भान तथा अनुशासन पर निर्भर है।

—दीनदयाल उपाध्याय

राजनीतिक प्रजातन्त्र बिना आर्थिक प्रजातन्त्र के नहीं चल सकता। जो अर्थ की दृष्टि से स्वतन्त्र है, वही राजनीतिक दृष्टि से अपना मन स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकेगा।

—दीनदयाल उपाध्याय (भारतीय अर्थनीति, विकास की एक दिशा, पृ० १८)

'प्रत्येक को वोट' जैसे राजनीतिक प्रजातन्त्र का निष्कर्ष है वैसे ही 'प्रत्येक का काम' यह आर्थिक प्रजातन्त्र का मापदण्ड है।

—दीनदयाल उपाध्याय (भारतीय अर्थनीति, विकास की एक दिशा, पृ० १६)

जनतन्त्र व्यवहारत: विश्वास के या आस्था के ही सहारे चलता है।

—सच्चिदानन्द वात्स्यायन (अद्यतन, पृ० १४५)

जनतन्त्र का उद्भव मनुष्यों के इस विचार से हुआ कि यदि वे किसी अंश में समान हैं तो वे पूर्ण रूप से समान हैं।

—अरस्तू (पालिटिक्स, अध्याय १)

A strong government and a loyal people no doubt make a good state. But a deaf government and a dumb people do not make democracy.

निस्सन्देह सशक्त सरकार और राजभक्त जनता से उत्कृष्ट राज्य का निर्माण होता है। परन्तु बहरी सरकार और गूंगे लोगों से लोकतन्त्र का निर्माण नहीं होता।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, २८ मार्च १९५९)

Government of the people, by the people, for the people.

जनता के लिए, जनता द्वारा, जनता की सरकार।

—अब्राहम लिंकन (भाषण, १९ नवम्बर १८५३)

If our democracy is to flourish, it must have criticism; if our government is to function, it must have dissent.

यदि हमारे जनतन्त्र को फलना-फूलना है तो उसमें आलोचना होनी ही चाहिए। यदि हमारी सरकार को कार्य करना है तो उसका विरोध होना ही चाहिए।

—हेनरी स्टील कॉमेजर

Democracy is always a beckoning goal, not a safe harbor. For freedom is an unremitting endeavor, never a final achievement.

जनतन्त्र सदैव ही संकेत से बुलाने वाली मंजिल है, कोई सुरक्षित बन्दरगाह नहीं। कारण यह है कि स्वतन्त्रता एक सतत प्रयास है, कभी भी अन्तिम उपलब्धि नहीं।

—फ़ेलिक्स फ़्रैंक फ़र्टर

Democracy substitutes election by the incompetent many for appointment by the corrupt few.

कतिपय भ्रष्ट व्यक्तियों के द्वारा नियुक्ति के स्थान पर जनतन्त्र में अनेक अयोग्यों द्वारा चुनाव होता है।

—जार्ज बर्नार्ड शा

The ignorance of one voter in a democracy impairs the security of all.

जनतन्त्र में एक मतदाता का अज्ञान सबकी सुरक्षा को संकट में डाल देता है।

—केनेडी (भाषण, १८ मई १९६३)

Democracy is a constant challenge, it requires the best of every one.

जनतन्त्र सतत चुनौती है, यह प्रत्येक से सर्वोत्तम की माँग करता है।

—ह्यूबर्ट एच० हम्फ्री (भाषण, १ अक्तूबर १९४२)

जनता

दे० 'समाज' भी।

जनानने कः करमर्पयिष्यति।

लोगों का मुँह कौन बन्द करेगा?

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ९।१२५)

प्रजा-शक्ति ही राज-शक्ति है, प्रजा राज का धन है।
प्रजा-शक्ति से हीन राज का निराधार जीवन है॥
नृपति प्रजा का सरक्षक है, नही निरंकुश स्वामी।
अपने नही, प्रजा के सुख का राजा है अनुगामी॥
—**रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पाँचवाँ सर्ग)**

जब जनता एक हो जाती है, तब उसके सामने ज़ालिम से ज़ालिम हुकूमत भी नहीं टिक सकती।
—**सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १३८)**

जनता कभी अचेत नहीं होती। उसके नायक अचेत या भ्रममय हो सकते है।
—**वृन्दावनलाल वर्मा (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० १)**

हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।
—**रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल, पृ० ३५२)**

सच को कल्पना से रंगकर उसी जन-समुदाय को सौंप रहा हूँ जो सदा झूठ में ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ता।
—**यशपाल (झूठा सच, समर्पण)**

देश का भविष्य नेताओ और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।
—**यशपाल (झूठा सच, पृ० ६६२)**

दुनिया का नया देवता 'जनता' है। दुनिया की सारी चीज़ें सभी के लिए है। सभी कुछ हर एक के लिए है। जीवन का सर्वस्व एकता में है। सारा जीवन हर एक के लिए है और हर एक सारे जीवन के लिए है।
—**मैक्सिम गोर्की (मां)**

जनसाधारण में बुद्धि नहीं होती है, बड़े व्यक्तियों में हृदय नहीं होता है…यदि मुझे कभी चुनना पड़े तो मैं बिना किसी हिचक के जनसाधारण को ही चुनूंगा।
—**जीन ला ब्रुयरे (ले कैरेक्टर्स)**

भीड़ के आधार पर बनाना, रेत के आधार पर बनाना है।
—**इटली की लोकोक्ति**

People will endure their tyrants for years, but the tear their deliverers to pieces if a millennium is not created immediately.

लोग अपने अत्याचारी शासकों को बरसों सहन कर लेंगे लेकिन यदि तत्काल ही स्वर्णयुग का सृजन न कर दिया जाए तो अपने उद्धारकों के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।
—**विल्सन (जार्ज क्रील से कहे गए शब्द)**

The power of pings and magistrates is nothing else, but what only is derivative, transformed and committed to them in trust from the people to the common good of them all, in whom the power yet cmains fundamentally, and cannot be taken from them, with out a violation of their natural birthright.

राजाओं और दंडाधिकारियों की शक्ति उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, जो जनता से व्युत्पन्न, रूपान्तरित तथा अपने सार्वजनिक हित में उससे लेकर विश्वासपूर्वक उन्हें सौंप दी गई है, उस जनता से जिसमें शक्ति मूलतः सन्निहित है और लोगों के प्राकृतिक जन्मसिद्ध अधिकार का उल्लंघन किए बिना उनसे नहीं ली जा सकती।
—**मिल्टन (दि टेन्युर आफ़ किंग्स एंड मैजिस्ट्रेट्स)**

जनता और नेता

हमें अपने प्रिय नेताओं के प्रति स्नेह प्रकट करना चाहिए—सार्थक कार्यों और अथक शक्ति के द्वारा। जो प्यार अपने प्रिय के चरण छूने और उसके पास पहुँच कर शोर मचाने से संतुष्ट हो जाता है, भय है कि वह धीरे-धीरे उसके लिए जान-लेवा भी हो सकता है।
—**महात्मा गांधी (यंग इंडिया, २०-१०-१९२०)**

जनमत

बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो
ज़ुबाने ख़ल्क[1] को नक़्क़ारये ख़ुदा[2] समझो।
—**ज़ौक़**

१. ज़बानी। २. ईश्वर की घोषणा।

जनता की वाणी ईश्वर की वाणी है।

—आर्चबिशप वाल्टर रेनोल्ड्स (१ फ़रवरी १३२७, एडवर्ड तृतीय के राज्यारोहण पर उपदेश)

मूर्खता, दुर्बलता, पक्षपात, ग़लत धारणा, ठीक धारणा, हठधर्मिता और समाचारपत्रों के अंशों के मिले-जुले रूप का नाम जनमत है।

—राबर्ट पील

What we call public opinion is generally public sentiment.

जिसे हम जनमत कहते है, वह सामान्यतः जनभावना होती है।

—डिजरायली (भाषण, ३ अगस्त १८८०)

Public opinion is stronger than the legislature, and nearly as strong as the ten commandments.

जनमत विधायिका की अपेक्षा अधिक सशक्त होता है और लगभग उतना ही शक्तिशाली है जितने दस धर्मनियम।[1]

—चार्ल्स डडले वार्नर (सिक्स्टीन्थ वीक)

जनसंख्या

Population, when unchecked, increases in a geometrical ratio, subsistence only increases in an arithmetical ratio.

अबाधित रहे तो जनसंख्या गुणोत्तर अनुपात में बढ़ती है, किन्तु खाद्य सामग्री गणितीय अनुपात में ही बढ़ती है।

—माल्थस (दि प्रिंसिपिल आफ़ पापुलेशन)

We have been God-like in our planned breeding of our domesticated plants and animals but we have been rabbit-like in our unplanned breeding of ourselves.

हम अपने घरेलू पौधों व पशुओं के नियोजित प्रजनन में ईश्वर सदृश रहे हैं, परंतु स्वयं अपने अनियोजित प्रजनन में हम ख़रगोश के सदृश रहे है।

—आर्नोल्ड जोसफ़ टॉयनबी

१. जो हज़रत मूसा ने दिए थे और यहूदी व ईसाई जगत में मान्य हैं।

जनसम्पर्क

साम्यवादी लोग बीजों के समान हैं और जनता भूमि के समान है। जहाँ भी हम जाएँ, हमें जनता से घुलना-मिलना चाहिए, उनमें जड़ पकड़नी चाहिए और उनमें फलना-फूलना चाहिए।

—माओ-त्से-तुंग (क्वटेशंस फ़्राम चेयरमैन माओ)

सभी तथाकथित शक्तिशाली प्रतिक्रियावादी काग़ज़ी शेरों से अधिक नहीं हैं, क्योंकि वे अपनी जनता से कटे हुए हैं।

—माओ-त्से-तुंग (नवम्बर १९५७ में मास्को में भाषण)

जनहित

It is a general popular error to imagine the loudest complainers for public to be the most anxious for its welfare.

जनता के लिए सबसे अधिक शोर मचाने वालों को उसके कल्याण के लिए सबसे उत्सुक मान लेना सर्वसामान्य प्रचलित त्रुटि है।

—एडमंड बर्क ('दि प्रिजेंट स्टेट आफ़ दि नेशन' पुस्तक पर विचार)

जन्म

इस जन्म का जो अंत है, वही अगले जन्म का आरम्भ है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० १११)

जन्म का अपराध? यदि वह अपराध है तो उसका मार्जन किस प्रकार सम्भव है? शस्त्र की शक्ति, धन की शक्ति, विद्या की शक्ति, कोई शक्ति जन्म को परिवर्तित नहीं कर सकती। कोई भी उपाय जन्म के अपराध का मार्जन नहीं कर सकता। जन्म के अन्याय का प्रतिकार क्या मनुष्य दैव से ले?

—यशपाल (दिव्या, पृ० १९)

एक पुस्तक के साथ उसके पृष्ठों का जो सम्बन्ध है, वही हमारे साथ हमारे जन्मों का भी है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० २६)

जन्मभूमि

दे० 'मातृभूमि' भी।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी होती है।

—अज्ञात

सहजस्नेहपाश-ग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुस्त्यजा जन्मभूमयः।

बन्धु-बांधव के समान अपनी जन्मभूमियाँ, जिनके साथ स्वाभाविक स्नेहपाश का गठबन्धन हो चुका है दुस्त्यज है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १६-१७)

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गयी।
सेवनीया है सभी को वह महामहिमामयी।।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, ११४)

हमारी तीन जन्मभूमियाँ हैं और तीनों एक-दूसरे से मिली हुई हैं। पहली जन्मभूमि है पृथ्वी—मनुष्य का वास स्थान पृथ्वी पर सर्वत्र है।···मनुष्य का द्वितीय वासस्थान है स्मृतिजगत्। अतीत से पूर्वजों का इतिहास लेकर वह काल का नीड़ तैयार करता है—यह नीड़ स्मृति की ही रचना है···

स्मृति जगत् में मानव-मात्र का मिलन होता है।··· उसका तृतीय वास स्थान है आत्मलोक—इसे हम मानवचित्त का महादेश कह सकते हैं। यही चित्त लोकमनुष्यों के आन्तरिक योग का क्षेत्र है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, पृ० २५०)

जन्म-मरण

दे० 'जीवन-मरण' भी।

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित्।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति।।

कौन मनुष्य किसका बन्धु है? किसको किससे क्या प्राप्त होता है? प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही नष्ट हो जाता है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकांड, १०८।३)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नवीन वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर अन्य नये शरीरों को प्राप्त करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२२ अथवा गीता २।२२)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

जो उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है।

— वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।२६ अथवा गीता, २।२६)

आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः।
कायात् कायामुपयांति वृक्षात् वृक्षमिवांडजाः।।

सैकड़ों आशारूपी पाशों में बँधे हुए, वासनाओं को हृदय में धारण किए हुए, जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में इस प्रकार चले जाते हैं जैसे पक्षी एक वृक्ष से उड़कर दूसरे वृक्ष पर चले जाते है।

—योगवासिष्ठ (४।४३।२६)

जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म।
को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः।।

किसका जन्म सराहनीय है? जिसका फिर जन्म न हो। किसकी मृत्यु सराहनीय है? जिसकी फिर मृत्यु न हो।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, १८)

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

उसी का जन्म सफल है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति होती है, नहीं तो परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता है और कौन जन्म नहीं लेता है ?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ३२)

जन्म से मृत्यु ज्यादा उत्सव का प्रसंग है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, १८३)

जन्म और मृत्यु दो भिन्न स्थितियाँ नहीं है, बल्कि एक ही स्थिति के दो अलग पहलू हैं।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, १३५)

हम चो सब्ज़ा बारहा रोईदा अम
हफ़्त सद हफ़्ताद क़ालिब दीया अम।

दूब के समान हम हजारों बार उगे हैं और उगते रहेंगे। हमने ७७० शरीर बदले हैं और बदलते रहेंगे।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

कभी-कभी देहान्त के बिना ही इन्सान एक ही शरीर में कई-कई मौतें नहीं मरता ? या एक ही जन्म में कई-कई बार जन्म नहीं लेता ?

—आशापूर्णा देवी (रेत का वृन्दावन)

निद्रा के समान है मरण, और निद्रा से जागरण के समान है जन्म।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३३९)

Death is the penalty of birth.
जन्म का दंड मृत्यु है।

—साधु वासवानी (दि लाइफ़ ब्युटिफ़ुल, ८९)

जप

मंत्रस्य सुलघूच्चारो जप इत्यभिधीयते।
मंत्र का मन्द स्वर से उच्चारण करना 'जप' कहलाता है।

—रूपगोस्वामी (भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व विभाग, २१४९ कारिका)

पठितो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम्।
अध्ययन करने वाले का मूर्खत्व और जप करने वाले का पाप नहीं रहता है।

—अज्ञात

नाम[1] के अक्षरों का जपना, उसके अर्थ का मनन करना, इस अर्थ-भाव को ध्यान में धारण करना, इसको जीवन में ढालना, तदनुरूप जीवन में कर्म करना और तदनुसार होने वाला जीवन अपना स्वाभाविक जीवन बनाना। इतना करने से ठीक जप हो सकता है और वह मनुष्य उन्नति कर सकता है।

—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (श्री विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र, भूमिका)

यदि श्रद्धापूर्वक कोई भी आदमी जप जपेगा, तो अंत में वह स्थिरचित्त होगा ही।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, २३७)

चिन्ता जननी चाह है, ताको पति अविवेक।
जो विवेक की चाह तो, राम नाम जपु एक॥

—रामचरित उपाध्याय

ज़माना

याँ तो आई नहीं शतरंजे—ज़माने की चाल,
और वहाँ बाज़ी हुई मात चली जाती है।

—मीर

न इतराइए देर लगती है क्या
ज़माने को करवट बदलते हुए।

—दाग़

ज़माने की गर्दिश से चारा नहीं है
ज़माना हमारा तुम्हारा नहीं है।

—'इशरत' गोरखपुरी

मर्द वे हैं जो ज़माने को बदल देते हैं।

—अज्ञात

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले दिल
हम वो नहीं कि जिनको ज़माना बना गया।

—अज्ञात

---

१. ईश्वर-नाम।

जय

दे० 'विजय'।

जयदेव

आकर्ण्य जयदेवस्य गोविन्दानन्दिनीगरः।
बालिशाः कालिदासाय स्पृहयन्तु वयं तु न॥

जयदेव की गोविन्द को आनन्दित करने वाली वाणियाँ सुनकर ही अल्पज्ञ कालिदास के लिए स्पृहा करते हैं, हम नहीं करते।

—अज्ञात

जय-पराजय

मेरे निकट बिना मूल्य मिली जय से वह पराजय अधिक मूल्यवान ठहरेगी जो जीवन की पूर्ण शक्ति-परीक्षा ले सके।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ६४)

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

—हिंदी लोकोक्ति

हजारों जीते हजारों हारे, अजीब दुनिया की कशमकश है
जो देखा 'नाशाद' वक़्त बाक़ी न जीत बाक़ी न हार बाक़ी।

—नाशाद

प्रत्येक पराजय ही जय की एक सीढ़ी है।

—मैज़िनी

जल

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः।

हे देवों! तुम अपनी उन्नति के लिए जलों के भीतर जो अमृत व औषधि है, उनको जानकर जल के प्रयोग से ज्ञानी बनो।

—ऋग्वेद (१।२३।१९)

आपः सर्वस्य भेषजीः।

जल सब रोगों की एकमात्र दवा है।

—ऋग्वेद (१०।१३७।६)

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥

जैसे माँ अपनी सन्तान को दूध पिलाती है, वैसे ही हे जल! जो तुम्हारा कल्याणतम रस है उसे हमें प्रदान करें।

—यजुर्वेद (३६।१५)

शं नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः।

हमें इच्छित सुख देने के लिए जल कल्याणकारी हों। हमारे पीने के लिए सुखदायी हों। हमें सुख और शांति देते हुए जल-प्रवाह बहे।

—अथर्ववेद (१।६।१)

आपो वावान्नाद्भूयः।

जल ही अन्न की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१०।१)

आत्मप्रदानं सौम्यत्वमद्भ्यश्चैवोपजीवनम्।

परहितार्थ आत्मदान, सौम्यत्व तथा दूसरों को जीवन-दान की शिक्षा जल से लेनी चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, ७८।१९)

जीवनं जीविनां जीवो जगत् सर्वं तु तन्मयम्।
नाऽतोऽत्यन्तनिषेधेऽपि कदाचिद् वारि वार्यते॥

पानी प्राणियों का जीवन है। सारा संसार ही जलमय है अतः निषेध होने पर भी कभी पानी नहीं रोकना चाहिए।

—भावप्रकाश

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी।
तस्माद् देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम्॥

प्यास बहुत भयंकर व तुरन्त प्राणविनाशिनी होती है। अतः जीवन धारण करने के लिए आवश्यक जल प्यासे को देना चाहिए।

—भावप्रकाश

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
अमृतं भोजनार्धे तु भुक्तस्योपरि तद्विषम्॥

अजीर्ण में जल औषधि है और जीर्ण में जल बलप्रद है। आधे भोजन के बीच जल अमृत है और भोजन के पश्चात् जल विष है।

—अज्ञात

सर्वरोगविनाशाय निशान्ते च पयः पिबेत् ।

सभी रोगों के विनाश के लिए रात्रि के अन्त में जल पीना चाहिए ।

—अज्ञात

जल्दबाज़ी

मा च वेगेन किच्चानि कारेसि कारयेसि वा,
वेगसा हि कतं कम्म मन्दो पच्छानुतप्पति ।

जल्दबाज़ी में कोई काम स्वयं कर और न दूसरे से करा। जल्दबाज़ी से काम लेने से मूर्ख आदमी को पछताना पड़ता है ।

[पालि] —जातक (तेसकुण जातक)

असमेक्खितकम्मन्तं तुरिताभिनिपातिनं ।
सानि कम्मानि तप्पेन्ति उण्हं वज्झोहितं मुखे ॥

जो आदमी बिना विचारे जल्दबाज़ी में काम करता है, उसके वह काम ही उसे तपाते हैं; जैसे मुह में डाला हुआ गर्म भोजन ।

[पालि] —जातक (सिगाल जातक)

जिसे हम नहीं समझ सकते वह गलत ही है, यह मानने की जल्दबाजी करना भूल है। कितनी ही बातें पहले समझ में नही आती थी, वे आज दीपक की तरह दिखाई देती हैं ।

—महात्मा गांधी (मंगल प्रभात)

झटपट की घानी, आधा तेल आधा पानी ।

—हिंदी लोकोक्ति

हड़बड़[1] के काम गड़बड़ ।

—हिंदी लोकोक्ति

ठैर ठैर के चालिए, जब हो दूर पड़ाव ।
डूब जात अधियाव[2] में, दौड़ चलंती नाव ॥

—अज्ञात

१. जल्दबाजी ।
२. आधे मार्ग में ।

चि खुश गुफ़्त फ़िरदौसिये खुशबयां
शितावी बुवद कारे आहरमनां ।

सुन्दर ढंग से वर्णन करने वाले फ़िरदौसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—जल्दी का काम अहिरावण (शैतान) का होता है ।

[फ़ारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (जफ़रनामा, १००)

I have no time to be in a hurry.
मेरे पास जल्दबाज़ी के लिए समय नहीं है ।

—अज्ञात

जागना-सोना

भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनम् ।

जागना वैभव के लिए है। सोना वैभवहीनता के लिए है ।

—यजुर्वेद (३०।१७)

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो ।
जागर्ति को वा सदसद्विवेकी ॥

सुख से कौन सोता है ? जो परमात्मा के स्वरूप में स्थित है। और कौन जागता है ? सत् और असत् के तत्त्व को जानने वाला ।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, ४)

जो सुवति न सो सुहितो,
जो जग्गति सो सया सुहितो ।

जो सोता है वह सुखी नहीं होता, जाग्रत रहने वाला ही सदा सुखी रहता है ।

[प्राकृत] —बृहत्कल्पभाष्य (३२८३)

रात में जागे जोगी, या रोगी या भोगी ।

—हिंदी लोकोक्ति

जागरूकता

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

जो जागरूक रहता है, उसी को ऋग्वेद के मंत्र अर्थात् सभी शास्त्र चाहते हैं। जो जागरूक रहता है, उसी को साम (स्तुति, आदर आदि) प्राप्त होते है ।

—ऋग्वेद (५।४४।१४)

मेरा धर्म ख़ुद जाग्रत रहकर, आपको निरन्तर जाग्रत रखना है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १५३)

हम न सोयेंगे, हमारा कार्य है अवशिष्ट
अपनी प्रगति का अब भी अधूरा लेख।
जागरण चिर जागरण ही है हमारा इष्ट।

—भारतभूषण अग्रवाल ('जागते रहो' कविता)

गंभीर रहो, जागरूक रहो क्योंकि तुम्हारा विरोधी शैतान, गर्जते सिंह के समान, इस खोज में घूमता रहता है कि किसको फाड़ खाए।

—नवविधान (पीटर का प्रथम पत्र ५।८)

जाति

कर्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले न हि।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते॥

कर्म, शील व गुण से मनुष्य जैसा पूज्य होता है, वैसा जाति और कुल से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठता तो न जाति से प्राप्त होती है, न कुल से ही।

—शुक्रनीति (२।५६)

विवाहे भोजने नित्यं कुलजातिविवेचनम्।

कुल व जाति का विचार तो केवल विवाह व भोजन में किया जाता है।

—शुक्रनीति (२।५७)

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

जाति से न कोई वृषल होता है और न कोई ब्राह्मण। कर्म से ही वृषल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।

[पालि] —सुत्तनिपात (१।७।२७)

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो,
न दीसई जाइविसेस कोई।

तप की विशेषता तो प्रत्यक्ष में दिखलाई देती है, किन्तु जाति की तो कोई विशेषता नज़र नहीं आती।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१२।३७)

जद्यपि जग दारुन दुःख नाना।
सबतें कठिन जाति-अवमाना॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६३।४)

कई बार तो जाति से निकाला जाना स्वागत करने की चीज होती है। जिस जाति के पंच अन्याय करके अपना बड़प्पन खो बैठते है, उस जाति में रहना तो अनीतिमय राज्य में रहने के बराबर है। इससे पहले कि जाति उसका बहिष्कार करे, व्यक्ति को स्वयं जाति से अपना सम्बन्ध तोड़ लेना चाहिए, और उपजातियों को तो हर हालत में समाप्त कर देना ही इष्ट है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४०, पृ० ६)

समाज में मान-सम्मान पाने के लिए गुण ही ज्यादा प्रभावी सिद्ध होते है, जाति नहीं। हर बात में जाति का अड़ंगा डालने की बहुत बुरी आदत हमें पड़ गई है। आज जो हैं, वे ही जातियाँ काफी हैं। अब कम-से-कम राजनीति में तो हम जातियाँ पैदा न करें। आने वाले जमाने का शिवाजी यदि मुसलमान के घर में पैदा होता है तो मुझे बिल्कुल बुरा नहीं लगेगा। हमें गुणों की चाह है, जाति की नहीं।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

जे नदी हाराये स्रोत चलिते ना पारे,
सहस्र शैवाल-दाम बाँधे आसि तारे;
जे जात जीवनहारा अचल असार
पदे-पदे बाँधे तारे जीर्ण लोकाचार।
सर्व जन सर्व क्षण चले जेई पथे,
तृण गुल्म सेथा नाही जन्मे कोनो मते—
जे जाति चलेना कभू तारि पथ परे
तन्त्र यंत्र संहितार चरण ना सरे!

जिस नदी का प्रवाह रुक जाता है, वह फिर बह नहीं सकती है। फिर तो सेवार की हजारों जंजीरें आकर उसे जकड़ लेती है। इसी तरह जिस जाति के जीवन का नाश हो गया है—जो जाति अचल और जड़वत् हो गयी है, उसे भी पद-पद पर जीर्ण लोकाचार जकड़ लेते हैं। जो आम

रास्ता है—जिस पर लोग सब समय चलते-फिरते हैं, उसमें कभी घास नहीं उग सकती। इसी तरह जो जाति कभी चलती नहीं, उसके पथ पर तन्त्र, मन्त्र और संहिताएँ भी पंगु हैं।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जो जातियाँ कठिन परीक्षा काल में भी नैतिकता तथा चारित्र्य का सम्बल नही छोड़तीं और अपनी योग्यता के बल पर सफलता अर्जित करती है, वस्तुतः उन्हें ही संसार में जीवित रहने का अधिकार है।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दू पद पादशाही, भूमिका)

इस जाति-बहिष्कार के खड्ग ने एकात्म—एकजीव—अखंड राष्ट्रशरीर के टुकड़े-टुकड़े करके उसे हजारों खण्डों में विभक्त कर दिया है।

—विनायक दामोदर सावरकर
(सावरकर विचारदर्शन, पृ० १२८)

वस्तुतः आज की जातियों में से हजारों उपजातियाँ केवल प्रान्त, भाषा, धर्म-मत अथवा खान-पान जैसे मुर्गा व बकरा खाना, शाकाहार करना, लहसुन-प्याज खाना, तम्बाकू पीना-खाना, खड़े-खड़े बुनना या बैठे-बैठे बुनना, चंदन का पात्र पटक देना या पक्षी के अण्डे पर पाँव रख देना आदि वाहियात एवं बचकाने कारणों से अस्तित्व में आयी हैं।

—विनायक दामोदर सावरकर
(सावरकर विचारदर्शन, पृ० १२८)

जायसी

कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।

—रामचन्द्र शुक्ल (जायसी ग्रंथावली, पृ० २)

हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है।

—रामचन्द्र शुक्ल (त्रिवेणी. पृ० ६७)

जिज्ञासा

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥

सबसे बड़ा (आदि) कारण क्या है? हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? हम किससे जीते हैं और किसमें स्थित है? हे ब्रह्म-ज्ञानियो! किसके द्वारा व्यवस्था में बँधे हुए हम सुख-दुःखों में व्यवहार करते हैं?

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (१।१)

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है!
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?

—महादेवी वर्मा (सांध्यगीत, यामा, पृ० २३२)

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक तेज रौ के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं।

मैं जिसे भी गतिशील देखता हूँ, उसी के साथ कुछ पग चलता हूँ क्योंकि सही पथ-प्रदर्शक को अभी मैं पहचान नहीं पाया हूँ।

—ग़ालिब (दीवान, ६६।६)

सभी लोग स्वभाव से ही ज्ञान चाहते हैं।

—अरस्तू (मेटाफ़िज़िक्स, प्रथम अध्याय, प्रथम पंक्ति)

जिह्वा

रसना रसयत्यसौ मधु स्वयमस्माकमनर्थकं जनुः।
इति तत्र समस्तमिन्द्रियं प्रतिबिम्बस्य मिषेण मज्जति ॥

यह रसना स्वयं मधु का आस्वाद लेती है। अतः हमारा जन्म निरर्थक है, मानो यही सोचकर समस्त इन्द्रियवर्ग प्रति-बिम्ब के बहाने मधु में डूब जाता है।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ५।६)

इतरा रसना विफलव्यसना
हरिनामधना रसना रसना।

हरि नाम को ही सर्वस्व मानने वाली जिह्वा ही जिह्वा है। अन्य जिह्वाएँ तो व्यर्थ ही बोलने वाली हैं।

—भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (गोविंदवैभव, पृ० ६१)

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितेन्येन्द्रियकः पुमान् ।
न जयेद्रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे ॥

चाहे और सब इन्द्रियों को वश में कर भी लिया हो परन्तु जब तक रसना को अपने वश में नहीं किया तब तक मनुष्य जितेन्द्रिय नहीं हो सकता । एक जिह्वा को जीत लिया तो सभी को जीत लिया ।

—अज्ञात

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥

चटोरी जीभ के कारण मनुष्य मूढ़ बन मछली के समान जिह्वा के वश में पड़ नष्ट हो जाता है ।

—अज्ञात

मेरो चेरो, मेरो छोरो, मेरो घूरो, मेरो घरु
मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है ।
कहि कवि गंग और औरऊ जु आक बाक
कहत कहत क्यों हूँ क्यों हूँ न रसाति है ।
चार्‌यो वेद चावति, पढ़ति छओ दरसन,
नवरस निरूपति, जर रस खाति है ।
देखौ देखौ पूरविले पाप को प्रताप यह,
राम नाम लेत जीभ ऐड़ी बैठी जाति है ॥

—गंग (गंग कवित्त, ६)

जीने की कला

क्रोध करे तो क्रोध पै, निन्दे तो निज देह ।
द्रोह करे तो अधर्म को, करि तों हरि सों नेह ॥

हे मन ! यदि तुझे क्रोध ही करना है तो क्रोध पर कर । निंदा ही करनी है तो अपनी देह की कर । द्रोह ही करना है तो अधर्म से कर, और स्नेह ही करना है तो भगवान से कर ।

—दयाराम (दयाराम सतसई, ३८४)

बनती देख बनाइये, परन न दीजै खोट ।
जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजै ओट ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

विनय और कष्ट सहने का अभ्यास रखते हुए भी अपने को किसी से छोटा न समझना चाहिए और बड़ा बनने का घमण्ड अच्छा नहीं होता ।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १३६-१३७)

'सदैव प्रस्तुत रहो' का महामंत्र मेरे जीवन का रहस्य है—दुख के लिए, सुख के लिए, जीवन के लिए और मरण के लिए ।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० १७४)

हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक-एक चोट से रात-दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा ।

—सरदार पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

अच्छे गवैये स्वर तो ऊँचा या नीचा वही पकड़ते हैं, जिसे वे अच्छी तरह निभा सकें; मगर उस पर सारा जोर लगा देते हैं । तभी उनके गाने में पूरी मिठास और लोच आती है । यही हाल कर्मकला का है । कर्म छोटा किया जाये या बड़ा, यह तो अपनी-अपनी शक्ति पर निर्भर है ।

—महात्मा गांधी

जो जीवन का लोभ छोड़कर जीता है, वही जीता है ।

—महात्मा गांधी (गांधी वाणी, ५४)

काम करने के पूर्व वासना नहीं होनी चाहिए । काम करते समय मन में सन्तोष होना चाहिए कि हम अपनी बुद्धि और शक्ति का ठीक-ठीक उपयोग कर रहे हैं । काम पूरा हो जाने पर अभिमान न आये कि हमने यह किया । यह काम करने की ठीक पद्धति है ।

—अखंडानन्द सरस्वती (सांख्ययोग, पृ० ४२१)

जीवन का रस लेना हो तो करो मरण से प्यार ।
जो उल्लास-स्वाद चखना हो तो लो मन को मार ॥

—गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश' (तारक वध, पृ० ७८)

हे वीणा-वादन-वर सखे, तार हों ठीक तेरे,
ऊँचे नीचे अब मत रहें रंग गाढ़ा जमावें ।
जो होते हैं सम-बल वही मोहते विश्व को हैं,
जो ढीले तो गत-रव बने, जो खिंचे शीघ्र टूटे ।

—अनूप शर्मा (सिद्धार्थ, पृ० २०६)

जीवन का सच्चा पथ यह नहीं है कि जो हमें प्राप्त नहीं है, उसके लिए हम रोते रहें। जीवन का सच्चा पथ यह है कि यत्न या योग से जो हमने पा लिया उसे पहिचानें, उसे अपने अनुकूल बनायें, उसमें रस लें और संतोष का सुख पायें।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिन्दगी मुस्कराई, पृ० ८७)

आपका जीवन एक ऐसी खुली पुस्तक होना चाहिए जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला हुआ हो, जिसकी प्रत्येक पंक्ति स्पष्ट हो और पढ़ी जा सके।

—रामचरण महेन्द्र (आनन्दमय जीवन, पृ० ९९)

वा मर्दुमे सहल जूये दुश्वार मगोय्
वा आंकि ढेर सुलह् जनद जंग म जोय।

सरल स्वभाव के व्यक्ति से कठोर वचन बोल। जो संधि का द्वार खटखटाए उसके साथ मत लड़।

[फ़ारसी] शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, आठवाँ अध्याय)

हमें अपने स्वभाव का पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और फिर अपनी क्रियाओं का ऐसा संयम प्राप्त करना चाहिए कि हमें पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाए और जिन चीज़ों को रूपान्तरित करना है, उनका रूपान्तर साधित हो जाए।

—श्रीमाताजी (शिक्षा, पृ० ३८)

जब कभी अपने हृदय को प्रफुल्लित करना चाहो, अपने निकटवर्तियों के शुभ गुणों को चित्त में लाओ—जैसे कि एक की स्फूर्ति, दूसरे की विनम्रता, तीसरे की उदारता, चौथे की ऐसी ही कोई अच्छाई।

—मार्कस ओरेलियस

अपने जीवन की खटास को मिठाई मे बदल दो।

—मैनार्ड हचिंस

सौ वर्ष जीने के लिए अपने चारों ओर जवान और हँसमुख मित्र रखो।

—एलिज़बेथ सैफ़ोर्ड

जीवन के सभी सच्चे काम क्षति और जोखिम उठाकर किए जाते हैं। इसे छिपाना और न देखना असंभव है। इस स्थति से बाहर निकलने का एकमात्र मार्ग यही है कि दूसरों से केवल वही लिया जाए जो जीवन के लिए आवश्यक है और वास्तविक कार्य स्वयं अपने जीवन की क्षति और जोखिम उठा कर किये जायें।

—तोलस्तोय (तब हम क्या करेंगे)

मैं, जो कि अंधी हूँ, आँख वालों को एक सुझाव दे सकती हूँ—अपनी आँखों का ऐसे उपयोग कीजिये कि जैसे कल आप अंधे हो जाने वाले हैं। और यही तरीका अन्य इन्द्रियों के लिए भी अपनाया जा सकता है। लोगों की कंठध्वनियों के संगीत, पक्षियों के गीत और वाद्यवृन्दों की स्वरलहरी को ऐसे सुनिये, जैसे कल आप बहरे हो जाएँगे। प्रत्येक वस्तु को ऐसे स्पर्श करिए, जैसे कल आपकी स्पर्श-शक्ति नष्ट हो जायेगी। फूलों का सौरभ यों सूँघिये, भोजन के प्रत्येक कौर का रस यों लीजिये, जैसे कल आप सूँघने व चखने में असमर्थ हो जाने वाले हैं। प्रकृति ने आपको जो संपर्क के साधन दिये हैं, उनके माध्यम से यह संसार आनंद और सौन्दर्य के जितने भी पहलू आपके सामने उद्घाटित करे, उन सबपर अभिमान अनुभव कीजिये।

—हेलेन केलर

व्यक्ति को उसी कार्य में डटे रहना चाहिए जिसके लिए वह बनाया गया है।

—ला फ़ाँटेन (नीतिकथाएं, घोड़ा और भेड़िया)

The most skilful flattery is to let a person talk on and be a listener.

कुशलतम चापलूसी यह है कि किसी व्यक्ति को बोलते रहने दो और स्वयं श्रोता बने रहो।

—एडीसन

जीवन

सर्वमायुर्नयतु जीवनाय।

अपने जीवन में सम्पूर्ण आयु जिओ।

—अथर्ववेद (१२।२।२४)

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।।

सभी संग्रहों का अन्त विनाश है। उन्नतियों का अन्त पतन है। संयोग का अन्त वियोग है। और, जीवन का अन्त मरण है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०५।१६)

यथा यथैव जीवेद्धि तत् कर्तव्यमहेलया ।
जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन् धर्ममवाप्नुयात् ।।

जैसे-जैसे जीवन सुरक्षित रहे, वैसा वैसा विना अवहेलना के करना चाहिए। मरने से जीवित रहना श्रेष्ठ है, क्योंकि जीवित पुरुप पुनः धर्म का आचरण कर सकता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १४१।६५)

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ।।

हस्तधारियों के हाथ-रहित जीव भोजन हैं, चौपायों के पैर विहीन तथा वड़ों के छोटे जीव भोजन हैं। जीव ही जीव का जीवन है।

—भागवत (१।१३।४६)

किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन
मित्रेण किं भवति वेति संशकितेन ।
सिंहव्रतंचरत गच्छत माविषादं
काकोऽपि जीवति चिरं च बलिं च भुङ्क्ते ।।

धन और मान रहित जीवन से क्या लाभ ? सशंकित मित्र से क्या लाभ ? सिंह-व्रत का आचरण करते हुए दुःख रहित होकर चलते हुए, यों तो कौआ भी चिरकाल तक दूसरों की दी गयी बलि खाकर जीवन विताता रहता है।

—गरुडपुराण (१।११५।३४)

अर्थो न संभृतः कश्चिन्न विद्या काचिदर्जिता ।
न तपः संचितं किंचिद् गतं च सकलं वयः ।।

न धन संचय किया, न विद्या का ही अर्जन किया, न कुछ तप ही संचित किया, और सारी आयु व्यर्थ ही बीत गई।

—दण्डी (काव्यादर्श, २।१६१)

यथा शरीरं किल जीवितेन विनाकृतं काष्ठमिवावभाति ।
तथैव तज्जीवितमप्यवैमि, लोकोत्तरेण स्फुरितेन शून्यम् ।।

जिस प्रकार बिना प्राण का शरीर काठ के समान लगता है, उसी प्रकार मैं असाधारण चेष्टाओं और कर्त्तव्यों से शून्य जीवन को भी मानता हूँ।

—शंकुक (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ५२६)

भाविभद्रं हि जीवितम् ।

भावी कल्याण पर ही जीवन आश्रित है।

—धनंजय (द्विसंधान महाकाव्य, ६।३८)

अतिकष्टास्वप्यवस्थासु जीवितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां प्रवृत्तयः ।

अत्यन्त कष्ट की दशा में भी प्राणियों की प्रवृत्तियाँ जीवन की आशा का परित्याग नहीं कर पातीं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० १०६)

नास्ति जीवितादन्यादभिमततरमिह
जगति सर्वजंतूनाम् ।

सभी प्राणियों के लिए इस संसार में जीवन से अधिक प्रिय अन्य कोई वस्तु नहीं है।

— बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० १०६)

सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा ।

जीवन की तृष्णा किसे तुच्छ नहीं बना डालती ?

—बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० १०६)

धिग् जीवितं यदवहेलति जीवितेश' ।

जिस जीवन ही अवहेलना जीवननाथ करते है उस जीवन को धिक्कार है।

—कर्णपूर (आनंदवृन्दावनचम्पू, १८।१३०)

स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति ।
गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम् ।।

जो गुणवान् है, वही जीवित है। जो धार्मिक है, वही जीवित है। जो गुण व धर्म से रहित है, उसका जीवन निष्फल है।

—बृहस्पतिनीतिसार (१७)

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोगों को नहीं भोगा गया, हम ही भोगे गए। तप नहीं तपा गया, हम ही तप्त हो गए। काल नहीं बीता, हम ही बीत गए। तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो गए।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, १२)

आयुर्वर्षशते नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालवृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरंग चंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥

मनुष्य की आयु सौ वर्ष की अवधि में सीमित है, उसका आधा रात्रि में व्यतीत हो गया, शेष का आधा बालत्व और वृद्धत्व में बीत गया, शेष भाग रोग, वियोग, दुःखादि के साथ सेवा आदि में व्यतीत हो गया। जल की तरंग के समान अत्यधिक चंचल जीवन में प्राणियों को सुख कहाँ से प्राप्त हो।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, १०७)

तज्जीवनं यन्न परस्य सेवा।

जो दूसरों की नौकरी नहीं है, वही जीवन है।

—शौनकीयनीतिसार

यस्मिन् श्रुतिपथं प्राप्ते दृष्टे स्मृतिमुपागते।
आनन्दं यान्ति भूतानि जीवितं तस्य शोभते॥

जिसका वृत्तात सुनकर तथा जिसका स्मरण करने पर प्राणियों को आनन्द होता है, उसी का जीवन शोभा देता है।

— योगवासिष्ठ

मनोरथैकसाराणामेवमेव गतं वयः।
अद्यापि न कृतं किंचित्सतां संस्मरणोचितम्॥

तरह-तरह की अभिलाषाएँ करते-करते ही सारी आयु बीत गई और हाय—अब तक वह कुछ नहीं कर सका जो सत्पुरुषों के द्वारा स्मरण करने योग्य शेष रहता।

—अज्ञात (वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि, ३३९३)

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति॥

जिसने प्रथम अवस्था (बाल्यावस्था) में विद्या का अर्जन नहीं किया, द्वितीय (युवावस्था) में धन का अर्जन नहीं किया और तृतीय (प्रौढ़ावस्था में) तप का अर्जन नहीं किया, वह चतुर्थ (वृद्धावस्था) में क्या करेगा ?

—अज्ञात

सद्धाधनं, सीलधनं हिरी ओत्तप्पियं धनं।
सुतधनं च चागो च पञ्ञा वे सत्तमं धनं॥
यस्य एते धना अत्थि, इत्थिया पुरिसस्स वा।
अदलिद्दोति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥

श्रद्धा, शील, लज्जा, संकोच, श्रुत, (ज्ञान) त्याग और बुद्धि—ये सात धन हैं। जिस स्त्री या पुरुष के पास ये धन हैं, वही वास्तव में धनी है। उसी का जीवन सफल है।

[प्राकृत] —अंगुत्तरनिकाय (७।१।५)

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे !
मूलच्छेएण जीवाणं, नरगतिरिक्खत्तणं धुवं॥

मनुष्य-जीवन मूल धन है। देवगति उसमें लाभ रूप है। मूल धन के नाश होने पर नरक, तिर्यंच-गति रूप हानि होती है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (७।१६)

संबुज्झह किं न बुज्झह
संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइयो
नो सुलभं पुणरावि जीवियं।

अभी इसी जीवन में समझो, क्यों नहीं समझ रहे हो ? मन मरने के बाद परलोक में संबोधि का मिलना कठिन है। जैसे बीती हुई रातें फिर लौट नहीं आती, उसी प्रकार मनुष्य का बीता हुआ जीवन फिर हाथ नहीं आता।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।२।२।१)

ज दिन जीव यं जंम, क्रम्म तद्दिन जम पच्छैं।
सुक्ख दुक्ख जय अजय, लोभ माया तन तच्छैं॥

प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन उसके पीछे कर्म, मृत्यु, सुख-दुःख, जय-पराजय, लोभ, माया, आदि लग जाते हैं और उसे छेदते हैं।

—चंद बरदाई (पृथ्वीराज रासो, ३५।२०)

कहा कीयो हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इत के भये न उत के, चाले मूल गँवाइ॥

—कबीरदास (कबीर ग्रन्थावली)

जनम गयो वादिहिं वर वीति।
परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौवन जुवतिन लियो जीति।
रोग-वियोग-सोग-श्रम-संकुल वड़ि वय वृथहि अतीति॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद २३४)

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस २।७०।)

जग में सोई जीवनि जिया।
जा के उर अनुराग ऊपजो, प्रेम प्याला पिया॥

—धरनीदास (धरनीदास जी की वानी, पृ० २२)

भूलों से संग्राम करना ही जीवन है।

—महात्मा गांधी (मेरी भूल, यंग इंडिया, १८-८-१९२१)

जीवन रुपये से बड़ी चीज़ है।

—महात्मा गांधी (रचनात्मक कार्यक्रम, ८४)

जीवन का सच्चा ध्येय जीवन की सार्थकता है।

—महात्मा गांधी (गांधी विचार रत्न, पृ० ४४)

जीवन का संपूर्ण सौंदर्य तभी खिल सकता है, जब हम उच्च कोटि का जीवन जीना सीखें।

—महात्मा गांधी (मेरे सपनों का भारत, ३५)

जीवन सदैव समझौते के लिए विवश करता है।

—जवाहरलाल नेहरू (आत्मकथा)

ज़िंदगी इतनी सस्ती हो गई है कि कुछ हत्यारों को मौत की सजा देने या न देने से कोई बहुत बड़ा फ़र्क़ नहीं पड़ता। कभी-कभी सोचना पड़ता है कि क्या ज़िन्दा रहने का दण्ड सबसे कड़ा दण्ड नहीं है।

—जवाहरलाल नेहरू (पत्र जार्ज बर्नार्ड शा को, ४ सितम्बर १९४८)

मुझसे यदि कोई पूछे कि जीवन किसे कहते हैं तो मैं उसकी व्याख्या करूंगा—संस्कार-संचय।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० १०९)

हमारी प्रत्येक कृति छेनी बन कर हमारा जीवन रूपी पत्थर गढ़ती है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ११६)

हमारा परम मूल्य जीवन है। जीवन को सर्वत्र सम्पन्न बनाना है। सबके जीवन को सम्पन्न बनाना है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २५)

अनन्त जीवन अनन्त प्रवाह में है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, परिच्छेद ५६)

जीवन सूत्र कितना कोमल है। वह क्या पुष्प से कोमल नहीं, जो वायु के झोंके सहता है और मुरझाता नहीं? क्या वह लताओं से कोमल नहीं, जो कठोर वृक्षों के झोंके सहती लिपटी रहती है? वह क्या पानी के बबूलों से कोमल नहीं, जो जल की तरंगों पर तैरते है, और टूटते नहीं? संसार में और कौन-सी वस्तु इतनी कोमल, इतनी अस्थिर, इतनी सार हीन है, जिसे एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योक्ति भी दारुण, असह्य घातक है! और इस भित्ति पर कितने विशाल, कितने भव्य, कितने वृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४३)

मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ, जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते है, जो रोने को कमजोरी और हँसने को हल्कापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है। सरल, स्वच्छंद, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या, और जलन के लिए कोई स्थान नहीं।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० २०१)

इस विश्व-काव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ, उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा समझना चाहिए।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० ७)

मानव-जीवन लालसाओं से बना हुआ सुन्दर चित्र है। उसका रंग छीनकर उसे रेखाचित्र बना देने से मुझे संतोष नहीं होगा।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ११६)

जीवन अनन्त है इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है?

—जयशंकर प्रसाद (लहर, 'प्रलय की छाया' कविता)

हम जीवन को सुख के अच्छे उपकरण ढूंढने में नहीं बिताना चाहते। जो कुछ प्राप्त है, उसी में जीवन सुखी होकर बीते, इसी की चेष्टा करते हैं।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० ३८-३९)

हाय रे हृदय! तू ने
कौड़ी के मोल बेचा जीवन का मणि कोष
और आकाश को पकड़ने की आशा में
हाथ ऊँचा किये सिर दे दिया अतल में।

—जयशंकर प्रसाद (लहर, 'प्रलय की छाया' कविता)

जीवन में सामंजस्य बनाए रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है।

—जयशंकर प्रसाद (आंधी, 'पुरस्कार' कहानी, पृ० १४८)

जीवन विश्व की सम्पत्ति है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी पृ० २९)

जीवन बड़ा कठोर है, इसकी आवश्यकता जो न करावे।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, पृ० ५३)

जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना और कर्म क्षेत्र क्या है? जीवन संग्राम।

— जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

जीवन तो विचित्रता और कौतूहल से भरा होता है। यही उसकी सार्थकता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १७०)

लालसा निराशा में ढलमल
वेदना और सुख में विह्वल
यह क्या है रे मानव जीवन।

—जयशंकर प्रसाद (लहर)

जीवन धारा सुन्दर प्रवाह,
सत, सतत, प्रकाश सुखद अथाह।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, दर्शन सर्ग)

जीवन की लंबी यात्रा में
खोये भी हैं मिल जाते
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जातीं दुख की रातें।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, निर्वेद सर्ग)

तप नहीं केवल जीवन सत्य।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

पहेली सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान
बताता है विस्मृति का मार्ग
चल रहा हूँ बन कर अनजान।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

जीवन कितना? अति लघु क्षण।

—जयशंकर प्रसाद (लहर, अशोक की चिन्ता)

जग जीवन में
बहुत झाग है, बहुत फेन है।
जो भी अन्तः सत्य
छिपा है वह दिग्व्यापी
झाग के तले!

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, पृ० १७६)

व्यक्ति व्यक्ति को
समझ नहीं पाता है इससे
वैमनस्य, ईर्ष्या,
स्पर्धा है जग जीवन में।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था)

जीवन प्रात-समीरण-सा लघु
विचरण-निरत करो।
तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता
छवि-मधु-सुरभि भरो।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, पृ० ३४)

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमें कहाँ मृत्यु
है जीवन ही जीवन।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, पृ० ११३)

यह जीवन का मेला
चमकता सुधर बाहरी वस्तुओं को लेकर,
त्यों त्यों आत्मा की निधि पावन,
बनती पत्थर।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० ६६)

परिचय से संचित सारा जग,
राग-राग से जीवन जगमग।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अर्चना, ७०)

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान।

—महादेवी वर्मा, (रश्मि, पृ० २६)

वास्तव में जीवन सौन्दर्य की आत्मा है; पर वह सामंजस्य की रेखाओं में जितनी मूर्तिमत्ता पाता है, उतनी विषमता में नहीं।

—महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, पृ० १०)

जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार-शून्य। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है।

—महादेवी वर्मा (यामा, 'अपनी बात' भूमिका)

प्रिय ! सान्ध्य गगन !
मेरा जीवन !

—महादेवी वर्मा (यामा, सान्ध्य गीत, पृ० २०३)

व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुल कर जीवन को अमरत्व।

—महादेवी वर्मा (रश्मि, 'अपनी बात' भूमिका)

केवल बल-प्रयोग पशुता है,
केवल कौशल है कायरपन।
शस्त्र शास्त्र दोनों के बल से
विज्ञ जीतते हैं जीवन-रण।

—रामनरेश त्रिपाठी (स्वप्न, ५।२५)

हमारा यह जीवन निरन्तर सफ़र है।
जो मंजिल पै पहुँचे तो मंज़िल बढ़ा दी।

—वृन्दावनलाल वर्मा (अमरबेल, पृ० ४५७)

अनवरत प्रयत्न का नाम ही जीवन है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३८५)

संकल्प और भावना जीवन-तखड़ी[1] के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार से लाद दीजिए वही नीचे चला जाएगा।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ४४६)

जीवन को कल्याणमय और सुन्दर बनाने से ही मृत्यु भी शुभ बन सकती है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३१४)

जीवन में काम करना, श्रम से रोटी का उपार्जन करना और शिव का नाम लेना, यही गौरव है। इसी में जीवन की सार्थकता है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३५)

सभ्यता और संस्कार जीवन को नीरस बनाने का काम करते हैं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (चित्रकूट, दूसरा अंक)

बन्धन ही सौन्दर्य है, आत्म-दमन ही सुरुचि है, बाधाएँ ही माधुर्य हैं नहीं तो यह जीवन व्यर्थ का बोझ हो जाता।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २८१)

लक्ष्यभ्रष्ट जीवन केवल दयनीय ही नहीं होता, वह समाज के लिए हानिकर भी होता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० ३४)

जीवन का आदर्श ही यही है कि जीवन के उस पार देखा जाये।

—रामकुमार वर्मा (चारुमित्रा, पृ० ३६)

मैं जीवन को दण्ड नहीं समझना चाहता। यह ब्रह्म की विभूति है। इसे चिन्ता में घुलाना, पाप में लपेटना, दुःख में बिलखाना सबसे बड़ा अपराध है।

—रामकुमार वर्मा (रजत रश्मि, प्रतिशोध, पृ० ३७)

---

१. तराजू।

ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है,
कुछ भी नही गगन में,
धर्मराज ! जो कुछ है, वह है
मिट्टी में, जीवन में।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

फूलों पर आंसू के मोती,
और अश्रु मे आशा,
मिट्टी के जीवन की छोटी,
नपी-तुली परिभाषा।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है,
सुख नहीं, धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है;
विज्ञान, ज्ञान-बल नहीं, न तो चिंतन है,
जीवन का अन्तिम ध्येय स्वयं जीवन है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर'
(परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० २८)

जान पड़ता है कि आदमी का रास्ता सीधा और सुगम नहीं है। वह कर्दम-कंटक का है और ठोकर और घाव खा-खाकर ही आदमी सीखता और बढ़ता है।

—जैनेन्द्र (समस्या और सिद्धान्त, पृ० २८)

जीवन कुरुक्षेत्र है, वही इसलिए युद्धक्षेत्र और धर्मक्षेत्र भी है। यही जीवन की विचित्रता और जटिलता है कि युद्ध को और धर्म को उसमें साथ-साथ साधना पड़ता है। इस साधन में जीवन का रूप आप ही आप धर्मयुद्ध का हो जाता है।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धांत, पृ० ८०)

भाग्य के हाथ में सब कुछ है, लेकिन रुकना कभी श्रेयस्कर हुआ है ? साँस रुकती है, उसे मौत कहते हैं, गति रुकती है, तब भी मौत कहते हैं, हवा रुकती है वह भी मौत है, रुकना सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।

—जैनेन्द्र (सुनीता, पृ० १६७)

जीवन दायित्व का खेल है, पग-पग पर समझौता है।

—जैनेन्द्र (परख, पृ० ८९)

जो मन नहीं मार सकता, जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता, जिसे दूसरों की सुविधा और दूसरों को निभाने की दृष्टि से झुकना और राह छोड़ना नहीं आता—वह ज़िन्दगी में कभी कुछ नहीं कमा पाता—जिन्दगी का सन्तोष भी नहीं।

—जैनेन्द्र (परख, पृ० ८९)

रोज सवेरे मैं थोड़ा-सा अतीत में जी लेता हूँ—
क्योंकि रोज़ शाम को मैं थोड़ा-सा भविष्य में मर जाता हूँ।

—अज्ञेय (क्योंकि मैं उसे जानता हूँ)

जिन मूल्यों के लिए जान दी जा सकती है उन्हीं के लिए जीना सार्थक है।

—अज्ञेय (अद्यतन, पृ० १३७)

मैं अकेलापन चुनता नहीं हूँ, केवल स्वीकार करता हूँ।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ११)

यह कैसे हो सकता है कि कोई अपना रास्ता चुने भी, और उस पर अकेला भी न हो। राजमार्ग पर चलने वाले रास्ता नहीं चुनते; रास्ता उन्हें चुनता है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ११)

कितना सरल हो जाता है जीवन, जब विकल्प नहीं रहते।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० १४०)

जीवन की गहनतम घटनाएँ किसी अनजान क्षण में ही हो जाती हैं।

—अज्ञेय (शेखर : एक जीवनी, भाग २, पृ० ४७)

जहाँ कहीं, किसी क्षेत्र में भी लोक को सर्वोपरि सच्ची प्रतिष्ठा मिलती है, वहीं से जीवन की स्वस्थ बेल का पहला अंकुर फुटाव लेता है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (सम्मेलन पत्रिका का 'लोक-संस्कृति' अंक, पृ० ६६)

जीवन न तो सुखमय है, न केवल भार रूप है, जीवन एक साधना है।

—काका कालेलकर (परम सखा मृत्यु, पृ० १९)

जीवन सम्बंधित शरीर से
पर शरीर-सापेक्ष नहीं है।

—कुंवर नारायण (आत्मजयी, पृ० ७६)

केवल शरीर के लिए नहीं
तुझको शरीर के बावूजद जीना होगा।

—कुंवर नारायण (आत्मजयी, पृ० ७८)

जीवन—हर नये दिल की निकटता।
आत्मा—विस्तार।

—कुंवर नारायण (आत्मजयी, पृ० १०४-१०५)

जबकि शंकाकुल तृषित मन खोजता
बाहरी मरु में अमल जल-स्रोत है,
क्यों न विद्रोही बनें ये प्राण जो
सतत अन्वेषी सदा प्रद्योत है?
जबकि अंदर खोखलापन कीट-सा
है सतत घर कर रहा आराम से,
क्यों न जीवन का बृहद् अश्वत्थ यह
डर चले तूफान के ही नाम से।

—गजानन माधव मुक्तिबोध (तारसप्तक)

जीवन अविकल कर्म है,न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है; और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० २४)

जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं; मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० १२५-१२६)

उदारता और स्वाधीनता मिल कर ही जीवनतत्त्व है।

—अमृतलाल नागर (मानस का हंस, पृ० ३६७)

सत्य, आस्था और लगन जीवन-सिद्धि के मूल हैं।

—अमृतलाल नागर (अमृत और विष, पृ० ४३७)

जड़-चेतनमय, विष-अमृतमय, अन्धकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बन्धन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अन्धकार में ही प्रकाश पाने के लिए मुझे भी जीना है।

—अमृतलाल नागर (अमृत और विष, पृ० ३१६)

जीवित का अर्थ खड़ा रहना नहीं, चलते रहना है।

—रांगेय राघव (पांच गधे, पृ० १४३)

'धीरे धीरे जियो' का अर्थ इतना ही तो है कि जीवन की शक्ति संभाल कर खर्च करो।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुस्कराई, पृ० ३०)

जीवन कठिन क्रूर मृत्यु की शरण है।

—सियारामशरण गुप्त (बापू, पृ० ३५)

छोटे से जीवन से की है तूने बड़ी-बड़ी प्रत्याशा।

—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० १०३)

जीवन है लहरों का मेला,
राग द्वेष है जिनसे खेला।
और जगत क्या? उन लहरों का
उठना मिटना या इतराना
जीवन को किसने पहिचाना?

—बलदेव प्रसाद मिश्र (साकेत संत, पृ० १६६)

जीवन को किसने पहिचाना?
युद्ध जहाँ है जीवित रहना और संधि ही है मर जाना।

—बलदेव प्रसाद मिश्र (साकेत-संत)

सिद्धि से पहले कभी जो बीच में रुकते नहीं,
जो कभी दबकर किसी के सामने झुकते नहीं,
जो हिमालय से अटल हैं सत्य पर, हिलते नहीं,
आग पर चलते हुए भी जो चरण जलते नहीं,
उन पगों के रजकणों का नाम केवल जिन्दगी।

—रामावतार त्यागी (आज के लोकप्रिय कवि, पृ० ३६)

जीवन में एक समय प्रयत्न की असफलता मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन नहीं है। जीवन का हम अन्त नहीं देख पाते, वह निस्सीम है। वैसे ही मनुष्य का प्रयत्न और चेष्टा भी सीमित क्यों हो? असामर्थ्य स्वीकार करने का अर्थ है, जीवन में प्रयत्नहीन हो जाना, जीवन से उपराम हो जाना।

—यशपाल (दिव्या, पृ० १५७)

यह जीवन संसार में रहे परन्तु जीवन में संसार न भरने पाये, तो संसार में चलते हुए संसार को पार किया जा सकता है।

—साधु वेष में एक पथिक (परमार्थ के पथ में, पृ० ४४)

जीवन एक लम्बी राह !
—नेमिचन्द्र ('जिंदगी की राह' कविता)

क्षण भर को थोड़ा न समझ
यदि वह है गौरव का क्षण।
व्यर्थ हुआ मुर्दों सा पाया
यदि तुमने लम्बा जीवन।
—आरसीप्रसाद सिंह (आरसी, पृ० २१)

जीवन में बहुत न रुकना,
रुकने में दुख ही दुख है।
—गुरुभक्त सिंह (नूरजहाँ, पृ० २८)

निर्जन के दीपक सा,
जलकर बुझ जाता हूँ,
बुझ कर मिट जाता हूँ
मेरा यह जीवन है।
—सतीश बहादुर वर्मा (लहर और लपटें, पृ० ४६)

जो होता है होने दो
यह पौरुषहीन कथन है।
जो हम चाहेंगे होगा
इन शब्दों में जीवन है।
—सेवक वात्स्यायन (अर्थी)

उम्रे दराज माँग कर लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गए दो इंतजार में।
—बहादुर शाह 'ज़फ़र' (ज़फ़र की ग़ज़लें, पृ० ५)

ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है।
मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं।
—नासिख

ज़िंदगी करती ही रहती है मुसीबत पैदा
बाखुदा इसमें भी कर लेते हैं लज़्ज़त पैदा।
—अकबर इलाहाबादी

बहुत पहले से उन क़दमों की आहट जान लेते हैं
तुझे ऐ जिन्दगी हम दूर से पहचान लेते है।
—'फ़िराक़' गोरखपुरी (बज़्मे जिन्दगी, पृ० १००)

जिसे डस लिया हो ज़माने ने
कोई ज़िन्दगी है यह ज़िन्दगी
ये सवादे-शाम अजलनुमा
ये ज़िया-ए-सुबह क़फ़न-क़फ़न।
—'फ़िराक़' गोरखपुरी (बज़्मे ज़िन्दगी, पृ० ३६)

यह माना जिन्दगी है चार दिन की,
बहुत होते हैं यारों चार दिन भी।
—फ़िराक गोरखपुरी (आज की उर्दू शायरी)

इक मुअम्मा[1] है समझने का न समझाने का
ज़िंदगी काहे को है ख्वाब[2] है दीवाने का।
—'फ़ानी' बदायूनी

इस सरा[3] में हूँ मुसाफ़िर नहीं रहने आया
रह गया थक के अगर आज तो कल जाऊँगा।
—अमीर

बहुत हसीन सही सोहबतें गुलों की मगर,
वह जिन्दगी है जो काँटों के दरमियाँ गुज़रे।
—'जिगर' मुरादाबादी (आतशे गुल)

हँसने का एतबार न रोने का एतबार
ये जिन्दगी है जिस पै फिदा हो गया हूँ मैं।
—हफ़ीज जालंधरी (सोजो साज़, पृ० २१६)

जिस पै इतना नाज है जिस पे है इतना ग़रूर,
दिल की धड़कन, चन्द साँसें जिन्दगी का नाम है।
—'कैफ़' बरेलवी

जिन्दगी को संभाल कर रखना
जिन्दगी मौत की अमानत है।
—'कैफ़' बरेलवी

करें कैफ़ क्या ज़िन्दगी पर भरोसा
अभी हम हैं लेकिन अभी हम न होंगे।
—'कैफ़' बरेलवी

---

१. पहेली। २. स्वप्न।
३. सराय।

तिफ़्ली जवानी और पीरी देखली,
तीन दिन की जिन्दगानी देख ली,
अब ज़मीं का प्यार बाक़ी है फ़ख़्त
आस्माँ की मेहरबानी देख ली।

—'कैफ़' बरेलवी

ऐ ग़ुलामत अक़्लो तदबीरातो होश
तू चराई ख़ेश रा अरज़ां फ़रोश।

हे मनुष्य ! बुद्धि, उपाय और ज्ञान यह सब तेरे दास हैं। फिर तू स्वयं को इतना सस्ते में किसलिए बेचता है?

[फ़ारसी] —मौलाना रूमी

आमृत्युर दुःखेर तपस्या ए जीवन-
सत्येर दारुण मूल्य लाभ करिबारे,
मृत्युते सकल देना शोध क'रे दिते।

यह जीवन आमृत्यु दुःख की तपस्या है। सत्य का दारुण मूल्य पाने के लिए मृत्यु में सारा ऋण चुका देना।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, रूप नारानेर कूले)

मरिते चाहि ना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाँचिबारे चाइ।

मैं सुन्दर संसार में मरना नहीं चाहता। मैं मनुष्यों के बीच में जीना चाहता हूँ।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, प्राण)

जीवन नाटर भाओ कतनो करिलों शेष
करि गलों कत अभिनय
कत जने कत रूपे जीवनर भाओ दिदि
भाङि गल माथोन हृदय।

जीवन-नाटक में कितनी भूमिकाएँ की, कितने अभिनय किए, कितने लोग कितने रूपों में जीवन की भूमिका अभिनय कराते-कराते मेरा हृदय विदीर्ण कर चले गए।

[असमिया] —नलिनीबाला देवी (कवि-श्रीमाला, पृ० ८६)

जननीर स्नेह जायार प्रणय
बुध बन्धु सदाळाप
जनक आदर एक-एक झार
तड़ि देउछन्ति तापरे जीवन।

जननी का स्नेह, पत्नी का प्रेम, ज्ञानी मित्रों का आलाप और पिता का स्नेह एक-एक झरने के समान जीवन के एक-एक ताप का विनाश कर रहा है।

[मराठी] —गंगाधर मेहेर (कविता 'मधुमय')

नानाटि ब्रदुकु नाटकमु
पुटट्टयु निजमु, पोवुटयु निजमु
नट्ट नाडिमि पनि नाटकमु।

यह जीवन एक नाटक है। जन्म लेना सत्य है, मरना सत्य है। पर बीच का जीने का काम नाटक जैसा है।

[तेलुगु] —ताल्लपाक अन्नमय्या (अध्यात्म संकीर्तनमु)

जीवितम् गानम्, कालम्
ताळ, मात्मविन् नाना—
भावमोरोरो रागम्
विश्वमंडलम् लयम्!

जीवन ही गान है, काल ही ताल है, मन के विशेष भाव ही विभिन्न राग हैं, समूचा विश्व मंडल ही लय है।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (कविता 'सागरगीतम्')

चिरियुम् कण्णीरुम् कलर्त्तिय कुष—
म्परिय जीवितममूल्यामाकिलुम्
क्षणिकमल्लयो वेयिलेट्ट हिम-
कणिककपोलतु, कळकयो वृथा?

यह प्यारा जीवन जो आँसू और हँसी का रसायन है, अमूल्य होने पर भी क्षणिक है, जैसे धूप में छोटी-सी ओस की बूँद। इसको व्यर्थ क्यों खोते हो।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (कविता 'पिन्नते वसन्तम्')

पुण्य रूपी सुगंधपर्ण तेल में, अनुपम काल-रूपी वत्ती, विधि-रूपी ज्योति से दीप्त होकर जलती रहती है। जब तेल और वत्ती समाप्त होती है, तब दीप बुझ जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं।

—कम्ब (कंब रामायण, अयोध्याकांड)

निष्कलंक का जीवन ही जीवन है। यशहीन का जीवन मरण-तुल्य है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २४०)

जीवन संघर्षों एवं भ्रान्तियों की समष्टि मात्र है।··· जीवन का रहस्य भोग नहीं है, किन्तु अनुभव के द्वारा शिक्षा प्राप्त करना है। किन्तु, हाय जिस क्षण हम लोगों की वास्तविक शिक्षा प्रारम्भ होती है, उसी क्षण हम लोगों का बुलावा आ जाता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ३७५)

जीवन-नाटक के हर अंक में उसका रूप बदलता रहता है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २७७)

कमल के पत्ते पर ओस की बूंद के समान मानव जीवन है, हम लोग सिर्फ मुंह से ही यह कहते हैं, परन्तु काम पड़ने पर करके नहीं दिखाते।

—शरत्चन्द्र (दत्ता, पृ० ६५)

प्रेम और एकता का अनुभव करना ही जीवन है।

—अरविन्द (सावित्री)

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है, वह साथ ही सुखहीन भी होता है।

—श्री माँ (शिक्षा, पृ० १)

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए भी बहुमूल्य हो जायेगा।

—श्री माँ (शिक्षा, पृ० १)

वास्तव में जगत् जैसा है, उसमें जीवन का लक्ष्य व्यक्तिगत सुख प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति को उत्तरोत्तर सत्य-चैतन्य के प्रति जागृत करना है।

—श्री माँ (शिक्षा, पृ० ३०)

मनुष्य की आत्मा सत्य है, उसका जीवन सत्य है और मनुष्य के साथ मनुष्य का सम्बन्ध भी सत्य है। इस जीवन के समाप्त होने पर भी जीवन का अंत नहीं होगा, जीवन के सम्बन्धों का अंत नहीं होगा। पार्थिव शक्ति हमें कारागार में डाल सकती है, हमारा सर्वस्व अपहरण कर सकती है, परन्तु जीवन का अन्त नहीं कर सकती। जीवन के पवित्र सम्बन्धों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

—सुभाषचन्द्र वसु (श्रीमती वासंती देवी को मांडले जेल से पत्र, २१-७-२६)

धर्म और देश के लिए जीवित रहना ही यथार्थ जीवन है।

—सुभाषचन्द्र (माता को रांची से लिखा एक पत्र)

जीवन ताश के खेल की तरह है। हमने खेल का आविष्कार नहीं किया है और न ताश के पत्तों के नमूने ही हमने बनाये हैं। हमने इस खेल के नियम भी खुद नहीं बनाये और न हम ताश के पत्तों के बँटवारे पर ही नियंत्रण रख सकते हैं। पत्ते हमें बाँट दिये जाते हैं, चाहे वे अच्छे हों या बुरे। इस सीमा तक नियतिवाद का शासन है। परंतु हम खेल को बढ़िया ढंग से या खराब ढंग से खेल सकते हैं। हो सकता है कि किसी कुशल खिलाड़ी के पास ख़राब पत्ते आये हों और फिर भी वह खेल में जीत जाये। यह भी संभव है कि किसी ख़राब खिलाड़ी के पास अच्छे पत्ते आये हों और फिर भी वह खेल का नाश करके रख दे। हमारा जीवन परवशता और स्वतंत्रता, दैवयोग और चुनाव का मिश्रण है।

—राधाकृष्णन्

जहाँ कहानी का अन्त होता है, जीवन का अन्त वहीं नहीं होता। जीवन विस्तृत-व्यापक होता है।

—विमल मित्र (विमल मित्र की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० ४७७)

जीवन प्रतिकूल भाग्य के साथ संघर्ष करने में है।

—विमल मित्र (वे आँखें)

जीवन सुन्दर भी है, कठोर भी।

—विमल मित्र (साहब बीवी गुलाम, पृ० ३०६)

जीवन बड़ा अजीब होता है।···कई बार उसकी परतों में से हम जिस रंग को खोजते हैं, वह नहीं निकलता। पर कोई ऐसा रंग निकल आता है जो उससे भी अधिक खूबसूरत होता है।

—अमृता प्रीतम (एक थी अनीता, पृ० ६८)

हर कोई जब छाती में बहुत से सपने और माथे में बहुत से ख़्याल डाल कर घर से जिन्दगी ख़रीदने निकलता है, और ज़िन्दगी के बाजार में ज़िन्दगी की क़ीमत सुनता है, तो उसकी छाती में खनकते सब सिक्के बेकार हो जाते हैं।

—अमृता प्रीतम (जेबकतरे, पृ० १११)

परिवर्तन रूपी समुद्र पर जीवन एक पुल के समान है। इस पर मकान मत बनाओ।

—सत्य साईं बाबा

हर वस्तु जो 'तुम' नहीं हो, एक 'पदार्थ' है। यह यात्रा के लिए सामान है। जितना कम यह सामान, उतनी अधिक सुविधापूर्ण यात्रा।

—सत्य साईं बाबा

स्वास्थ्य और बुद्धि जीवन के दो वरदान हैं।

—मेनाण्डर

जीवन की छोटी अवधि हमें लम्बी-चौड़ी आशाएँ करने से मना करती है।

—होरेस (ओड्स, १।४।१५)

जीवन एक नाटक के समान है—लम्बे अभिनय के स्थान पर उत्कृष्ट अभिनय का ही इसमें महत्त्व है।

—सेनिका (लुसिलिउस् को पत्र)

जीवन लघु है और ज्ञान विशाल है।

हिप्पोक्रेटिस (सूत्र—१)

सारे पुस्तकीय सिद्धान्त फीके और रूखे हैं, केवल जीवन का हेमतरु ही सर्वदा हरा-भरा रहता है।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

गुपचुप मन्द गति से गन्दे नाले के प्रवाह की तरह यहाँ का जीवन वह रहा था।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

ओह ! मैंने यत्नपूर्वक कुछ न करते हुए अपना जीवन नष्ट कर दिया।

—प्रोशियस

तुम्हारा दैनिक जीवन तुम्हारा मन्दिर और तुम्हारा धर्म है।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ८६)

जीवन एक ऐसी अनूठी पुस्तक है, जो अंत तक मनुष्य का साथ देती है, परन्तु इसके कठिन पृष्ठों को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० २१)

Although defeated, life must struggle on.

परास्त होने पर भी जीवन तो संघर्ष करता ही रहेगा।

—अरविन्द (सावित्री, २१६)

This world was not built with the random bricks of chance,
A blind God is not destiny's architect;
A conscious power has drawn the plan of life,
There is meaning in each curve and line.

संयोग की बिखरी हुई ईंटों से इस संसार का निर्माण नहीं हुआ है। कोई अन्धा ईश्वर भाग्य-निर्माता नहीं है। एक सचेत शक्ति ने जीवन की योजना बनाई है। हर वक्रता और रेखा का अपना अर्थ है।

—अरविन्द (सावित्री, ६१२)

Life is a pilgrimage to God,

जीवन परमात्मा तक की तीर्थ-यात्रा है।

—सत्य साईं बाबा (सत्य साईं स्पीक्स भाग १, पृ० १०८)

The web of our life is of a mingled yarn, good and ill together.

हमारे जीवन का ताना-बाना मिले-जुले अच्छे-बुरे, धागों का है।

—शेक्सपियर (आल्स वेल दैट एंड्स वेल, ४।३)

Every thing that lives,
Lives not alone, nor for itself.

प्रत्येक वस्तु जो जीवित है, न तो अकेली जीवित है और न अपने लिए ही जीवित है।

—विलियम ब्लेक (बुक आफ़ थेल)

For not to live at ease is not to live.

सुख से न जीना तो जीना ही नहीं है।

—ड्राइडेन (पर्सियस का अनुवाद)

The one remains, the many change and pass.
Heaven's light forever shines, earth's shadows fly;
Life like a dome of many coloured glass,
Stains the white radiance of eternity.

एक ही नित्य रहता है, अनेक तो परिवर्तित होते हैं और चले जाते है। स्वर्गीय प्रकाश नित्य चमकता है, पृथ्वी की छायाएँ उड़ जाती हैं। बहुरंगी शीशे के गुम्बद के समान जीवन शाश्वत के शुभ्र प्रकाश को रंग-बिरंगा कर देता है।

—शैले (एडोनिस)

Life is thorny ! and youth is vain;
And to be wroth with one we love
Doth work like madness in the brain.

जीवन कंटकमय है एवं यौवन निरर्थक। और प्रेमी का रुष्ट हो जाना मस्तिष्क में पागलपन का सा काम करता है।

—कालरिज (क्रिस्टाबेल, २)

Life is real! Life is earnest !
And the grave is not its goal;
Dust thou art, to dust returnest,
Was not spoken of the soul.

जीवन सत्य है। जीवन महत्त्वपूर्ण है ! और मृत्यु उसका लक्ष्य नहीं है। तू मिट्टी है और मिट्टी में मिल जाता है—यह आत्मा के विषय में नहीं कहा गया है।

—लाँगफ़ेलो (ए साम आफ़ लाइफ़)

Tell me not, in mournful numbers,
"Life is but an empty dream !"

मुझसे दुःखपूर्ण कविता में यह न कहो कि "जीवन केवल निरर्थक स्वप्न है।"

— लाँगफेलो (ए साम आफ लाइफ़)

Every moment dies a man
Every moment one is born.

प्रति क्षण मनुष्य मरता है, प्रति क्षण मनुष्य उत्पन्न होता है।

—टेनिसन (दि विज़न आफ़ सिन)

Dust are our frames; and gilded dust our pride
Look only for a moment whole and sound.

हमारे शरीर धूल के हैं और हमारे गर्व चमकीले धूल के हैं जो क्षण भर के लिए ही पूर्ण और निर्दोष दिखाई देते हैं।

—टेनिसन (आयलमर्स फ़ील्ड, १)

Self-reverence, Self knowledge, Self-control,
These three alone lead life to sovereign power.

आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम केवल यही तीन जीवन को परम शक्ति-सम्पन्न बना देते है।

—टेनिसन (ओयनन)

Brief is life but love is long.

जीवन अल्पकालीन है किन्तु प्रेम दीर्घकालीन।

—टेनिसन (दि प्रिंसेस)

We are always getting ready to live, but never living.

हम सदैव जीने के लिए तैयारी कर रहे होते हैं, पर जीते कभी नहीं हैं।

—एमर्सन (जर्नल्स, १३ अप्रैल १८३४)

Life is a series of surprises.

जीवन एक आश्चर्य-शृंखला है।

—एमर्सन (एसेज़, सर्किल्स)

Life is one long process of getting tired.

जीवन थक जाने की एक लम्बी प्रक्रिया है।

—सैमुअल बटलर (नोट बुक्स, लाइफ़, ७)

Life is the art of drawing sufficient conclusions from insufficient premises.

जीवन तो अपर्याप्त आधार वाक्यों से पर्याप्त परिणामों को निकालने की कला है।

—सैमुअल बटलर (नोट बुक्स, लाइफ़, ९)

I slept and dreamed that life was Beauty.
I woke and found that life was Duty.

मैं सोया और स्वप्न देखा कि जीवन सौन्दर्य है, परन्तु जागने पर मैंने पाया कि जीवन कर्त्तव्य है।

— एलेन हूपर ('लाइफ़ ए ड्युटी' कविता)

Men deal with life as children with their play, who first misuse, then cast their toys away.

मनुष्य जीवन से उसी तरह व्यवहार करते है, जैसे अपने खेल में बच्चे जो पहले तो खिलौनों का दुरुपयोग करते हैं और फिर उन्हें फेंक देते हैं।

—विलियम कूपर (होप)

We live is deeds, not years; in thoughts, not breaths;
In feeling, not in figures on a dial.
We should count time by heart throbs. He most lives.
Who thinks most—feels the noblest—acts the best.

हम कार्यों में जीवित रहते है, वर्षों में नहीं। हम विचारों में जीवित रहते हैं, सांसों में नहीं। हम भावों में जीवित रहते हैं, घड़ी के पट्ट पर लिखे अंको में नहीं। हमें समय की गणना हृदय की धड़कनों से करनी चाहिए। वही सबसे अधिक जीवित रहता है जो सर्वाधिक विचार करता है, उत्तम भाव रखता है और सर्वोत्तम कार्य करता है।

—फ़िलिप जेम्स बेले (फ़ेस्टस, ५)

Life's a single pilgrim,
Fighting unarmed amongst a thousand soldiers.

जीवन अकेला तीर्थयात्री है जो निहत्था हजारों सैनिकों से लड़ रहा है।

—टामस लावेल बेडोज़ (डेथ फ़ेस्ट बुक, ४।१)

जीवन-दर्शन

जीवन के शुद्ध दृष्टिकोण का अभाव ही हमारी प्रमुख समस्या है, जिसके रहते शेष समस्यायें लाख यत्न करने पर भी न सुलझ पायेंगी।

—माधव स. गोलवलकर (विचार दर्शन, पृ० ३)

आधुनिक जीवन का आधार कोई जीवन-दृष्टि या दर्शन है भी कहाँ, सिर्फ मतवाद है और तंत्र है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ६२)

जीवन-दान

न जीविताद्दानमिहातिरिच्यते।
इस संसार में जीवन-दान से बड़ा दान नहीं है।

—भगदत्त जल्हण (सूक्तिमुक्तावली)

जीवन-मरण

दे० 'जन्म-मरण' भी।

अचरज जीवन जगत में, मरिवो साँचो जान।

—सहजोबाई

जीवन मरन संजोग जग कौन मिटावै ताहि।
जो जन्मै संसार में अमर रहे नहिं आहि॥

—जोधराज (हम्मीर रासो, ६७७)

जिंदगी मौत की तैयारी है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग १ पृ० २३६)

जीवन का यह अंतिम सार मधुर निकले, अंत की यह घड़ी मधुर हो, इसी दृष्टि से सारे जीवन के उद्योग होने चाहिए। जिसका अंत मधुर, उसका सब मधुर।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० १११)

तू धूल-भरा ही आया!
ओ चंचल जीवन-बाल! मृत्यु-जननी ने अंक लगाया!

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, कविता १५)

मरणजयी जीवन के यथार्थ रूप को न पाने के कारण ही आज मानवता दिशा-भ्रमित है। अपने जीवन-काल की सीमित अवधि को ही चरम अवधि मान लेने की भ्रांति न आज चारों ओर संघर्ष, विरोध, विद्रोह और विक्षोभ फैला रखा है। प्रत्येक दिन की मृत्यु प्रत्येक संध्या में होती है और प्रत्येक काली रात की मृत्यु नये अरुणोदय में होती रहती है। यह अटूट क्रम ही तो महाजीवन है।

—इलाचन्द्र जोशी (ऋतुचक्र, पृ० ४०२-४०३)

यह जीवन-यात्रा क्षणिक, स्वप्न-सी माया,
भावी वियोग की घिरी हुई है छाया,
क्या इसी अन्त के लिए हुआ है मिलना?
मुरझाने को ही हुआ फूल का खिलना?

—श्यामसुन्दर खत्री ('प्रिया' कविता)

हँस के दुनिया मे मरा कोई, कोई रोके मरा
जिन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ होके मरा।

—अकबर इलाहाबादी

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यक़ीं आया
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया।

—अकबर इलाहाबादी

जी उठा मरने से वह जिसकी खुदा पर थी नज़र
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खोके मरा।

—अकबर इलाहाबादी

मौत और ज़िन्दगी है दुनिया का एक तमाशा।

—अशफ़ाक़ उल्ला खाँ

जिन्दगी है एक वहशत और मजबूरी का नाम।
मौत क्या है तुझसे मिलने का फ़ख़त पैग़ाम है।

—'कैफ़' बरेलवी

यही जिन्दगी है हज़ारों ही ग़म है
अगर मौत होगी कोई ग़म न होंगे।

—कैफ़ 'बरेलवी'

मौत जब तक नज़र नहीं आती।
ज़िन्दगी राह पर नहीं आती।

—जिगर

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं
सामान सौ बरस का है पल की ख़बर नहीं।

—अज्ञात

गर आमदनम बख़ुद बुदे नाम दमे,
वर नीज़ शुदने बमन बुदे कै शुदमे,
बेजां न बुदे के अंदरीं दैरे ख़राब,
न आमदमे न शुद्धमे न बुदमे।

यदि इस संसार में आना मेरे अधिकार में होता तो मैं न आता। और यदि जाना मेरे हाथ में होता तो मैं क्यों जाता? इस से बढ़कर कोई बात न होती कि मैं इस ऊजड़ ससार में न आता, न रहता, और न जाता।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रूबाइयात, ७३४)

जीविच्चिट्टुन्नु मृतियाल् चिलर् चतु कोण्टु जीविक्कयाणु पलर्।

कुछ लोग मरण का वरण कर के जीवन जीते हैं, कुछ लोग जीते हुए भी मृत होते है।

[मलयालम] —शंकर कुरुप ('स्त्री' कविता)

विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु, प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु।

—स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ३, पृ० ३३२)

जन्म और मृत्यु का मामला एकदम प्रकृति का नियम है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २४४)

जीवन अनन्त जन्म तथा अनन्त मृत्यु की प्रक्रिया है। जन्म मृत्यु है और मृत्यु जन्म है।

—राधाकृष्णन् (रवीन्द्र दर्शन, पृ० ८०)

Life only is, or death is life disguised.

या तो जीवन ही है, या मृत्यु प्रच्छन्न जीवन है।

—अरविन्द ('लाइफ़ एंड डेथ' कविता)

Life is the desert, life is the solitude
Death joins us to the great majority.

जीवन मरुस्थल है, जीवन एकान्त है। मृत्यु हमें विशाल बहुमत में मिला देती है।

—एडवर्ड यंग (रिवेंज, अंक ४)

Let life be beautiful like summer flowers and death like autumn leaves.

जीवन बसन्त के पुष्पों के जैसा सुन्दर हो और मृत्यु पतझर के पत्तों जैसी।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ८२)

In death the many becomes one, in life the one becomes many.

मृत्यु में अनेक एक हो जाता है और जीवन में एक अनेक हो जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ८४)

Death's stamp gives value to the coin of life; making it possible to buy with life what is truly precious.

मृत्यु की मुहर जीवन के सिक्के को मूल्य प्रदान करती है जिससे जीवन के द्वारा वस्तुतः बहुमूल्य वस्तु का क्रय संभव हो जाता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ६६)

It matters not how a man dies, but how he lives.

इस बात का महत्त्व नहीं है कि कोई मनुष्य कैसे मरता है, अपितु इस बात का है कि कैसे जीवन-यापन करता है।

—डा० जानसन (बासवेल द्वारा लिखित जीवनी, खण्ड २, पृ० १०६)

जीवन-मूल्य

मनुष्य को जिन बातों की बुनियाद पर समाज में इज्ज़त मिलती है, उन बुनियादों का नाम मूल्य है। प्राचीन परिभाषा में इन्हें 'सामाजिक सत्ता' या 'सामाजिक प्रतिष्ठा' कहते थे। इस बुनियाद को एक सिरे से दूसरे सिरे तक पूरी तरह बदल देने का नाम 'क्रान्ति' है। मूल्यों के प्रधान लक्षण हैं—प्रामाणिकता, सचाई, ईमानदारी।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २८२)

मूल्य व्यक्तियों के बनाए नहीं बनते। उनका निर्माण सारा समाज करता है। सबकी राह प्रत्येक तक जाने की राह है, और प्रत्येक को राह सब तक पहुँचने की राह।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० २६)

जीवनी

Read no history, nothing but biography for that is life without theory.

इतिहास मत पढ़ो, जीवनी-साहित्य के अतिरिक्त कुछ मत पढ़ो क्योंकि वह सिद्धान्त-मुक्त जीवन है।

—डिज़रायली (कंटेरिनी फ़्लेमिंग, १।२८)

A life that is worth writing at all, is worth writing minutely and truthfully.

जो जीवनी किंचित् भी लिखने योग्य है, वह बारीकी से और सच्चाई से लिखने योग्य है।

—लांगफ़ेलो

Lives of great man all remind us,
We can make our lives sublime,
And, departing, leave behind us,
Footprints on the sands of time.

महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती है कि हम भी अपना जीवन महान बना सकते हैं और मरते समय अपने पदचिह्न समय की बालू पर छोड़ सकते है।

—लाँगफ़ेलो

There is properly no history, but biography.

वास्तव में इतिहास है ही नहीं, केवल जीवनचरित्र ही हैं।

—एमर्सन

A well-written life is almost as rare as a well-spent one.

श्रेष्ठ जीवन के समान ही श्रेष्ठ जीवनी भी दुर्लभ है।

—कार्लाइल

History is the essence of innumerable biographies.

असंख्य जीवनियों का सार-तत्त्व इतिहास होता है।

—कार्लाइल

प्राचीन महापुरुषों के जीवन से अपरिचित रहना जीवन-भर निरन्तर बाल्यावस्था में ही रहना है।

—प्लूटार्क

जीवन्मुक्त

ये शुद्धवासना भूयो न जन्मानर्थभागिनः।
ज्ञातज्ञेयास्त उच्यन्ते जीवन्मुक्ता महाधियः॥

जो शुद्ध वासनाओं से युक्त है तथा जिनका जीवन अनर्थों से शून्य है, और जिनको ज्ञेयत्व ज्ञात है, वे महान बुद्धिमान 'जीवन्मुक्त' कहलाते हैं।

—महोपनिषद् (२।४०)

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम्॥

देहाभिमान के नष्ट हो जाने और परमात्म-ज्ञान होने पर जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहीं-वहीं परम अमृतत्व का अनुभव होता है।

—सरस्वतीरहस्योपनिषद्

संतुष्टोऽपि न संतुष्टः खिन्नोऽपि न च खिद्यते।
तस्याश्चर्यदशां तां तां तादृशा एव जानते॥

वह सन्तुष्ट होने पर भी संतुष्ट नहीं होता और खिन्न होने पर भी खिन्न नहीं होता है। उसकी उस-उस आश्चर्यमयी दशा को उसके समान लोग ही जानते है।

—अष्टावक्रगीता (१८।५६)

सुखमास्ते सुखं शेते सुखमायाति याति च।
सुखं वक्ति सुखं भुंक्ते व्यवहारोऽपि शान्तधीः ॥

व्यवहार में भी शान्तबुद्धि मनुष्य सुख से बैठता है, सुख से सोता है, सुख से आता-जाता है, सुख से बोलता है, सुख से भोग करता है।

—अष्टावक्रगीता (१८।५६)

जीवन्मुक्तो नाम स्वस्वरूपाखण्डे ब्रह्मणि साक्षात्कृते सति अज्ञानतत्कार्यसंचित कर्मसंशयविपर्य्ययादीनामपि बाधितत्वा-दखिलबन्धरहितो ब्रह्मनिष्ठः।

स्वस्वरूप अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर अज्ञान और अज्ञान-कार्य जो जगत् तथा उनके द्वारा संचित जो कर्म-संशय-विपर्यय (भ्रम) आदि हैं, उनका बोध हो जाने से समस्त बन्धनों से शून्य जो ब्रह्मनिष्ठ है उसे 'जीवन्मुक्त' कहते हैं।

—सदानंद (वेदान्तसार)

बाले बाला विदुषि विबुधा गायके गायकेशाः,
शूरे शूरा निगमविदि चाम्नायलीलागृहाणि।
सिद्धे सिद्धा मुनिषु मुनयः सत्सु सन्तो महान्तः,
प्रौढ़े प्रौढ़ाः किमिति वचसा तादृशा यादृशेषु ॥
मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पंडिते पंडितोऽसौ,
दीन दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः।
मूर्खे मूर्खो युवतिषु युवा वाग्मिषु प्रौढ़वाग्मी,
धन्यः कश्चित् त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः ॥

अवधूत तो बालकों में बालक, विद्वानों में विद्वान, गायकों में गायकेश, शूरों में शूर, वेदज्ञों में ज्ञान का भंडार, सिद्धों में सिद्ध, मुनियों में मुनि, सज्जनों में सज्जन, चतुरों में चतुर वन जाते हैं और कहाँ तक कहें वे तो जैसों में तैसे वन जाते है त्रिभुवनजयी अवधूत धन्य है जो मौनी के साथ मौनी, गुणी के साथ गुणी, पंडित के साथ पंडित, दीन के साथ दीन, सुखी के साथ सुखी, भोगी के साथ भोगी, मूर्ख के साथ मूर्ख, युवती के साथ युवा तथा वाग्मी के साथ प्रौढ़ वाग्मी बन जाता है।

—अज्ञात

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौ क्षयमुपगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं
निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥

जिसके भेदाभेद शीघ्र ही नष्ट हो गये, पाप-पुण्य नष्ट हो गये, माया-मोह की समाप्ति हो गयी और संशय की विनिवृत्ति हो गयी और जो शब्दातीत, त्रिगुणातीत तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके त्रिगुणरहित मार्ग पर विचरण करता है, उसे क्या विधि और क्या निषेध ?

—अज्ञात

साँच गहो समता गहो, गहो सील संतोष।
ग्यान भक्ति वैराग्य गहि, याही जीवन मोच्छ ॥

—परसराम

नमे हाफ़िज़ रक़मे नेक पज़ीरफ़्त वले
पेशे रिंदाँ रक़मे सूदो जियाँ ई हमा नेस्त।

हाफ़िज़ का यश दूर-दूर तक फैल गया है परन्तु जीवन-मुक्त पुरुषों के निकट इसका कुछ भी मूल्य नहीं है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

मुक्त आत्मा के लिए ससार और मोक्ष, काल और शाश्वतता, हृदय और सत्य एक ही हैं।

—राधाकृष्णन् ('दि प्रिंसिपल उपनिषद्स' की भूमिका)

जीव-रक्षा

दे० 'अहिंसा'।

जीवात्मा

दे० 'आत्मा', 'जीवात्मा-परमात्मा' भी।

तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्।
उसको देखा, वही हो गया, वही था।[1]

—यजुर्वेद (३२।१२)

१. जीवात्मा ने ब्रह्म का साक्षात्कार किया तो वह ब्रह्म ही हो गया, वास्तव में वह ब्रह्म ही था।

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यातुषाभावेन तण्डुलः॥

जीव शिव है, शिव जीव है, वह जीव केवल शिव है जैसे भूसी से ढँके होने पर 'धान' और भूसी न रहने पर 'तंडुल' कहा जाता है।

—स्कन्दोपनिषद् (६)

पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।

पाशवद्ध को जीव कहते हैं और पाशमुक्त को सदाशिव।

—स्कन्दोपनिषद् (७)

नात्मनः कामकारो हि पुरुषो ऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥

यह जीव ईश्वर के समान स्वतन्त्र नहीं है, अतः अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इसे इधर-उधर खीचता रहता है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०५।१५)

आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ णवि अप्पहिउ इम संसार भमेइ॥

आयु क्षीण होती जाती है किन्तु न तो मन क्षीण होता है और न आशा ही। मोह स्फुरित होता है, आत्महित नहीं। इस प्रकार जीव भ्रमण करता रहता है।

[अपभ्रंश] **—योगीन्द्र (योगसार, ४९)**

एक्कहों जे दुक्खु एक्कहों जे सुक्खु।
एक्कहों जे वन्धु एक्कहों जे मोक्खु॥

जीव को अकेले ही दुख, अकेले ही सुख, भोगना पड़ता है। अकेले ही उसे वन्ध और मोक्ष होता है।

[अपभ्रंश] **—स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ५४।७)**

दरियाव अन्दर अंशाह आव
जाव म्यच्य त् जायस म्यच
म्यचय बूग त न्यामच ख्याव
मतोह श्रपिथ म्यचिय गव।

ईश्वर ही सत्य तत्त्व है जिसने पंचभूत से जीव का निर्माण किया है। जो जीव समस्त भोगों को भोग कर निद्रावस्था में भी जाग्रत रहे, कर्म करके भी निष्क्रिय रहे, वही उच्च कोटि का जीव है। संसार में जीवों का भाग्य भिन्न-भिन्न है परन्तु उनका निर्माण एक है। जीव नदी के एक अंश की भाँति है। अंश रूप में आकर मिट्टी से उत्पन्न हुआ और इसी मिट्टी को भोगकर स्वादिष्ट पदार्थ खाता है। अन्त में काया भी उसी मिट्टी में विलीन हो जाती है।

[कश्मीरी] **—रूपभवानी (श्रीरूपभवानी रहस्योपदेश, पृ० ४०)**

जीवात्मा-परमात्मा

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नशनन्नन्यो अभिचाकशीति॥

एक साथ रहने वाले तथा परस्पर सखा भाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा तथा परमात्मा) एक ही वृक्ष (शरीर) पर वसते हैं। उन दोनों में से एक तो उस वृक्ष के फलों का स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है।

—ऋग्वेद (१।१६४।२०) तथा मुंडकोपनिषद् (३।१।१)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनुष्य लोक में मेरा (परमात्मा का) ही सनातन अंश जीव बनकर स्थित है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३९।७ अथवा गीता, १५।७)

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

देह की दृष्टि से मैं आपका दास हूँ। जीव की दृष्टि से आपका अंश हूँ। आत्मा की दृष्टि से मैं आप ही हूँ। ऐसा मेरा निश्चित विचार है।

—अज्ञात

चकवी विछुटी रैंणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन विछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति।

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली)

प्रभु जी ! तुम दीपक, हम बाती।
जा की जोति बरै दिन-राती ।।

—रैदास

तुम तोरहु तऊ हम नहिं तोरहिं।
तुम से तोरि कौन से जोरहिं ।।

—रैदास

माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७८।३)

परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७८।४)

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मातु, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।।
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै ।।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ७९)

चूक जीउ कों धरम है, छमा धरम प्रभु आप।
आयो शरन निवाजि निज, करि हरिये संताप ।।

—दयाराम (दयाराम सतसई, दोहा ५६)

जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता। देखो कोई भी योगी आज तक ईश्वर-कृत सृष्टिक्रम को बदलने वाला नहीं हुआ है और न होगा।

—दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

दरिया से मौज मौज से दरिया नहीं अलग
हम से नहीं जुदा है ख़ुदा औ ख़ुदा से हम।

—राजा गिरधारीप्रसाद 'बाक़ी'

हे दूर से दूर और समीप से समीप ! जहाँ तुम निकट हो, वहाँ तुम मेरे हो, और जहाँ तुम सुदूर हो, वहाँ मैं तुम्हारा हूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य, ८३)

जीविका

वृत्तेः कार्पण्यलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी।

दीनता से प्राप्त हुई जीविका की अपेक्षा तो मर जाना ही उत्तम है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ९०।७४)

अपि चे पत्तं आदाय अनागारो परिब्बजे।
सा एव जीविका सेय्या या चाधम्मेन एसना ।।

अधर्म से जीविका चलाने की अपेक्षा, पात्र लेकर, अनागरिक होकर जो भिक्षावृत्ति से जीविका चलाता है, वही अच्छा है।

[पालि] —जातक (लोमकस्सप जातक)

जुआ

अक्षैर्मा दीव्यः।

जुआ मत खेलो।

—ऋग्वेद (१०।३४।१३)

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ।।

पूर्व काल में जुआ खेलना मनुष्यों में वैर का कारण देखा गया है, अतः बुद्धिमान मनुष्य हँसी के लिए भी जुआ न खेले।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।१९)

न गणयति पराभवं कुतश्चिद् हरति ददाति च नित्यमर्यजातम्।

यह जुआ अनादर को तुच्छ समझता है। प्रत्येक दिन धन उपार्जित करता है और देता भी है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, २।७)

द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव ।।

जुए से ही मैंने धन और जुए के ही प्रभाव से स्त्री तथा मित्र उपलब्ध किए हैं। इसी प्रकार जुए से ही किसी को कुछ दिया है तथा उपभोग भी किया है और जुए से ही मैंने अपना सर्वनाश भी कर डाला है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, २।८)

धन नासै नासे धरम, ज्वारी धरै कुध्यान।
धकाधूम धरवौ करे, धिग धिग कहै जहान॥
—बुधजन (बुधजन सतसई)

वस्त्र, धन, भोजन, यश और विद्या—ये पाँचों जुए में हाथ डालने वाले के पास नहीं आयेंगे।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ९३९)

शैतान ने जुए का आविष्कार किया।
—सेंट आगस्टीन

जुआरी अपनी कला में जितना अधिक निपुण होता है, वह उतना ही अधिक बुरा होता है।
—पब्लिलियस् साइरस

जेल

दे० 'कारागार'।

जौहर

विख्यात वे जौहर यहाँ के आज भी हैं लोक में,
हम मग्न अब भी पद्मिनी-सी देवियों के शोक में!
आर्य स्त्रियाँ निज धर्म पर मरती हुई डरती नहीं,
साद्यन्त सर्व सतीत्व-शिक्षा विश्व में मिलती यहीं!!
—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० ८३)

ज्ञान

दे० अन्यत्र भी ('ज्ञान और अहंकार' से 'ज्ञानी' तक)।

श्रुताय श्रुतं जिन्व।
ज्ञान के लिए ही ज्ञान को पुष्ट करो।
—यजुर्वेद (१५।७)

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।
तल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
जहाँ ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज सम्यक् रूप से साथ रहते हैं, जहाँ देवगण अग्नि के साथ रहते हैं, उस लोक को मैं जानूँगा।
—यजुर्वेद (२०।२५)

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि।
हम सब ज्ञान से युक्त हों, कभी भी ज्ञान से हमारा वियोग न हो।
—अथर्ववेद (१।१।४)

ब्रह्म वर्म ममान्तरम्।
मेरे अन्दर का कवच ब्रह्म (ज्ञान) है।
—अथर्ववेद (१।१९।४)

पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः।
सब आँख से देखते हैं परन्तु सब मन से जानते नहीं।
—अथर्ववेद(१०।८।१४)

ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति।
ज्ञान से मनुष्य नीचे देखता है (अर्थात् विनम्र हो जाता है)।
—अथर्ववेद (१०।८।१९)

ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत्।
स सर्वकार्यमुत्सृज्य तत्रैव परिधावति॥
जिसने एक बार भी ज्ञान रूपी अमृत रस का स्वाद ले लिया, वह सब कार्यों को छोड़कर उसी की ओर दौड़ पड़ता है।
—जाबालदर्शनोपनिषद् (६।८)

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता।
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिंगिनस्तु गवां यथा॥
अनेक रंगों की गायों का दूध एक ही रंग का होता है। बुद्धिमान व्यक्ति ज्ञान को दूध के समान मानते है और अनेक शाखाओं वाले वेदों को गायों की तरह।
—ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् (श्लोक १९)

संसाराम्बुनिधावस्मिन् वासनाम्बुपरिप्लुते।
ये प्रज्ञानावमारूढास्ते तीर्णाः पंडिताः परे॥
वासना रूपी जल से परिपूर्ण इस संसार-सागर में जो प्रज्ञा रूपी नौका पर बैठे हैं, वे विद्वान पार पहुँच गए है।
—महोपनिषद् (५।१७६)

योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ॥

ज्ञानरहित योग से भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता । अतः मुमुक्षु को ज्ञान व योग दोनों का दृढ़ अभ्यास करना चाहिए ।

—योगतत्त्वोपनिषद् (श्लोक १५)

ज्ञानादेव हि संसारविनाशो नैव कर्मणा ।

ज्ञान से ही संसार-बंधन का नाश होता है, कर्म से नहीं ।

—रुद्रहृदयोपनिषद् (श्लोक ३५)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।३८ अथवा गीता, ४।३८)

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।

जिसे ज्ञान नहीं, श्रद्धा भी नहीं और जो संशयग्रस्त मनुष्य है, उसका नाश हो जाता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २८।४० अथवा गीता, ४।४०)

ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम् ।
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः ॥

पुरुष को चाहिए कि वह अपने मन को वश में करके परम दुर्लभ ज्ञान रूपी महान् औषधि प्राप्त करे, और उस औषधि से दुःख रूपी महाव्याधि का नाश कर डाले ।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्रीपर्व, ७।२१)

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः ।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा सम्पद्यते पुनः ॥

जैसे आग में भुने हुए बीज नहीं उगते, उसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि से अविद्यादि सब क्लेशों के दग्ध हो जाने पर जीवात्मा को फिर इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, २११।१७)

आकिंचन्ये न मोक्षोऽस्ति किंचन्ये नास्ति बन्धनम् ।
किंचन्ये चेतरे चैव जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते ॥

न तो अकिंचनता (दरिद्रता) में मोक्ष है और न किंचनता (सम्पन्नता) में बन्धन ही है । धन और निर्धनता दोनों ही अवस्थाओं में ज्ञान से ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ३२०।५०)

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥

अकेले गुरु से स्थिर और पूर्ण ज्ञान नहीं होता । इस अद्वितीय ब्रह्म को ऋषियों ने अनेक प्रकार से बताया है ।

—भागवत (११।९।३१)

ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः ।
तस्मात् संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत् ॥

ज्ञानशून्य मनुष्य पशु कहे गए हैं । अतः संसार-बंधन से मुक्ति के लिए परम ज्ञान का अभ्यास करे ।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ३३।४०)

ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवांछितम् ।

श्रेष्ठतम पुरुषों को ज्ञान की प्राप्ति ही परम अभीष्ट होती है ।

—नरसिंहपुराण (१५।१२)

क्षमाशिफो धैर्यविगाढमूलश्चारित्रपुष्पः स्मृतिबुद्धिशाखः ।
ज्ञानद्रुमो धर्मफलप्रदाता नोत्पाटनं ह्यर्हति वर्धमानः ॥

क्षमा ही जिसकी जटा है, धैर्य ही जिसका गहरा मूल है, चरित्र ही जिसके फूल हैं, स्मृति व बुद्धि ही जिसकी शाखाएँ हैं, और जो धर्म रूपी फल देता है, ऐसा यह वर्धमान ज्ञान-वृक्ष उन्मूलन योग्य नहीं है ।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, १३।६५)

न हि सर्वः सर्वं जानाति ।

सब लोग सब कुछ नहीं जानते ।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, प्रथम अंक)

विचाराज्जायते बोधोऽनिच्छा यं न निवर्तयेत् ।
स्वोत्पत्तिमात्रात् संसारे दहत्यखिलसत्यताम् ॥

वस्तु के विचार से ज्ञान उत्पन्न होता है । ज्ञान को अनिच्छा भी रोक नहीं सकती । उत्पन्न होते ही वह ज्ञान, संसार की सारी सत्यता को नष्ट कर देता है ।

—विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ६।७५)

ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति शास्त्रेषु डिण्डिमः।

मुक्ति ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती है—यह शास्त्रों की घोषणा है।

—**विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ६।९७)**

तीर्थे तीर्थे निर्मलं ब्रह्मवृन्दं वृन्दे वृन्दे तत्त्वचिन्तानुवादः।
वादे वादे जायते तत्त्वबोधो बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः॥

तीर्थ-तीर्थ में निर्मल ब्रह्मविदों का समूह मिलता है। उनके समूह-समूह में तत्त्व का वाद-विवाद होता है। उस वाद-विवाद मे तत्त्व-बोध होता है। और बोध-बोध में भगवान् शंकर का दर्शन होता है।

—**अज्ञात**

ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्तकम्।

ज्ञान अज्ञान को ही दूर करता है।

—**अज्ञात**

अक्रोधवैराग्यजितेन्द्रियत्वं
क्षमादयाशान्तिजनप्रियत्वम्।
निर्लोभदाता भयशोकहारी
ज्ञानस्य चिह्नं दशलक्षणानि॥

अक्रोध, वैराग्य, जितेन्द्रियता, क्षमा, दया, शान्ति (अनुद्वेगशीलता), मनुष्यों के प्रति प्रेम, लोभरहित होकर दान देना, भय और शोक तथा भय के लक्षणों का भी नाश करना ज्ञान के लक्षण है।

—**अज्ञात**

ज्ञानस्याभरणं क्षमा।

ज्ञान का आभूषण क्षमा है।

—**संस्कृत लोकोक्ति**

जहा अंतो तहा बाहिं,
जहा बाहिं तहा अंतो।

जैसा अन्दर में है, वैसा ही बाहर में है। जैसा बाहर में है, वैसा ही अन्दर में है।

[प्राकृत] —**आचारांग (१।२।५)**

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ॥

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।

[प्राकृत] —**आचारांग (१।३।४)**

णाणं अंकुसभूदं मत्तस्स हु चित्त हत्थिस्स।

मन रूपी उन्मत्त हाथी को वश में करने के लिए ज्ञान अंकुश के समान है।

[प्राकृत] —**भगवती आराधना (७६०)**

णाणं णरस्स सारो।

ज्ञान मनुष्य जीवन का सार है।

[प्राकृत] —**आचार्य कुंदकुंद**

मद्दवकरणं णाणं, तेणेव य जे मदं समुवहंति।
ऊणगभायणसरिसा, अगदो वि विसायते तेसिं॥

ज्ञान मनुष्य को मृदु बनाता है, किन्तु कुछ मनुष्य उससे भी मदोद्धत होकर अधजलगगरी की भाँति छलकने लग जाते है, उन्हें अमृत स्वरूप औषधि भी विष बन जाती है।

[प्राकृत] —**बृहत्कल्पभाष्य (७८३)**

कनक पात्र में रहत है, ज्यों सिंहनि को दुद्ध[1]।
ज्ञान तहाँ ही ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध॥

—**सुन्दरदास (उक्त अनूप, २०)**

जगत दुखी हरजन सुखी, सूझा गुरु का ज्ञान।
कह पानप दुख बीसरै, पाए परम निधान॥

—**पानपदास (पानपबोध, पृ० १७)**

धनतैं कलमष ना कटै, काटै विद्या ज्ञान।
ज्ञान बिना धन क्लेशकर, ज्ञान एक सुखखान॥

—**बुधजन (बुधजन सतसई)**

जब लग परम तत्तु[2] नहिं जाने।
तब लग भरम[3] भूत नाहीं भाजे,[4] करम[5] कींच लपटाने॥

—**धरनीदास (धरनीदास जी की बानी, पृ० १७)**

---

१. सिंहिनी का दुग्ध।
२. तत्त्व। ३. भ्रम। ४. भागे। ५. कर्म।

ऊँट की पूँछ सौं ऊँट बँध्यो इमि ऊँटन की-सी कतार चली है।
कौन चलाइ कहाँ को चली, वलि जैहै तहाँ कछु फूल फली है।।
ये सिगरे मत ताकी यही गति, गाँव को नाँव न कौन गली है।
ग्यान बिना सुधि नाहिं 'निरंजन', जीव न जानै बुरी कि भली है।।

—निपट निरंजन

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय[1] जौं पुनि प्रत्यूह[2] अनेक।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११८ ख)

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११९।१)

तुम्हारे ज्ञान की क़ीमत तुम्हारे कामों से होगी। सैकड़ों किताबें दिमाग़ में भर लेने से कुछ लाभ मिल सकता है किंतु उसकी तुलना में काम की क़ीमत कई गुना ज्यादा है। दिमाग़ में भरे हुए ज्ञान की क़ीमत उसके अनुसार किये गये काम के बराबर ही है। बाक़ी का सब ज्ञान दिमाग़ के लिए व्यर्थ का बोझ है।

—महात्मा गांधी (भाषण भागलपुर में, १७-१०-१९१७)

अधूरे ज्ञान से उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने का उपाय पूर्ण ज्ञान है, अज्ञान नहीं।

—काका कालेलकर (जीवन-साहित्य, पृ० २९)

ख़ूब सीखना और ख़ूब सीखना। जिसे जो आता है, वह उसे दूसरे को सिखाये और जो भी सीख सके, सीखे।

—विनोबा (जीवन दृष्टि, पृ० १४)

अज्ञान की भाँति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखने वाला होता है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ३१२-३१३)

ज्ञान के मधुमान महासमुद्र की एक बूंद ही मानव का निजी ज्ञान है।

— वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, भूमिका)

ज्ञान शक्ति है—किन्तु नहीं यदि
वह ईश्वर चरणों पर अर्पित,
असुर दर्प वन वह विध्वंसक
वन जाता जन भू जीवन हित!

— सुमित्रानंदन पंत (लोकायतन, पृ० ५३५)

जिसे सचमुच शास्त्र-ज्ञान हो वह भला जीत-हार के लिए क्यों भटकता फिरेगा!

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० १६१)

ज्ञान मुक्ति को द्वार है, मोह बंध को मूल।

—वियोगी हरि (अनुराग मंजरी, पृ० २५)

उन्माद और ज्ञान में जो भेद है, वही वासना और प्रेम में है। उन्माद अस्थायी होता है और ज्ञान स्थायी।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० ६७)

ब्रह्मज्ञान में जो चीज़ मुझे अच्छी लगती है, वह यह कि आदमी अपने संकुचित शरीर और मन से हट कर सब लोगों से अपनापन महसूस करे।

—राममनोहर लोहिया (धर्म पर एक दृष्टि)

ज्ञान का प्रयोजन स्वभाव बदलना नही है। सत्य को समझा देना ज्ञान का प्रयोजन है।

—अखंडानन्द सरस्वती (कर्मयोग, पृ० २४८)

फिर मूर्ख न क्या जग, लो इस पर भी सीखे
मैं सीख रहा हूँ—सीखा ज्ञान भुलाना।

—अज्ञात

इल्म जोई अज़ कुतबुहाए फ़सोस
ज़ौक़ जोई तू ज़े हलवाए सबोस।

तू व्यर्थ पुस्तकों में ज्ञान ढूंढ़ता है अर्थात् छिलकों के हलवे में आनन्द ढूंढता है।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

इल्म दर सीना, न दर सफ़ीना।

ज्ञान हृदय में रहता है, पुस्तकों में नहीं।

[फ़ारसी] —ईरानी लोकोक्ति

---
१. संयोगवश। २. विघ्न।

यबक मन इल्मरा दहमन अक़्ल मी बायद।

एक मन ज्ञान के लिए दस मन बुद्धि की आवश्यकता होती है।

[फ़ारसी] —ईरानी लोकोक्ति

जीवन्त मरि तय सुय छुय ग्यान।

यदि कोई जीते जी ही मर जाए तो वही ज्ञान है।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

गिआनु न गलीई ढूढीए कथना करड़ा सारू।
करम मिले ता पाईए होर हिकमति हुकमु खुआरू॥

ज्ञान बातों से नहीं ढूंढ़ा जा सकता। ज्ञान-प्राप्ति की बात कहना लोहे को चबाने के समान है। ईश्वर-कृपा से ही वह प्राप्त होता है, अन्य चतुराइयां आदि तो नष्ट ही करते हैं।

[पंजाबी] —गुरु नानक (गुरु ग्रंथ साहिब)

तोमाते रयेछे सकल केताव सकल कालेर ज्ञान,
सकल शास्त्र खुंजे पाबे सखा, खुले देख निज प्राण!
तोमाते रयेछे सकल धर्म, सकल युगावतार,
तोमार हृदय विश्व-देउल सकलेर देवतार।
केन खुंजे फेर देबता ठाकुर मृत पुंथि कंकाले?
हासिछेन तिनि अमृत-हियार निभृत अन्तराले।

तुम्हारे अन्दर ही तो सभी पुस्तकें, सारे युगों के ज्ञान भरे पड़े हैं। मित्र, तुम अपने प्राणों के द्वार खोल कर देखो—सभी शास्त्र तुम्हें वहीं मिल जाएँगे। तुम्हारे अन्दर सभी धर्म, सभी युगों के अवतार मौजूद हैं। तुम्हारा हृदय विश्व-मन्दिर है, जहाँ सभी के देवताओं का निवास है। फिर क्यों अपने भगवान को निर्जीव किताबों के पन्नों में ढूंढ़ते फिर रहे हो? तुम्हारे भगवान तो तुम्हारे सजीव हृदय के अन्तस्तल में मुस्करा रहे हैं।

[बंगला] —काजी नजरुल इस्लाम (कवि-श्रीमाला, पृ० ४२)

जाणते लेंकरुं माता लागे दूरी धरुं।

जो बच्चे ज्ञानी हैं, उन्हें माँ भी दूर रखती है।

[मराठी] —तुकाराम

चदिवि चदिवि चदिवि चावंग नेटिकि
चावु लेनि चदुवु चदुवु वलयु
चदुवु लेंक कोटि जनुल चच्चिरि कदा॥

पोथियां पढ़-पढ़कर अन्त में मर मिटने से क्या लाभ है? जीवन और मरण के बन्धनों से छुड़ाने वाली विद्या ही मनुष्य को सीखनी है। ऐसी विद्या के अभाव में ही करोड़ों प्राणी नष्ट हो गये हैं।

[तेलुगु] —वेमना

ई जगं बेल्ल मिथ्यगा नेरिगि कोनुट ज्ञानम्।

'यह जग मिथ्या है'—यह जानना ही ज्ञान है।

[तेलुगु] —हरिभट्ट (मत्स्यपुराण)

भव-पीड़ा के आधारभूत अज्ञान के हटने के लिए मोक्ष-प्राप्ति के आधारभूत तत्त्व के दर्शन को ही 'ज्ञान' कहते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३५८)

भक्ति और कर्म तब तक पूर्ण व टिकाऊ नहीं हो सकते, जब तक वे ज्ञान पर आधारित न हों।

—अरविन्द (भवानी मन्दिर)

न जानकर भी मैंने तुमको जान लिया है। किस प्रकार जान लिया, इसका कुछ भी पता नहीं। अर्थ का अन्त पता नहीं चलता, तो भी तुम्हारी वाणी समझ गया हूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य, कविता ९)

आत्मस्वरूप का त्याग न करना ज्ञान है।

—रमण महर्षि (मैं कौन हूँ?)

सत्य का साक्षात्कार ही ज्ञान है।

—शिवानंद सरस्वती (दिव्योपदेश १।२९)

ज्ञान हमेशा किसी को सौंपकर जाना चाहिए।

—अमृता प्रीतम (आक के पत्ते, पृ० ११)

तुम्हारे ज्ञान के उषा-काल में, जो कुछ पहले से ही अर्द्ध-निद्रित अवस्था में विद्यमान है, उसके अतिरिक्त कोई भी तुम्हारे आगे कुछ प्रकट नहीं कर सकता।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० ६७)

शाब्दिक ज्ञान क्या है—शब्दरहित ज्ञान की छाया मात्र ही तो।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० ६६)

जानकारी बाँटी जा सकती है, परन्तु ज्ञान नहीं बाँटा जा सकता। मनुष्य उसे उपलब्ध कर सकता है, अपने को उससे दृढ़ भी बना सकता है, उससे चमत्कार कर सकता है, लेकिन न कोई ज्ञान बता सकता है और न सिखा सकता है।

—हरमन हेस (सिद्धार्थ, पृ० ११६)

Knowledge without a purpose is mere pedantry.

निरुद्देश्य ज्ञान आडम्बर मात्र है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ४, पृ० ४६०)

Knowledge the wing wherewith we fly to heaven.

ज्ञान वह पंख है जिससे हम स्वर्ग की ओर उड़ते हैं।

—शेक्सपियर (हेनरी सिक्स्थ, भाग २, ४।७)

To be conscious that you are ignorant is a great step to knowledge.

अपनी अनभिज्ञता का बोध ज्ञान की ओर एक बड़ा क़दम है।

—डिज़रायली (सिबिल, १।५)

It is knowledge that influences and equalizes the social condition of man; that gives to all, however different their political position, passions which are in common, and enjoyments which are universal.

यह ज्ञान ही है जो मनुष्य की सामाजिक दशा को प्रभावित करता है तथा समान करता है और जो प्रत्येक को चाहे उसकी राजनीतिक स्थिति कितनी भी भिन्न क्यों न हो, ऐसे मनोभाव देता है जो सर्वमान्य हैं तथा ऐसे आनन्द देता है जो सार्वभौम हैं।

—डिज़रायली (भाषण, २३-१०-१८४४)

I do not know what I may appear to the world, but to myself I seem to have been only a boy playing on the sea-shore, and diverting myself in now and then finding a smoother pebble or a prettier shell than ordinary, whilst the greater ocean of truth lay all undiscovered before me.

मैं नहीं जानता कि संसार के समक्ष मैं क्या लग सकता हूँ किन्तु स्वयं को मैं केवल एक ऐसा लड़का प्रतीत होता हूँ जो सागर तट पर खेल रहा है, और जो अधिक चिकनी गुटिका या अधिक सुन्दर सीपी को जब-तब पा लेने में स्वयं को लगा रहा है जबकि सत्य का विशालतर महासागर मेरे सम्मुख पूर्णतया अनदेखा पड़ा है।

—न्यूटन (ब्रयुस्टर कृत 'मेमोरीज़ आफ़ न्यूटन', भाग २, अध्याय २७)

Knowledge is of two kinds. We know a subject ourselves, or we know where we can find information upon it.

ज्ञान दो प्रकार का होता है। किसी विषय को हम स्वयं जानते हैं या यह जानते हैं कि उस विषय पर जानकारी कहाँ मिल सकती है।

—डा० जानसन (बासवेल द्वारा लिखित जीवनी, खण्ड २, पृ० ३६३)

I have taken all knowledge to be my province.

मैंने सारे ज्ञान को अपना क्षेत्र बना लिया है।

—बेकन (एक पत्र, १५९२)

Knowledge itself is power.

ज्ञान स्वयं ही शक्ति है।

—बेकन (रेलीजस मेडीटेशन)

The only fence against the world is a thorough knowledge of it.

संसार का पूर्ण ज्ञान ही संसार से मानव का रक्षक है।

—जॉन लॉक

No man's knowledge here can go beyond his experience.

किसी व्यक्ति का भी ज्ञान उसके अनुभव से परे नहीं जा सकता।

—जॉन लॉक (एसेज़ ऑन दि ह्यू्मन अंडरस्टैंडिंग, २।१।१९)

Knowledge is the antidote to fear.

ज्ञान भय की औषधि है।

—एमर्सन (सोसायटी एंड सालीट्‌ड—'करेज')

Knowledge may give weight, but accomplishments give lustre, and many people more see than weigh.

ज्ञान वज़न दे सकता है परन्तु उपलब्धियां चमक देती हैं और अधिकतर लोग तोलने के बजाए देखते हैं।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र, ८।५।१७५०)

Knowledge advances by steps, and not by leaps.

ज्ञान में पग-पग वृद्धि होती है, छलांगों से नहीं।

—बैरन मैकाले (एसेज़ ऐंड बायोग्राफीज़)

Knowledge is love and light and vision.

ज्ञान, प्रेम और प्रकाश और दृष्टि है।

—हेलेन केलर (दि स्टोरी आफ़ माई लाइफ़, अध्याय ३)

ज्ञान और अहंकार

ज्ञानाजीर्णमहंकृतिः।

ज्ञान का अजीर्ण अहंकार है।

—अज्ञात

ज्ञानियांचे घरीं चोजवितां देव। तेथें अहंभाव पाठी लागे।

जब मैं शुद्ध ज्ञान को खोजने चला तब देखा कि ज्ञान की पीठ पर अहंकार का भूत सवार रहता है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १५३६)

ज्ञान और आचरण

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥

अज्ञों की अपेक्षा ग्रंथ पढ़े हुए लोग श्रेष्ठ है। उनकी अपेक्षा ग्रंथों को धारण करने वाले श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा ज्ञानी श्रेष्ठ हैं। और, उनकी अपेक्षा ज्ञान को आचरण में लाने वाले श्रेष्ठ हैं।

—मनुस्मृति (१२।१०३)

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः सः उच्यते॥

जो एक शिल्पकार के समान केवल आजीविका के लिए शास्त्र पढ़ता है और उसका व्याख्यान करता है, परन्तु तदनुकूल आचरण करने का यत्न नही करता वह केवल ज्ञानबन्धु (अर्थात् नाममात्र का ज्ञानी) कहलाता है।

—योगवासिष्ठ (६।उ०।२१।३)

ज्ञान और कर्म

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

सब प्रकार के कर्मों का पर्यवसान ज्ञान में ही होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।३३ अथवा गीता, ४।३३)

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते।

ज्ञानरूप अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।३७ अथवा गीता, ४।३७)

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानाकर्माभ्यां जायते परमं पदम्॥

जैसे पक्षी आकाश में दोनों पंखों से ही उड़ते है, ऐसे ही ज्ञान और कर्म दोनों के योग से ही परम पद की प्राप्ति होती है।

—योगवासिष्ठ (१।१।७)

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो अ अंधओ॥

क्रियारहित ज्ञान और ज्ञानरहित क्रिया सर्वथा व्यर्थ हो जाती है। जंगल में आग लगने पर चुपचाप खड़ा देखता हुआ लंगड़ा और भागदौड़ करता हुआ अंधा दोनों जलकर मर जाते है।

[प्राकृत] —आवश्यकनिर्युक्ति (१०१)

इतना जान लो कि स्वर्ग का जितना अधिकार वेदों के ज्ञाता को है उतना ही अधिकार भंगी का काम करने वालों को है। किन्तु यदि वेदों का ज्ञाता कोरा पण्डित या पाखण्डी हो तो वह चाहे जितना बड़ा विद्वान क्यों न हो, फिर भी नरक में पड़ेगा और भंगी 'ब्रह्म' शब्द न जानते हुए भी यदि ईश्वरार्पण बुद्धि तथा सेवा-भाव से रोज़ पाख़ाना साफ़ करे तो अवश्य ऊँचा उठ जायेगा।

—महात्मा गांधी (पत्र : गंगा बहन वैद्य को १६-६-१६३२)

ज्ञान और चिंतन

चिंतन-रहित ज्ञान निरर्थक है और ज्ञान-रहित चिंतन खतरनाक है।

—कन्फ़्यूशस

ज्ञान और धन

अर्थात् पलायते ज्ञानम्।

धन से ज्ञान दूर भागता है।

—मयूराक्ष (नीतिसार, २१७)

ज्ञान और बुद्धि

ता बूद दिलम् जे इश्क़ महरूम न शुद,
कम बूद जे असरार कि मफ़हूम न शुद।
अकनूँ कि हमी बिनगरम् अज़ रूए खिरद,
मालूमम् शुद कि हेच मालूम न शुद।

जब तक मेरा हृदय उसके प्रेम में पागल था, तब तक मैं वंचित नहीं था और उसका हर भेद मुझ पर प्रकट था। अब जब मैं बुद्धि से देखता हूँ तो मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं था।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, २६३)

Knowledge is proud that he has learn'd so much; Wisdom is humble that he knows no more.

ज्ञान को अहंकार होता है कि उसने इतना अधिक जान लिया है परन्तु बुद्धिमत्ता विनम्र होती है कि वह और अधिक नहीं जानती।

—विलियम कूपर (दि टास्क, सर्ग ६)

The seat of knowledge is in the head; of wisdom, in the heart. We are sure to judge wrong if we do not feel right.

ज्ञान का स्थान मस्तिष्क और बुद्धिमत्ता का स्थान हृदय में है, यदि हम अनुभव नहीं करते तो निश्चित ही ग़लत मूल्यांकन करेंगे।

—हैज़लिट (कैरेक्टरिस्टिक्स, ३८०)

ज्ञान और भक्ति

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ।
भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।४५।२)

ज्ञान और सौन्दर्य

अरिविन् वेळिच्चमे,
दूरेप्पो, दूरेप्पो ! नी
वेरुते सौन्दर्यते
क्काणुन्न कण् पोट्टिच्चु।

ज्ञान की ज्योति, तू हट जा, हट जा। तूने मेरी सौन्दर्य-दर्शक आँखें फोड़ दीं।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (ओटक्कुरल)

ज्ञान-कर्म-इच्छा

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, रहस्य सर्ग)

ज्ञान-कर्म-भक्ति

हमारी बुद्धि में ईश्वर के अवतरण का नाम ज्ञान है। हमारी प्रीति में ईश्वर के अवतरण का नाम भक्ति है। हमारे हाथ में ईश्वर के अवतरण का नाम कर्म है।

—अखंडानंद सरस्वती (कर्मयोग, पृ० ६)

ज्ञान-दान

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

ज्ञानदान सभी दानों से बढ़कर है ।

—मनुस्मृति (४।२३३)

ज्ञान-प्राप्ति

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

प्रणाम, विवेक के साथ प्रश्न और गुरु की सेवा करने से तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी तुझे ज्ञान का उपदेश करेंगे, उनसे उस ज्ञान को तू जान ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २८।३४ अथवा गीता, ४।३४)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

जितेन्द्रिय, तत्पर और श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है । ज्ञान प्राप्त हो जाने से शीघ्र ही उसको परम शान्ति प्राप्त हो जाती है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २८।३९ अथवा गीता, ४।३९)

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥

कुशल व्यक्ति छोटे-बड़े शास्त्रों के सब प्रकार वैसे ही सार ग्रहण करे जैसे भौंरा फूलों से करता है ।

—भागवत (११।८।१०)

उजु रे उजु छाड़ि मा लेहुरे बंक ।
निअडि बोहि मा जाहुरे लंक ॥

अरे सरल मार्ग को छोड़ कर कुटिल मार्ग को ग्रहण मत करो । ज्ञान निकट है, कहीं दूर मत जाओ ।

[अपभ्रंश] —सरहपा

वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है ।

—दयानन्द सरस्वती (सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

राम कहो, राम सुनो और कुछ न कहो, कुछ न सुनो । सतत अभ्यास से तुम्हारी साँस-साँस में यह गूँज भर जाएगी और फिर अपने आप ही तुम्हें अपने सारे अध्ययन और पांडित्य का खरा अर्थबोध हो जाएगा ।

—अमृतलाल नागर (मानस का हंस, पृ० ०१)

शास्त्र-गुरु-उपदेश-क्रम राम
व्यवस्था-मात्र-पालन ।
केवले शिष्यर शुध बुद्धि मात्र
ज्ञानर होवे कारण

हे राम ! शास्त्र और गुरु के उपदेश का क्रम तो व्यवस्था का पालन मात्र है । शिष्य की शुद्ध बुद्धि ही ज्ञान-प्राप्ति का कारण है ।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, १५।९६।२५३)

शास्त्र-गुरुसवे शिष्यक कृपाये
शुध उपदेश दिव ।
शिष्यसवे शुधभावे नधरिले
तारासवे कि करिब ।

शास्त्र और गुरु दोनों शिष्य को दयापूर्वक उपदेश देंगे परन्तु शिष्य ने उसे शुद्ध भाव से नहीं लिया तो गुरु और शिष्य क्या करेंगे ?

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, १५।९६।२५५)

I keep six honest serving-men
(They taught me all I knew);
Their names are What and Why and When,
And How and Where and Who.

मेरे पास छह ईमानदार सेवक है । जो कुछ मैं जानता हूँ वह सब उन्होंने ही सिखाया । उनके नाम है—क्या, क्यों, कब, कैसे, कहाँ और कौन ।

—रुडयार्ड किपलिंग (दि एलिफेंट्स चाइल्ड, जस्ट-सो स्टोरीज़)

ज्ञान-योग

अणुः पन्था विततः पुराणः ।

यह ज्ञान-मार्ग सूक्ष्म, विस्तीर्ण और प्राचीन है ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (४।४।८)

क्षेत्रक्षेत्रयोर्ज्ञानं यत् तज्ज्ञानं मतं मत ।

जो क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान है, वही ज्ञान है, यही मेरा (श्री कृष्ण का) मत है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३७।२ अथवा गीता, १३।२)

ज्ञान योग सो जानिहै, जाको अनुभव होइ ।
कहैं सुनैं कहा होत है, जब लग भासत दोइ ।।

—सुन्दरदास (सर्वांगयोगप्रदीपिका)

ज्ञानयोग सर्वोच्च किन्तु कठिनतम योग है । इसको बुद्धि के द्वारा तो बहुत लोग ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु उसकी सिद्धि बहुत कम लोग कर पाते हैं ।

—विवेकानन्द ('योग के चार मार्ग' लेख)

ज्ञानी

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

ज्ञानी हृदय गुहा में स्थित उस सत् को देखता है जिसमें यह विश्व एक घोंसला जैसा हो जाता है ।

—यजुर्वेद (३२।८)

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिमर्थनाभ्यासात्पापं दहति पंडितः ।।

आत्मा को नीचे की अरणि तथा प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान-मन्थन के अभ्यास द्वारा पाप को जला डालता है ।

—कैवल्योपनिषद् (श्लोक ११)

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
यत्र तत्र स्थितो ज्ञानी परमाक्षरवित् सदा ।।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, कोई भी हो और वह कहीं भी रहता हो, परम अक्षर तत्त्व को जानने वाला सदैव ज्ञानी ही होता है ।

—ब्रह्मविद्योपनिषद् (श्लोक ४९)

एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा
ज्ञाने तिष्ठन् न बिभेतीह मृत्योः ।
विनश्यते विषये तस्य मृत्यु-
र्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ।।

इस प्रकार मोह से होने वाली मृत्यु को जानकर जो ज्ञान-निष्ठ हो जाता है, वह इस लोक में मृत्यु से कभी नहीं डरता । उसके समीप आकर मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्यु के अधिकार में आया हुआ मरणधर्मा मनुष्य ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ४२।१६)

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ।

ज्ञानी लोग मृतकों अथवा जीवितों के लिए शोक नहीं करते ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।११ अथवा गीता, २।११)

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।।

हे अर्जुन ! गुण-विभाग और कर्म-विभाग के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानी पुरुष संपूर्ण गुण गुणों में बरतते हैं, ऐसे मानकर आसक्त नहीं होता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २७।२८ अथवा गीता, ३।२८)

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ।।

जो ब्राह्मण और चांडाल में, चोर और सदाचारी ब्राह्मण में, सूर्य और चिनगारी में तथा कृपालु और क्रूर में समदृष्टि रखता है, उसे ज्ञानी मानना चाहिए ।

—भागवत (११।२९।१४)

क्वचिद् भुक्त्वा यत्तत् वसनमपि यत्तत् परिहितो
वसन्नात्मारामः क्वचन विजने योऽभिरमते ।
कृतार्थः स ज्ञेयः शमसुखरसज्ञः कृतमतिः
परेषां संसर्गं परिहरति यः कंटकमिव ।।

जहाँ-कहाँ भी जो कुछ खाकर, जैसा-तैसा वस्त्र पहन कर, जहाँ-कहाँ भी रहकर, जो आत्मतुष्ट रहता है, निर्जन स्थान में रहता है, और दूसरों के संसर्ग को ऐसे त्यागता है, जैसे काँटे को, वह बुद्धिमान शान्ति-सुख के रस को जानता है और वही ज्ञानी है ।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १४।५०)

निन्दितः स्तूयमानो वा विद्वानज्ञैर्न निन्दति।
न स्तौति किंतु तेषां स्याद् यथाबोधस्तथाचरेत् ॥

विद्वान अज्ञानी पुरुषों से निन्दा या स्तुति पाकर भी स्वयं न तो निन्दा करता है, न ही स्तुति। अपितु उनको जिससे ज्ञान प्राप्त हो वैसा ही आचरण करता है।

—विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ७।२८६)

येनायं नटनेनात्र बुध्यते कार्यमेव तत्।
अज्ञप्रबोधान्नैवान्यत् कार्यमस्त्यत्र तद्विदः ॥

इस अज्ञानी को, इस लोक में जिस आचरण से तत्त्व-बोध हो, वह आचरण ज्ञानी करता है। क्योंकि ज्ञानी का, अज्ञानी को बोध देने के अतिरिक्त और कुछ कर्त्तव्य नहीं है।

—विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ७।२९०)

यदूनकं तं सणति, यं परं संतमेव तं।
अड्ढकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो व पंडितो ॥

जो अपूर्ण है, वह आवाज़ करता है, और जो पूर्ण है वह शांत रहता है। मूर्ख अधभरे जलघट के समान है और पंडित लबालब भरे जलाशय के समान।

[प्राकृत] **—सुत्तनिपात (३।३७।४३)**

जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ॥

जो अपने अन्दर को जानता है, वह बाहर को भी जानता है। जो बाहर को जानता है, वह अन्दर को भी जानता है।

[प्राकृत] **—आचारांग (१।१।४)**

सुत्ता अमुणी, मुणियो सया जागरन्ति।

अज्ञानी सदा सोते रहते है, ज्ञानी सदा जागते रहते हैं।

[प्राकृत] **—आचारांग (१।३।१)**

धान को गाँव पयार तें जानिय
ग्यान विषय मन मोरें।

जिस गाँव में धान होता है, उसका पता पुआल देखने से ही लग जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति में ज्ञान कितना है, इसका पता इससे लग जाता है कि उसका मन विषयों से कितना मुड़ा हुआ है।

—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, पद ४४)

देह प्राण को धर्म यह, शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है, ज्यों अलिप्त आकास ॥

—सुन्दरदास (पंच प्रभाव, पृ० २९)

कोटिक पोथी पढ़ि मरे, पंडित भा नहि कोइ।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ ॥

—जायसी (चित्ररेखा)

विविध कोणों से एक ही सत्य को देखा, परखा और अनुभव किया जा सकता है। इसलिए इन विविधताओं के सामंजस्य के द्वारा जो सम्पूर्ण का आकलन करने की शक्ति रखता है, वही तत्त्वदर्शी है, वही ज्ञाता है।

—दीनदयाल उपाध्याय

ज्ञानी विषय है भोगता, करता न उनमें राग है।
निस्संग होकर भोग हो, यह भोग में भी त्याग है।

—भोले बाबा (वेदान्त छन्दावली, भाग २)

कोई फँसा है भोग में, कोई लगा है योग में।
लगता नहीं है योग में, फँसता नहीं है भोग में।
निर्वासना निज तत्त्व में, करता सदा विश्राम है।
'भोला'! वही नर धीर है, पंडित उसी का नाम है।

—भोले बाबा (वेदान्त छन्दावली, भाग २)

मूरख मारे लट्ठ से, ऊपर ही दरसाय।
ज्ञानी मारे ज्ञान से, रोम रोम छिद जाय ॥

—अज्ञात

मूढ़ जॉनिथ पॅशिथ ति कोर,
कोल श्रुतवोन जड़ रीफ आस्।
यूस यि दपी तस ती बोल,
योहय तत्व-व्यदिस छु अभ्यास ॥

जानते हुए भी मूढ़ बन। देखते हुए भी चक्षुहीन बन। सुनते हुए भी गूँगा बन। जड़ रूप धारण कर। जो तुझसे जो कुछ कहे, उसको वही बात कह दे। तत्त्वविद् का यही अभ्यास है।

[कश्मीरी] **—लल्लेश्वरी (लल्लवाख)**

ज्ञानि चेसिन कर्मंबु वानिकेमि
कार्य मोसगदु लोकोपकारमगुनु ॥

ज्ञानी जो कर्म करता है उस कर्म से उसका कोई लाभ नहीं होता है। उससे लोक-कल्याण होता है।

[तेलुगु] —पानुगंटि (राधाकृष्ण)

किसी के कहे बिना हृदय की बात को समझ लेने वाले से दूसरे व्यक्ति, सम्पत्ति में समान होने पर भी, बुद्धि के कारण विभिन्न ही ठहरते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ७०४)

एक सामान्य व्यक्ति विचारों का दास है जबकि एक ज्ञानी अपने विचारों का सम्राट है।

—शिवानन्द सरस्वती (दिव्योपदेश, ९।४२)

जो दूसरों को जानता है वह जानकार है, जो अपने आपको जानता है वह ज्ञानी है।

—लाओ-त्स (पथ का प्रभाव, पृ० ४४)

मैं उनसे बोलता हूँ जो जानते हैं और उनकी अवहेलना कर देता हूँ जो नहीं जानते हैं।

—एस्किलस

ज्योति

दे० 'प्रकाश' भी।

ज्योतिषां रविरंशुमान्।

मैं (श्री कृष्ण अर्थात् परमात्मा) ज्योतियों में सूर्य हूँ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३४।२१ अथवा गीता, १०।२१)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः।

वह परमात्मा ज्योतियों की भी ज्योति है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३७।१७ अथवा गीता, १३।१७)

फोडुनि पणत्या ज्योतितत्व कां जाई जगतांतुनी।

क्या दीपकों को तोड़ देने से ज्योति-तत्त्व दुनिया से चला जाता है।

[मराठी] —यशवन्त दिनकर पेंढरकर (कवि श्री माला, पृ० ४०)

झ

झंडा

दे० 'ध्वज'।

झगड़ा

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं कलह सुखनि को सूल।

—नागरीदास

हानि दोनों ओर की होती कलह में सर्वथा।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, पृ० ५३)

सूत न कपास जुलाहे से लठ्ठम-लठ्ठा।

—हिन्दी लोकोक्ति

एक हाथ से ताली नहीं बजती।

—हिन्दी लोकोक्ति

मित्रों के झगड़े शत्रुओं के सुअवसर होते हैं।

—ईसप (नीतिकथा 'सिंह और बैल' की शिक्षा)

अधिकांश झगड़े ग़लतफ़हमी का बढ़ावा मात्र होते हैं।

— आन्द्रे जीद (जर्नल्स, १९२०)

झगड़े में धनी व्यक्ति अपने मुख को बचाना चाहता है और निर्धन व्यक्ति अपने कोट को।

—रूसी लोकोक्ति

जब दो लोग झगड़ते हैं दो दोनों ग़लती पर होते हैं।

—डच लोकोक्ति

लोग गूदे की अपेक्षा छिलके पर ज्यादा झगड़ते है।

—जर्मन लोकोक्ति

Beware
Of entrance to a quarrel, but, being in,
Bear't that the opposed may beware of thee.

झगड़े में पड़ने से बचो परन्तु यदि उसमें पड़ ही जाओ तो ऐसा करो कि विपक्षी तुमसे भयभीत हो जाए।

—शेक्सपियर (हैमलेट, १।३)

It takes in reality only one to make a quarrel. It is usless for the sheep to pass resolutions in favour of vegeterianism, while the wolf remains of a different opinion.

वास्तव में झगड़ा खड़ा करने के लिए एक व्यक्ति ही पर्याप्त होता है। भेड़ों का शाकाहारवाद के पक्ष में प्रस्तावों को पारित करना निरर्थक ही है जबकि भेड़िया भिन्न मत का बना रहे।

—विलियम रॉल्फ़ इंग (आउटस्पोकिन एसेज, भाग १, पैट्रियोटिज्म)

झुकना

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमत्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्।

जो मस्तक कभी श्रीकृष्ण (भगवान) के लिए न झुके, वह रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित और मुकुटमंडित होने पर भी भारी बोझ ही है।

—भागवत (२।३।२१)

Better bend than break.

टूटने की अपेक्षा झुकना अच्छा है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

झूठ

दे० 'असत्य'।

ट

टालमटोल

यस्य किंचिन्न दातव्यं तस्य देयं किमुत्तरम् ।
अद्य सायं पुनः प्रातः सायं प्रातः पुनः पुनः ।।

जिसको कुछ नहीं देना हो उसे क्या उत्तर चाहिए? आज सायं, फिर प्रातः, फिर सायं, फिर प्रातः ।

—अज्ञात

आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आज ही काल्हि करंतड़ां, औसर जासी चालि ।।

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ७२)

कुछ इशारा जो किया हमने मुलाक़ात के वक़्त
टालकर कहने लगा दिन है अभी, रात के वक़्त ।

—इन्शा

देर करना सदैव ख़तरनाक है और किसी भव्य योजना को टालते रहना प्रायः उसे नष्ट करना होता है ।

—सर्वेन्टीज़ (डॉन क्विक्ज़ोट)

भगवान कहता है आज, शैतान कहता है कल ।

—जर्मन लोकोक्ति

मूर्ख ठहरा रहता है, दिन नहीं ठहरता ।

—फ्रांसीसी लोकोक्ति

What may be done at any time will be done at no time.

जो कार्य किसी भी समय किए जाने की बात है, वह कभी भी नहीं किया जाएगा ।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

Delay not till to-morrow to be wise;
To-morow's sun to thee may never rise.

बुद्धिमान बनने के लिए आगामी कल तक टालमटोल मत करे । हो सकता है कि तुम्हारे लिए कल का सूर्य कभी-उदित ही न हो ।

—विलियम कांग्रीव (लेटर टू कोबहैम)

Life, as it is called, is for most of us one long postponement.

हममें से अधिकांश के लिए जीवन, जैसा कि उसे कहा जाता है, एक लम्बा विलम्बन ही है ।

—हेनरी मिलर (दि विज़डम आफ़ दि हार्ट, दिएनार्मस वूम)

Procrastination is the thief of time.

टालमटोल समय की चोर है ।

—एड्वर्ड यंग (नाइट थाट्स, १)

टेलीविज़न

The impact of television on our culture is just indescribable. There's a certain sense in which it is nearly as important as the invention of printing.

टेलीविज़न का हमारी संस्कृति पर पड़ा प्रभाव अवर्णनीय ही है । एक विशिष्ट भाव में तो यह लगभग इतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना मुद्रण का आविष्कार ।

—कार्ल सैंडबर्ग

I hate television. I hate it as much as peanuts. But I can't stop eating peanuts.

मैं टेलीविज़न से घृणा करता हूं । मैं इससे उतनी ही घृणा करता हूं जितनी मूंगफलियों से । परन्तु मैं मूंगफलियां खाना वन्द नहीं कर सकता ।

—आर्सन वेलेस

As a practitioner, I know that television is the most potent advertising medium ever devised and I make most of my living from it. But, as a private person, I would gladly pay for the privilege of watching it without commercial interruptions.

व्यवसायी के नाते मैं जानता हूं कि टेलीविज़न अब तक बने माध्यमों में सबसे समर्थ विज्ञापन-माध्यम है, और मैं अपनी अधिकांश जीविका इसी से अर्जित करता हूं । किंतु, व्यक्तिगत तौर पर यदि मुझे व्यापारिक व्यवधानों के बिना टेलीविज़न देखने का विशेषाधिकार मिले तो मैं उसके लिए प्रसन्नतापूर्वक धन दूंगा ।

—डेविड मेकेंज़ी ओगिल्वी

ठ

ठगना

दे० 'कपट', 'छल', 'धोखा' भी।

वंचयन्ति विदग्धा हि येन तेनापि योषितः।

चतुर पुरुष जैसी तैसी बातें बनाकर स्त्रियों को ठग लेते हैं।

—अभिनंद (रामचरित २४।१२७)

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्या सुख उपजै, और ठग्या दुख होइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८३)

वंचना के साधक पाषंड के प्रयोजन के
'चोरी' 'बटमारी' आदि शब्द ये हमारे हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (मधुस्रोत, हृदय का मधुर भार)

रोटी खाइए शक्कर से।
दुनिया ठगिए मक्कर[1] से॥

—हिंदी लोकोक्ति

ठगे जाने पर पति हो या पत्नी, उनकी भावना समान ही होती है।

—यूरीपिडीज़ (ऐंड्रोमाक)

मूल्य में ठग लो, माल में मत ठगो।

—स्पेन की लोकोक्ति

He that's cheated twice by the same man is an accomplice with the cheater.

जो व्यक्ति उसी ठग से दुबारा ठगा जाए, वह भी ठग के साथ-साथ अपराधी है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

The usual trade and commerce is cheating all round by consent.

सामान्य व्यापार और वाणिज्य सहमति से पूर्णतया ठगी है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

Every man takes care that his neighbour shall not cheat him. But a day comes when he begins to care that he do not cheat his neighbour. Then all goes well. He has changed his market-cart into a chariot of the sun.

प्रत्येक व्यक्ति यह चिन्ता करता है कि उसका पड़ोसी उसे न ठग ले। किंतु एक दिन ऐसा आता है जब वह यह चिंता करना प्रारम्भ करता है कि कहीं वह अपने पड़ोसी को न ठग ले। तब सब ठीक चलता है। अब वह अपनी बाज़ार-गाड़ी को सूर्य-रथ में परिवर्तित कर चुका है।

—एमर्सन

The first and worst of all f auds is to cheat oneself.

सब वंचनाओं में सर्वप्रथम तथा सबसे बुरी वंचना स्वयं को ठगना है।

—गेमेलियल बेले

No man is more cheated than the selfish.

स्वार्थी व्यक्ति सबसे अधिक ठगा हुआ है।

—हेनरी वार्ड बीचर (प्रावर्ब्स फ़्राम प्लाईमाउथ पालीट)

Better be a fool than a knave.

धूर्त होने से मूर्ख होना अधिक अच्छा है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

ठोकर

यूं भी पराई आग में जलना पड़े मुझे
ठोकर लगी किसी के, संभलना पड़ा मुझे।

—'गौहर' उसमानी

एहसास मर न जाए तो इन्सान के लिए
काफ़ी है एक राह की ठोकर लगी हुई।

—'एहसान' दानिश

चाहा था ठोकरों में गुज़र हो जाए जिन्दगी
लोगों ने संगे-राह[1] समझकर हटा दिया।

—'सालिक' लखनवी

---

१. मक्कारी।

१. राह का पत्थर।

ड

डर

दे० 'भय'।

डरपोक

दे० 'कायर'।

डाक्टर

दे० 'वैद्य' भी।

इनको क्या काम है मुरव्वत से
अपनी आदत से मुँह न मोड़ेंगे।
जान शायद फरिश्ते छोड़ भी दें
डाक्टर फ़ीस को न छोड़ेंगे॥

—अज्ञात

डाक्टर का उचित सम्मान करो—उन लाभों के लिए जो तुम डाक्टर से प्राप्त कर सकते हो।

—पूर्वविधान (इक्लीजिएस्टिकस, ३८।१)

God and the doctor we alike adove
But only when in danger, not before;
The danger o'er, both are alike requited,
God is forgotten, and the doctor slighted.

भगवान और डाक्टर की हम समान आराधना करते हैं, परन्तु करते तभी हैं जब हम संकट में होते हैं, पहले नहीं। संकट समाप्त होने पर दोनों की समान उपेक्षा की जाती है—ईश्वर को भुला दिया जाता है, और डाक्टर को तुच्छ मान लिया जाता है।

—जान ओवेन (एपिग्राम्स)

More needs she the divine than the physician.

उसे डाक्टर की अपेक्षा ईश्वरीय कृपा की अधिक आवश्यकता है।

—शेक्सपियर (मैकबेथ, ५।१।८१)

Every physician almost hath his favourite disease.

प्राय: हर डाक्टर की कोई अपनी बीमारी होती है।

—हेनरी फ़ील्डिंग (टाम जोन्स, २।६)

Physicians of all men are most happy; what good success soever they have, the world proclaimeth, and what faults they commit, the earth covereth.

सभी मनुष्यों के डाक्टर सबसे अधिक भाग्यवान होते हैं। जो भी सफलता उन्हें मिलती है, उसे संसार उद्‌घोषित करता है; और जो ग़लतियां करते हैं, उन्हें पृथ्वी ढंक लेती है।

—फ्रांसिस क्वार्ल्स (हाइरोग्लिफ़िक्स)

डिगाना

न तीव्रतपसां कुर्याद् धैर्यविप्लवचालनम्।
नेत्राग्निशलभीभावं भवोऽनैषीन् मनोभवम्॥

तीव्र तपस्वियों के धैर्य को डिगाने की चंचलता नही करनी चाहिए। ऐसा करने से ही कामदेव शिव की नेत्राग्नि से भस्म हो गया था।

—क्षेमेन्द्र (चारुचर्या, ५३)

डींग

जो गरजते हैं वे बरसते नहीं।

—हिन्दी लोकोक्ति

अधजल गगरी छलकत जाय।

—हिन्दी लोकोक्ति

आगामी कल के विषय में डींग मत मारो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि कल क्या लेकर आएगा।

—पुराना विधान (कहावतें, २७।१)

Such is the patriot's boast, where'er we roam.
His first, best country ever is, at home.

देशभक्त व्यक्ति सदैव यही डींग मारता है कि हम चाहें कहीं चले जाए पर सर्वोत्तम देश तो मेरा स्वदेश ही है।

—ओलिवर गोल्डस्मिथ (दि ट्रैवलर)

Where boasting ends, there dignity begins.

जहाँ डींग समाप्त होती है, वहाँ प्रतिष्ठा प्रारंभ होती है।

—एडवर्ग यंग (नाइट थाट्स, नाइट ८)

Friendship should be a private pleasure, not a public boast.

मित्रता व्यक्तिगत आनन्द होना चाहिए, न कि सार्वजनिक डींग की बात।

—जॉन मेसन ब्राउन

ढ

ढोंग

लखि सुवेष जग बंचक जेऊ।
वेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निवाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥

जो ठग हैं, उन्हें भी अच्छा वेष बनाए रखकर वेष के प्रताप से जगत् पूजता है, परन्तु एक न एक दिन उनका रहस्य खुल जाता है और निर्वाह नहीं हो पाता जैसे राहु, कालनेमि और रावण की दशा हुई।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।७।३)

मन मुरीद होवै नहीं आप कहावैं पीर।
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक़ भये फ़क़ीर॥

—पलटू साहब

पुरुष कितना बड़ा ढोंगी है बेटी। वह हृदय के विरुद्ध ही तो जीभ से कहता है। आश्चर्य है उसे सत्य कहकर चिल्लाता है।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० २५७)

घरों के भीतर अंधकार है, धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है, और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० २५८)

पुण्य का सैंकड़ों मन का धातु-निर्मित घण्टा बजाकर जो लोग अपनी ओर संसार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं, वे यह नहीं जानते कि बहुत समीप अपने हृदय तक वह भीषण शब्द नहीं पहुँचता।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० २६८)

दूध में जहर है तो हम दूध को फेंकते हैं। उसी तरह अच्छे के साथ पाखंड रूप ज़हर है तो उसे फेंको।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १६४)

चेले लावैं माँग कर, बैठा खाए महंत।
राम भजन का नाम है, पेट भरन का पंथ॥

—अज्ञात

राम नाम जपना, पराया माल अपना।

—हिंदी लोकोक्ति

उड़ता सत्तू पितरों को।

—हिंदी लोकोक्ति

गुड़ खाएं गुलगुलों से परहेज।

—हिंदी लोकोक्ति

नौ सौ चूहे खा के बिलाई चली हज को।

—हिंदी लोकोक्ति

मन मन भावै, मूंड़ी[1] हिलावै।

—हिंदी लोकोक्ति

न दीगर गिरायम् बनामे ख़ुदात
कि दीदम ख़ुदाओ कलामे ख़ुदात।

तेरे ख़ुदा का नाम लेने से मैं और धोखे का शिकार न बनूंगा। क्योंकि मैं तेरे ख़ुदा और तेरे ख़ुदा के कलाम को पहले देख चुका हूँ।

[फ़ारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, १६)

साधां की लग्गे स्वादां नाल, सणे मलाई आण दिओ।

मुझ साधु को स्वाद से क्या लेना? अच्छा, मुझे मलाई के साथ दूध देना।

—पंजाबी लोकोक्ति

१. सिर।

काम क्रोध लोभ चित्तीं । वरिवरि दाविता विरक्तो ।
तुका म्हणे शब्दज्ञानें । जग नाडियेले तेणें ॥

चित्त में तो काम, क्रोध, लोभ भरा हुआ है पर ऊपर से विरक्त बने हुए हैं। कोरे शब्द ज्ञान से संसार को धोखा दे रहे हैं।

[मराठी] —तुकाराम

एट्टकात्त काशु भंडारत्तिल् ।

खोटा पैसा मन्दिर को दान।

—मलयालम लोकोक्ति

प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवित होने पर हम सभी उससे ईर्ष्या करने में और उसके मर जाने पर उसकी प्रशंसा करने में पर्याप्त दक्ष हैं।

—मिमनेरमस

जो ढोंगी हर समय एक सा ही अभिनय किया करता है, अन्ततः ढोंगी नहीं रहता है।

—नीत्शे (ह्यूमन, आल टू ह्यूमन)

ढोंग एक लोकप्रिय दुर्गुण है। और सभी लोकप्रिय दुर्गुण गुण समझ लिए जाते हैं।

—मोलियर (डॉन जुयान)

He is a hypocrite who professes what he does not believe; not he who does not practise all he wishes or approves.

ढोंगी वह है जो उस बात का दिखावा करता है जिसमें उसका विश्वास नहीं है; वह व्यक्ति नहीं है जो उस सबको व्यवहार में नहीं लाता जिसे वह पसन्द करता है या स्वीकार करता है।

—हैज़लिट (स्केचिज़ एंड एसेज, आन फैंट एंड हिपोक्रिसी)

त

तंबाकू

जहरकी सासु दुष्ट दुलही हलाहल की,
त्रिछी की बहिन परपंच रूप साजी है।
नानी करियारे की, धतूरे की ममानी,
पितियानी वच्छनाभ की, जहान मों विराजी है।
कहे 'गंगादत्त' वह पचाव धनप्रानी औ
अफीम को जिठानी विप खोपरे की आजी है।
माहुर की मौसी महतारी सिंगिया की यह,
तमाकू दईमारी की किनने उपराजी है।।

—गंगादत्त

तकल्लुफ़

ऐ 'ज़ौक़' तकल्लुफ़ में है तकलीफ़ सरासर
आराम से वो है जो तकल्लुफ़ नहीं करता।

—ज़ौक़

ऐ 'ज़ौक़' तकल्लुफ है शराफ़त की निशानी
दहक़ाने हैं जो लोग तकल्लुफ़ नहीं करते।

—ज़ौक़

तक्र

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन् तक्रदग्धाः न प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं हिताय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः।।

मट्ठा सेवन करने वाला कभी पीड़ित नहीं होता। मट्ठे द्वारा शान्त किये गये रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते। जिस प्रकार देवताओं को अमृत हितकर है, उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्यों को मट्ठा हितकारी है।

—निघंटु

तत्त्व

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।

सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्राएं ज्ञानेन्द्रियां व कर्मेन्द्रियां तथा पांच तन्मात्राओं से स्थूल पांच भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी)—यह पच्चीस (तत्त्वों का) गण है।

—कपिल (सांख्य दर्शन, १।२६)

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१०।२)

तत्त्वज्ञान

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः।
अप्रवादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम्।।

विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियों की भोग-कामनाओं का पूर्ण सावधानी के साथ त्याग कर देना, अप्रमाद तथा अहिंसा निश्चय ही तत्वज्ञान की उत्पत्ति में कारण हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ६६।१८)

का त्वामिच्छति का च पश्यति पशो मांसास्थिभिर्निर्मिता।
नारी वेद न किंचिदत्र स पुनः पश्यत्यमूर्तः पुमान्।।

हे पशु (मनुष्य)! कौन तुझे चाहती है? कौन देखती है? मांस और हड्डी से बनी नारी तो कुछ नहीं जानती है। वह तो देखती भी नहीं है क्योंकि देखना तो अमूर्त चैतन्य का कार्य है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय, ४।१०)

इदं स्वजनदेहजातनयमातृभार्यामयं
विचित्रमिह केनचिद् रचितमिन्द्रजालं ननु।
क्व कस्य कथमत्र को भवति तत्त्वतो देहिनः
स्वकर्मवशवर्तिनस्त्रिभुवने निजो वा परः॥

सम्बन्धी, पुत्री, पुत्र, माता, पत्नी आदि विचित्रताओं से युक्त यह सम्पूर्ण संसार विचित्र है, किसी का बनाया हुआ इन्द्रजाल ही है। तत्त्वदृष्टि से वस्तुतः अपने अपने कर्मों के अधीन देहधारियों का त्रिभुवन में अपना या पराया कौन है, कहाँ है और कैसे है?

—शक्तिभद्र (आश्चर्यचूडामणि)

आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं
कुर्यात् तं च प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणा धार्यास्तत्त्वविज्ञानहेतोस्-
तत्त्वं ज्ञेयं येन भूयो न जन्म॥

आहार के लिए अनिन्दनीय कर्म करना चाहिए। आहार भी प्राण धारण करने के लिए करना चाहिए। प्राणों को तत्त्व-विज्ञान के लिए धारण करना चाहिए। तत्त्व इसलिए जानना चाहिए कि पुनर्जन्म न हो।

—अज्ञात

पढ़ै गुनै कछु समझि न परहीं, जौ लौ अनभै भाउ न दरसै।

—रैदास

कहा भयौ जे मूंड मुंडायौ, बहु तीरथ व्रत कीन्हैं।
स्वामी दास भगत अरु सेवग, जौ परम तत्त नहिं चीन्है।

—रैदास

धरनी चहुँ दिसि दौरियो, जहँ लों मन की दौर।
एक आतमा तत्त्व बिनु, अनत न पाई ठौर॥

—धरनीदास (धरनीदासजी की बानी, पृ० ४३)

बह्र यके मौज हजारां हजार
रूए यके आईना हा बेशुमार।

समुद्र एक है, परन्तु लहरें लाखों। मुख एक है और दर्पण अगणित।

[फ़ारसी] —जामी

स्रष्टा के तत्त्व को जानने की चेष्टा करो, न कि सृष्टि के तत्त्व को।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, सप्तम खंड, —पृ० ७७)

If the doors of perception were cleansed, everything would appear to man as it is, infinite.

यदि ज्ञान-प्राप्ति के द्वार स्वच्छ कर दिए जाएँ, तो मानव को प्रत्येक वस्तु जैसी है, वैसी ही, अर्थात् अनन्त, दिखाई देगी।

—विलियम ब्लेक (दि मैरिज आफ़ हेविन एण्ड हेल)

तत्त्वज्ञानी

बलं बुद्धिश्च तेजश्च दृष्टतत्त्वस्य वर्द्धते।
सवसन्तस्य वृक्षस्य सौन्दर्याद्या गुणा इव॥

जैसे वसंत ऋतु में वृक्षों की सुन्दरता तथा शोभा आदि गुण बढ़ जाते है, वैसे ही तत्त्व को जान लेने वाले मनुष्य में बल, बुद्धि और तेज बढ़ जाते हैं।

—योगवासिष्ठ (५।७६।२०)

तत्त्वज्ञानित्वं तावदवश्यमस्ति। अन्यथा देहात्ममानिनां देह एव सर्वस्वभूते धर्माद्यनुद्देशेन परार्थे त्यागस्यासंभवात्।··· तत्स्वार्थानुद्देशेन परार्थसम्पत्यै यद्यच्चेष्टितं देहत्यागपर्यन्त-मुपदेशदानादि तत्तदलब्धात्मतत्त्वज्ञानानामसम्भाव्यमेवेति। तेऽपि तत्त्वज्ञानिनः।

उसमें तत्त्वज्ञानित्व अवश्य ही है। अन्यथा देह को ही आत्मा समझने वाले को देह ही सब कुछ होता है। धर्म आदि के उद्देश्य से दूसरे के लिए उसका त्याग करना उनके लिए संभव नहीं होता है। ···इसलिए परोपकार के लिए उपदेश-दान से लेकर शरीर-त्याग पर्यन्त जितनी भी चेष्टाएँ हैं, वे बिना तत्त्वज्ञान के संभव नहीं हो सकती है, अतः वे भी तत्त्व-ज्ञानी ही हैं।

—अभिनवगुप्त (अभिनवभारती, षष्ठ अध्याय, शांत रस)

तत्त्वमीमांसक

(On a metaphysician) A blind man in a dark room—looking for a black hat—which isn't there.

(तत्त्वमीमांसक के विषय में—) अंधा व्यक्ति एक अंधेरे कमरे में उस काले टोप की तलाश करता हुआ जो वहां है ही नहीं।

—बैरन बोवेन चार्ल्स

तत्परता

यत्काले ह्य चितं कर्तुं तत्कार्यं द्रागशंकितम्।
काले दृष्टिः सुपोषाय ह्यन्यथा सुविनाशिनी॥

जिस समय में जो कार्य करना उचित हो, उसे उसी समय शंकारहित होकर शीघ्र करना चाहिए क्योंकि समय पर हुई वर्षा फ़सल की पोषक होती है, असमय की वर्षा विनाशिनी होती है।

—शुक्रनीति (१।२८६-२८७)

न हि विधिशतेनापि तथा पुरुषः प्रवर्तते यथा लोभेन।

सैंकड़ों आज्ञाओं से मनुष्य उतनी तत्परता से प्रवृत्त नहीं होता जितना लोभ से।

—अज्ञात

तथ्य

वस्तुतः ज्ञान दोमुंहा पदार्थ है। उसके एक ओर तथ्य है, दूसरी ओर सत्य। सभी तथ्य सत्य नहीं होते। ऐसा कह सकते हैं कि तथ्यों के भीतर सत्य ओत-प्रोत होकर वर्तमान रहता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार-प्रवाह)

Facts speak louder than statistics.

आँकड़ों की अपेक्षा तथ्य अधिक जोर से बोलते हैं।

—स्ट्रीटफ़ील्ड

तन्मयता

रीझि-रीझि, रहसि-रहसि, हँसि-हँसि उठे,
साँसें भरि, आँसू भरि, कहत दई दई।
चौंकि चौंकि, चकि चकि, उचकि उचकि देव,
जकि जकि, बकि बकि, परत वई वई।
दुहुन को रूप गुन दोउ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा मन मोहि मोहि मोहनमयी भई॥

—देव

पहिले ही जाय मिले गुन में स्रवन फेरि,
रूप सुधा मधि कीनो नैन हू पयान है।
हँसनि नटनि चितवनि मुसकानि सुघ-
राई रसिकाई मिलि मति पय पान है।
मोहि मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो
'हरिचंद' भेद ना परत कछू जान है।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हिय में न जान परै प्रान है कि कान्ह है॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

तप

तपो वा अग्निस्तपो दीक्षा।

अग्नि तप है, दीक्षा तप है।

—शतपथ ब्राह्मण (३।४।३।३)

तपसा वै लोकं जयन्ति।

लोकों को तप से जीतते हैं।

—शतपथ ब्राह्मण (३।४।४।२७)

तपसा चीयते ब्रह्म।

तप से ब्रह्म वृद्धि को प्राप्त करता है।

—मुंडकोपनिषद् (१।१।८)

तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत् सुखम्।

तप ही परम कल्याण का साधन है। दूसरा सारा सुख तो अज्ञान मात्र है।

—वाल्मीकि (रामायण, उत्तरकाण्ड, ८४।९)

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः।
ते तपन्ति महात्मानो, न शरीरस्य शोषणम्॥

जो मन, वाणी, कर्म और बुद्धि द्वारा पाप नहीं करते हैं, वे ही महात्मा तपस्वी हैं। शरीर सुखा देना ही तपस्या नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २००।९९)

मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं निश्चितं तपः।

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को ही निश्चित रूप से तप कहा गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २६०।२५)

तमोमूलमिदं सर्वम्।

तपस्या ही सारे जगत का मूल है।

—महाभारत (उद्योगपर्व, ४३।१३)

तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः।

वेदवेत्ता विद्वान तप से ही परम अमृत मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ४३।१३)

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को शरीर-संबंधी तप कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४१।१४ अथवा, गीता, १७।१४)

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

जो उद्वेग न करने वाला, सत्य, प्रिय और हितकारक भाषण है, और जो स्वाध्याय का अभ्यास करना है, उसको वाचिक तप कहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ४१।१५ अथवा गीता, १७।१५)

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्म-निग्रह और भावशुद्धि को मानसिक तप कहा जाता है।

— वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ४१।१६ अथवा गीता, १७।१६)

तपः श्रेष्ठं प्रजानां हि मूलमेतन्न संशयः।
कुटुम्बविधिनानेन यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

तपस्या श्रेष्ठ कर्म है। निस्सन्देह यही प्रजावर्ग का मूल कारण है परन्तु गार्हस्थ्य-विधायक शास्त्र के अनुसार इस गार्हस्थ्य-धर्म में ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ११।२१)

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

अहिंसा, सत्य बोलना, क्रूरता त्याग देना, मन और इन्द्रियों को संयम में रखना तथा सबके प्रति दयाभाव बनाये रखना इन्हीं को धीर पुरुषों ने तप माना है, शरीर को सुखाना तप नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ७९।१८)

नास्ति सत्यसमं तपः।

सत्य के समान कोई तप नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १७५।३५)

तपः संचय एवेह विशिष्टो द्रव्यसंचयात्।

अर्थ-संचय की अपेक्षा तप-संचय ही श्रेष्ठ है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ९३।४५)

तपः प्रदीप इत्याहुराचारो धर्मसाधकः।
ज्ञानं वै परमं विद्यात् संन्यासं तप उत्तमम्॥

तप परमतत्त्व का प्रकाशक प्रदीप कहा गया है। आचार धर्म का साधक है। ज्ञान परम ब्रह्म है। संन्यास उत्तम तप कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, ४७।५)

ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा।
तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञात्तपो मूलमिदं स्मृतम् ॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने तपोबल द्वारा ही इस सम्पूर्ण जगत की सृष्टि की थी। इसलिए यज्ञ के द्वारा उस अक्षय पदार्थ की प्राप्ति नही हो सकती जिसकी प्राप्ति तपस्या द्वारा हो सकती है। तपस्या ही सबका मूल है।

—मत्स्यपुराण (१४३।४१)

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः।

तपस्या से कुछ भी असाध्य नही है। यज्ञकर्म से कोई बात असम्भव नहीं है।

—ब्रह्मपुराण (१२९।५०)

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

जो दुस्तर है, जो दुष्प्राप्य है, जो दुर्गम है, और जो दुष्कर है, वह सब तप से साध्य है। तप का अतिक्रमण सभव नहीं है।

—मनुस्मृति (११।२३८)

तपसैव महोग्रेण यद्दुरापं तदाप्यते।

जो भी दुष्प्राप्य वस्तु है, वह अत्यन्त कठिन तप से ही प्राप्त की जा सकती है।

—योगवासिष्ठ

किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम्।

ऐसी क्या वस्तु है जो तपस्वियों के लिए दुष्कर है?

—भारवि (किरातार्जुनीय, १२।२९)

यत्र तपः, तत्र नियमात् संयमः।
यत्र संयमः, तत्रापि नियमात् तपः ॥

जहाँ तप है वहाँ नियम से संयम है। और जहाँ संयम है वहाँ नियम से तप है।

—निशीथचूर्णिभाष्यगाथा (३३।३२)

धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः।

यदि तपस्या असफल हुई तो बल और बल के असफल होने पर तप।

—भास (प्रतिमानाटक, ५।९)

साधने हि नियमोऽन्यजनानां
योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः।

साधन की आवश्यकता सामान्य लोगों की होती है, योगियों के तो सभी काम तप से ही पूरे होते हैं।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ५।३)

नास्ति खल्वसाध्यं नाम तपसाम्।

तपस्या से कोई भी काम असाध्य नही है।

—बाण (कादम्बरी)

तपोऽधीनानि हि श्रेयांसि उपायोऽन्यो न विद्यते।

श्रेय तप के अधीन है, इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ६।४।१०)

भोज्यं भोजनशक्तिश्च, रतिशक्तिर्वरस्त्रियः।
विभवो दानशक्तिश्च, नाल्पस्य तपसः फलम् ॥

निम्नलिखित उपलब्धियाँ महान तप के फल है—भक्ष्य पदार्थों की उपलब्धि और उनके खाने की शक्ति, श्रेष्ठ स्त्रियाँ और उनके उपभोग की शक्ति, धन की विद्यमानता और दान की शक्ति।

—चाणक्यनीति

अजीर्णं तपसः क्रोधः।

क्रोध तप का अजीर्ण है।

—अज्ञात

अन्तर्गतो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्गतो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ॥

यदि भगवान विष्णु हृदय में ही हैं, तो तप से क्या लाभ? यदि हृदय में नहीं हैं, तो तप से क्या लाभ?

—अज्ञात

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः।
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस् तेषां हि साधनम् ॥

औषधियाँ, स्वास्थ्य, विद्या और विविध दैवी स्थितियाँ तप से ही सिद्ध होती है—तप ही उनका साधन है।

—अज्ञात

असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो।

तप का आचरण तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१९।३८)

साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौं लहि साध न तप्प।
सोई जानहिं बापुरो जो सिर करहिं कलप्प।

—जायसी (पद्मावत, १२३)

तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।७३।१)

तप बलु रचइ प्रपंचु विधाता।
तप बल विष्णु सकल जगत्राता॥
तप बल संभु करहिं संहारा।
तप बल सेसु धरइ महिभारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।७३।२-३)

सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस १।१६३।१)

तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा।

—तुलसी (रामचरितमानस, १।१६३।२)

बिनु तप तेज कि कर विस्तारा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।क)

अस तप[1] सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ।

—तुलसीदास (पार्वतीमंगल, २४)

नारी तज बन तप करै, तप तज करै जु नार।
ए दोनों नरकहिं परैं, कहि 'अनन्य' निर्धार॥

— अक्षर अनन्य (निर्धारशतक)

तपस्या में क्षय पहले है और अक्षय पीछे।

—वृन्दावनलाल वर्मा (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ४४५)

१. पार्वती का शिव-प्राप्ति के लिए तप।

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल
तप रे विधुर-विधुर मन!

—सुमित्रानंदन पंत (आधुनिक कवि)

तपस्या जीवन की सबसे बड़ी कला है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १०-२-१९२४)

तपस्या धर्म का पहला और अन्तिम चरण है।

—महात्मा गांधी (भड़ौंच में भाषण, २०-१०-१९१७)

निश्चय ही अभाव में आनन्दानुभव करना तप है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी' (शपथ, १०)

काम नहीं, तप है जीवन में मंत्र महत्तम जय का,
तप से करो शक्ति का साधन, तप ही मंत्र अभय का।

—रामानन्द तिवारी (पार्वती, पृ० १२५)

तप से हुआ क्या लाभ जब दुष्कर्म में ही लीन हो।

—श्यामनारायण पाण्डेय (वशिष्ठ, पृ० ६६)

असरारे हक़ीक़त न शवद हल बसवाल,
नै नेज़ बदरबाख़तन नेमत व माल,
ता जाँ न कुनी ख़ूँ न ख़ुरी पंजह साल,
अज़ क़ाले तुरा रह न नुमायद बहाल।

हक़ीक़त (भगवान) के भेद पूछने से ज्ञात नहीं हो सकते और न धन-दौलत व्यय करने से ही। जब तक तपस्या में ५० वर्ष तक अपनी जान को नहीं खपाएगा और अपना रक्त स्वयं नहीं पिएगा, तब तक यह तेरा शरीर वहाँ तक नहीं पहुँच सकता।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रूबाइयात, ४९४)

तप म्हणजे नव्हे स्नान। तप म्हणजे नव्हे दान।
तप नव्हे शास्त्राख्यान। वेदाध्ययन नव्हे तप।
तप म्हणजे नव्हे योग। तप म्हणजे नव्हे याग।
तप म्हणजे वासना-त्याग। जेणें तुटतो लाग काम-क्रोधाचे।

स्नान करने, दान देने, शास्त्र पढ़ने, वेदाध्ययन करने को तप नहीं कहते। न तप योग ही है और न यज्ञ करना। तप का अर्थ है वासना को छोड़ना, जिसमें काम-क्रोध का संसर्ग छूटता है।

[मराठी] —एकनाथ

तपस्या में उमंग सहित लीन व्यक्ति के लिए यम पर विजय प्राप्त करना भी सम्भव है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २६९)

संसार में धनी अधिक न होने का कारण यही है कि तपस्वी कम हैं और तपस्या न करने वाले अधिक।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २७०)

तपस्वी

भवत्यचलं तत्सङ्गाद् विषयोत्पत्तिराशु वै
विनश्यति च वैराग्यं ततो भ्रश्यति सत्तपः।
अतस्तपस्विना शैल न कार्या स्त्रीषु संगतिः
महाविषयमूलं सा · ज्ञानवैराग्यनाशिनी॥

हे पर्वतराज! स्त्री के संग से मन में शीघ्र ही विषय-वासना उत्पन्न हो जाती है। उससे वैराग्य नष्ट होता है और वैराग्य न होने से पुरुष उत्तम तपस्या से भ्रष्ट हो जाता है। इसीलिए हे पर्वतराज! तपस्वी को स्त्रियों का संग नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह विषय-वासना की महान जड़ एवं ज्ञान-वैराग्य का विनाश करने वाली होती है।

—शिवपुराण (रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड)

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुपयः पिबन्ति शकुना निश्शंकमंकेशयाः।

गिरिकन्दराओं में निवास करने वाले, परम ज्योति का ध्यान करने वाले मनुष्य धन्य हैं, जिनके आनंदाश्रुओं को उनकी गोद में विश्राम करते हुए पक्षी निःशंक होकर पीते हैं।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ६।१)

तमोगुण

दे० 'त्रिगुण'।

तर्क

तर्काप्रतिष्ठया साम्यादन्योन्यस्य व्यतिघ्नताम्।
नाप्रामाण्यं मतानां स्यात् केषां सत्प्रतिपक्षवत्॥

तर्क की प्रकृति अस्थिर होने के कारण क्या ऐसा मत है जो आपस में एक दूसरे के विरुद्ध होकर शक्ति में समान होने से सत्प्रतिपक्ष के समान, अप्रामाणिक न हो?

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, १७।७८)

अतिशय तर्क वितर्क से बुद्धि तेजस्वी नहीं बनती, तीव्र भले ही होती हो।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २४-११-१९२९)

आत्मा तर्क से परास्त हो सकती है, पर परिणाम का भय तर्क से दूर नहीं होता। वह पर्दा चाहता है।

—प्रेमचंद (सेवासदन, परिच्छेद १)

जो भाव इन्द्रियगम्य नहीं है, वहां तर्क कभी सफल नहीं होता।

—काका कालेलकर

किसी लकीर को मिटाए बिना छोटी बना देने का उपाय है, बड़ी लकीर खींच देना। क्षुद्र अहमिकाओं और अर्थहीन संकीर्णताओं की क्षुद्रता सिद्ध करने के लिए तर्क और शास्त्रार्थ का मार्ग कदाचित् ठीक नहीं है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १२३)

नै दर हर सुख़ुन करदन रवा' स्त।
ख़ताये बुर्जुगां गिरिफ़्तन् ख़ता' स्त।

हर बात में बहस करना उचित नहीं है। बड़ों की ग़लती पकड़ना ग़लती है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

सिह चीज बे सिह चीज पायदार न मानद। माल बे तिजारत, व इल्म बे बहस, व मुल्क बे सियासत।

तीन चीज़ें बिना तीन चीज़ों के स्थिर नहीं रहतीं—व्यापार के बिना धन, तर्क के बिना विद्या और राजनीति के बिना देश।

[फ़ारसी] — शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

हदीसे मुतरिबो मय् गो, वराजे दह् कमतर जो
कि कस न कुशद व न कुशायद, बहिकमत ईं मुअम्मा रा।

वीणा और मधु की बात कहकर रहस्यों को मत पूछ।
सृष्टि के भेदों को तर्कों से कोई समझ नहीं पाया।

[फ़ारसी] —अज्ञात

तर्क में कोई प्रेरक शक्ति नहीं है, वह तो मानो घटना घटित हो जाने के बाद जुगाली करने के समान है। तर्क तो मानव के कार्य-कलाप का एक इतिहासकार मात्र है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७)

संसार की सारी चीजें सफ़ाई और गवाही को साथ लेकर नहीं आती, इसलिए यदि उन्हें व्यर्थ समझ कर छोड़ दिया जाए तो हमें बहुत सी चीजों से वंचित रहना पड़ेगा।

— शरत्चन्द्र (चरित्रहीन)

वाक्यों की झड़ी, तर्कों की धूलि और अंधबुद्धि—ये सब आकुल-व्याकुल होकर लौट जाती हैं। किन्तु विश्वास तो अपने अन्दर ही निवास करता है। उसे किसी प्रकार का भय नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य, ११)

जिस प्रकार शरीर में दृष्टि है, उसी प्रकार आत्मा में तर्क है।

—अरस्तू (निकोमैकियन एथिकस)

कोरा तर्क अक्सर जीवन पर एक व्यर्थ भार बन जाता है। यह भावनाओं को कुचलकर मनुष्य को केवल मशीन का पुर्जा बना देता है।

—हम्फ्री

हृदय व आत्मा से शून्य बुद्धि व शरीर केवल हड्डियों का एक ढांचा है। कोरी बुद्धि और तर्क से हम सृष्टि के रहस्यों को नहीं समझ सकते।

—सैमुएल स्माइलस (कर्त्तव्य, पृ० २१)

A mind all logic is like a knife all blade.
It makes the hand bleed that uses it.

तर्क ही तर्क वाली बुद्धि वैसी है जैसे धार ही धार वाला चाकू। उससे वह हाथ रक्तरंजित हो जाता है जो उसका प्रयोगकर्ता होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रेवर्ड्स, १९३)

Strong reasons make strong actions.
सशक्त तर्क सशक्त कार्यों के जनक हैं।

—शेक्सपियर (किंग जॉन, ३।४)

I have no other but a woman's reason;
I think him so, because I think him so.

मेरे पास नारी-तर्क के अतिरिक्त कोई अन्य तर्क नहीं है अर्थात् यह कि मैं उसे ऐसा मानती हूँ। क्योंकि मैं उसे ऐसा मानती हूं।

—शेक्सपियर (दि टू जेण्टिलमैन आफ़ वेरोना, १।२)

He reminds me of the person who murdered his parents, and when sentence was about to be pronounced, pleaded for mercy on the ground that he was an orphan.

वह मुझे उस मनुष्य का स्मरण कराता है जिसने अपने माता-पिता की हत्या की और जब दंड की घोषणा की ही जाने वाली थी तो अनाथ होने के आधार पर दया की याचना की।

—अब्राहम लिंकन (ग्रास द्वारा अंकित एक कथन)

Passion and prejudice govern the world, only under the name of reason.

भाव और पूर्वाग्रह विश्व पर शासन करते हैं, केवल तर्क के नाम पर।

—रेवरेंड जान टोजले (पत्र जोसफ़ बेन्सन को, ५ अक्तूबर १७७०)

तलवार

कढ़िकैं निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
लोगन को देखि दास आनंद पगति है।
दौरि दौरि जहीं तहीं लाल करि डारति है
अंक लगि कंठ लगिबे को उमगति है।
चमक झमक वारी, ठमक जमक वारी,
रमक तमक वारी जाहिर जगति है।
राम! अरि रावरे की रन में नरन में,
निलज वनिता सी होरी खेलन लगति है।।

—भिखारीदास

तेरी समसेर की सिफत सिंह रनजोर
लखी एकै साथ हाथ अरिन के सीस पर।
—भान कवि (नरेन्द्र भूषन)

बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघु गात।
त्रिभुवन में न समात पै सुजस तासु अवदात॥
—वियोगी हरि (वीर सतसई, द्वितीय शतक—४९)

है जहाँ खड्ग सब पुण्य वहीं बसते हैं।
—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा)

तलवार पुण्य की सखी, धर्म पालक है,
लालच पर अंकुश कठिन, लोभ-सालक है।
असि छोड़, भीरु बन जहाँ धर्म सोता है,
पातक प्रचंडतम वहीं प्रकट होता है।
—रामधारीसिंह 'दिनकर'
(परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४)

तलवारें सोतीं जहाँ बन्द म्यानों में,
क़िस्मतें वहाँ सड़ती हैं तहख़ानों में।
—रामधारीसिंह 'दिनकर'
(परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४)

क्षण इधर गई, क्षण उधर गई
क्षण चढ़ी बाढ सी उतर गई।
था प्रलय, चमकती जिधर गई
क्षण शोर हो गया किधर गई॥
—श्यामनारायण पाण्डेय (हल्दी-घाटी, द्वादश सर्ग)

What frees the slave?
The sword!
What cleaves in twain
The despot's chain
And makes his gyves and dungeons vain?
The sword!

दास को मुक्ति कौन दिलाता है? तलवार! तानाशाह की ज़ंजीर के दो टुकड़े कौन करती है और उसकी बेड़ियों व कालकोठरियों को व्यर्थ कौन करती है? तलवार!
—जे० माइकेल बैरी ('दि सोर्ड')

ताजमहल

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन!
स्फटिक सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित जन!
—सुमित्रानंदन पंत (रश्मिबंध, ताज)

शव को दें हम रूप रंग आदर मानव का
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का?
युग-युग के मृत आदर्शो के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किये हुए घर।
—सुमित्रानंदन पंत (रश्मिबंध, ताज)

एक शहंशाह ने बनवा के हसी ताजमहल
हम ग़रीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक़।
—अज्ञात

जब शहंशाह भी हो, इश्क़ भी हो, दौलत भी
तब कहीं जाके कोई ताजमहल बनता है।
—अज्ञात

एक विन्दु नयनेर जल
कालेर कपोलतले शुभ्र समुज्ज्वल
ए ताजमहल

काल के कपोल तल पर शुभ्र समुज्ज्वल एक विन्दु नयन-जल।
[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (वलाका,'शाहजहाँ' कविता)

ताड़ना

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम्॥

दुर्जन, शिल्पी, दास, दुष्ट ढोल तथा स्त्रियाँ ताडित होने पर मृदु होते हैं। वे सत्कार योग्य नही हैं।
—गर्गसंहिता

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

बालकों का लाड़ करने में दोष हैं और ताड़ना करने में बहुत गुण हैं। अतः पुत्र व शिष्य की ताड़ना करते रहना चाहिए, उनका लाड़ नहीं लड़ाना चाहिए।
—अज्ञात

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।५९।३)

जनो अस्पो पिसरह चहारह ग़ुलाम
गुनह बेगुनह कफ़्स बायद मुदाम।

स्त्री, घोड़े, पुत्र और दास को अपराधी-निरपराधी कोड़े लगाने चाहिए।

[फ़ारसी] —शेख सादी

धबके भैंस दुध देय, धबके छोरुं छानुं रहे।
धबके जार बाजरी, धबके नार पाधरी॥

मार से भैंस दूध देती है। मार से बच्चे शान्त रहते हैं। मार से ज्वार-बाजरा साफ होता है। मार से नारी सीधी होती है।

[गुजराती] —लोकोक्ति

तानाशाह

Dictators ride to and fro upon tigers which they dare not dismount. And the tigers are getting hungry.

तानाशाह बाघों पर सवार होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। उनसे उतरने का साहस उनमें नहीं होता और बाघ भूखे होते जा रहे हैं।

—विंस्टन चर्चिल (व्हाइल इंग्लैंड स्लेप्ट)

The dictator, in all his pride, is held in the grip of his party machine. He can go forward, he cannot go back···All strong without, he is all-weak within.

दर्पयुक्त तानाशाह अपने दल के यंत्र के चंगुल में जकड़ा हुआ होता है। वह आगे जा सकता है, परन्तु वापस नहीं जा सकता।···वह बाहर से पूर्ण शक्तिशाली होता हुआ भी अन्दर से पूर्ण दुर्बल होता है।

—विंस्टन चर्चिल (रेडियोभाषण, १६ अक्तूबर १९३८)

तानाशाही

Whatever crushes individuality is despotism, by whatever name it may be called.

वैयक्तिकता को जो भी कुचले, वह तानाशाही है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए।

—मिल (आन लिबर्टी, अध्याय ३)

Dictatorship breeds violence
तानाशाही हिंसा को जन्म देती है।

—रिचार्ड निक्सन (वाशिंगटन नेशनल प्रेस क्लब में २१ मई १९५८ का भाषण)

तारतम्य

अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते।
उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति।

नीचे की ओर (अपने से छोटों की ओर) देखने से किसकी महिमा नहीं बढ़ जाती? ऊपर (अपने से बड़ों की ओर) देखने पर सभी दरिद्र हो जाते हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।२)

तारा

रात समय वह मेरे आवे। भोर भए वह घर उठ जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा। ऐ सखी साजन, ना सखी तारा॥

—अमीर खुसरो (मुकरियां, १६२)

पश्चिम नभ में हूं रहा देख
उज्ज्वल, अमंद नक्षत्र एक!
अकलुप, अनिन्द्य नक्षत्र एक, ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,
उर में ही दीपित अमर टेक!
किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप वह लिये हुए किसके समीप
मुक्तालोकित ज्यों रजत सीप!

—सुमित्रानंदन पंत ('सान्ध्य तारा' कविता)

यह परवशता या निर्ममता?
निर्बलता या बल की क्षमता?
मिटता एक, देखता रहता दूर खड़ा, तारक-दल सारा,
देखो, टूट रहा है तारा!

—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० ४४)

Ye stars! that are the poetry of heaven!
ओ नक्षत्रों! तुम जो आकाश की कविता हो!

—बायरन (चाइल्ड हेरॉल्ड, ३।८८)

Twinkle, twinkle, little star,
How I wonder what you are !
Up alone the world so high,
Like a diamond in the sky.

हे छोटे तारे ! झिलमिलाते रहो, झिलमिलाते रहो। मैं आश्चर्य करता हूं कि संसार से इतनी अधिक ऊँचाई पर, आकाश में हीरे की तरह स्थित, तुम क्या हो !

—जेन टेलर (राइम्स फ़ार दि नर्सरी, दि स्टार)

तितिक्षा

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

हे अर्जुन ! सर्दी-गर्मी और सुखःदुख को देने वाले इन्द्रियों और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर और अनित्य है, इसीलिए उनको तू सहन कर, क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्ष के लिए योग्य होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।१४-१५
अथवा गीता, २।१४-१५)

तिरस्कार

दे० 'अपमान'।

तीर्थ

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यान्ति।

बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले पुण्यात्मा लोग जिस मार्ग से जाते हैं, तीर्थों द्वारा भी लोग उसी मार्ग से जाते हैं।

—अथर्ववेद (१८।४।७)

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अकल्को निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते॥
अक्रोधनश्च राजेंन्द्र सत्यशीलो दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥

हे राजन् ! जिसके हाथ, पैर और मन अपने वश में हों तथा जो विद्वान् तपस्वी और यशस्वी हो, वही तीर्थसेवन का फल पाता है। जो प्रतिग्रह से दूर हो, जो अपने पास जो कुछ है उसी से सन्तुष्ट रहे और जो अहंकार रहित हो, वही तीर्थ का फल पाता है। जो दंभ आदि दोषों से रहित हो, कर्तृत्व के अहंकार से रहित हो, अल्पाहारी हो और जितेन्द्रिय हो, वह सब पापों से मुक्त होकर तीर्थ का फल पाता है। जिसमें क्रोध न हो, जो सत्यवादी और दृढ़व्रती हो तथा जो सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखता हो, वही तीर्थ का फल पाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, ८२।९-१२)

तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।

तीर्थ-यात्रा पुण्य कार्य है। यह यज्ञों से भी बढ़कर है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ८२।१७)

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्॥

मनुष्य तीर्थयात्रा से जिस फल को पाता है, उसे बहुत दक्षिणा वाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा यजन करके भी कोई नहीं पा सकता।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, ८२।१६)

आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते॥

जो आत्म-तीर्थ का त्याग करके बाहर के तीर्थों में भटकता फिरता है, वह मानो हाथ में रखे महारत्न को त्यागकर कांच खोजता फिरता है।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५०)

भावतीर्थं परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु।

भावतीर्थ ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। वही सब कामों में प्रमाणभूत है।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५१)

आत्मतीर्थं महातीर्थमन्यन्तीर्थं निरर्थकम् ।

आत्मतीर्थ ही महातीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक हैं ।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५३)

ज्ञानयोगपराणां तु पादप्रक्षालितं जलम् ।
भावशुद्धयर्थमज्ञानां तत्तीर्थं मुनिपुंगव ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! ज्ञानयोग में तत्पर रहने वाले महात्माओं का चरण-जल अज्ञानी मनुष्यों के भावों को शुद्ध करने के लिए तीर्थ है ।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५६)

क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः ।
पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत् ॥

ब्राह्मणों ! पुण्यक्षेत्र में पाप किया जाये तो वह और भी दृढ़ हो जाता है । अतः पुण्यक्षेत्र में निवास करते समय थोड़ा सा भी पाप न करें ।

—शिवपुराण (विद्येश्वर संहिता, १२।७)

पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति ।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते ॥
तत्कालं जीवनार्थश्चेत् पुण्येन क्षयमेष्यति ।
पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा ॥
मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः ।
मानसं च वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा ॥

पुण्यक्षेत्र में किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है, तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी बड़ा हो जाता है । यदि पुण्यक्षेत्र में रहकर ही जीवन बिताने का निश्चय हो तो उस पुण्य-संकल्प से उसका पहले का सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायेगा, क्योंकि पुण्य को ऐश्वर्यदायक कहा गया है । ब्राह्मणों ! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापों का नाश कर देता है । तीर्थ में किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है । वह कई कल्पों तक पीछा नहीं छोड़ता है ।

—शिवपुराण (विद्येश्वर संहिता, १३।३६-३८)

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है ।

—स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, ६।३०)

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं प्रियवादिता ॥

दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है संतोष भी तीर्थ कहा जाता है । ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है और प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है ।

—स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, ६।३१)

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

ज्ञान तीर्थ है । धैर्य तीर्थ है । तप को भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थों में भी श्रेष्ठ तीर्थ है—अन्त.करण की परम शुद्धता ।

—स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, ६।३२)

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः ॥

चित्त के भीतर यदि दोष भरा है तो वह तीर्थ-स्नान से शुद्ध नहीं होता । जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से जल द्वारा सैकड़ों बार धोया जाय तो पवित्र नहीं होता । उसी प्रकार दूषित अन्त.करण वाला मनुष्य तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता ।

—स्कन्दपुराण (काशी खण्ड, ६।३८) तथा
जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५४)

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा ।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥

भीतर का भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्र-श्रवण और स्वाध्याय— ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं ।

—स्कन्दपुराण (काशीखंड, ६।३९)

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥

जिसने इन्द्रियसमूह को वश में कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ भी निवास करता है, वहीं उसके लिए कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं ।

—स्कंदपुराण (काशीखंड, ६।४०)

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ।।

ध्यान के द्वारा पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेषरूप मल को दूर करने वाले मानस-तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, वह परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है।

—स्कंदपुराण (काशीखंड, ६।४१)

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पंचैते न तीर्थफलभागिनः ।।

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा है, नास्तिक है, संशयात्मा है और केवल तर्क में ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकार के मनुष्य तीर्थ के फल को प्राप्त नहीं करते।

—स्कंदपुराण (काशीखंड, ६।५४)

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ।
ज्ञानं तीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम् ।।

सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, सब प्राणियों पर दया, प्रिय-वाणी बोलना, ज्ञान तथा तप—यह तीर्थसप्तक कहा गया है।

—स्कन्दपुराण

ऐश्वर्य-लोभान्-मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः ।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत् ।।

ऐश्वर्य के गर्व से, लोभ से या मोह से जो तीर्थयात्रा में यान पर चढ़कर यात्रा करता है, उसकी तीर्थयात्रा निष्फल हो जाती है।

—मत्स्यपुराण

तीर्थे न प्रतिग्रहणीयात् पुण्येष्वायतनेषु च ।
निमित्तेषु च सर्वेषु चाप्रमत्तो भवेन्नरः ।।

जो तीर्थों में लोभ के कारण दान लेने जाता है, उसका यह लोक तथा परलोक नष्ट होते है।

—मत्स्यपुराण तथा कृत्यकल्पतरु (तीर्थखंड, पृ० १५)

अश्रद्दधानः पापात्मा
नास्तिको प्रच्छन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पंचैते
न तीर्थ-फलभागिनः ।।

श्रद्धारहित, पापी, नास्तिक, संशयात्मा तथा कुतर्की—इन पाँच को तीर्थ का फल नहीं मिलता है।

—वायुपुराण

गंगादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या, देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति ।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात् ।
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा ।।

गंगा आदि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं, देव-मन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं, किन्तु उनके चित्त भक्तिभाव से रहित होने के कारण उन्हें तीर्थसेवन और देवमन्दिर में निवास करने से कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदयकमल में भाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिए।

—नारदपुराण

यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ।

जहाँ आप जैसे सत्पुरुष बैठे हुए हैं, वह तीर्थ ही कहा जाएगा।

—कालिदास (कुमारसंभव, ६।५६)

तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् ।

सबसे उत्तम तीर्थ क्या है? अपना विशुद्ध मन।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, ८)

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगंगा ।
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः ।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकल जनमनः साक्षिभूतोऽन्तरात्मा ।
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति ।।

शरीर काशीक्षेत्र है। सर्वव्यापी ज्ञान त्रिभुवन जननी गंगा है। भक्ति और श्रद्धा ही गया है। अपने गुरु-चरणों का ध्यान-योग प्रयाग है। विश्वनाथ तुरीय, सकल गंगा के मन में साक्षीभूत अन्तरात्मा है। यदि मेरी देह मे ये सब वसते हैं तो फिर अन्य तीर्थ और कौनसे हो सकते हैं?

—शंकराचार्य (काशीपंचक, ५)

यानमर्धफलं हन्ति तदर्धं छत्रपादुके ।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् सर्वं हन्ति प्रतिग्रहः ।।

सवारी तीर्थयात्रा का आधा फल नष्ट कर देती है। उसका आधा छाता तथा जूता हर लेते हैं। व्यापार उसका तीन-चौथाई भाग नष्ट कर देता है।

—तीर्थप्रकाश

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत् ।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत् ॥

जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रा से कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती ।

—अज्ञात

विद्यातीर्थे विमलमतयः ज्ञानिनः ज्ञानतीर्थे ।
धारातीर्थे अवनिपतयः योगिनश्चित्ततीर्थे ।
पातिव्रत्ये कुलयुवतयः दानतीर्थे धनाढ्याः
गंगातीर्थे त्वितरमनुजाः पातकं क्षालयन्ति ॥

निर्मल बुद्धि वाले लोग विद्या-तीर्थ में, ज्ञानी लोग ज्ञान-तीर्थ में, राजा लोग असिधारा-तीर्थ में, योगी चित्त-तीर्थ में, कुलांगनाएं पातिव्रत्य में, दान-तीर्थ में तथा अन्य लोग गंगा-तीर्थ में अपने पापों को धोया करते हैं ।

—अज्ञात

रेवातीरे तपस्तप्येत पिण्डं दद्यात् गयाशिरे ।
दानं दद्यात् कुरुक्षेत्रे मरणं जाह्नवीतटे ॥

नर्मदा के तट पर तप करना चाहिए । गया में पिण्डदान करना चाहिए । कुरुक्षेत्र में दान देना चाहिए । गंगा-तट पर (अर्थात् वाराणसी आदि में) प्राण-त्याग करना चाहिए ।

—अज्ञात

हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस ।
जिनके हिरदै हरि बसै, कोटि तीर्थ तिन पास ॥

—मलूकदास (मलूकदासजी की बानी, पृ० ३३)

साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहीं अंग ।
तिनका दरसन न्हान है, कहँ परवी फिर गंग ॥

—गरीबदास

तीरथ तीरथ क्यों फिरै तीरथ तो घट माहिं ।
जे थिर हुये सो तिर गए, अथिर तिरत हैं नाहिं ॥

—बुधजन (बुधजन सतसई)

बाह्य और आन्तरिक मलिनताएँ जहाँ धुल सकें, वह तीर्थ है । बाह्य मल पानी से धुलते हैं, आंतरिक मल धोने के लिए पावन चरित्र और पावन विचार चाहिए । वे जहाँ मिलें वही तीर्थ है । इस दृष्टि से भगवान् पदवी के महा-पुरुष जिन स्थानों में हुए, वे तीर्थस्थान बन गए, क्योंकि वहाँ पावन आचार-विचारों की निरन्तर चर्चा से आन्तरिक मल धुलते है ।

—रत्नाकर शास्त्री (भारत के प्राणाचार्य, पृ० ५७)

सब तीर्थ बार-बार, गंगा सागर एक बार ।

—हिंदी लोकोक्ति

मोह माया व्यापे नहिं जेने
दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे
राम नाम शुं ताली लागी
सकल तीरथ तेना तनमाँ रे ।

जिनको मोह-माया नहीं व्यापती, जिनके मन में दृढ़ वैराग्य है, जिनका राम नाम में ध्यान लगा हुआ है, उनके तन में ही सारे तीर्थो का वास होता है ।

[गुजराती] **—नरसी मेहता**

तीर्थंकर

जो व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार और प्रतिपादन दोनों करता है, वह तीर्थंकर होता है ।···बुद्ध भी तीर्थंकर थे । शंकराचार्य ने कपिल और कणाद को भी तीर्थंकर कहा है ।

—मुनि नथमल (श्रमणमहावीर, पृ० ११४)

वास्तविकता यह है कि प्रत्येक तीर्थंकर आदिकर होता है । वह किसी पुराने शास्त्र के आधार पर सत्य का प्रति-पादन नहीं करता । वह सत्य का साक्षात्कार कर उसका प्रतिपादन करता है । इस दृष्टि से प्रत्येक तीर्थंकर पहला होता है, अंतिम कोई भी नहीं होता ।

—मुनि नथमल (श्रमण महावीर, पृ० ११४)

तीर्थंकर महावीर

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः ।
न च तासु भवनुदीक्ष्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ॥

जैसे समुद्र में सारी नदियाँ मिलती हैं, वैसी ही तुम्हारे दर्शन में सारी दृष्टियाँ मिली हुई हैं । भिन्न-भिन्न दृष्टियों में तुम नहीं दीखते जैसे नदियों में समुद्र नहीं दीखता ।

—सिद्धसेन दिवाकर (द्वित्रिंशिका, ४।१५)

वीतराग ! सपर्यातः तवाज्ञापालनं परम् ।

हे वीतराग ! तुम्हारी पूजा करने की अपेक्षा तुम्हारी आज्ञा का पालन करना अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

—वीतरागस्तव (१९।४)

देहज्योतिषि यस्य मज्जति जगद् दुग्धाम्बुराशिरिव
ज्ञानज्योतिषि च स्फुटत्यतितरां ओं भूर्भुवः स्वस्त्रयी ।
शब्दज्योतिषि यस्य दर्पण इव स्वार्थश्चकासत्यमी
स श्रीमानमरार्चितो जिनपतिर्ज्योतिस्त्रयास्तु नः ॥

क्षीर समुद्र में मज्जन की भांति जिनकी देहज्योति में जगत् मज्जन करता है, जिसकी ज्ञानज्योति से 'ओं भूर्भुवः स्वः' त्रयी प्रस्फुटित होती है, दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति जिसकी शब्दज्योति में पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, वह देवों से अर्चित महावीर हमें तीनों ज्योतियों की उपलब्धि प्रदान करें ।

—आचार्य रामसेन (तत्त्वानुशासन, प्रशस्ति श्लोक, २५९)

हत्थीसु एरावणमाहु णाते, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु या गरुले वेणु देवे, णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥

जैसे हाथियों में ऐरावत, पशुओं में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ श्रेष्ठ हैं, वैसे ही निर्वाणवादियों में महावीर श्रेष्ठ हैं ।

—सुधर्मा (सूयगडो, १।६।२१)

तुलसीदास

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जंगमस्तुलसीतरुः ।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता ॥

इस काशी रूपी आनन्द-वन में तुलसीदास चलते फिरते तुलसी-वृक्ष हैं । उनकी कविता रूपी मंजरी बहुत सुन्दर है जिस पर रामरूपी मुकट सदा मंडराता रहता है ।

—मधुसूदन सरस्वती (रामचरितमानस पर सम्मति)

अव भक्तिनि सुख दैन वहुरि लीला विस्तारी ।
राम चरन रत मत्त रहत अह निसि व्रतधारी ।
संसार अपार के पार को सुगमरूप नवका लयो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो ॥

—नाभादास (भक्तमाल, पृ० ७६२)

जो अवतार न होत गोसाईं को
को जग जानतो राम वेचारे ।

—वनादास (उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ३०)

साधन की सिद्धि रिद्धि सगुन अराधन की,
सुभग समृद्धि-वृद्धि सुकृत-कमाई की ।
कहे रत्नाकर सुजस-कल-कामधेनु,
ललित लुनाई राम-रस रुचिराई की ॥
सन्दनि की वारी चित्रसारी भूरि भायनि की,
सरवस सार सारदा की निपुनाई की ।
दास तुलसी की नीकी कविता उदार चारु
जीवन अपार औ सिंगार कविताई की ॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (तुलसी अष्टक, छन्द १)

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

प्रभु का निर्भय सेवक था, स्वामी था अपना ।
जाग चुका था, जग था जिसके आगे सपना ॥
प्रबल प्रचारक था जो उस प्रभु की प्रभुता का ।
अनुभव था सपूर्ण जिसे उसकी विभुता का ॥
राम छोड़कर और की, जिसने कभी न आस की ।
'रामचरित मानस-कमल' जय हो तुलसीदास की ॥

—जयशंकर प्रसाद

तुलसीदास के मानस से रामचरित की जो शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँचकर भगवान के स्वरूप का प्रतिबिंब झलका दिया ।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, 'तुलसी की भक्ति-पद्धति')

गोस्वामी जी ने उत्तरापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय कर दिया । गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, 'तुलसी की भक्ति-पद्धति')

गोस्वामी जी पूरे लोकदर्शी थे। लोक-धर्म पर आघात करने वाली जिन बातों का प्रचार उनके समय में दिखाई पड़ा, उनकी सूक्ष्म दृष्टि उन पर पूर्ण रूप में पड़ी।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, 'तुलसी की भक्ति-पद्धति)

गोस्वामी जी के भक्ति-क्षेत्र में शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मनुष्य की सम्पूर्ण भावात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार के लिए मैदान पड़ा हुआ है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, 'तुलसी का भक्ति मार्ग')

भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक जैसा तुलसीदास जी में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, 'तुलसी का भक्ति मार्ग')

गोस्वामी जी की राम-भक्ति वह दिव्य वृत्ति है जिससे जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता, सब कुछ प्राप्त हो सकती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, 'तुलसी का भक्ति मार्ग')

विश्व-साहित्य में महात्मा तुलसीदास का चाहे जो स्थान हो, पर हमारे हृदय में उनका जो स्थान है, वह किसी भी देश में किसी भी कवि के प्रति किसी का क्या होगा।

—चन्द्रबली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० १)

तुलसीदास की कोई भी रचना मनमानी नहीं हुई है और न हुई है किसी मन्दिर में बैठकर केवल कीर्तन करने के लिए ही। उनकी सभी रचनाओं का कोई न कोई उद्देश्य है और किसी न किसी लक्ष्य को भेदने के निमित्त ही उनकी लेखनी उठी और वाणी फूटी है।

—चन्द्रबली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० ९९)

आज की भाषा में 'तुलसी की जय' का अर्थ है—मर्यादा की जय! मानवता की जय!! जीव की जय!!!

—चन्द्रबली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० १३३)

तुलसीदास की 'बानी' जहाँ सुगम है, वहीं अगम भी, जहाँ मृदु है वहीं कठोर भी। फिर भी तुलसीदास ने अपने सम्बन्ध में आप ही इतना कह दिया है कि यदि उसी के प्रकाश में हम उनकी रचना के मर्म को देखने का संकल्प करें तो हमें कदाचित किसी प्रकार का भ्रम न हो।

—चन्द्रबली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० १७८)

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि संग्रह की रही है—लोक संग्रह की भी, शब्द-संग्रह की भी, और तत्त्व-संग्रह की भी। उन्होंने सबको परखा, तौला और यथा स्थान सबको स्थान भी दिया।

—चन्द्रबली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० २७५)

रामलला नहछू त्यों विराग संदीपिनी हूं
बरवै बनाई बिरमाई मति साईं की।
पारबती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु-गाई की।
दोहा औ कवित्त गीत बंध कृष्ण कथा कही
रामायन बिनै माँह बात सब ठाईं की।
जग में सोहानी, जगदीश हूं के मनमानी
संत सुखदानी, बानी तुलसी गोसाईं की॥

—अज्ञात

तृणवत्

उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम्।
विरक्तस्य तृणं भार्या निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥

उदार मनुष्य के लिए धन तृण के समान है, शूरवीर के लिए मरना तृण के समान है, विरक्त के लिए पत्नी तृण के समान है और निस्पृह व्यक्ति के लिए तो सारा जगत ही तृण के समान है।

—अज्ञात

तनु तिय तनय धाम धनु धरनी।
सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस)

रहि विरक्तुनकु राज्यंबु तृणमगु
दात यगु नतनिकि धनमु तृणमु
जूदगानि कधिक सुखमु तृणमगु
सारे निस्पृहुनकु जगमु तृणमु।

राजा विरक्त होने पर उसको राज्य तृण सदृश लगता है। दाता को धन तृण जैसा लगता है। द्यूत खेलने वालों को ज्यादा से ज्यादा सुख भी तृण जैसा लगता है। नैराश्य से भरे व्यक्ति को यह सारा जग ही तृणप्राय है।

[तेलुगु] —भवानीश कवि (धर्मबोध)

तृप्ति

दे० 'संतोष' भी।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

मनुष्य की तृप्ति धन से कभी भी नही हो सकती।

—कठोपनिषद् (१।१।२७)

अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम्?

अमृत-पान से तृप्त हुए व्यक्ति को दूध से क्या प्रयोजन?

—पैंगलोपनिषद्

लोकस्य कामैर्न वितृप्तिरस्ति पतद्भिरम्भोभिरिवार्णवस्य।

संसार की इच्छाओं से तृप्ति नही होती, जैसे गिरती जल राशि से महासागर की तृप्ति नहीं होती।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।१२)

न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदाली॥

भ्रमरों का समूह फूले हुए आम्रवृक्ष पर पहुँच कर दूसरे वृक्ष पर जाना नहीं चाहता।

—कालिदास (रघुवंश, ६।६९)

यतो न चान्यः परमात्सनातनात्
सदैव तृप्तोऽहमतो न मेऽर्थिता।
सदैव तृप्तश्च न कामये हितं,
यतस्व चेतः प्रशमाय ते हितम्॥

क्योंकि मैं पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा से भिन्न नही हूँ और सदा ही तृप्त हूँ, अतः मुझे किसी चीज़ की इच्छा नहीं है। मैं सर्वदा ही तृप्त हूँ और अपने लिये किसी हित की कामना नहीं करता। हे चित्त! तू शान्त होने के लिए प्रयत्न कर, यही तेरे लिए हितकर है।

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१६।३)

श्रेयसि केन तृप्यते।

श्रेय के विषय में किसे संतोष होता है?

—माघ (शिशुपालवध, १।२९)

अपां हि तृप्ताय न वारिधारा
स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा।

साधारण जल से तृप्त मनुष्य को स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा शीतल जल धारा अच्छी नहीं लगती।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरितम्, ३।९३)

ओस से प्यास नहीं बुझती।

—हिंदी लोकोक्ति

भादों के न बरसे, माँ के न परसे, कहीं पेट भरता है।

—हिंदी लोकोक्ति

जो स्रोत स्वतः तेरे हृदय से फूटकर नहीं निकला है उससे तुझे सच्ची तृप्ति कदापि नहीं मिल सकती।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

तृष्णा

पृथिवी रत्नसम्पूर्णा हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

रत्नों से भरी हुई सारी पृथ्वी, संसार का सारा सुवर्ण, सारे पशु और सुन्दर स्त्रियाँ किसी एक पुरुष को मिल जायें, तो भी वे सब के सब उसके लिए पर्याप्त नहीं होंगे। वह और भी पाना चाहेगा। ऐसा समझकर शान्ति धारण करें, भोगेच्छा को दबा दें।

वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, ७५।५१)

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी॥

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ तथा नित्य उद्वेग करने वाली बताई गई है। उसके द्वारा प्रायः अधर्म ही होता है। वह अत्यन्त भयंकर पाप बन्धन में डालने वाली है।

—वेदव्यास (महाभारत वनपर्व, २।३५)

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

खोटी बुद्धि वाले मनुष्यों के लिए जिसे त्यागना अत्यन्त कठिन है, जो शरीर के जरा-जीर्ण हो जाने पर भी स्वयं जीर्ण नहीं होती तथा जिसे प्राणनाशक रोग बताया गया है, उस तृष्णा को जो त्याग देता है, उसी को सुख मिलता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २।३६)

अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानलः॥

यह तृष्णा यद्यपि मनुष्यों के शरीर के भीतर ही रहती है, सो भी इसका कहीं आदि अन्त नहीं है। लोहे के पिण्ड की आग के समान यह तृष्णा प्राणियों का विनाश कर देती है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २।३७)

कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति
यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम्।
यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो
भूयो बलं वर्धते पावकस्य॥
कामार्थलाभेन तथैव भूयो
न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः।

विषयों का चिन्तन अपने शरीर को पीड़ा देता है। जो विषय-चिन्तन से सर्वथा मुक्त है, वह कभी दुःख का अनुभव नहीं करता। जैसे प्रज्वलित अग्नि में ईंधन डालने से उसका बल बहुत अधिक बढ़ जाता है, उसी प्रकार विषयभोग और धन का लाभ होने से मनुष्य की तृष्णा और अधिक बढ़ जाती है। घी से शान्त न होने वाली प्रज्वलित अग्नि की भांति मानव कभी विषय-भोग और धन से तृप्त नहीं होता।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, २६।५-६)

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका न तु जीर्यते॥

वृद्धावस्था आने पर केश जीर्ण हो जाते हैं, दाँत जीर्ण हो जाते हैं, नेत्र और कान जीर्ण हो जाते हैं, किन्तु एक तृष्णा ही जीर्ण नहीं होती।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ७।२४)

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामस्तृष्णाविध्यति बाणवत्॥

कामना करने वाले मनुष्य की एक कामना जब पूर्ण हो जाती है तो दूसरी कामना उपस्थित हो जाती है। तृष्णा बाण के समान तीक्ष्ण प्रहार करती है।

— वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, ९३।४३)

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत् पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

विषय-वासना की अग्नि कभी उपभोग से शांत नहीं होती अपितु उसी प्रकार और भी बढ़ती है जैसे हवि से अग्नि की ज्वाला। पृथ्वी भर में जितना धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक पुरुष के उपभोग में आने पर भी उसे तुष्टिकारक नहीं हो सकतीं, यही सोचकर मनुष्य को मन में शांति धारण करनी चाहिए।

—मत्स्यपुराण (३४।१०-११)

अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत्।
भवत्यखिलजन्तूनां यदन्तस्तद्बहिः स्थितम्॥

जिनका अन्तःकरण तृष्णा से तप्त है, उनको यह जगत दावानल स्वरूप प्रतीत होता है। सब प्राणियों के जो अन्दर होता है वही बाहर जगत में दिखाई देता है।

—योगवासिष्ठ (५।५६।३४)

यत्र यत्र भवेत् तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।

जहाँ-जहाँ तृष्णा है, वहाँ-वहाँ संसार है, यह जान लो।

—अष्टावक्रगीता (१०।३)

कामाभिभूता हि न यान्ति शर्म त्रिविष्टपे किं बत मर्त्यलोके।
कामैः सतृष्णस्य हि नास्ति तृप्तिर्यथेन्धनैर्वातसखस्य वह्नेः॥

जो इच्छाओं से अभिभूत हैं, वे मर्त्य लोक में क्या, स्वर्ग में भी शांति नहीं पाते। तृष्णावान को काम से तृप्ति नहीं होती, जैसे हवा का साथ पाकर अग्नि को ईंधन से तृप्ति नहीं होती।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।१०)

ज्ञेया विपत्कामिनि कामसंपत् सिद्धेषु कामेषु मदं ह्युपैति।
मदादकार्यं कुरुते न कार्यं येन क्षतो दुर्गतिमभ्युपैति॥

कामनावान् व्यक्ति में काम रूप सम्पत्ति को विपत्ति ही समझना चाहिए, क्योंकि कामना पूर्ण होने पर मद होता है। मद से मनुष्य अकार्य करता है, कार्य नहीं, जिससे घायल होकर वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।२१)

यावत्सतृष्णः पुरुषो हि लोके तावत्समृद्धोऽपि सदा दरिद्रः।

जब तक मनुष्य तृष्णा से युक्त रहता है, तब तक समृद्धिशाली होने पर भी दरिद्र ही रहता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।३०)

स्तुवन्ति श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणैः
प्रवाचः कार्पण्याद्यदवितथवाचोऽपि पुरुषाः।
प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः॥

सत्य बोलने वाले भी मनुष्य जो कृपणता के कारण वाचाल होते हुए मुख थकने तक अविद्यमान भी गुणों से राजा की स्तुति करते है, यह सब अवश्य ही तृष्णा का ही प्रभाव हो सकता है अन्यथा इच्छारहित व्यक्तियों के लिए राजा तिनके के समान तिरस्कार का विषय होता है।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, ३।१६)

वलीभिर्मुखमाक्रान्तं पलितेनांकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

वृद्धावस्था में—मुख पर झुर्रियाँ पड़ गयी, सिर के बाल सफेद हो गये, शरीर के अंग शिथिल हो गये, किन्तु एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, १४)

अकृतस्यागमो नास्ति कृते नाशो न विद्यते।
अकस्मादेव लोको यं तृष्णे दासीकृतस्त्वया॥

जो कार्य किया ही नही गया है, उससे कोई लाभ नहीं हो सकता और जो किया गया है उसका फल नष्ट नहीं हो सकता। अरी तृष्णा! तूने संयोग से ही संसार को अपना दास बना लिया है।

—भगदत्त जल्हण (सूक्तिमुक्तावली)

निस्स्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेश्वरत्वं पुनः।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्रह्मस्पदं वांछति
ब्रह्मा विष्णुपदं पुनः पुनरहो आशावधिं को गतः॥

धनहीन व्यक्ति चाहता है कि मेरे पास सौ रुपये हो जाएँ। सौ रुपये होने पर हजार के लिए इच्छा होती है। हजार से लाख, लाख से राजा का पद, राजा से इन्द्र का पद, इन्द्र होने पर ब्रह्मा का पद पाने की इच्छा होती है। ब्रह्मा होने पर विष्णुपद की इच्छा होती है। अहो! तृष्णा की कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती।

—अज्ञात

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिबली कपोले,
दन्तावली विगलिता न च मे विषादः।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपरः खलु वज्रपातः॥

मेरे बाल श्वेत हो गये है, कपोलों पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं तथा दाँत गिर गये हैं, इसका मुझे दुःख नहीं है। मृगनयनी युवतियाँ मार्ग में मुझे देखकर तात कहकर पुकारती हैं, यही वज्रपात है।

—अज्ञात

अकर्त्तव्येष्ववसाव्वीव तृष्णा प्रेरयते जनम्।
तमेव सर्वपापेभ्यो लज्जा मातेव रक्षति॥

तृष्णा दुश्चरित्र स्त्री के समान मनुष्य को अनुचित कार्यों में प्रेरित करती है।

—अज्ञात

जहा य अंडप्पभवा बलागा,
अंडं बलागप्प भवं जहाय।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा,
माहं च तण्हाययणं वयन्ति।

जिस प्रकार बलाका अंडे से उत्पन्न होती है और अंडा बलाका से, इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (३२।६)

आसं च छंदं च विगिंच धीरे।
तुम चेव सल्लमाहट्टु।

हे धीर पुरुष! आशा, तृष्णा और स्वच्छन्दता का त्याग कर। तू स्वयं ही इन काँटों को मन में रखकर दुखी हो रहा है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।४)

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो
चित्तं पञ्ञंच भावयं।
आतापी निपको भिक्खु,
सो इमं विजटये जटं॥

जो मनुष्य प्रज्ञावान है, वीर्यवान है और पंडित है, भिक्षु है, वह शील पर प्रतिष्ठित हो, चित्त (समाधि) और प्रज्ञा की भावना करते हुए इस (तृष्णा) को काट सकता है।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (१।१)

यं किंचि दुक्खं संभोति सब्बं तण्हा पच्चयाति।

जो कुछ भी दुःख होता है, वह सब तृष्णा के कारण होता है।

[पालि] —सुत्तनिपात (३।३८।१७)

कह 'गिरिधर कविराय' नागनी है यह तृष्णा।
जिसके अन्दर बसै तिसी को डसिहै तृष्णा॥

—गिरिधर कविराय

नाहिं नै या आसा को अंत।
बढ़त द्रौपदी चीर सरिस सर जुरे तंत में तंत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, पृ० ५४३)

विजय-तृष्णा का अन्त पराभव में होता है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

असीम आवश्यकता नहीं, तृष्णा होती है।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० २३५)

तृष्णा जहाँ होवे वहाँ, ही जान ले संसार है।
होवे नहीं तृष्णा जहाँ, संसार से सो पार है॥

—भोलेबाबा (वेदान्त छन्दावली, भाग १)

ख़ूँ के दरिया[1] बह गये आलम[2] तहे बाला हुए
ए सिकंदर! किसलिये? दो गज ज़मीं के वास्ते।

—ज़ौक़

पुष्पे कीट सम हेया तृष्णा जेगे रय
मर्म-माझे वांछा घुरे वांछितेरे घिरे।

पुष्प में कीट के समान यहाँ तृष्णा जगी रहती है। हृदय के भीतर यहाँ वांछित को घेर कर वांछा घूमती रहती है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, १३)

जब तुम्हारा कुआँ भरपूर है, तब भी तुम्हें प्यास का डर क्या स्वयं ऐसी प्यास नहीं है जिसका बुझाना असंभव है।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० २९)

तेज

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥

हे देव! हमारे ब्राह्मणों को तेजस्वी करो। हमारे क्षत्रियों को तेजस्वी करो। हमारे वैश्यों को तेजस्वी करो। हमारे शूद्रों को तेजस्वी करो। मुझे विश्व के सब तेजों से बढ़कर सदा अविच्छिन्न रहने वाले दिव्य तेज प्रदान करो।

—यजुर्वेद (१८।४८)

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि, मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि।

हे भगवान! तुम तेजस्वरूप हो, मुझे तेज प्रदान करो। तुम वीरतास्वरूप हो, मुझे वीरता प्रदान करो। तुम शक्तिस्वरूप हो, मुझे ओज प्रदान करो। तुम उत्साहस्वरूप हो, मुझे उत्साह प्रदान करो। तुम सहिष्णुतास्वरूप हो, मुझे सहिष्णुता प्रदान करो।

—यजुर्वेद (१९।९)

संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि।

हृदय से ज्वाला-प्रदीप्त अग्नि का उदय हो।

—अथर्ववेद (६।७६।१)

१. नदी। २. संसार।

नाग्निरग्नौ प्रवर्तते।

अग्नि अग्नि को नही जलाती है।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकाण्ड, ५५।२२)

को हि संनिहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं शक्तः।

सिंह के रहते हुए भला कौन गुफ़ा मे आ सकता है?

—भास (दूत घटोत्कच, १।८ के पश्चात्)

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।

जब सूर्य चमक रहा हो, तब अँधेरा मनुष्य की दृष्टि पर आवरण कैसे डाल सकता है।

—कालिदास (रघुवंश, ५।१३)

धूमो निवर्त्येत समीरणेन
यतस्तुकक्षस्तत एव वह्निः।

वायु धुएँ को भले ही उड़ा दे परन्तु जहाँ भी घास-फूंस हो, अग्नि तो वहाँ पहुँच ही जाती है।

—कालिदास (रघुवंश, ७।५५)

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।

तेजस्वियो की आयु नही देखी जाती।

—कालिदास (रघुवंश, ११।१)

तेजोभिरस्य विनिर्वार्तितदृष्टिपातै-
र्वाक्याहते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि।

इनके तेज से मेरी आँखें इतनी चौधिया गयी हैं, मानो बिना रोके ही मैं आगे बढ़ने से रोक दिया गया हूँ।

— कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१२)

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

जिसका क्रोध निष्फल नहीं होता और विपत्तियों को दूर कर देने वाला है, उसके वश में लोग अपने आप हो जाते हैं।

— भारवि (किरातार्जुनीय, १।३३)

लघयन्खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः।

सारे संसार को तेज से तुच्छ बनाते हुए महापुरुष दूसरे से वृद्धि की कामना नहीं करते।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।१८)

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते।

दूर होने पर भी तेजस्वी की गणना तेजस्वियों में ही होती है।

—माघ (शिशुपालवध, २।५१)

दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु
द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम्।

निश्चय ही तेजस्वी लोग भी धीरे-धीरे ही वृद्धि प्राप्त करते है, सहसा नही।

—माघ (शिशुपालवध, ९।२९)

को विहन्तुमलमास्थितोदये वासरश्रियमशीतदीधितौ।

सूर्य के निकल आने पर दिन की शोभा को कौन क्षति पहुँचा सकता है?

—माघ (शिशुपालवध, १४।८)

अनहुँकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केशरी।

सिंह मेघ की गर्जना सुनकर हुंकार करता है, शृगालों के शब्दों को सुनकर नही।

—माघ (शिशुपालवध, १६।२५)

जलेऽपि ज्वलन्ति ताडितास्तेजस्विनः।

तेजस्वी लोग तड़ित के समान आघात पाकर जल में भी प्रज्वलित रहते है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १९०)

प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवति तेजांसि।

प्रायः महान प्राणियों का भी तेज अखंड अपराजय होता है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० १३९)

तेजस्विनः सकलाननवाप्य पयोराशिसहजस्य कुतो निवृत्तिरूष्मणः।

समुद्र में सहज उत्पन्न तेजस्वी बड़वानल के तीव्र तेज की निवृत्ति बिना सबको जलाए कैसे संभव है?

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १९१)

सकलजगदुत्तापनपटवोऽपि शिशिरायन्ते त्रिभुवननयनानंदकरे कमलाकरे करास्तिग्मतेजसः।

समस्त संसार को संतप्त कर देने में समर्थ सूर्य के तेज (की किरणें) त्रिभुवन के नेत्र को आनन्दित करने वाले पद्म-समूह में आकर ठंडे पड़ जाते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २२१)

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते,
स तस्य स्वभावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।

तेजस्वी दूसरे के विस्तृत तेज को सहन नहीं करता, यह उसका स्वाभाविक अकृत्रिम गुण है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ६।१४)

तावद् दीपशिखाप्रकाशवशगं विश्वं क्षणं मोदते।
यावल्लोचनगोचरो न भवति प्रातर्निधिस्तेजसाम्॥

दीपशिखा से उत्पन्न होने वाले प्रकाश का सहारा लेकर यह संसार उतने ही समय तक प्रसाद लाभ करता है, जब तक प्रातःकालीन तेजोनिधि सूर्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

—दैवज्ञपंडित सूर्य (नृसिंह चम्पू, २।७)

तेजो यस्य विराजते स वलवान्
स्थूलेषु कः प्रत्ययः।

जिसमें तेज है, वही बलवान् है! स्थूल व्यक्तियों का क्या विश्वास?

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, १।३५८)

न खलु वयस्तेजसो हेतुः।

निस्सन्देह उम्र तेज का कारण नहीं होती।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ३८)

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्रह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

आगे चारों वेद हैं, पीछे बाणों से युक्त धनुष है। यह ब्रह्मतेज है, यह क्षात्र तेज है। शत्रु का नाश शाप से भी और शर से भी।

—अज्ञात

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयसस्तेजसो हेतुः॥

सिंह बालक होते हुए भी मद से मलिन कपोलों वाले गज पर प्रहार करता है, यह बलशालियों का स्वभाव ही है। आयु ही तेज का हेतु नहीं है।

—अज्ञात

हस्ती स्थूलतरः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽकुशः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
वज्रेणापि हतः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरिः।
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः॥

विशालकाय हाथी भी अंकुश के वश में हो जाता है। क्या अंकुश हाथी के बराबर होता है? वज्र से बड़े-बड़े पर्वत भी टूट जाते हैं। क्या वज्र पर्वत के समान बड़ा होता है? नहीं, बात यह है कि जिसमें तेज हो, वही बलवान् होता है। विशालता या शरीर की स्थूलता पर ही भरोसा नहीं करना चाहिए।

—अज्ञात

किं तुम हणइ ण बालु रवि किं बालु दिवग्गि ण डहइ वणु।
किं करि दलइ ण बालु हरि किं बालु ण डंकइ उरगमणु॥

क्या बाल रवि अंधकार को नष्ट नहीं करता? क्या छोटी दावाग्नि जंगल नहीं जला देती? क्या बाल सिंह हाथी का दलन नहीं करता? क्या बाल सर्प डसता नहीं?

[अपभ्रंश] —स्वयंभूदेव (पउमचरिउ, २१।६)

मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२५६)

तेजवन्त लघु गनिअ न रानी।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, (१।२५६।३)

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते है जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (रश्मि-रथी)

The night has a thousand eyes,
And the day but one;
Yet the light of the bright world dies,
With the dying sun.

रात्रि के हज़ारों नेत्र हैं और दिन का केवल एक; किन्तु अस्त होते हुए सूर्य के साथ दीप्तिमान संसार का प्रकाश समाप्त हो जाता है।

—फ़्रांसिस विलियम वोर्डिलान (लाइट)

तेजस्वी

दे० 'तेज'।

त्याग

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।

उस (ईश्वर) के द्वारा त्यागपूर्वक भोग करो।

—ईशावास्योपनिषद् (मंत्र १)

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए ग्राम का और आत्मा की रक्षा के लिए पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, ८०।१७ तथा उद्योग पर्व, ३७।१७)

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा॥

वेद का रहस्य सत्य है। सत्य का रहस्य इन्द्रियसंयम है। इन्द्रियसंयम का रहस्य त्याग है जो शिष्ट मनुष्यों के आचार में सदा विद्यमान रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २०७।६७)

मानं हित्वा प्रियो भवति
क्रोधं हित्वा न शोचति।
कामं हित्वार्थवान् भवति
लोभं हित्वा सुखी भवेत्॥

मान को त्याग देने पर मनुष्य प्रिय होता है। क्रोध को त्याग कर शोक नही करता। काम को त्याग कर वह अर्थवान् होता है। लोभ को त्याग कर सुखी होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, ३१३।७८)

अन्तर्बहिश्च यत् किंचन्मनोव्यासंगकारकम्।
परित्यज्य भवेत् त्यागी न हित्वा प्रतितिष्ठति।

वाहर और भीतर जो कुछ भी मन को फँसाने वाली चीज़ें हैं, उन सब को छोड़ने से मनुष्य त्यागी होता है। केवल घर छोड़ देने से त्याग की सिद्धि नहीं होती।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १२।३५)

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम्।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव॥

कोई मनुष्य त्याग किए विना सुख नहीं पाता, त्याग किये विना परमात्मा को नहीं पा सकता, और त्याग किये बिना निर्भय सो नहीं सकता, इसलिए तुम भी सब कुछ त्याग कर सुखी हो जाओ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १७६।२२)

जगतश्च यदा ध्रुवो वियोगो ननु धर्माय वरं स्वयंवियोगः।

जब जगत् का वियोग निश्चित है, तब धर्म के लिए परिवार से स्वयं पृथक् हो जाना अवश्य श्रेष्ठ है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ५।३८)

पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः॥

जिसकी कलाएँ देवताओं ने पी डाली है, ऐसा क्षीण चन्द्रमा वृद्धिगत चन्द्रमा की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है।

—कालिदास (रघुवंश, ५।१६)

सर्वत्यागश्च निर्वाणं निर्वाणार्थि च मे मनः।
त्यक्तव्यं चेन्मया सर्वं वरं सत्वेषु दीयताम्॥

सर्वस्व का त्याग मोक्ष है। मेरा मन मोक्ष चाहता है। यदि मुझे सब कुछ छोड़ ही देना है तो अच्छा हो कि उसे प्राणियों को दे दिया जाय।

—बोधिचर्यावतार (३।११)

जनयन्ति हि प्रकाशं दीपशिखाः स्वांगदाहेन।

दीपशिखा अपना अंग जलाकर ही प्रकाश उत्पन्न करती है।

—अमृतवर्धन (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २५०)

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदर-संस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥

उपार्जित धन का सत्पात्र में त्याग ही उसकी रक्षा है जैसे जलाशय में स्थित जलों का वहाव उनकी रक्षा करता है।

—चाणक्यनीति

भक्तं रक्तं सदासक्तं निर्दोषं न परित्यजेत् ।
रामस्त्यक्त्वा सतीं सीतां शोकशल्याकुलोऽभवत् ॥

जो अपना भक्त हो, अपने प्रति अनुरक्त हो, सदा साथ देता हो तथा निर्दोष हो, उसे कभी त्यागना नहीं चाहिए। राम सती सीता को त्याग कर शोकरूपी शल्य से व्याकुल ही रहे।

—अज्ञात

न चागमत्ता परमत्थि किंचि मच्चानं इध जीविते ।

जीवन में यहाँ मनुष्यों के लिए त्याग से वढ़ कर कुछ नहीं है।

[पालि] **—जातक (सिविजातक)**

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६)

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालों तास का, जो चलै हमारे साथि ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६७)

परधन पर-दारा परिहरी । ताके निकट बसहिं नरहरी ।

—नामदेव (सुधासार, पृ० ५४)

जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार ।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार ॥

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रंथ साहब में संकलित)

जो मनुष्य त्याग करता है और दुःख मानता है, उसने त्याग किया ही नहीं है, सच्चा त्याग सुखद होता है, मनुष्य को ऊँचा ले जाता है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २१८)

त्याग के क्षेत्र की सीमा ही नहीं है।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, १८१)

वैराग्यहीन त्याग, त्याग नहीं है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी भाग १, पृ० ४११)

त्याग से प्रसन्नता न हो तो वह किसी काम का नहीं।

—महात्मा गांधी (विद्यार्थियों से, ८८)

हम जिनके लिए त्याग करते हैं उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ३२२)

तामस त्याग से सात्त्विक ग्रहण उत्तम है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

श्रेय के लिए, मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

चलो, पराक्रम से जो सम्पत्ति, शस्त्रबल से जो ऐश्वर्य, मैंने छीन लिया है, उसके पात्रों को दे दूँ। हम राजा होकर कंगाल बनने का प्रयत्न करें।

—प्रसाद (राज्यश्री, चतुर्थ अंक)

त्याग प्रेम का मूल
भोग सौन्दर्य का सतत ।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ७०)

बिना त्याग के भोग
न श्रेयस्कर जीवन में ।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, पृ० १६३)

अहंकार-त्याग ही सर्वस्व का त्याग है।

—माधव स० गोलवलकर (भाषण, पूना में ६ दिसम्बर १९४२)

त्याग में ही जीवन है—जो त्याग नहीं कर सकता, उसे जीने का अधिकार नहीं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (संन्यासी, प्रथम अंक)

त्याग में सुख अवश्य है किन्तु त्याग का अर्थ कायरता नहीं होना चाहिए।

—हरिकृष्ण प्रेमी (अमर आन, पृ० २५)

त्याग मापने के लिए हर एक का अपना-अपना गज होता है—उस व्यक्ति का अपना त्याग या त्याग करने की क्षमता।

—अज्ञेय (शेखर : एक जीवनी भाग २, पृ० ४३)

त्याग ही असली बात है। त्यागी हुए विना कोई दूसरों के लिए सोलह आना प्राण देकर काम नहीं कर सकता। त्यागी सभी को समभाव से देखता है, सभी की सेवा में लगा रहता है।

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग ६, पृ० १२९)

त्याग के अतिरिक्त और कहाँ वास्तविक आनन्द मिल सकता है; त्याग के विना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, न प्रार्थना।

—रामतीर्थ (रामहृदय, पृ० १९७)

जिस आदमी ने अपना सब कुछ दे दिया है, उसे देना नही है, पाना है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १०९)

त्याग और उपलब्धि एक ही सिक्के के दो पहलू है।

—सुभाषचन्द्र बसु (इनसीन जेल से श्री गोपाललाल सान्याल को पत्र, ५ अप्रैल १९२७)

Love, not fear, is the main spring of all true renunciation.

भय नहीं अपितु प्रेम ही सच्चे त्याग का स्रोत है।

—श्रीकृष्ण प्रेम (दि योग आफ़ दि भगवद्गीता, पृ० १७९)

त्रिगुण

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निवध्नन्ति महावाहो देहे देहिनमव्ययम्॥

हे अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में वांधते है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।५ अथवा गीता, १४।५)

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन वध्नान्ति ज्ञानसंगेन चानघ॥

हे निष्पाप अर्जुन ! उन तीनों गुणों में सत्त्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार-रहित है, वह सुख के सम्वन्ध से और ज्ञान के सम्वन्ध से वाँधता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।६ अथवा गीता, १४।६)

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्निवध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्॥

हे अर्जुन ! रागरूप रजोगुण को कामना व आसक्ति से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को कर्मो के सम्वन्ध से बाँधता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।७ अथवा गीता, १४।७)

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तान्निवध्नाति भारत॥

हे अर्जुन ! सब देहाभिमानियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य तथा निद्रा के द्वारा बाँधता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।८ अथवा गीता, १४।८)

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥

हे अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में लगाता है और तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में लगाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।९ अथवा गीता, १४।९)

सत्त्वाल् संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। और तमोगुण से प्रमोद, मोह व अज्ञान उत्पन्न होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।१७ अथवा गीता, १४।१७)

जो काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती वेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ।।

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८६)

त्रिगुणातीत

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्म-मृत्यु-जरा-दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।

शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप इन तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से युक्त हुआ जीवात्मा परमानन्द को प्राप्त होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।२० अथवा गीता, १४।२०)

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते।।
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भ-परित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।

जो उदासीन रहने के कारण त्रिगुणों से चंचल नहीं होता और गुण ही अपना कार्य करते हैं, ऐसा मानकर ही जो स्वस्थ रहता है तथा कंपायमान नहीं होता, जो सुख-दुःख को समान मानता है, जो अपने में ही आनंदित रहता है, जो मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण को समान मानता है, जो प्रिय अथवा अप्रिय की प्राप्ति होने पर सम अवस्था में रहता है, जो धैर्यवान है, जिसको अपनी निन्दा और स्तुति समान प्रिय होती है, जिसको अपने मान और अपमान समान लगते हैं, जो मित्र और शत्रु के साथ समभाव से व्यवहार करता है तथा जो सब कार्यारंभों को त्याग देता है, वही त्रिगुणातीत कहा जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ३८।२३-२५ अथवा गीता, १४।२३-२५)

त्रुटि

दे० 'ग़लती'।

त्रेतायुग

त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते।।

त्रेता युग की अवधि ३००० वर्ष ही कही गयी है। उसकी संध्या ६०० वर्षों की कही गयी है।

—मत्स्यपुराण (१६५।६)

थ

थकान

हसरत[1] पै उस मुसाफ़िरे बेकस की रोइये
जो थक गया हो बैठके मंजिल के सामने।

—मसहफ़ी

सबसे अधिक शक्तिशालियों के भी क्षण आते हैं जब वे थक जाते हैं।

—नीत्शे (अंग्रेजी अनुवाद 'दि विल टू पावर')

In the morning a man walks with his whole body; in the evening, only with his legs.

प्रातःकाल मनुष्य अपने सम्पूर्ण शरीर से चलता है किंतु सायंकाल को केवल टाँगों से।

—एमर्सन (जर्नल्स १८।३६)

I am tired of tears and laughter
And men that laugh and weep;
Of what may come hereafter
For men that sow and reap;
I am weary of days and hours,
Blown buds of barren flowers,
Desires and dreams and powers,
And everything but sleep.

1. इच्छा।

मैं आँसुओं और मुस्कान से थक गया हूँ। मैं मनुष्यों से भी थक गया हूँ जो इस चिंता से कि कल क्या होगा, रोते और हँसते हैं और जो फ़सल बोते और काटते हैं।

मैं दिनों और घंटों से थक गया हूँ, वंध्या फूलों की खिली कलियों से थक गया हूँ और निद्रा के अतिरिक्त सभी से—इच्छाओं, कल्पनाओं और शक्तियों से, थक गया हूँ।

—ए० सी० स्विनबर्न (दि गार्डन आफ़ प्रासरपीन)

The young feel tired at the end of an action,
The old, at the beginning.

युवा लोग किसी कार्य की समाप्ति पर थक जाते हैं और वृद्ध पुरुष कार्य के प्रारंभ में।

—टी० एस० इलियट (दि फ़ेमिली रियूनियन, २।२)

Fatigue is the best pillow.

थकान सर्वोत्तम तकिया है।

—बेंजमिन फ़्रैंकलिन

Oh! death will find me, long before I tire
Of watching you; and swing me suddenly
Into the shade and loneliness and mire
Of the last land!

मैं तुम्हें देखते-देखते थक जाऊँ इसके पहले ही मृत्यु मुझे पा लेगी और अकस्मात् उस अंतिम देश के अंधकार और सूनेपन और दलदल में फेंक देगी।

—रूपर्ट ब्रूक (ओह डेथ विल फ़ाइंड मी)

परिशिष्ट-१

संदर्भ-अनुक्रमणिका

प्रथम खंड

इस सन्दर्भ-अनुक्रमणिका में हमारे सभी सूक्ति-स्रोतों अर्थात् उद्धृत लेखकों तथा लेखक-नाम से असम्बद्ध ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं आदि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। साथ ही सम्बद्ध पृष्ठ-संख्याएँ भी अंकित की गयी हैं। भूमिका में दी गयी सम्बद्ध टिप्पणी भी द्रष्टव्य है।

अंगराज (२०वीं शती)—भारतीय काव्य-ग्रन्थ। भाषा—हिन्दी। रचयिता—आनन्दकुमार।
(दे० द्वितीय खंड)

अंगुत्तरनिकाय (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—पालि। बौद्ध धर्मग्रन्थ जिसमें भगवान बुद्ध के वचन संगृहीत हैं। यह 'सुत्तपिटक' के पाँच निकायों में से एक है।
३५७ (दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)

अंतरा (६ठी शती)—अरब-निवासी। योद्धा तथा अरबी के कवि। पूरा नाम—अंतरा बिन शद्दाद।
९० (दे० द्वितीय खंड भी)

अंबिका गिरि राय चौधुरी (१८८५-१९६७)—भारतीय। असमिया-साहित्यकार।
६०

अंबिकादत्त व्यास (१८५९-१९००)—भारतीय। संस्कृत-साहित्यकार।
(दे० द्वितीय खंड)

अकबर—(१५४२ – १६०५)—भारतीय। मुग़ल सम्राट्। हिन्दी-कवि।
(दे० द्वितीय व तृतीय खंड)

अकबर इलाहाबादी (१८४६-१९२१)—भारतीय। उर्दू-कवि। नाम—सैयद अकबर हुसैन। उपनाम—'अकबर'।
३४, ३६, ९३, १०८, ११०, १२९, १४२, १८४, २७७, २८८, ३११, ३३७, ३६३, ३६८, ३६९ (दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)

अकबर मुग़ल सम्राट्—दे० अकबर।

अक्षयकुमार वंद्योपाध्याय (मृत्यु—१९६५)—भारतीय। बँगला-लेखक तथा वक्ता। पूर्व बंगाल में एक कालेज के प्राचार्य रहे।
३०३

अक्षर अनन्य (जन्म—१६५३)—भारतीय। हिन्दी के संत-कवि।
५३, ३९७ (दे० द्वितीय खंड भी)

अक्ष्युपनिषद् (अनेक शती ईसा पूर्व) – भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। एक उपनिषद्-ग्रंथ।
२०४

अखंडानंद—दे० अखंडानंद सरस्वती।

अखंडानंद सरस्वती (२०वीं शती)—भारतीय। विद्वान संन्यासी। पहले हिन्दी मासिक 'कल्याण' के सह-सम्पादक रहे। संन्यास-पूर्व नाम—शान्तनु द्विवेदी। धार्मिक व्याख्याता तथा हिन्दी-लेखक।
९४, १४२, २४१, ३५४, ३७७, ३८१ (दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)

अखो भगत—दे० अखो।

अखो (१५९१-१६५६)—भारतीय। गुजराती के संत-कवि। इन्हें 'अखो भगत' भी कहा जाता है।
१४३ (दे० द्वितीय खंड भी)

अख़्तर शीरानी (१९०५-१९४८)—भारतीय। उर्दू-कवि। नाम—अख़्तर खां। उपनाम—शीरानी।
१८६

परिशिष्ट-२

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

प्रथम खंड

संगृहीत सूक्तियों के आधारभूत ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं आदि और संदर्भार्थ उपयोग किए गए ग्रंथों की अनुक्रमणिका (जिसमें फुटकर पत्रों, भाषणों, वार्तालापों इत्यादि के संदर्भ-स्रोत सम्मिलित नहीं किए गए हैं) के लिए तृतीय खंड का 'परिशिष्ट-२' द्रष्टव्य है।

शुद्धि-पत्र (सूक्तियाँ तथा परिशिष्ट)

प्रथम खंड

प्रथम खंड में (सूक्तियों तथा परिशिष्ट में) हुई मुद्रणगत इत्यादि अशुद्धियों का संशोधन नीचे दिया गया है। सन्दर्भगत अशुद्धियों का परिहार करने में प्रथम खंड का परिशिष्ट-१ भी उपयोगी है।

(क) सूक्तियों का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति / संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	१	अ/२	काशिका	कारिका
१	२	अंग्रेज/१	ग्रन्थावली	ग्रन्थावली, भाग २
३	२	अन्तःकरण/५	वायरन	बायरन
७	३	अन्तर्राष्ट्रीयता	समाजवाद	राष्ट्रवाद
९	१	पादटिप्पणी	५/१०१	५/१०३
१५	१	अति/२	६/५३	६/५ के पश्चात्
२०	१	अतिथि/५	होर्न	होवे
२१	१	दूसरी पंक्ति	दिलोअर	दि लोअर
२१	१	अतीत/५	Improbalcle	Improbable
२४	१	अत्याचारी/५	वेविन्युरो सेल्लिनो	वेंविन्यूटो सेल्लिनी
२८	१	प्रथम शब्द	सिफ़्क़ि	तिफ़्क़ि
२८	१	अद्वैत/५	'आपस में मदद करो'	* इसे काट दें।
३१	१	अध्ययन/३	विगरपडिवद्धे अविओसितपाहुडे	विगइपडिवद्धे अविओसितपाहुडे
३२	२	अध्ययन/६	reeding	reading
३३	१	अनन्त/१	सर्वमक्षय्यवचकम्	सर्वमक्षय्यावाचकम्
३५	२	अनुचित/१	(कुमारसंभव)	(कुमारसंभव, २।५५)
३६	१	अनुभव	सकती है।	सकती है!
३६	२	अंतिम सूक्ति	discriptions	descriptions
३९	१	अन्न/३	ध्वान्त	ध्वान्तं
४४	२	तीसरी पंक्ति	डिजेक्शन, नियर	डिजेक्शन नियर

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
४४	२	अंतिम शब्द	उच्चते	उच्यते
५८	२	असम्भव/२	फ़ित्ज़	फ़िचाफ़ नानसेन
५९	१	असत्य/३	सोढुमलं मण्ये	सोढुमलं मन्ये
५९	१	असत्य/५	अणणु वीइ	अणणुवीइ
६३	१	अस्पृश्यता-निवारण	रामचन्द्र शुक्ल	रामचन्द्रशुक्ल-२
६५	१	अहम्/२	from.	from
७०	२	आकर्षण/२	scacity	scarcity
७२	२	दूसरी सूक्ति	शुकनीति	शुक्रनीति
७४	२	आत्मज्ञानी/२	किमित्रावसादकरमात्यवताम्	किमिवावसादकरमात्मवताम्
७७	१	आत्मदर्शन/५	makes in	makes us
७७	१	आत्मप्रशंसा	प्र वदन्ति	प्रवदन्ति
७८	२	आत्मप्रशंसा/अंतिम	Tis	'Tis
८०	१	आत्मविजय/६	pure	pure.
८८	१	आत्मा/१	वालभद्र	वालचन्द्र
९०	१	अंतिम पंक्ति	अरवी-कान्य	अरवी-काव्य
९५	१	तीसरी पंक्ति	अरण्डेल	अरुंडेल
९९	१	प्रथम सूक्ति का सन्दर्भ	अज्ञात	ईशावास्योपनिषद् (२)
९९	१	**प्रथम श्लोक का सन्दर्भ**	**वाल्मीकि (रामायण)**	**वाल्मीकि (रामायण, २।१०५।२०)**
९९	१	*प्रथम श्लोक का अर्थ छूट गया है। अर्थ इस प्रकार है—	दिन-रात लगातार बीत रहे है और इस संसार में सभी प्राणियों की आयु का उसी प्रकार शीघ्र नाश कर रहे है जैसे सूर्य की किरणे ग्रीष्म ऋतु में जल का शीघ्र नाश करती है।	
११०	२	इच्छा/५	*संदर्भ छूट गया है। पढ़ें—'**अज्ञात**'	
११५	२	अंतिम सूक्ति	शेलिंग	शिलर
११६	२	इतिहास/५	मैकाले ट्रेवेल्यन	मैकाले (ट्रेवेल्यन)
१२३	१	अंतिम पंक्ति	सूर्यपंडित	पंडित सूर्य
१२५	१	ईश्वर/९	दरिया साहव	दरियासाहव विहार वाले
१२५	२	ईश्वर/१०	खुशरो	ख़ुसरो
१५८	१	ईश्वर-भक्ति/४	[मराठी]	[उड़िया]
१६९	१	उद्‌बोधन/३	[पालि]	[प्राकृत]
१६९	१	उद्‌बोधन/३	कामसुत्तं	दशवैकालिक (८।३४)
१७०	१ व २	—	—	*प्रथम कालम की तीसरी सूक्ति का '(कविश्रीमाला, पृष्ठ २८)' हटाकर द्वितीय कालम की

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
				तीसरी सूक्ति में 'काज़ी नजरुल इस्लाम' के वाद रखें।
			रिद्धि	ऋद्धि
१७३	१	उद्यम/६	लवेरियु	लेवेरियु
१९०	१	ऋण/२	wo	who
१९०	२	अंतिम सूक्ति	kno ledge	knowledge
१९०	२	अंतिम सूक्ति	लेव तोल्सतोय	मैक्सिम गोर्की
१९२	२	एकता/२	ड्यूमस	ड्यूमा
१९२	२	एकता/३	एन्क्वायर	एन्क्वायरी
२११	१	प्रथम सूक्ति	ओरिजन	ओरिजिन
२११	१	प्रथम सूक्ति	चिंतन क	चिंतन के
२१७	२	कला/५	फ्रेंकोइ	फ्रंकोई
२२०	२	प्रथम सूक्ति	चेरी देलसार्ते	(चेरी देलसार्ते)
२२०	२	प्रथम सूक्ति	लिए, पृ० १६८)	लिए)
२२१	१	चौथी पंक्ति	१८६ /४	१८६
२२६	२	चौथी पंक्ति	नवचम्पू	नलचम्पू
२३६	१	कष्ट/२	काम-विजय	काम-विजय
२४०	२	अंतिम शीर्षक	सल्लता	सल्लतान
२४८	२	अंतिम पंक्ति	authnrs	authors
२४९	१	काल/२	New	Now
२४९	१	काल/३	पृ० ९७	पृष्ट ९३
२५८	२	प्रथम सूक्ति	वो जेंहीनी	वी जेंद्रीनी
२५८	२	आठवी सूक्ति	निर्दहतिहित	निर्दहति
२६४	२	प्रथम पंक्ति	[मराठी]	[उड़िया]
२६७	१	प्रथम सूक्ति	कंजूसी	कंजूस
२६९	२	अंतिम सूक्ति	जीवित	जीवितम्
२७०	२	अंतिम पंक्ति	शास्त्रमेवार्थदृष्टन्ने	शास्त्रमेवार्थदृष्ट्मे
२७१	१	कृष्ण/३	ताज	ताज
२७५	१	कृष्ण-भक्ति/५	—	*इस सूक्ति की भापा प्राकृत है।
२८२	१	तीसरी सूक्ति	अभिच्छाया	अभ्रच्छाया
२८५	१	प्रथम सूक्ति	*लेखक का नाम नहीं दिया गया है	*अज्ञात
२८९	२	खेद/१	fossow	follow
२९३	२	अंतिम सूक्ति	मैथिमेटिक्स एट	आन मैथिमेटिक्स ऐंड
२९३	२	अंतिम सूक्ति	जॉन यॉक	जॉन लॉक
२९६	१	तीसरी सूक्ति		

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३०२	१	अंतिम सूक्ति	६६	६६
३०३	२	तीसरी सूक्ति	जे० एल०	जे० एन०
३०४	२	दूसरी सूक्ति	वृहदारण्यक	बृहदारण्यक
३११	१	प्रथम सूक्ति	चाणक्यनीति	चाणक्यसूत्राणि (३०६)
३१४	२	प्रथम सूक्ति	चाणक्यनीति	चाणक्यसूत्राणि (१७६)
३१६	२	सातवीं सूक्ति	सालिगराय	सालिगराम
३२०	१	चौथी सूक्ति	गुरु विलास	गुर विलास
३६४	२	पहली सूक्ति	[मराठी]	[उड़िया]
३६८	१	दूसरी सूक्ति	डेथ फेस्ट	डेथ्स जेस्ट
३८१	१	ज्ञान और धन/१	मयूराक्ष	मसूराक्ष
३८७	२	टेलीविज़न/२	वेलेस	वेलेस
३९३	१	अंतिम सूक्ति	जामी	जामी
३९६	१	छठी सूक्ति	—	*इस सूक्ति की भाषा 'प्राकृत' है।
३९८	२	शीर्षक	तक	तर्क
३९९	१	दूसरी सूक्ति	भाग ७)	भाग ७, पृ० ७१)
३९९	२	तर्क/४	टोज़ले	वेज़ले
४०१	२	तानाशाही/२	नेशनल	के नेशनल
४०६	१	तीर्थंकर महावीर / ३	—	*इस सूक्ति की भाषा प्राकृत है।
४०७	२	तृणवत्/२	(रामचरितमानस)	(रामचरितमानस, २।३५।४)
४१८	१	प्रथम सूक्ति	मसहफ़ी	मुसहफ़ी

(ख) परिशिष्ट का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	१	अकबर इलाहाबादी/३	११०	१०९
१	२	अक्षर अनन्य/१	१६५३	१६४३
२	२	मलयालम/१	८२७	*यह संख्या काट दें।
२	२	अत्रिराजयाजी	—	*शुद्ध नाम—अतिरात्रयाजी।
३	१	अथर्वशिर उपनिषद/१	संस्कृत	संस्कृत।
३	१	अप्पय दीक्षित/१	१५८९	१५९८
३	१	अप्पय दीक्षित/३	१२	१२, ९२
३	२	अभिधम्पटिक/२	पालि वौद्ध	पालि। बौद्ध
३	२	अभिनंद/१	१९वीं	९वीं

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
४	१	अमृता प्रीतम/२	२३८	३२८
४	२	अरस्तू/२	२३	२३७
४	२	अजितदेव/३	२२५	२५५
५	१	अबू मुहम्मद अल गजाली	—	*नाम में से 'अबू मुहम्मद' काट दें।
५	१	अबू मुहम्मद अल गजाली/३	—	*जोड़ें—पूरा नाम हामिद अल-गज़ाली
५	१	अलेग्जेंडर ऍंजलीक.../२	फ्रांसीसी पेरिस	फ्रांसीसी/पेरिस
५	२	अल्फ्रेड नार्थ व्हाइटहेड/२	दे० तृतीय	दे० द्वितीय व तृतीय
६	१	अष्टावक्रगीता/१	११११, ३७	१११, ३७१
६	१	आगस्टीन	—	*नाम को ठीक क्रम में 'आचारांग, से पहले रखें।
७	१	आर्सन ब्रेलेस	—	*नाम को करें—आर्सन वेलेस।
८	१	उदान/४	४६	*यह संख्या काट दें।
८	१	उमाशंकर पण्ड्या	—	*यह नाम काट दें।
८	२	एंपोनी/३	६४	४
१०	१	एडले स्टीवेंसन	—	*नाम को ठीक क्रम में 'एडलाई स्टीवेंसन' के बाद रखें।
११	१	एफ़० स्काट.../२	वंसिस	फ्रांसिस
११	२	एल्फ़िस्टन	—	*नाम को ठीक क्रम में 'एल्डस हक्सले' के पश्चात् रखें।
११	२	एलिवन	—	*नाम को ठीक क्रम में 'एलेन हूपर के पश्चात् रखें।
१३	१	ओलिवर वेंडेल होल्म्स	—	*नाम को ठीक क्रम में पृष्ठ १२ कालम २ में 'ओलिवर गोल्डस्मिथ' के बाद रखें।
१३	२	कमलसिंह लंमावम	—	*इसके बाद छूटा नाम जोड़ें—कमालदास (१५वीं-१६वीं शती)—भारतीय। संत कबीर के पुत्र।
१४	२	'कायम' चाँदपुरी	(—१८३२)	(१७३२-१७९३)
१५	२	फूरथल्वार	—	*अधिक परिचय द्वितीय खंड के परिशिष्ट-१ मे (पृष्ठ १५)।
१६	२	क्रिश्चियन नेस्टल बोनी/१	१२०	१८२०

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१७	१	खंडो वल्लाल/१	१७वी शती	१६६८-१७७६
१७	२	गंग/२	१५४	३५४
१७	२	गंगाधर मेहेर/१	१९२४	१९३४
१७	२	गजानन···/१	१९६३	१९६४
१८	१	गिरिधर शर्मा	—	*नाम को ठीक क्रम में 'गिरिधर कविराय' के पश्चात् रखें।
१८	२	गुरु तेगवहादुर/१	१६६४	१६२१
१९	२	गोविन्द स्वामी	—	*यह नाम काट दें।
२०	१	चंडीदास	—	*नाम को ठीक क्रम में 'चंदक' से पूर्व रखें।
२०	१	चंदवरदाई	—	*नाम को ठीक क्रम में 'चंदक' के पश्चात् रखें।
२१	१	चार्ल्स स्टेवार्ट पार्नेल	—	*इसे काट दें।
२१	२	'चैनिंग पोलाक'	—	*इसके वाद छूटा नाम जोड़ें—च्वांग त् जु (४थीं-५वी शती ईसा पूर्व)—चीनी विद्वान। (दे० द्वितीय खंड)
२१	२	छत्रसाल	(१४९-१७३१)	(१६४९-१७३१)
२२	१	जगन्नाथ महात्मा/२	१६३०	१६०३
२२	२	जयदेव (द्वितीय)/२	चन्द्रलोक	चन्द्रालोक
२२	२	जयशंकर प्रसाद/१	१८८९	१८९०
२३	१	जरथुस्त्र/४	द्वितीय	तृतीय
२३	१	जवाहरलाल नेहरू/१	१९३४	१९६४
२३	२	जान डिवो	—	*इसे काट दें।
२३	२	जान ड्राइडेन/२	नाटकार	नाटककार
२४	१	जान ब्राउन/१	१८८०	१८००
२४	१	जान लाक/२	३७९,	३७९, ३८०
२४	१	जान हे/१	१८३९	१८३८
२४	२	जामी/२	नरुद्दीन	नूरुद्दीन
२५	१	जार्जी जैकुआ दान्तन/२	—	'राजनीतिज्ञ' के पश्चात विराम-चिह्न दें।
२५	२	जार्ज मैकाले···/३	१९६	११६
२५	२	जिया/५	खड भी	खंड

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षकतया मुद्रित/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
२६	१	जीन वैप्टिस्ट…/१	लोकोर्डायर	लैंकोर्डायर
२६	१	जूल्स दि गोनकोर्त।५	एंतोद्दूने	ऍंतोइने
२६	२	जेनोफ़न/१	४३४-३३५	४३४ ?—३५५
२६	२	जेम्स ओटिस/१	१८२५-८३	१७२५-१७८३
२७	१	जेरेमी वेनयम/१	१८४८	१७४८
२७	१	जोनयन स्विफ्ट/१	१६३५	१७४५
२७	२	जोश मलीहावादी/१	१६८१	१६८२
२७	२	जोशफ़ जूबेर/१	जोशफ़	जोसफ़
२७	२	ज्यां एंतोइने पेते/१	१८८०	१८७०
२८	१	टामस डेक्कर/१	१५७८-१७३२	१५७२-१६३२
२८	२	टामस वेबिंगटन मैकाले/२	—	*दूसरी पंक्ति काट दें।
२८	२	टी० एस० इलियट/२	१६२६	१६२७
२८	२	टेऊराम	—	*अंत में जोड़ें (दे० द्वितीय खंड)
२६	१	ट्राट्स्की/३	दैवीदीविच	दैवीदोविच
२६	१	ठाकुर कल्याणसिंह/३	२४३	२८३
२६	२	डब्लू० नैस्सन…/१	डब्लू०	डब्ल्यु०
३१	१	ताल्लपाक अन्नमय्या/१	१४२४-१५०३	१४२४ ?—१५०३ ?
३१	१	तिरुवल्लुवर/३	तिरु	तिरु=
३१	२	तैत्तरीयोपनिषद्/२	७६	७६, १६०
३१	२	तैत्तरीयोपनिषद्/२	द्वितीय	द्वितीय व तृतीय
३२	१	तोप/१	१६६५	१६३५
३२	२	त्रिभुवन/१	८वीं	६वीं
३२	२	दयानन्द/४	३७२	३७३
३३	१	दरिया साहब/१	दे० दरिया साहब (विहार वाले)	दे० दरिया साहब (मारवाड़ के)
३४	१	दिङ्नाग/३	१६५	१६६
३४	२	देवेन्द्रनाथ सेन/३	२३०	२३१
३६	१	नम्र/१	नाथूलाल	नाथूराम
३६	२	नागरीदास/६	३८८	३८६
३६	२	नाथूलाल…/१	नाथूलाल	नाथूराम
३६	२	नादबिन्दूपनिषद्/३	(दे०…)	१७४ (दे०…)
३७	१	नाभादास/१	जन्म—	मृत्यु—
३७	२	*'नारायण स्वामी' नाम के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़ें—नार्ल कृष्णा-राव (समय—?)—भारतीय। तेलुगु-कवि। (दे० द्वितीय खंड)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३९	१	*'पतंजलि' के पश्चात्		*छूटा नाम जोड़ें— पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी (१८९४-१९७१)—भारतीय। हिंदी के निवन्धकार तथा समीक्षक। (दे० द्वितीय खंड)
४०	१	*'पार्क वेंजमिन' के पश्चात्		*छूटा नाम जोड़ें— पाल एलरिज (समय—?)—एक विदेशी लेखक।(दे० द्वितीय खंड)
४२	१	प्लिनी कनिष्ठ/३	सेकंड्स	सेकंडस्
४२	१	प्लूटार्क/१	१३०	१२०
४३	१	फ़ांसिस क्वार्ल्स/१	१५०२	१५९२
४३	२	वच्चन/२	—	*संख्याएं काट दें।
४३	२	वनारसीदास चतुर्वेदी/१	(जन्म—१८९२)	(१८९२-१९८५)
४४	१	वफ़ां/१	१७७८	१७८८
४४	१	वलदेव प्रसाद मिश्र/१	२०८	२४८
४४	१	*'वलदेव प्रसाद मिश्र' के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़ें—वलिजेपल्लि (समय—?)—भारतीय। तेलुगु-कवि। ४३३
४४	२	वहार दानिश		*दिए परिचय के स्थान पर लिखें— (१७वीं शती)—फ़ारसी भाषा का भारतीय ग्रंथ। रचयिता—इनायत अल अल्लाह। २२९
४४	२	वावा पृथ्वीसिंह 'आज़ाद'/३	द्वितीय	तृतीय
४५	२	विस्मार्क/३	एडुवर्ड	एडुअर्ड
४६	१	वेंजमिट फ्रैंकलिन/१	वेंजमिट	वेंजमिन
४६	१	वेविन्यूटो शेल्लिनी/१	शल्लिनी	सेल्लिनी
४७	१	व्रह्मविद्योपनिपद्/३	२७३	३८३
४७	१	व्राह्म समाज/१	व्राह्य	व्राह्म
४७	२	भगिनी निवेदिता/२	३९१	२९१
४८	२	भाई परमानन्द	७८७ फ	१८७६
४९	१	भास/४	३३८	*यह संख्या काट दें।
४९	१	'भास्कर यज्वा' तथा 'भिक्षु स्वामी'	—	*इन दोनों नामों के समय ठीक दिए है, शेप परिचय परस्पर वदल दें।
५१	२	'मांतेन' के पश्चात्	—	*जोड़ें छूटा नाम—माइकेल वाकुनिन (१९वीं शती—रूसी क्रांतिकारी चिन्तक। (दे० द्वितीय खंड)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५१	२	मार्टिल/१	दि	डि
५२	२	मार्क्स/२	(दे० द्वितीय…)	२७६ (दे० द्वितीय…)
५३	१	०'मिगेल डि युनामुनो' के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़ें—मिगेल डि सेरवांटीज सावेद्रे (१५४७-१६१६)—स्पेन निवासी। स्पेनी भाषा के उपन्यासकार। ३८७ (दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)
५३	१	मीरा/१	१४६८-१५७०	१४६६-१५७० ?
५३	२	मुनि बालचंद्र/२	योगफल	योगामृत
५३	२	मुरारि/२	१६६	२६६
५४	१	मूसा…/१	एजर	एजरा
५४	१	मूसा…/१-२	०जो परिचय दिया है, उसके स्थान पर यह दें—(१०७०-११३५) —हिब्रू भाषा के कवि। (दे० तृतीय खंड)	
५५	१	'युगेश्वर' के पश्चात्		छूटा नाम जोड़ें— *यूरीपिडीज (४८० ?—४०६ ईसा पूर्व)—यूनानी नाटककार। ३८८ (दे० द्वितीय खंड भी)
५५	२	योगवासिष्ठ/४	१४३	२४३
५६	१	*'रघुपतिदास' के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़ें—रघुनाथ चौधरी (१८६७-१६६७)—भारतीय। असमिया-कवि। (दे० द्वितीय खंड)
५६	१	रघुपतिदास/१	बाबू	बाबा
५६	२	रमणगीता	—	*दिए परिचय के स्थान पर दें—दे० श्री रमणगीता।
५७	१	रहीम/४	१६५	१६५
५८	१	राबर्टहाल।१	१७६४	१७७४
५६	१	रामधारीसिंह 'दिनकर'	२४८, ३३२	२४८, २८७, २६६, ३३२,
६०	१	रिचर्ड निक्सन/२	मिलस	मिलउस
६०	२	'रुद्रट' और 'रुद्रदेव' के बीच में	—	*छूटा नाम 'रुद्रदत्त मिश्र' पृष्ठ ६१ (कालम १) में लाएं।
६०	२	रुद्रदेव/१	गणपति	गजपति
६०	२	रूजवेल्ट द्वितीय/३	७, २	७

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६१	१	रूपर्ट ब्रुक	—	*प्रथम पंक्ति के पश्चात् नयी पंक्ति में दें— ४१८
६१	१	रुद्रदत्त मिश्र	—	*यहां से हटाकर पृष्ठ ६० कालम २ में 'रुद्रट' के पश्चात् रखें।
६१	२	लक्ष्मीकान्त वर्मा	—	*द्वितीय पंक्ति के पश्चात् नयी पंक्ति में दें— ८
६१	२	लल्लेश्वरी	—	*नाम शुद्ध करें—लल्लेश्वरी।
६२	२	लियोपान्ड···	—	*नाम शुद्धकरें—लियोपाल्ड।
६३	१	लैरमँतोव/१	१८१८	१८१४
६५	१	वाल्मीकि/२	द्वितीय खंड	द्वितीय व तृतीय खंड
६६	१	विनोबा/६	३६६	३७७
६६	२	विल ड्युरेंट/१	१८७५	१८८५
६७	२	विलियम हैमिल्टन/१	१७८४	१७८८
६९	१	वेदव्यास/८	१६०, १६५	१६०, १६१, १६५
६९	२	व्यासवाणी/१	हरिराय	हरिराम
६९	२	शंकर कुरुप/१	१९०२	१९०१
७०	१	*'शंकराचार्य' से पूर्व	—	*छूटा नाम जोड़ें— शंकरलाल (१८४२-१९१८) भारतीय। गुजरात के संस्कृत-नाटककार। (दे० तृतीय खंड)
७१	१	शिवानी/३	(दे० द्वितीय···भी)	२, ९६ (दे० द्वितीय···भी)
७१	२	शेफ़्ता/१	१८९६	१८६६
७२	१	श्यामनारायण पांडे	—	'पांडे' का शुद्ध रूप 'पाण्डेय'
७३	२	सत्यनारायण 'कविरत्न'	—	*तृतीय पंक्ति जोड़ें— (दे० द्वितीय खंड)
७४	२	सरदार पूर्णसिंह/४	२६८	२६२
७५	१	सर्वदर्शनसंग्रह/२	पुत्र	भाई
७५	१	सर्वेंटीज़	सेरवांटीज़	मिगेल डि सेरवांटीज़ सावेद्रे
७५	२	साधु वासवानी/३	थावर	थांवर
७५	२	सारदानंद/१	१८६७	१८६८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
७६	१	सिद्धसेन/३	द्विविंशिका	द्वात्रिंशिका
७६	१	'सिमेरो'	दे० शुद्ध उच्चारण 'सिसेरो'।	*यह पंक्ति काट दें।
७६	२	सुत्तनिपात/३	२५२	३५२
७६	२	सुधर्मा/२	४०६	४०६
७८	१	सैमुअल मूर शूमेकर	—	*नाम व परिचय का शुद्ध रूप तृतीय खंड परिशिष्ट-१ पृष्ठ ७६ पर देखें।
७८	१	सोज	—	*नाम व परिचय काट दें।
७६	२	स्विफ़्ट/३	३३४ ३३७	३३४, ३३७
७६	२	हम्फ़्री	—	*यह नाम स्थानान्तरित कर पृष्ठ ८० प्रथम कालम में 'हरदयाल' से पूर्व दें।
८०	२	हरिभद्र/१	शती उससे	शती या उससे
८०	२	हरिराम व्यास/१४४२	१४४२	१४६२
८१	२	मौलवी अमजद अली	—	नाम—हाफ़िज़ मौलवी अमजद अली
८२	१	हेनरी एडम्स/२	—	*पंक्ति काट दें।
८२	२	हैवेल/१	—	*जोड़ें—भारतीय कला, स्थापत्य व इतिहास के विद्वान। पूरा नाम—ई० बी० हैवेल।